विषय सूची

प्रकाशकका निवेदन।

श्री बड़ा बजार कुमार सभाको प्रकाशन क्षेत्रमें अवतीर्ण होते देखकर लोगोंके हृदयमें अनेक तरहके विचार उत्पन्न हो सकते हैं। इनमें सबसे मुख्य और प्रधान विचार यह हो सकता है कि बड़ा बाजार कुमार सभा व्यावसायिक संस्था नहीं है, फिर हमने यह काम क्यों उठाया; क्योंकि वर्तमान समयमें प्रायः करके साहित्य-क्षेत्र भी व्यवसायका क्रीड़ास्थल हो रहा है। इसके अतिरिक्त दो चार संस्थायें साहित्यके प्रचारके उद्देश्यसे खोली गई हैं पर उनमेंसे दो एक तो रूपान्तरसे व्यवसायिक हो रही हैं और दो एकका प्रबन्ध ही ऐसा अव्यवस्थित प्रतीत होता है कि वे अपने उद्देश्यको सफल नहीं कर रही हैं। इस-लिये यह आवश्यक हो गया है कि इस स्थलपर इस सम्बन्धमें कुछ लिखा जाय ताकि लोगोंका भ्रम दूर हो जाय।

बड़ा बजार कुमार सभाकी स्थापना जिस उद्देश्यसे हुई थी उसमे "ज्ञान वर्धक विभाग" का विशेष स्थान था। इस सभाके जन्मकालसे ही 'ज्ञान वर्धक' विभागपर ध्यान रखा गया पर उस समय प्रारम्भिक कठिनाइयोंके कारण सिवा एक छोटा मोटा पुस्तकालय खोल देनेके और कुछ न हो सका और यह काम भी पूर्णताके साथ नहीं निष्पन्न हो रहा था। १६२१ से

पुस्तकालयका काम ठीक तरहसे चलने लगा। हिन्दीके प्रायः सभी मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्र आने लगे। इस समय सभाके सदस्योंका ध्यान ज्ञानवर्धक विभागकी ओर अधिकाधिक आकर्षित होने लगा। ज्ञानवर्धक विभाग जो काम कर रहा था उतनेसे ही सभाके सदस्य सन्तुष्ट नहीं थे। इस विभाग द्वारा समाजकी सेवा करनेके तरह तरहके भाव लोगोंके हृदयमें उठने लगे। कुछ लोगोंको इस बातकी धुन समाई कि यदि सुलभ मूल्यपर बड़ा बजार कुमार सभा पुस्तक प्रकाशनका काम करे तो इससे समाजका भी उपकार होगा और "ज्ञानवर्धक" विभागका उद्देश्य भी चरितार्थ होगा। यह चर्चा दिन दिन ज़ोर पकड़ती गई और उतना ही सभासदोंका ध्यान उस ओर अधिकाधिक आकृष्ट होने लगा। पर सभाके पास इतनी पर्याप्त पूंजी नहीं थी कि वह प्रकाशनका काम सहज उठा सकती। इसी समय सभाके एक उदार सदस्यने इस कामें सभाकी सहायता करनेकी अभिलाषा प्रगट की। इस उद्देश्यको लेकर उन्होंने पुस्तकोंके प्रकाशनमें सभाकी आर्थिक सहायता करनेका वचन दिया। किसी अनिवार्य कारणवश वे अपना नाम नहीं प्रगट करना चाहते थे इससे यह भार उन्होंने सभाको सौंपा। सभाने इसे स्वीकार कर लिया।

अब फिर पड़ी पुस्तकोंके चुनाव की। हम लोग इस चिन्तामें थे ही कि कौन सी पुस्तक सबसे पहले निकाली जाय कि इसी बीचमें मेरे मित्र अनुवादकने महात्मा गान्धीके 'यङ्ग इण्डिया' के

लेखोंकी चर्चा की। मैंने उसी समय निश्चय किया कि यह पुस्तक अवश्य प्रकाशित की जाय क्योंकि इसके द्वारा सभाके सभी उद्देश्य पूरे होते हैं। प्रचारके लिये इससे उपयोगी दूसरी पुस्तक नहीं हो सकती थी। यङ्ग इण्डियाके लेख अंग्रेजोमें निकले हैं। इनकी उपयोगिताके बारेमें अपनी ओरसे कुछ लिख-नेकी आवश्यकता नहीं है। केवलमात्र इतना लिख देना काफी होगा कि महात्माजीके हाथोंमें आते ही इसकी ग्राहक संख्या १२०० से ४०,००० हो गई। पर भारतमें अंग्रेजी पढ़े लिखोंकी संख्या कितनी है? प्राय: नहीं के बराबर है। महात्माजी सदा यही कहा करते थे कि हमारा बल तो उन २२ करोड़ अपढ़ोंमें है। हमारे आन्दोलनकी सफलता उनके ही सहयोगसे हो सकती है। पर यङ्ग इण्डिया द्वारा अंग्रेजी भाषामें महात्माजी अपने जिन विचारोंको प्रगट करते थे उनको उन असंख्य अंग्रेजी भाषासे अनभिज्ञ जनताके पास तक पहुंचानेका क्या यत्न किया गया। खेदके साथ लिखना पड़ता है कि इसके लिये कोई यथेष्ट और सन्तोषजनक उद्योग नहीं किया गया। मैंने इस बातकी अत्यन्त आवश्यकता देखी क्योंकि इनका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करके सुलभ मूल्यमें प्रचार करना असहयोग आन्दोलनका बड़ा सहायक हो सकता है। जिन लोगोंने महात्माजीके विचारोंको केवल दूरसे सुन लिया है उनके सामने उन विचारोंका खजाना रख दिया जायगा और उसमेंसे अपने अपने रत्न चुन लेनेकी उन्हें पूरी स्वतन्त्रता रहेगी। असहयोगका

ग्रमें लोग समझ जायंगे और उसको अपनानेमें अधिक दत्त-चित्त होंगे। निदान इसी पुस्तकसे श्रीगणेश करना निश्चय हुआ।

यहीं पर दो शब्द मूल्यके विषयमें भी लिख देना उचित है। इस पुस्तकका इतना कम मूल्य देखकर लोग विस्मित होंगे, क्योंकि इतनी भारी पुस्तकका मूल्य १) वर्तमान प्रकाशन क्षेत्रमे तो एक तरहकी क्रान्ति है। पर इसे क्रान्ति नहीं समझनी चाहिये। वास्तवमें पुस्तकोंके मूल्यकी दर इस मूल्यकी दरसे कुछ ही अधिक होनी चाहिये। इससे दोनोंका लाभ हो सकता है। प्रकाशक व्यवसाय भी कर सकते हैं और हिन्दी साहित्यका प्रचार भी बढ़ता जायगा। पर वर्तमान समयमें जो धींगा धींगी हो रही है उसीका फल है कि आज पुस्तकोका मूल्य देखकर दाँतों तले अंगुली दबानी पड़ती है और एक साधारण पुस्तकके २००० के संस्करणको खपाते खपाते दो तीन वर्ष लग जाते हैं और दोष मढ़ा जाता है जनताके माथे कि वह हिन्दी साहित्यमें रुचि नहीं दिखलाती। इस समय साहित्य क्षेत्रमें आवश्यकता है उदार प्रकाशकोंकी जो कम लाभ उठाकर साहित्यके प्रचारकी चेष्टा करें।

बड़ा बजार कुमार सभाके प्रकाशनका उद्देश्य होगा सुलभ मूल्यमें (कमसे कम दाम रखकर सभी उपयोगी विषयोंपर हिन्दी भाषामें उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित करना और जनतामें उनका प्रचार करना जिससे वे लोग भी हिन्दी साहित्यको अपनाने लगें

जो अबतक अर्थाभावके कारण इन प्रकाशकोंकी सेवा नहीं कर सकते थे। यदि हिन्दीके उदार पाठकोंने इस विषयमें उचित सहायता की और पूर्ण योग दिया तो उनकी अभिलाषा इस संस्था द्वारा अवश्य पूरी होगी।

इन कतिपय शब्दोंके साथ यङ्ग इण्डियाका प्रथम खण्ड उदार पाठकोंकी सेवामें उपस्थित किया जाता है। आशा है इसे अपनाकर वे सभाका उत्साह अवश्य बढ़ावेंगे। यदि जनताने इस संग्रहको अपनानेमें पर्याप्त उत्साह दिखाया तो सभा शीघ्र ही महात्माजीके गुजराती नवजीवनके लेखोंका संग्रह भी निकालनेका यत्न करेगी।

विनीत—

राधा कृष्ण नेवटिया

मन्त्री

बड़ा बजार कुमार सभा

वक्तव्य

कभी कभीकी बेकारी भी बड़ा काम कर जाती है। जिस समय वणिक् प्रेससे मैंने अपना सम्बन्ध तोड़ा मेरे पास बहुतसा फालतू समय हो गया था। मेरे एक अतिशय घनिष्ठ बन्धुने, जो हालमें ही गया कांग्रेससे लौटे थे, इस फालतू समयको काटनेके लिये महात्मा गांधीके 'यङ्ग इण्डिया' के लेखोंका एक संग्रह उपहारमें दिया। पुस्तक हाथमें आते ही मैंने देखा कि केवल अखबारी लेख ही न होकर इसमें साहित्यकी स्थायी सम्पत्ति भी है और यदि हिन्दीमें इसका अनुवाद निकाला जाय तो बड़ा ही उपयोगी होगा, इसके अनुवाद तथा प्रकाशनके लिये मेरे मुंहमें पानी भर आया। पर आप जानते ही हैं कि सरस्वती और लक्ष्मीमें पुराना बैर है, या यों कहिये कि विधाताको कोई इतनी बात सुझानेवाला न रहा कि हजरत! बिचारे पढ़ने लिखने-वालोंको भी दो पैसा दे देते जिससे वे भी अपने दिलकी हवस मिटा लिया करते। पर मैं इतनेसे हताश होनेवाला नहीं था। बातों ही बातोंमें मैंने अपने हृदयकी इच्छा अपने हितैषी मित्र बाबू राधाकृष्णजी नेवटियासे प्रगट की। उन्होंने प्रोत्साहन देते हुए मेरी अभिलाषा पूरी करनेका वचन दिया। फिर क्या था मैं दूने उत्साहसे इस कामको करने लगा। उन्हींका परामर्श हुआ कि यदि महात्माजीके गुजराती नवजीवनके भी कुछ लेख इस संग्रहमें जोड़ दिये जायँ तो यह पुस्तक और भी उपयोगी हो जाय। एक तो समय कम दूसरे गुजराती भाषामें मेरी गति

अधिक नहीं, इस लिये गुजराती नवजीवनसे लेख छटना और अनुवाद कर देना मेरे लिये कठिन काम था। निदान मैंने हिन्दी नवजीवनसे सहायता ली और उसमें गुजराती नवजीवनके जितने लेख निकले थे सब इस संग्रहमें दे दिये। अग्रेजीमें दो स्थानोंसे 'यङ्ग इण्डिया' का संग्रह निकला है। पर उनमें एक भी पूर्ण नहीं है। इस हिन्दी संग्रहमें उन दोनों अंग्रेजी संग्रहोंके अतिरिक्त हिन्दी नवजीवनमें प्रकाशित तथा गांधी हिन्दी पुस्तक भण्डारसे प्रकाशित 'महात्मा गांधी' नामक पुस्तकसे भी चुने लेख दिये गये हैं। इससे यह पुस्तक सर्वोपयोगी और पूर्ण है। जिन स्थानोंसे मैंने सहायता ली है उसके लिये मैं उक्त सज्जनोंका आभारी हूं।

इस पुस्तककी भूमिका लम्बी चौड़ी हो गई है अर्थात् प्राय आठ फर्म भूमिकामें ही चले गये हैं। पर यह भूमिका क्या है भारतके साथ अंग्रेजी कम्पनीके सम्बन्धका संक्षिप्त इतिहास तथा असहयोग आन्दोलनका संक्षिप्त इतिहास है। इसके बिना संग्रहके लेखोंके भावोंको पूरी तरह नहीं समझा जा सकता था। इसलिये इसका देना नितान्त जरूरी था। इस भूमिकाको लिखनेमें मैंने निम्नलिखित स्थानोंसे सहायता ली है। श्रीमती एनी बेसण्ट लिखित How India wrought for freedom, (हाउ इण्डिया राट फार फ्रीडम) ज्ञानमण्डल कार्यालयसे प्रकाशित सविनय अवज्ञा जांच समितिकी रिपोर्ट, श्रीयुत एस, रंगा ऐय्यर लिखित टागार कम्पनीकी प्रकाशित 'यंग इण्डिया'

अंग्रेजी संस्करणकी भूमिका तथा बाबू राजेन्द्रप्रसाद लिखित असहयोगका इतिहास (यनेशनके यंग इण्डियाके अंग्रेजी संस्करणकी भूमिका)। इसलिये मैं इन सज्जनों और प्रकाशकोंका कृतज्ञ हूं।

इस पुस्तकके प्रकाशित होनेका सारा श्रेय हमारे मित्र बाबू राधाकृष्णजी नेवटियाको है। इसके लिये वे हमारे तथा समस्त हिन्दी भाषीजनताके धन्यवादके पात्र हैं क्योंकि उनके इस प्रयास और उद्योग विना शायद यह उपयोगी विषय केवल हिन्दी पढ़े लिखे लोगों तक न पहुंच सकता। और इतने सुलभ मूल्यमें पहुंचना तो स्वप्नकी बातें होती। इसके अतिरिक्त हमारे अनेक मित्रोंने प्रूफ संशोधनादिमें मेरी बड़ी सहायता की है। इनमें बाबू बद्रीप्रसादजी गुप्तका नाम विशेष उल्लेखनीय है। मैं इन मित्रोंकी सहायताके लिये चिर बाधित हूं।

काम इतनी जल्दीमें हुआ है कि भूलें रह जा सकती हैं। यदि उदार पाठकोंने उन्हें बतलानेकी कृपा की तो दूसरे संस्करणमें सुधारनेका यत्न किया जायगा।

इन कतिपय शब्दोंके साथ मैं इस पुस्तकको उदार पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करता हूं। आशा है कि वे इसे अवश्य अपनावेंगे और मेरा परिश्रम सार्थक करेंगे।

कलकत्ता
शिवरात्रि १९७९ } छविनाथ पाण्डेय

यंग इण्डिया
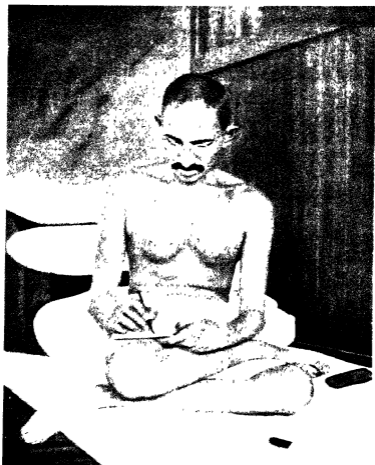
महात्मा गांधी

वणिक् प्रेस, कलकत्ता ।

महात्माजीका संक्षिप्त जीवन चरित

महात्माजीका जन्म १८६९ के अक्तूबरमें पोरबन्दरमें हुआ था। आप वैश्य कुलके हैं। आपके पिता कर्मचन्द गांधी पोरबन्दर राज्य तथा राजकोट रियासतके दीवान थे। आपकी शिक्षा काठियावाड़ हाई स्कूलसे आरम्भ होकर, लण्डन स्कूल और इनर टेम्पलमें समाप्त हुई। जिस समय महात्माजी केवल आठ वर्षके थे उनकी शादी कस्तूरीबाईके साथ हो गई थी। विलायतसे लौटकर महात्माजीने बम्बई हाईकोर्टमें बैरीष्टरी शुरू की। तीन वर्ष वकालत करनेके बाद वे १८९३ में दक्षिण अफ्रिकाके लिये प्रस्थान कर गये। पहली बार वे दो वर्ष बाद ही अर्थात् १८९५ में ही दक्षिण अफ्रीकासे लौट आये। भारतमें उन्होंने दक्षिण अफ्रिकामें भारतीयोंके साथ जो व्यवहार किया जा रहा था, उसके लिये घोर आन्दोलन उठाया। जिस समय ये दक्षिण अफ्रिकामें पुनः पहुंचे वहांके सफेद निवासी इतने उत्तेजित हो गये थे कि इनकी प्राण लेनेका हा व्यवस्था करने लग गये। वे बुरी तरह पीटे गये। यदि पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्टकी पत्नीने इनकी रक्षा न की होती तो ये कदाचित जीते न बचते। इसीके बाद जिस समय बोअर युद्ध आरम्भ हुआ महात्माजीने भारतीयोंका एक सेवा दल बनाया और मुर्दों तथा आहतोंके

ढानेका काम लिया। इसमें उन्होंने सरकारकी जो सहायता को उसके लिये अफ्रीकन सरकार तथा ब्रिटिश सरकार दोनोंने इनकी प्रशंसा की थी। युद्ध समाप्त होते ही स्वास्थ्य सुधारनेके लिये महात्माजो १९०१ में पुन: भारत लौट आये। यहीं पर पहले पहल उन्होंने कलकत्ता कांग्रेसमें भाग लिया था। इस समय तक नेटालमें भारतीयोंकी अवस्था नितान्त शोचनीय हो गई थी। इनकी अवस्थाको जांच करनेके लिये मिस्टर चेम्बरलेन नियुक्त किये गये थे। महात्मा गान्धीको भारतीयोंकी ओरसे प्रतिनिधि बनकर जानेके लिये अफ्रिका रवाना होना पड़ा। इसी तरह ट्रांसवालके भारतीयोंकी भी आपने सहायता की थी। इन सब कामोंसे छुट्टी पाकर आपने ट्रांसवालकी अदालतमें अपना नाम दर्ज कराया और अटर्नीका काम करने लगे। पर भारतवासियोंको रक्षाका ध्यान ही उनका प्रधान लक्ष्य था। इसीके निमित्त उन्होंने ट्रान्सवाल इण्डियन असोसियशन नामकी संस्था स्थापित की और आपही उसके मन्त्री बन गये। भारतीयोंकी दशाका परिचय करानेके लिये उन्होंने इण्डियन ओपीनियन नामका पत्र निकाला और बादको पोनिक्स सेटिलमेंट स्थापित किया। इसका कारण रस्किनका प्रभाव तथा दक्षिण अफ्रिकामें मजूर और पूंजीका कलह था। जिस समय जोहान्सबर्गमें भीषण प्लेग उपस्थित था उन्होंने अपनी जान जोखममें डालकर सरकारकी सहायता की। १९०६ में जब वहांके निवासियोंने उपद्रव किया तो महात्मा जीने आहतोंके

होनेका भार अपने ऊपर लिया। उसी समय उन्होंने अफ्रीकन सरकारके विरुद्ध उन कानूनोंको उठा देनेके लिये भी आन्दोलन जारी किया जो भारतीयोंके प्रतिकूल बने थे। उनका सन्तोषजनक सुधार नहीं हुआ। लाचार होकर उन्होंने निष्क्रिय-प्रतिरोधका युद्ध आरम्भ कर दिया। जिसके कारण उन्हें तीन बार जेलकी हवा खानी पड़ी। अन्तमें जनरल स्मट्सको दबना पड़ा और उन्होंने महात्माजीके साथ समझौता किया और उन अपमानजनक और अनुदार कानूनोंको उठा दिया जिनके कारण यह आन्दोलन आरम्भ किया गया था। इस समझौतेका अर्थ गान्धीजीके साथियोंने उलटा समझा। उन्हें सन्देह होने लगा कि महात्माजी अंग्रेजोंसे मिल गये और अपने सथियोंके साथ विश्वासघात किया। एक पठान तो इतना उत्तेजित हो गया कि उनके प्राण लेनेके तकके लिये उतारू हो गया। उसने महात्माजीको इतना पीटा कि उन्हें हफ्तों तक खाट सेनी पड़ी। जेनरल स्मट्सने अपनी बात न रखी। लाचार होकर महात्माजीको पुनः युद्ध जारी करना पड़ा। सत्याग्रह संग्राम आरम्भ हो गया। महात्माजी पकड़े गये और जेलमें भर दिये गये। उसी समय १९०८ में उन्होंने 'हिन्द स्वराज्य'नामकी पुस्तक लिखी। १९०९ में वे इङ्गलैण्ड गये और वहांके लोगोंके सामने दक्षिण अफ्रिकाके भारतीयोंकी शिकायतें पेश कीं। १९११ में जेनरल स्मट्ससे पुनः समझौता हुआ। उसी समय स्वर्गीय गोखले दक्षिण

अफ्रिकाकी अवस्था देखनेके लिये वहां गये। जेनरल स्मट्सने ३ पौण्ड वाला कर उठाना स्वीकार नहीं किया इससे सत्याग्रह पुनः जारी किया गया। इसी समय भारतमें भी इसके प्रति घोर आन्दोलन उठा। इस समय उदार हृदय लार्ड हार्डिंज भारतके बड़े लाट थे। उन्होंने भारतीयोंका पक्ष लिया और बार प्रयत्न किया। परिणाम शुभ हुआ। सत्याग्रहकी विजय हुई, अफ्रिकन सरकारको नीचा देखना पड़ा। सभी अनुचित कानून उठा दिये गये। इन कामोंसे छुट्टी पाकर महात्माजी १९१४ में इङ्गलैण्ड पहुंचे। इस समय जर्मन युद्ध आरम्भ हो गया था। महात्माजीने लण्डनस्थ भारतीयोंका एक स्वयंसेवक दल तैयार किया। और सरकारकी सहायता की। १९१२ मे अस्वस्थ रहनेके कारण वे देश लौट आये। भारतकी राजनीतिकी विपन्न हालत देखी। उसके सुधारकी आवश्यकता और उपाय सोचने लगे। १९१९ में युद्धमें योग देनेका प्रसाद भारतीयोंको रौलट ऐक्ट मिला। सारे देशने एक स्वरसे इसका विरोध किया पर सरकार कब सुननेवाली थी। महात्माजीने नोटिस दी कि यदि रौलट ऐक्ट पर बड़े लाटने अनुमति दी तो मैं सत्याग्रह युद्ध जारी कर दूंगा पर कौन सुननेवाला था। गैरसरकारी सदस्योंके एक मत होकर विरोध करने पर भी रौलट ऐक्ट पास हो गया और बड़े लाटने अपनी अनुमति भी दे दी।

महात्माजीने सत्याग्रह युद्धकी घोषणा कर दी। उसके

निमित्त आत्माको पवित्र करनेके लिये ६ अप्रेलका रविवार उपवास, प्रार्थना तथा सर्वव्यापी हड़तालके लिये नियत किया गया। उस दिन अधिकारी वर्गसे उत्तेजित किये जाने पर जनताने कुछ उपद्रव किया जिसके कारण गोलियां चला दी गई और सैकड़ों निर्दोषोंके प्राण गये। पञ्जाबमें अमृत-सरके जालियांवाला बागमें नरबलिकी तैयारी की गई। प्रायः ५०० मारे गये। इसी समय खिलाफतके साथ वादाखिलाफी की गई। महात्माजीने मुसलमानोंके साथ मैत्री करनेका अच्छा अवसर पाया। खिलाफत तथा पञ्जाबका प्रश्न लेकर उठ खड़े हुए। न्याय की प्रार्थना की पर कुछ परिणाम न निकला। अधिकारियोंके कानमें जूएं तक न रेंगे। लाचार महात्माजीने असहयोग युद्ध जारी किया। इसके अनुसार युव-राजका बहिष्कार किया गया। अंग्रेज सरकार इस अपमान पर उत्तेजित हो उठी। मार्च १९२२ में राजविद्रोहका अपराध लगा कर महात्माजीको जेल भेज दिया। इसीके साथही साथ यंग इण्डियाका सम्पादन भी महात्माजीके हाथसे प्रायः चार वर्षोंके बाद निकल गया। इस समय महात्माजी यारोडा जेलमें बैठे शान्तिमय जीवन बिता रहे हैं और चरखा कात रहे हैं। प्रायः लोग उनसे मिलजुल नहीं सकते।

यंग इण्डियाका इतिहास

यङ्ग इण्डियाका इतिहास इतना विचित्र है और सारपूर्ण घटनाओंसे भरा है कि उसका संक्षिप्त विवरण यहां पर दे देना अनुचित न होगा। यङ्ग इण्डियाके जन्म-दाता बम्बईके धनी सेठ और बेसेण्ट दलके प्रधान कर्णधार श्रीयुत जमनादास द्वारकादास हैं। किसी समयमें महात्मा गांधीमें इनकी अनन्य भक्ति थी। १९१९ में रौलट ऐक्टके पास होनेके बाद महात्मा गांधीके साथ सबसे पहले आपने सत्याग्रह व्रत ग्रहण किया था और जब्त की हुई पुस्तकोंको बेचनेका काम उठाया था पर बादका श्रीमती बेसेण्टका प्रभाव इतना प्रबल पड़ा कि उन्हें महात्माजीका साथ छोड़ना पड़ा और आज वे ही महात्माजीके असहयोग आन्दोलनके कट्टर शत्रु हो रहे हैं। इसके बाद पत्रका अधिकार एक सिंडिकेटके हाथमें आया जिसमें शंकरलाल बैंकर भी थे। बम्बे क्रानिकलके सम्पादक मिस्टर हार्निमैनके निर्वासन तथा बम्बे क्रानिकलके गला घुंटनेके बाद बम्बईके राजनैतिक जीवनको जागृत रखनेके लिये महात्मा गांधीकी सेवाकी आवश्यकता पड़ी और तदनुसार यङ्ग इण्डियाके सम्पादनका भार महात्माजीके हाथमें दे दिया गया और यङ्ग इण्डिया अर्ध साप्ताहिक रूपसे निकलने लगा। बम्बे क्रानिकलकी स्वतन्त्रताके बाद महात्माजीने यङ्ग इण्डियाका कार्यालय अहमदा-

बाद ले जाना उचित समझा और उस पत्रका पूरा भार अपने ज़िम्मे ले लिया। इस तरह यंग इण्डिया साप्ताहिक रूपसे अहमदाबादसे निकलने लगा। सरकारकी क्रूर दृष्टि इस पत्र पर सदासे लगी रही। एक बार किसी लेखको आपत्तिजनक बताकर बम्बई सरकारने महात्माजीको नोटिस दिलाना चाहा और मांफी मंगवानेकी योजना की। पर महात्माजी साधारण पुरुष नहीं थे। उन्होंने माफी मांगना स्वीकार नहीं किया और मुकदमेकी पैरवी की। विचार करनेवाले मजिस्ट्रेटको साहस नहीं हुआ कि वह किसी तरहका दण्ड प्रदान कर सके। उसने अदालतकी मर्यादा रखनेके लिये केवल 'कड़ी चेतावनी' देकर ही छोड़ दिया।

आरम्भमें इस पत्रकी मांग इतनी कम थी कि इसे पूरे २५०० ग्राहक भी नहीं मिल सकते थे। महात्माजीने बार बार अपील की कि इतनेसे ही इसका व्यय चल सकेगा और इसका जीवन अमर हो जायगा पर कौन फिकर करता था। असहयोग आन्दोलनके जारी होते ही यंग इण्डियाकी मांग बढ़ी और जिस समय महात्माजी गिरफ्तार हुए हैं उस समय प्रति सप्ताह ४०,००० कापियोंकी खपत थी।

यंग इण्डियाके तीन लेख आपत्तिजनक बतलाये गये और उसके सम्पादक, महात्मा गांधी तथा मुद्रक और प्रकाशक, श्रीयुत शंकरलालजी बैंकर गिरफ्तार कर लिये गये। उनपर मुकदमा चलाया गया और दण्ड दिया गया। इसके बाद यंग इण्डियाका

भार देशभक्त मुसलमान मिस्टर कुरैसीने लिया। सरकारका उत्साह भङ्ग नहीं हुआ था। उसने दूसरी बार भी अपना वार चलाया और इन लोगोंको भी अपने फौलादी पंजेमें बांध लिया। इस बार प्रोफेसर देसाई बंसीलाल, स्वामी आनन्दानन्द तथा सम्पादक मिस्टर कुरैसी सभी साबरमती जेलमें ठूंस दिये गये।

वर्तमान समयमें इस पत्रका सम्पादन देशभक्त और कट्टर असहयोगी श्रीयुत चक्रवर्ती राजगोपालाचारी कर रहे हैं और मुद्रक तथा प्रकाशनको सारी जिम्मेदारी महात्माजीके द्वितीय पुत्र रामदास गांधीने ली है।

भूमिका।

असहयोग आन्दोलनके विरोधियोंने इसपर अनेक तरहके आक्षेप किये हैं। किसीने कहा है कि यह अधीरताका नमूना है, किसीने कहा है यह अराजकताका सिद्धान्त है, इससे समाज जड हो जायगा। इस आन्दोलनके प्रचारकों पर जो आक्षेप किये गये हैं उनको तो चर्चा ही नहीं करनी है। इसके प्रवर्तक महात्मा गांधी पर यह दोषारोपण किया जाता है कि उन्होंने अपने अभिमत टालस्टायके सिद्धान्तोंके प्रचारके लिये यह जरिया निकाला है और इसके मायाजालमें मुसलमानों तथा कांग्रेसको फंसा लिया है। कहा जाता है कि जिन उद्देश्योंसे कांग्रेसकी स्थापना की गई थी वे दूर फक दिये गये और उसे इस समय इतने अगाध सागरमें छोड दिया गया है कि उसका कोई पारावार नहीं है।

कांग्रेसके प्रवर्तकों तथा असहयोग आन्दोलनके सञ्चालकों पर जो कटाक्ष किये गये हैं उनके उत्तर देनेका यह स्थान नहीं है। सविनय अवज्ञा जांच कमेटीने असहयोगके वर्णनमें इन सबोंका पर्याप्त उत्तर दे दिया है।

भारतमें अंग्रेजी राज्यका संक्षिप्त इतिहास।

इस बातको बिना किसी संकोचके स्वीकार किया जा सकता है कि कांग्रेसकी वर्तमान अवस्थामें बहुत कुछ परिवर्तन और परिवर्धन हो गये हैं। उसका लक्ष्य, उसकी नीति और उसके कार्यक्रममें जो रद्दो बदल कर दिया गया है शायद उसका अनुमान भी उन लोगोंने नहीं किया था जिन्होंने पहले पहल इसकी स्थापना की थी। एक बात यह भी माननेके योग्य है कि कांग्रेसके जन्मदाताओंका ब्रिटिश न्यायमें जो विश्वास था वह आज कलके कांग्रेसके प्रवर्तकों तथा उनके अनुयायियोंमे नहीं रहा। विगत चालीस वर्षोंमें देशमें जो परिवर्तन हुआ है वह संवद्ध है कांग्रेसने सदा समयका अनुसरण किया है और उसीके आधार-पर अधिक मतके अनुसार काम किया है। जो परिवर्तन इस समय देशमें उपस्थित हो गया है उसे समझनेके लिये, कांग्रेसका इतिहास जाननेके लिये तथा इस बातको भली भांति समझनेके लिये कि यह असहयोग आन्दोलन किस लाचारीकी हालतमें आरम्भ किया गया, यह आवश्यक है कि ब्रिटिश शासनका संक्षिप्त विवरण दे दिया जाय क्योंकि हमारी समझमें जो कुछ आया है, देशमें भ्रमण करके हमने जो ज्ञान प्राप्त किया है तथा कमिशन अथवा जांच कमेटीकी रिपोर्टसे हमने जो कुछ भाव

निकाला है उससे हम इसी परिणाम पर पहुंचे हैं कि असहयोग आन्दोलनकी नींव जनताके हृदयमें उतनी ही नीचे तक चली गई है जितना कि ब्रिटिश शासनकी जड़।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीका राज्य

इस स्थानपर कम्पनीके राजत्वकालके सम्पूर्ण इतिहासका विवरण नहीं देना है। पर जबतक आरम्भकालकी अवस्थाका पूरा ज्ञान न हो तबतक शासन व्यवस्थापर कोई समुचित राय नहीं कायम की जा सकती। इसीलिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि दो चार प्रसिद्ध अंग्रेज लेखकोंका मत उद्धृतकर यह दिखला दें कि वे अपने देशवासियोंके शासनके बारेमें क्या सोचते हैं तथा उनका क्या मत है। भारतके प्रथम बड़े लाट लार्ड वारन हेस्टिंग्जके विचारके समय मिस्टर एडमण्ड बर्कने कहा था:—"इस व्यक्तिने ब्रिटनके धवल यशमें काला धब्बा लगा दिया है और एक समृद्ध तथा सुसम्पन्न देशको पैरों तले रौंदकर उसे बियाबान बना दिया है।" लार्ड मेकालेने—जो कम्पनीकी नौकरी-में भारतमें बहुत दिनों तक रह चुके थे—भारतमें कम्पनीके शासनका निम्नलिखित शब्दोंमें वर्णन किया है :—("इस शासन-की कृपासे) तीस करोड़ आदमी दीन बना दिये गये। उनका जीवन प्राय: सदा (शासकोंकी) क्रूरता और निर्दयतामें ही बीता है पर इस (कम्पनीके) जुल्मका कोई सानी नहीं रखता। यह सरकार इतनी सभ्य होते हुये भी वर्बरता और जुल्मकी अन्तिम सीढ़ी तक पहुंच गई है।" जिस अत्याचारसे अंग्रेजोंका चित्त

वृहस्र तथा उसके विषयमें भारतीयोंकी क्या राय होगी इसका सहजमें ही अनुमान हो सकता है। किसी मुसलमान इतिहास लेखकका मत लार्ड मेकालेने उद्धृत किया है। उसने लिखा है:—(ब्रिटिश) शासनके अन्दर भारतीयोंकी अवस्था नितान्त शोचनीय है। उनकी दरिद्रता हद दर्जे तक पहुंच गई है और वे घबरा उठे हैं। ईश्वर अब तो इन विचारोंपर रहमकर। ये भी तेरी ही सन्तान हैं। इनकी सहायताकर और इन्हें उबार ले।"

इस अत्याचारको निन्दाके कारण शासन व्यवस्थामें किसी परिवर्तनकी सम्भावना अवश्य थी और वही हुआ। अर्थात् सिविल सर्विसकी स्थापना की गई यद्यपि इसका काम यूरोपियनोंकी ही हाथोंमें रहा। दीवानी अदालतोंकी स्थापना की गई और मालगुजारीकी व्यवस्था की गई। इन उपायोंसे ऊपरी शान्ति स्थापित हो गई पर जो सन्तोष और सुख प्रजाको कम्पनीके पहले था वह स्वप्नवत् हो गया। जब जब सरकारको मालूम होता कि असन्तोषकी मात्रा बढती चली जा रही है तबतब वह कुछ न कुछ ऐसा लाभदायक काम कर देती जिससे लोग कुछ सन्तुष्ट हो जाते। उदाहरणार्थ स्कूल और कालेजोंकी स्थापना आदि। पर यह सब ऊपरकी बातें थी। सरकारका हृदय नहीं बदला। वह ज्योंका त्यों बना रहा। उन्होंने अपनी क्रूर नीतिको पूर्ण करनेके लिये देशी राज्योंको हड़पना आरम्भ किया। एक न एक बहाना करके देशी राज्योंका हरण किया गया और

यह ब्रिटिश राज्यमें मिला लिया गया। १८५६ में अवधका हरण उस कुटिल नीतिकी अन्तिम और सबसे प्रबल चोट थी। यह बार असह्य हो गया। सबके हृदय घृणाके भावसे पूर्ण हो गये। यद्यपि परस्पर मेल नहीं था फिर भी लोगोंने इसमें एकता दिखाई। पर उनके हाथमें कुछ भी जोर नहीं था। निदान उन्होंने देशी सेनासे प्रार्थना की। इसका असर पड़ा और सिपाही उत्तेजित हो गये। परिणाम १८५७ का गदर हुआ। कितनोंका मत है कि यह गदर भारतीय स्वतन्त्रताका युद्ध था।

जो हो अवधमें इसका वही रूप नहीं था जो अन्यत्र था। सिपाहियोंके साथ साथ अवधकी रिआयाने भी इस युद्धमें योगदान किया था। उनकी दृष्टिमें तो यह अवश्य ही स्वतन्त्रताका युद्ध था। उन्हें इसका बदला भी उसी तरह मिला। गांवके गांव बरबाद कर दिये गये और जला दिये गये। एक रमणीका आंखों देखा वर्णन है कि गोमतीका जल खूनसे रंग गया था।

शासनमें परिवर्तन

इसका परिणाम यह हुआ कि भारतका शासन कम्पनीके हाथसे निकल कर महारानी विक्टोरियाके हाथमें चला गया। शासनका भार लेते ही महारानीने भारतीय प्रजाके नाम घोषणा-पत्र निकाला और उनके जख्मको उसी मलहमसे अच्छा करना चाहा। महारानीने उस पददलित और सन्तप्त दीन प्रजाको

आश्वासन दिया था कि सबके साथ बराबरीका व्यवहार किया जायगा। यदि कोई भेद होगा तो केवल योग्यताके कारण होगा। महाराणीके अन्तिम वाक्य बड़े ही सारपूर्ण थे :—"उनकी समृद्धि ही हमारी शक्तिकी जड़ होगी, उनका सन्तोष हमारी रक्षाका कारण होगा और उनकी कृतज्ञताको ही हम अपना सबसे उत्तम पुरस्कार समझेंगे।" पर यह घोषणा केवल कागजी कार्रवाई रह गई। कहने और करनेमें जो भेद होता है वही इसमें लक्ष्य हुआ। इसके लिये समय समयपर सभी समझदार अंग्रेजों-ने शोक प्रगट किया है। उस समयकी भारतकी स्थितिका वर्णन मिस्टर ब्राइटने निम्नलिखित शब्दोंमें किया है :—"इस विस्तृत प्रदेशकी करोड़ों प्रजा निःसहाय द्रव्यहीन और साधन-हीन बना दी गई है। उनके पथ प्रदर्शक उनके बीचसे हटा लिये गये हैं। उनको कोई सहारा नहीं रह गया है। इस समय उनका एक मात्र रक्षक ब्रिटिश सरकार रह गई है जिसने उन्हें पूरी तरहसे अपनी मुट्ठीमें कर रखा है। क्या कोई भी उपाय है जिससे अंग्रेज जातिको यह समझाया जा सके कि हमारे देशभाइयोंने अपनी कृपा कटाक्षसे उनकी क्या दशा कर डाली है। यदि इन अभागे भारतवासियोंके लिये आपके हृदयमें दया नहीं है, यदि आपने इनके लिये दया और सहानुभूति न दिख-लाना ही निश्चय कर लिया है तो ईश्वरके नामपर अपने देश भाइयोंकी दशापर दया कीजिये और इस भीषण पापकर्मसे उन्हें बचाइये।" यह तो शासन व्यवस्थाकी बात थी। आर्थिक दुर-

वस्था इतनी खराब थी, उसमें इतनी बेइमानी होती थी कि हेनरी फासेटने उसे "आदर्श बेइमानी" बतलाया है। यह अवस्था इतनी भीषण हो गई कि असहनीय थी। सरकारको भी यह बात विदित हो गई। परिणाम यह हुआ कि फासेट साहबकी अध्यक्षतामें आर्थिक प्रबन्धकी जांच करनेके लिये पार्लिमेंटकी ओरसे जांच कमेटी बैठाई गई। इससे केवलमात्र लाभ यह हुआ कि फासेट साहबको भारतीय मामलोंमें अच्छी जानकारी हो गई और उससे पार्लमेंटमें उन्होंने भारतीयोंके सुधारके लिये घोर प्रयत्न किया। नहीं तो इस कमेटीका उद्देश्य नहीं हल हो सका। आर्थिक लूटकी समस्या नहीं हल हुई और विदेशी शासनका प्रतिफल आर्थिक लूट ज्योंका त्यों जारी रहा।

पार्लिमेंटकी उदासीनता।

मि० फासेटने अन्य नेताओंके साथ जिन्हें भारतसे सहानुभूति थी घोर प्रयत्न किया पर पार्लिमेण्टने अपना रुख नहीं बदला। उसकी वही पुरानी नीति चलती रही। जिस नीतिके बारेमें मेकालेने निम्नलिखित शब्द कम्पनीके राजत्व कालके समयके लिये कहा वह नीति ब्रिटिश राजत्वकालमें भी ज्यों की त्यों बनी रही। उन्होंने कहा था :—

"भारतके प्रश्नके विषयमें कामन्स सभाके सदस्य जो उदासीनता दिखलाते हैं वह आश्चर्यजनक है। यदि ब्रिटनमें

साधारण खून खराबी भी हो जाय तो आफत मच जाती है पर भारतसे घोर संग्रामका समाचार आवे तब भी सदस्य-गण इतने उदासीन रहते हैं मानों कुछ हुआ ही नहीं है। गये दिनोंमें मालगुजारीके एक अभियोग पर विचार करना था। सरकारी मालगुजारी विभाग पर एक भारतीयने दावा कर दिया था। यदि यह प्रश्न ब्रिटनका होता तो प्रतिवादके मारे सभाभवन गूंज उठता। सदस्यगण आकाश पाताल एक करने लगते और तुरन्त बहस शुरू हो गई होती पर यह भारतका प्रश्न था और घोर प्रयत्न करने पर ही हम लोग केवल कोरम पूरा कर सके।........."

भारतकी दरिद्रता और अविश्वास बढ़ता जाता था पर पार्लिमेण्टको इसकी जरा भी परवा न थी।

प्रेसका गला घोंटना

लार्ड लिटनका शासन भारतके दुर्भाग्यकी पराकाष्ठा थी। एक तो प्लेगने यों ही आफत मचा रखा था, बची खुची विपत्तिको पूरी करनेके लिये लार्ड लिटन साहबने पदार्पण किया। पहला काम जो इन्हें आवश्यक प्रतीत हुआ वह सीमा प्रदेशकी सीमा निर्धारित कर देना था। इसके लिये बिचारे मृत भारतीयोंके रुपयेसे उन्हें अफगानों पर धावा करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। इस कामसे छुट्टी पाकर उन्होंने अपनी क्रूर दृष्टि वर्नाक्यूलर पत्रोंकी ओर घुमाई। और

उनका गला घोंटनेके लिये वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट बनाया। इसके द्वारा उन्होंने भारतीयोंका मुंह सदाके लिये बन्द कर देना चाहा जिससे कोई भी पत्र देशी भाषामें सरकारकी नीतिकी आलोचना और निन्दा न कर सके। इस शिकञ्जेसे बचनेके लिये अमृत बाजार पत्रिकाको जो कुछ करना पड़ा वह सबको विदित होगा। पर इससे सरकारकी अभीष्ट-सिद्धि नहीं हुई। अनेक पत्र अंग्रेजीमें निकलने लगे। इस नये कानूनका घोर प्रतिवाद किया गया। भारतके प्रत्येक नगरोंमें विरोध सभायें की गईं। बाबू सुरेन्द्र नाथ बेनर्जी सिविल सर्विससे निकाल दिये जानेके बाद नये नये राजनीतिक क्षेत्रमें आये थे। उन्होंने इसके लिये घोर आन्दोलन किया।

लार्ड रिपन

भारत सरकारकी नीति यह रही है कि जब कभी वह भारतीयोंके मनको उत्तेजित पाती है वह कुछ ऐसा काम कर देती है जिससे उनका मिजाज ठण्ढा हो जाता है। लार्ड लिटनकी नीतिसे जोश और उत्तेजना फैल रही थी। ऐसे समयमें लार्ड रिपनके समान उदार शासकका आगमन हुआ। पहला काम जो उन्होंने किया वह वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्टका रद्द करना था। राष्ट्रीय स्वायत्त शासनका आरम्भ उन्होंने स्थानीय शासन प्रबन्धका अधिकार देकर किया। मुनिसिपल तथा जिला बोर्डकी स्था[illegible] और उसके

प्रबन्धका अधिकार भारतीयोंको दिया। यह कोई नई बात नहीं थी और न लार्ड रिपनने इसे अपने मनसे निकाला ही था। उन्होंने देखा कि प्राचीन पञ्चायतकी व्यवस्था बड़ी ही अच्छी थी। प्रजा उसमें सन्तुष्ट थी यदि आज भी उसी तरहकी कोई व्यवस्था कर दी जाय तो लोगोंमें सन्तोष बढ़ जायगा। पर इसका भी कोई अच्छा फल नहीं निकला।

लार्ड रिपनके बाद जो शासक आये उन्होंने उसको उतना ही संकुचित कर दिया जितना संकुचित नौकरशाहोंके हाथमें कोई भी शासन रह सकता है। हां इन मुनिसिपल तथा जिला बोर्डोंको यह फायदा अवश्य हुआ कि जिलाधीशोंके काममें कुछ सुविधा हो गई। अंग्रेज लेखकोंने लिखा है :—"भारतमें दो सौसे भी अधिक बोर्ड हैं और प्रायः सात सौ मुनिसिपलिटियां हैं। पर प्राचीन समयकी पञ्चायत व्यवस्थासे इनका मुकाबिला करने पर इनकी निःसारता स्पष्ट हो जाती है।"

इस प्रकार लार्ड रिपनकी सदिच्छा सिविल सर्विसके कर्मचारियोंकी कूर नीतिके कारण चरितार्थ न हो सकी।

अंग्रेजोंका कोप।

ब्रिटिश शासनमें एक बुराई यह थी जो अबतक चली आ रही है कि अंग्रेजोंका विचार साधारण अदालतमें और भारतीयों द्वारा नहीं हो सकता था। इस भेद भावको मिटानेके लिये लार्ड रिपनने एक बिल उपस्थित कराया। उस समय

इल्बर्ट साहब कानूनी सदस्य थे। उन्होंने इस बिलको उपस्थित किया। विदेशी समाचार पत्रोंने बड़े लाटको अति घृणित गालियां दीं। भीषण आक्षेप किये गये। भारतीय अंग्रेजोंका विरोध इतने हीसे समाप्त नहीं था। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि यदि बड़े लाट अपने इस कामसे बाज न आये और यदि इस बातकी सम्भावना प्रतीत हुई कि वे इस बिलको मञ्जूर करा कर ही छोड़ेंगे तो किसी रातको हम लोग एकाएक हमला करेंगे पहरेदारों और सन्तरियोंको कब्जेमें कर लेंगे और बड़े लाटको बांधकर जहाजमें बैठा कर लण्डन भेज देंगे।

इधर तो सफेद जातिके लोग इस तरह विरोधके लिये खड़े थे और उधर भारतीय—जिनके लिये बिचारे लार्ड रिपन यह प्रयास कर रहे थे—सर्वथा उदासीन और निश्चेष्ट रहे। किसी भी ओरसे सहायता न पाकर बिचारे लार्ड रिपन लाचार हो गये और उन्हें अपना प्रयास छोड़ देना पड़ा।

कांग्रेसका जन्म।

पर इससे एक लाभ हुआ। शिक्षित भारतीयोंने इस आन्दोलनसे सङ्गठनका प्रभाव समझा। उन्हें यह विदित हुआ कि सङ्गठन द्वारा हम किसी भी शक्तिको नीचा दिखा सकते हैं। उन लोगोंने यह भी देखा कि यदि भारतीय

जनता जागृत हो जाय तथा अपना सङ्गठन ठीक तरहसे कर ले तो उदार चित्त वायसरायकी शक्ति और भी मजबूत हो सकती है और भारतमें रहनेवाले अंग्रेजोंके आन्दोलन व्यर्थ हो सकते हैं। निदान कलकत्ताके इण्डियन एसोसियेशन-ने भारतीयोंके स्वत्व और अधिकारोंके लिये आन्दोलन जारी करनेकी इच्छासे कान्फरेंस की। इसका फल यह हुआ कि १८८४ से नेशनल लीग नामकी संस्था कलकत्तामें स्थापित हुई। इसी उद्देश्यसे मद्रासमें महाजन सभाकी स्थापना की गई। और बम्बईकी प्रेसीडेन्सी असोसियेशन तथा पूनेकी सार्वजनिक सभा अपने अपने केन्द्रोंमें जनताको जागृत करनेकी चेष्टा करने लगीं। पर लोगोंने इस बातकी आवश्यकता देखी कि इन प्रान्तीय सङ्गठनोंके कार्य सञ्चालनके लिये कोई केन्द्र सभा अवश्य होनी चाहिये। अलन आक्टोवियन ह्यूमने इसकी चर्चा उस समयके बड़े लाट लार्ड डफरिनसे की। लार्ड डफरिनने उसका स्वागत किया। यदि डब्ल्यू० सी० बैनर्जीकी बातें विश्वासनीय हैं तो उन्होंने कहा था कि लार्ड डफरिनने मिस्टर ह्यूमसे कहा कि, "इस देशमें ऐसी एक भी संस्था नहीं है जो सरकारी कार्यवाहियोंकी आलोचना करे। समाचारपत्र यदि जनताके प्रतिनिधि हों तो भी विश्वासनीय नहीं हैं और अंग्रेज लोग इस बातको किसी भी उपायसे नहीं जान पाते कि उनके कार्य सञ्चालनके विषयमें भारतीयोंका क्या मत है। इसलिये शासक तथा शासित दोनोंके लाभके लिये यह

आवश्यक है कि भारतके राजनीतिज्ञ समय समयपर एकत्रित होकर सरकारको बतलाया करें कि शासन व्यवस्थामें क्या दोष है तथा उसके सुधारका क्या उपाय है।" निदान १८८४में इस प्रकारके केन्द्र सभाकी योजना की गई और १८८५ में इसकी पहली बैठक मद्रासमें हुई। भारतीय राष्ट्र सभाने अपनी पहली बैठकमें ही सरकारी शासनकी त्रुटियां दिखलाई और उनके सुधारके उपाय बतलाये। कुल मिलाकर उनकी चार मांगें थीं। (१) भारत मन्त्रीकी सभा उठा दी जाय। (२) व्यवस्थापक सभाका विस्तार तथा सुधार हो (३) भारतीय सिविल सर्विसकी परीक्षा केवल इङ्गलैंडमें न होकर भारत तथा इङ्गलैंडमें एक ही साथ हो। (४) सैनिक व्ययमें कमी की जाय।

दूसरे तथा तीसरे वर्षकी बैठकने इन सुधारोंका निश्चित रूप भी बता दिया। इन मांगोंके अतिरिक्त कांग्रेसकी कुछ और भी मांगें थीं जैसे, जूरी द्वारा विचार (इसका प्रयोग उस समयतक सभी जिलोंमें नहीं हो रहा था)। उस समयतक शेसन जजों तथा हाईकोर्टके जजोंके हाथमें यह अधिकार था कि यदि कोई व्यक्ति निर्दोष साबित होकर छोड दिया गया है तो उस फैसलेको वे हटाकर उसे विचारार्थ पुनः उपस्थित कर सकते थे। कांग्रेसने इस अधिकारको उठा देना चाहा, क्योंकि कांग्रेसके मतसे फिर जूरियोंके निर्णयका कोई मूल्य नहीं रह जाता था। तीसरी मांग यह थी कि इङ्गलैंडकी अदालतकी भांति यहां भी अभियुक्तको यह अधिकार दे दिया जाय कि यदि वह चाहे तो

सीधे शेसन्स अदालतमें अपने अभियोगपर विचार करावे और चौथी तथा सबसे आवश्यक मांग यह थी कि व्यवस्थापक और प्रबन्धक विभाग अलग कर दिया जाय। पांचवीं मांग यह थी कि सेनामें भारतीयोंको भर्ती होनेकी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। और भारतीयोंको सैनिक शिक्षा देनेके लिये भारतमें ही सैनिक कालेज खुलना चाहिये। शस्त्र कानूनमें सुधार होना चाहिये। भारतके व्यवसायिक विकासके लिये शिल्प तथा व्यवसायिक कालेज खुलने चाहिये और लोगोंको शिल्प तथा कलाकी शिक्षा दी जानी चाहिये।

कांग्रेस और भारत सरकार।

भारतके अंग्रेज कांग्रेसकी इन मांगोंको शुभ दृष्टिसे नहीं देखते थे। जिस लार्ड डफरिनने ऐसी संस्थाकी आवश्यकता बतलाई थी वे ही अब नौकरशाहीके प्रभावमें पड़कर फिसल पड़े। १८८८ में सन्त अण्डरूजके भोजके उपलक्ष्यमें भाषण करते हुए लार्ड डफरिनने कांग्रेसको "अदूरदर्शियोंकी सभा" बतलाई थी और उसके उद्देश्यको "अन्धेरे गड्ढे में कूदना" बताया था। प्रायः ३० वर्षतक अंग्रेज लोग इस शब्दका प्रयोग कांग्रेसके लिये करते आये हैं। कांग्रेसकी चौथी बैठक इलाहाबादमें हुई। उसके सभापति मिस्टर जार्ज यूल थे। उन्होंने दृढ़ताके साथ कहा था:—"हमें किसीके कटाक्षों या आक्षेपोंसे घबराना नहीं चाहिये। प्रायः प्रत्येक नये आन्दोलनको तीन

अवस्थासे होकर गुजरना पड़ता है। पहली अवस्थामें लोग उसका उपहास करते हैं, (इतनेपर भी कारबारको बन्द नहीं होते देख) लोग उसे गालियां देते हैं और अन्तमें (उसे डटे पाकर) उसकी मांग पूरी करते हैं। कांग्रेसके भला चाहनेवाले मित्र सर चार्ल्स ब्रैडलाने बड़े लाटके उक्त कथनके लिये कामन्स-सभाके अपने एक भाषणमें खूब डाटा भी था। इसके उत्तरमें लार्ड डफरिनने मिस्टर ब्रैडलाके पास यह पत्र लिखा :—"मैंने कांग्रेसके विषयमें कोई अन्यथा बात नहीं कही है। मैं कांग्रेसको विद्रोही नहीं कहता, मैं कांग्रेसके साथ पूर्ण सहानुभूति रखता हूं और उसका आदर करता हूं और उसके सदस्योंका आदर और सम्मान करता हूं। मैं सिविल सर्विसमें उस तरहके सुधारका सदासे पक्षपाती हूं जिससे भारतीयोंको अधिकाधिक पद मिल सके। और जिस तरहके सुधारके लिये आप चेष्टा कर रहे हैं उस तरहके सुधार मैं भी प्रान्तीय व्यावस्थापक सभाओंके लिये चाहता हूं।"

कौंसिलोंका सुधार।

निदान लार्ड डफरिनने कौंसिलोंके सुधारका प्रश्न उठाया। इसपर उनकी कमेटीने सिफारिश किया कि कौंसिलके प्रत्येक कागज पत्रोंको अच्छी तरहसे देखना चाहिये और सभी मामलोंपर खुली बहस करना चाहिये और बजटका अन्दाजा एक स्थायी कमेटी द्वारा किया जाना चाहिये और आवश्यक प्रतीत

हो तो इसे स्वयं कौंसिल देखे। डफरिन कमेटीकी सिफारिश यह भी थी कि दो पांचवां हिस्सा सदस्योंकी संख्या निर्वाचित हो और सरकारके हाथमें यह अधिकार रहे कि यदि किसी बातपर अधिक मत भी विरुद्ध है तोभी वह उसे पास कर सके।

लार्ड डफरिन स्वयं इतनी उदारता दिखलानेके लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने कहा था:—"कौंसिलोंको कितना भी उदार क्यों न कर दीजिये पर अपने अपने प्रान्तोंके लिये अन्तिम निर्णयका अधिकार प्रान्तीय सभाओंके हाथमें होगा और अपनी नीतिका निर्धारण वे स्वयं करेंगी। इसी ख्यालसे यह प्रबन्ध किया है कि कौंसिलके नामिनेटेडेट (सरकार द्वारा चुने गये) सदस्योंकी संख्या निर्वाचित संख्यासे अधिक हो और यदि आवश्यकता आ पड़े तो शासकोंको अधिकार है कि वह अपनी कौंसिलका बातको न मानकर अपने मनसे भी कोई काम कर सकता है।"

इस प्रकार बड़े लाटने अपनी कमेटीकी कुछ उदार सिफारिशोंके वजनको कम करनेकी चेष्टा की पर भारत मन्त्रीने बड़े लाटकी सभी सिफारिशोंको उलट दिया और उनके एवजमें बहुत ही साधारण बातें दे दीं। उस समय लार्ड क्रास भारतमन्त्री थे और मिस्टर ग्लैडस्टन प्रधान मन्त्री थे। इन दो सज्जनोंमेंसे एक भी कौंसिलोंके लिये निर्वाचनके पक्षमें नहीं थे। लार्ड क्रासने स्पष्ट कह दिया कि इतने जबर्दस्त अधिकार प्रदानकी व्यवस्था भारी भूल है। मिस्टर ग्लैडस्टनने स्वयं कहा था—"इतने भीषण

परिवर्तनकी इतनी शीघ्र आवश्यकता मेरी समझमें नहीं प्रतीत होती। मेरी समझमें अभी मुनिसिपल और जिला बोर्डोंमें ही निर्वाचनका अधिकार दे देना पर्याप्त होगा।

कांग्रेसका नवां अधिवेशन लाहोरमें हुआ। उस अधिवेशनमें भी कौंसिलके प्रश्नपर विचार हुआ। कांग्रेसने एक मत होकर सिफारिश की कि भारत सरकारके व्यवस्थापकीय कानूनोंमें तथा प्रान्तीय सरकारके व्यवहारिक नियमोंमें घोर परिवर्तनकी नितान्त आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त कांग्रेसने इस बातपर खेद प्रकाशित किया कि पंजाबको अभी तक व्यवस्थापक सभामें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं मिला है और न तो प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाकी ही स्थापना की गई है।" लाहोर कांग्रेसकी बैठकके चार वर्ष बाद पंजाबको भी प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाका प्रसाद मिला पर दो बातोंकी कमी थी। एक तो सदस्योंको किसी तरहके प्रश्न पूछनेके अधिकार नहीं थे और दूसरे कौंसिलके सदस्योंके निर्वाचनमें अन्य प्रान्तोंकी भांति प्रजाका कोई हाथ नहीं था।

कानून और अमन।

ज्यों ज्यों देशमें जागृति होती गई सरकारकी आशंका बढ़ती गई और उसकी बाढ़को रोकनेके लिये उसने पुलिसकी शक्ति बढ़ाना आरम्भ किया। इस समय तक नौकरशाहीने कुछ प्रान्तोंमें इस तरहकी सख्तीको योजना कर दी थी कि १८६७ में

अमरावतीकी बैठकमें कांग्रेसको उसकी निन्दा करनी पड़ी। प्लेगके निवारणके मिस पूनेमें जो तरीके अख़तियार किये गये थे उससे हिन्दुओंकी धार्मिकतापर कड़ी चोट पहुंची। सिपाही बिना किसी रोकटोकके हिन्दू तथा मुसलमानोंके जनानखानोंमें घुस जाते। कुछ देवताओंके मन्दिर भ्रष्ट कर दिये गये। इसका परिणाम यह हुआ कि पूनेके प्लेग कमेटीके अध्यक्षका किसीने हत्या कर डाली। नाटू भाइयोंने इन ज्यादतियोंके निवारणके लिये सरकारसे अपील की थी। इसीलिये इस हत्यामें उन्हींका प्रधान हाथ समझा गया और वे बिना अभियोगके बन्दी कर लिये गये। इस विषयकी आलोचना करनेके अपराधमें केसरीके सम्पादक श्रीयुत लोकमान्य तिलक तथा दो अन्य देशी पत्रोंके सम्पादक जेल भेज दिये गये। सरकार तथा भारतीय अंग्रेजोंने एक स्वरसे चिल्लाना शुरू किया कि वर्नाक्यूलर छापाखानोंका गला घोंट दिया जाना चाहिये। उस समय लार्ड जार्ज हैमिल्टन भारत मन्त्री थे। उन्होंने कामन्स सभामें इसी विषयपर भाषण करते हुए जोरदार शब्दोंमें समस्त भारतीयोंपर घोर आक्षेप किया था। उन्होंने कहा थाः—"भारतमें बिना किसी पूर्व सूचनाके समस्त जनता पागलोंकी तरह उठ खड़ी होती है और विदेशियोंकी हत्याके लिये तैयार हो जाती है।" राजद्रोहके कानूनमें भी परिवर्तनकी सिफारिशें की गईं जिससे बोलनेकी भी स्वतन्त्रताका अपहरण कर लिया जाय और पुलिसके हाथमें अनियन्त्रित अधिकार दे दिया जाय। बङ्गाल रेगुलेशन थेड़

(३) १८१८, मद्रास रेगुलेशन ऐक्ट (२) १८१९ बम्बई रेगुलेशन ऐक्ट (२५) १८२७ के द्वारा जो विशेष अधिकार दे दिये गये थे उन्हें देखकर सहसा फ्रांसके प्राचीन राजवंशोंके उच्छृङ्खल कानूनोंका स्मरण हो जाता था। पूनामें अतिरिक्त पुलिसकी स्थापना और भी असह्य थी। कांग्रेसमें भाषण करते हुए बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जीने कहा था:—"भाइयो! ब्रिटिश साम्राज्यकी नींवकी मजबूतीका आधार जान और मालकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध है। पर यदि प्रत्येक क्षण आपको इस बातका भय बना रहे कि सरकार जब चाहे आपकी सम्पत्ति हर ले सकती है, आपको गिरफ्तार कर सकती है और बिना विचार या जांचके अनियत समयके लिये जेलमें ठूंस दे सकती है तो इन विशेषताओंसे क्या लाभ। जहां ऐसी अवस्था है वहां इस बातकी डींग मारना किस कामका कि ब्रिटिश राज्यमें जान मालकी रक्षा सबसे बढ़ कर है।" पर ब्रिटिशकी न्याय प्रियतामें कांग्रेसके नायकोंका इतना अटल विश्वास था कि उन्होंने इन दुराचारोंके निवारणका सबसे उत्तम उपाय ब्रिटिश जनताके पास प्रार्थना करनेमें समझा। मिस्टर डबल्यू० सी० बोनर्जीने स्पष्ट शब्दोंमें कहा था:—"यह निश्चय है कि हम लोगोंकी यह दुःख भरी कहानी सुन कर ब्रिटिश जनता क्रोधसे खौलने लगेगी और तुरन्त लोगोंको उस बन्धनसे मुक्त करनेकी तैयारी कर देगी जिसमें लार्ड एलगिन और उनके कौंसिलर हम लोगोंको बांधना चाहते हैं।" पर उनकी धारणा गलत थी। कांग्रेसका

प्रयास व्यर्थ था। उन आन्दोलनों पर कोई ध्यान नहीं दिय गया।

इंगलैंडमें कार्य

इस तरह अवस्था भेदका अन्तर प्रत्यक्ष था। एक तरफ तो ये बिचारे नेतागण ब्रिटिश जनता, ब्रिटिश न्याय, ब्रिटिश पार्लिमेण्टके अनन्य भक्त हो रहे थे और उधर इनकी (कांग्रेस द्वाराकी गई) सिफारिशोंपर किसीके कानमें जुआं भी नहीं रेंगते ब्रिटिश अधिकारी वर्ग इन्हें रद्दी कागजकी टोकरोमें फेंक देते थे और यदि कभी इन पर विचार भी किया और कुछ सुभीता कर दिया तो वह इतना कम रहता था कि उस समय तक उसकी उपयोगिता एकदमसे घट जाती थी। कांग्रेस प्रति वर्ष अपने प्रस्तावोंको दोहराती जाती थी पर इसका कुछ प्रभाव नहीं पडता था। शासनकी व्यवस्था ज्योंकी त्यों बनी रही। सैनिक व्यय दिन पर बढता था और प्रजाकी आर्थिक व्यवस्थाके बारेमें तो कुछ कहना ही नहीं था। १८८० और १९०० के बीच अर्थात् केवल २० वर्षमें चार बार भीषण अकालने अपना लम्बा मुंह फैला कर इस गरीब देशके लाखों प्राणियोंको निगल लिया। काँग्रेसके मतसे इन अकालोंका एकमात्र कारण प्रजाका रक्त चूस कर रुपया विदेशोंको भेजना तथा शासन व्यवस्थाको अतिव्ययी बनाना था। कांग्रेसके वृद्ध जनोंने बड़े लाटके पास डेपुटेशन भेजा और विलायत भी

प्रतिनिधि भेजा। पहला प्रतिनिधि मण्डल १८८६ में गया और दूसरा प्रतिनिधि मण्डल एक वर्ष बाद गया। श्रीयुत डब्ल्यू० सी० बोनर्जी और दादाभाईने तो इङ्गलैण्डको अपना घरसा बना लिया और कुछ समयके बाद दादाभाईने पार्लमेण्टमें भी प्रवेश किया। इङ्गलैण्डमें कांग्रेस कमेटीकी स्थापना की गई और कांग्रेसने ४५,००० रुपया उसके व्ययके लिये देना स्वीकार किया। १८९० में इण्डिया नामी समाचार पत्र प्रकाशित किया गया। इसके सम्पादक मिस्टर विलियम डिगबी बनाये गये। मिस्टर डिगबी भारतीयोंके सच्चे मित्र थे। उन्होंने इस रक्त शोषकी नीतिकी अनेक तरहसे पोल खोलकर भारतीयोंका बड़ा ही उपकार किया। इस निमित्त एक इण्डियन पार्लिमेण्ट कमेटी बनाई गई जो भारतीय प्रश्नपर उनका ध्यान आकृष्ट करे तथा उनमें दिलचस्पी दिलावे और भारतीयोंके हितकी योजना करे तथा इण्डिया कौंसिलकी कार्रवाइयोंकी देख रेख तथा आलोचना करे क्योंकि कांग्रेसके मतानुसार यह नौकरशाहीके निशानका अड्डा हो रही थी।

वेल्बी कमीशन

इङ्गलैंडमें इस तरहके जो आन्दोलन हुए उसका फल यह निकला कि वेल्बी साहबकी अध्यक्षतामें एक जांच कमीशन बैठी। लेकिन उसके अधिकारमें कुछ ऐसे नियन्त्रण लगा दिये गये कि उसकी उपयोगिता चली गई। स्वर्गीय गोखले,

सर दीनशा वाचा तथा मिस्टर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी भारतीयोंके प्रतिनिधि बन कर उस कमीशनके सामने गवाही देनेके लिये इङ्गलैंड गये। पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। कांग्रेसने जिन बातोंकी सिफारिशें कीं, उनकी कुछ भी सुनवाई नहीं हुई। इसका परिणाम यह निकला कि कुछ भारतीयोंके दिलमें इस तरहका विश्वास उठने लगा कि इस प्रकारके कमीशन और कमेटी अन्धे होते हैं, ये अन्धोंकी तरह काम करते है। इनसे किसी तरहके लाभकी सम्भावना प्रतीत नहीं होती।

राष्ट्रीय दल

इस तरहके प्रयासोंको निष्फल होते देख एक दल तो हताश हो गया। उस दलने देखा कि इस तरह प्रार्थना पत्रमें तथा डेपुटेशन आदि भेजनेमें सिवा राष्ट्रके अपमानके किसी तरहका लाभ नहीं हो सकता। यदि अपना प्रयास सफल बनाना हैं तो जनताको जागृत करना नितान्त आवश्यक है। इसी समय भारतके सौभाग्य या दुर्भाग्यसे लार्ड कर्जन भारतके बड़े लाट होकर आये। कांग्रेसने बड़े भरे पूरे शब्दोंमें इनका स्वागत किया और आशा किया कि इनके नेतृत्वमें देशकी सुख और समृद्धि बढ़ेगी और जनताके हृदयसे जो विश्वास उठ गया है उसकी पुनः स्थापना होगी। पर लार्ड कर्जनने प्रथम चरणमें ही कांग्रेसकी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। आपने शासनकी बागडोर अपने हाथमें लेते ही दो कानून

बना डाले। पहला कानून तो आफिसियल सीक्रेट ऐक्ट था और दूसरा युनिवर्सिटीज ऐक्ट था। उससे प्रजा नितान्त असन्तुष्ट थी। आफीसियल सीक्रेट ऐक्टके अनुसार अधिकारियोंकी उच्छृङ्खलता एकदमसे बढ़ जाती थी और युनिवर्सिटीज़ ऐक्टके द्वारा शिक्षाका सारा अधिकार सरकारके हाथमें आ गया। यह तो था ही। इधर इस धधकती अग्निको और भी प्रज्वलित करनेके लिये लार्ड कर्जनने "बङ्ग भङ्ग" की व्यवस्था की अर्थात् बङ्गालको दो टुकड़ोंमें तोड़ डाला। इस दुर्घटनाके बाद ही बम्बईमें कांग्रेसका अधिवेशन हुआ। सर फिरोज शाह मेहता स्वागत समितिके अध्यक्ष थे। उन्होंने जनताको विश्वास दिलाया कि ब्रिटनकी बुद्धिमानी, उदारता, और नेकनियती निर्विवाद है। इसमें किसी तरहकी आशङ्का नहीं करनी चाहिये। पर बङ्गालका विश्वास एकदमसे हट गया था। उन्हें ब्रिटिशकी उदारता, नेकनियती, और बुद्धिमानी पर भरोसा नहीं रह गया था, बल्कि उन्हें तो ब्रिटिशकी दूरदर्शिता पर भी सन्देह होने लग गया था। बङ्गालके सभी नेता चाहे वे गरमदलके रहे हों या नरमदलके देशको एक स्वरसे स्वावलम्बनकी शिक्षा देनी प्रारम्भ की और ब्रिटिश मालके बहिष्कारकी योजना की गई। १९०५ कांग्रेसका अधिवेशन बनारसमें हुआ। उस कांग्रेसके सभापति स्वर्गीय गोखले थे। उस समय भारतकी अवस्था अतीव चिन्ताजनक हो रही थी। अधिकारीवर्ग तथा जनताके बीच

क्या भाव थे उसका पता कांग्रेसकी उस सालकी सरकारी रिपोर्टसे ही विदित हो जाती है; उस रिपोर्टमें लिखा है :— अधिकारीवर्गकी घृणा और अत्याचारका प्रधान लक्ष्य भारतवर्ष था। उसकी साधारणसे साधारण मांगें उपेक्षाकी दृष्टिसे देखी गई और उनकी हंसी उड़ाई गई। उसकी योग्यतम प्रार्थनायें अस्वीकार कर दी गई, उसकी उत्तमसे उत्तम सदिच्छाये शरारत कह कर ठुकरा दी गई, उनके अभिमत ध्येय काट कर नीचे गिरा दिये गये।" उस कॉंग्रेसमें बड़ी हलचल रही। नेताओंके चेहरे पर परेशानी और चिन्ताके प्रत्यक्ष लक्षण विद्यमान थे। राष्ट्रके जीवनमें यह बड़ा ही सङ्कटमय समय था। गरम दलवाले औपनिवेशिक स्वराज्यके पक्षपाती नहीं थे। जिस तरह ब्रिटनकी सदिच्छासे उनका विश्वास उठ गया था उसी तरह औपनिवेशिक स्वराज्यसे भी उनका विश्वास उठ गया था। अगले वर्षकी कांग्रेस सूरतमें हुई। दोनोंका मतभेद इतना बलिष्ठ हो गया था कि साथ रह कर काम करना एकदम असम्भव था। निदान दोनों दल अलग हो गये। इससे नौकरशाहीको दमन करनेका पूरा अवसर मिल गया। उसने नरमदलवालोंको अपनी ओर मिला लिया और गरमदलवालोंका दमन आरम्भ किया। बङ्गालके चन्द नवजवानोंका दिमाग घूम गया उन्होंने दमनका उत्तर दमनसे दिया। यदि उसी समय कांग्रेसने असहयोग स्वीकार कर लिया होता तो कदाचित

राजा प्रजाका यह विवाद इतनी दूरतक न बढ़ने पाता पर कांग्रेसने कुछ दिन और परीक्षा करनी चाही।

मोर्ले-मिण्टो सुधार

समयकी गतिसे भारतके शासनकी बागडोर दो उदार अंग्रेजोंके हाथमें आई। लार्ड मोर्ले भारत मन्त्री बनाये गये और लार्ड कर्जनकी खानगीके बाद लार्ड मिण्टो वायसराय बने। लार्ड मोर्लेने उद्दीप्त अग्निको शान्त करनेका एकमात्र उपाय माड्रेटोंको फंसा रखनेमें देखा। चट उन्होंने सुधारकी योजना की और उसके अनुसार भातीय शासन व्यवस्थामें कुछ सुधार किये गये। उन सुधारोंसे नरम दलवाले भी सन्तुष्ट नहीं थे पर जो कुछ मिल रहा था उसे भी छोड देना उन्होंने उचित नहीं समझा। राष्ट्रीय दल वाले इसकी पोल पहलेसेही जानते थे। उन सुधारोंके साथ दमनकी चक्की भी अपने बल भर चलाई गई। इस काममे न तो मोर्ले साहबने कोई कसर रखी और न मिण्टो साहबने ही कोई बात उठा रखी। सेडिसस मीटिङ्ग (गैर कानूनी सभा) ऐक्ट पास हुआ, प्रेस ऐक्ट पास हुआ। इन दो तरीकोंसे कौंसिलसे बाहर जनताकी बोलने और लिखनेकी स्वतन्त्रता एकदमसे अपहरण कर ली गई। १८१८ के गैर कानूनी विधानका प्रयोग पूर्ण स्वतन्त्रताके साथ होता गया। लार्ड मिण्टो और लार्ड हार्डिञ्ज कोई भी इसके प्रयोगसे न थके, न घबराये। बंगालके

हज़ारों निर्दोष नवयुवक बिना विचारके जेलोंमें ठूंस दिये गये। कांग्रेस बराबर इस घृणित दमन नीतिका विरोध करती रही पर इसका कुछ भी परिणाम नहीं निकला। जिस समय देशमें इस तरहका असन्तोष फैल रहा था यूरोपमें भयङ्कर युद्ध छिड़ गया।

असहयोग आन्दोलन

इस बातको जाननेके लिये कि असहयोग आन्दोलन क्यों जारी किया गया और इसका भारतके इतिहासमें क्या महत्व है, इससे पहलेकी कुछ घटनाओंको जान लेना अति आवश्यक है। उनका परिचय पाकर यह सहजमें ही समझमें आजायगा कि खिलाफत कांफरेन्स तथा राष्ट्रीय महासभाने इसे क्यों स्वीकार किय।

भारत और युद्ध

जिस समय १९१४ में यूरोपमें भयङ्कर महाभारत उपस्थित हुआ और जर्मनीका प्रबल प्रताप मित्रराष्ट्रोंको दबाता चला जा रहा था, भारत एक होकर ब्रिटिश सरकारकी सहायताके लिये

उठ खड़ा हुआ। जो लोग आज तक सरकारके विरोधी थे, सरकारकी ही आंखोंमें खटकते थे, जिन्होंने सरकारकी नीतियों-का विरोध किया था उन्हीं शिक्षितवर्गने पहले पहल जर्मनीके कारण उपस्थित होनेवाली भयानक स्थितिको देखा। उन्होंने उस समय सारा भेदभाव छोड़ दिया और अपनी पूरी शक्ति सर-कारकी सहायतामें लगा दी। साम्राज्यकी आवश्यकताके समय भारतने धन जन सभीसे उसकी सहायता की। विविध युद्ध-क्षेत्रोंमें भारतके चुने रत्नोंने अपने खून बहाये। दीन तथा दरिद्र अवस्थामें रहकर भी भारतीयोंने यथासाध्य धनसे भी साम्राज्य-को सहायता की। भारतीयोंकी इन सेवाओंकी प्रशंसा की गई और बड़े लाट, प्रधान मन्त्री, तथा ब्रिटनके अन्य प्रधान राजनीतिज्ञोंने इसके लिये कृतज्ञता प्रकाश की। जिस समय भारतसे सहायता माँगी गई थी ब्रिटिश सरकारने जोरदार शब्दोंमें कहा था कि "हम इस युद्धमें केवल इसलिये प्रवृत्त हो रहे हैं कि बलवानोंसे दीन दुर्बलोंकी रक्षा हो, संसारमें समता तथा स्वतन्त्रताका राज्य स्थापित हो तथा सबको आत्म निर्णय-का अधिकार मिल जाय।" इससे भारतीयोंके हृदयमें भी आशाकी तरंगें उठने लगीं। उसने भी सोचा कि इस युद्धके बाद हमारा उद्धार अवश्य हो जायगा। जिस दीन अवस्थामें पड़े रहकर हम दासताकी यन्त्रणायें भोगते आ रहे थे, उससे अब हम ऊपर उठाकर बराबरीके स्थानपर बैठा दिये जायंगे। साम्राज्यमें अब हमारा बराबरीका स्थान होगा।

माण्टेगू चेम्सफोर्ड सुधार

उनकी इस प्रकारकी आशाको पल्लवित करनेके लिये स्वातीके जलविन्दुकी तरह भारत मन्त्री मिस्टर माण्टेगूकी १९१७ की ४ की अगस्तकी घोषणा थी:—ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत भारतको पूर्ण स्वाधीनता मिलेगी। यह अधिकार भारतीयोंके हाथमें क्रमशः दे दिया जायगा। भारतके शासनमें भारतीयोंका अधिकाधिक हाथ रहने लगेगा। पर इस बातके निर्धारणका अधिकार ब्रिटिश पार्लिमेंटके हाथमें रहेगा कि यह अधिकार किस तरहसे दिया जाय अर्थात् ब्रिटिश पार्लिमेंट योग्यताकी जांच करके अधिकार देती जायगी। इसीके बाद ही १९१७-१८ के जाड़ेमें मिस्टर मांटेगू भारत भ्रमण करनेके लिये आये। उनके इस भ्रमणका मुख्य उद्देश्य यह था कि वे भारतके प्रधान प्रधान नेताओंकी राय लेकर सुधारके प्रथम चरणकी योजना करना चाहते थे। इस निमित्त उन्होंने सारे भारतवर्षमें भ्रमण किया और लोगोंसे परामर्श किया। इस प्रकार सम्पूर्ण भारतका भ्रमण करके हर तरह लोगोंका मत ग्रहण करके तथा भिन्न भिन्न संस्थाओंके प्रतिनिधियोंकी बातें सुननेके बाद भारत मन्त्री मिस्टर मांटेगू तथा लार्ड चेम्सफोर्डने सुधारोंके लिये एक मसविदा तैयार किया जो जुलाई ६, १९१८ को प्रकाशित हुआ।

दिल्लीकी युद्ध कांफरेंस

१९१८के प्रारम्भमें युद्धकी अवस्था बड़ी ही चिन्ताजनक हो

गई थी। मित्र दलोंकी स्थिति डावांडोल हो गई थी उनके पैर उखड़ गये थे। जर्मन सैनिक युद्धक्षेत्रमें अतुल पराक्रम दिखला रहे थे और बड़े वेगसे आगे बढ़ते जा रहे थे। इस समय साम्राज्यके लिये अधिकाधिक सहायताकी आवश्यकता थी। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मिस्टर लायड जार्जने अप्रेल २, १९१८ को भारतीयोंके नाम निम्नलिखित सम्वाद भेजा:—"आपको विदित हो कि जर्मनीका उच्छृङ्खल शासन केवल यूरोपमें ही नहीं बल्कि एशियामें भी आतङ्क और ज़ुल्म फैलानेका इरादा कर रहा था। इसलिये प्रत्येक स्वतन्त्रता प्रेमी तथा कानूनको मर्यादा रखने-वालेका यह धर्म होना चाहिये कि इस धर्मयुद्धमें सम्मिलित होकर पूर्वमें उपस्थित होनेवाले भयको अभीसे दूर भगावे और संसारकी रक्षा करे। हमें पूर्ण आशा है कि भारत इस युद्धमें जो कीर्ति कमा रहा है उसे और भी प्रज्वलित करेगा और हर तरहकी सहायता प्रदान करके एशियाकी रक्षा करेगा जिससे शत्रुका मनोवाञ्छित सिद्ध न हो सके।" इसके उत्तरमें प्रजाकी ओरसे बड़े लाट महोदयने निम्नलिखित सम्वाद भेजा था:—"मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि भारतकी जनता हर तरहसे तैयार है। अन्तिम सांस रहते भी भारत पीछे नहीं हटनेका। शत्रुके पापाचार और उच्छृङ्खलतासे मातृभूमिकी रक्षाका उसने पक्का संकल्प कर लिया है और जिस न्याय तथा सचाईके सिद्धान्त-को लेकर ब्रिटन इस युद्धमें परिणत हुआ है भारत उसका अन्त समय तक साथ देगा।" इसीके बाद अप्रेल २७, १९१८को दिल्लीमें

वार काम्फरेंस हुई जिसमें बड़े लाटने सम्राटके निम्न लिखित निवेदन सुनाया था:--"इस समय साम्राज्य सकटमें है। यही भारतकी राजभक्तिका समय है और ऐसे ही अवसरोंकी सेवायें समझी जाती हैं" निदान अनेक प्रान्तोंमें इस तरहकी कान्फरेंसे हुई।

दिल्ली वार कांफरेन्समें स्वयं महात्माजी उपस्थित थे। उन्होंने राजभक्तिके प्रस्तावका समर्थन किया। इसका परिणाम यह हुआ कि धन तथा जनसे आशातीत सहायता मिलने लगी। भारतने उस समय धन तथा जनसे जो सहायता दी थी उसका अंक सरकारी रिपोर्टसे उद्धृत कर दिया जाता है। इन अंकोंके देखनेसे यह अनुमान हो जायगा कि भारतकी सेवायें कितने वजनकी थीं। भारतसे कुल ६,८५,००० सैनिक युद्धके लिये तैयार किये गये। इसमेंसे ७,६१,००० सैनिक तो केवल युद्धके दिनोंमें तैयार किये गये थे। इनमेंसे ५,५२,००० समुद्र पार भेजे गये थे। युद्धके अतिरिक्त अन्य कामोंके लिये भारतसे ४,७२,००० आदमी तैयार किये गये। इसमेंसे ३,६१,००० समुद्र पार भेजे गये थे। अर्थात् कुल मिलाकर भारतसे १४५ ७००० जवान लिये गये उनमेंसे ६,४३,००० समुद्र पार भेजे गये जिनमेंसे १,०६,५६४ खेत रहे। १,७५,००० पशु भी भेजे गये थे १,८५५ मील रेलवे लाइन, २२६ लोकोमोटिव इञ्जन, ५६८६ गाड़ियां ६४० भिन्न भिन्न तरहके जहाज और नावें युद्धमें भेजे गये। रुपयेसे भारतने जो सहायता की उसका अन्दाजा लगाना जरा कठिन है, पर औसत अनुमान दो अरबका है।

रौलट रिपोर्ट तथा बादकी घटनायें

एक ओर तो भारत धन जनसे साम्राज्यकी विपत्ति निवारणमें इस तरह दत्तचित्त हो रहा था और आशा कर रहा था कि युद्ध समाप्त होते ही सम्राट तथा प्रधान मन्त्रीके वादे पूरे किये जायंगे और सम्राटके इस कथनपर 'कि सकटके समय दी हुई सहायतापर ही भारतका भविष्य निर्भर करता है" पूर्ण विचार किया जायगा, उधर दूसरी ओर दूसरी तरहकी योजना की जा रही थी। जो लोग अब भी ब्रिटनको सशंक नेत्रोंसे देख रहे थे उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव होने लगा कि ब्रिटन जिस घोषणाके अनुसार युद्धमे प्रवृत्त हुआ है और भारतवर्षसे सहायता माग रहा है, युद्ध समाप्त होते ही उसको किनारे रख देगा और पूर्वकालकी तरह अपनी वही नीति चलावेगा। इसका प्रथम आभास श्रीमती एनी बेसेण्ट तथा उनके दा नायकोंके न्यायरहित नजरबन्दीमें मिला। इसके बाद देशके अनेक नवयुवक विना किसी अपराधके, विना विचारके दनादन जेलमें ठूसे जाने लगे। अब लोगोंने देखा कि भारतरक्षा कानूनका समर्थन करके हमलोगोंने कितनी भूल की। पर उस समय क्या समझते थे कि इस तरहकी चालबाजी की जायगी। कौंसिलमें स्पष्ट शब्दोंमें विश्वास दिलाया गया था कि इसका प्रयोग शत्रुके गुप्त अभिप्रायको नष्ट करनेके लिये किया जायगा पर यहां तो इसके आडमें आज राजनैतिक जीवनको कुचल डालनेका ही उपाय हो रहा था। यह तो था ही। इसी समय

एक दूसरा पहाड़ गिरा। इसी समय क्रान्तिकारी दलका अन्वेषण करने तथा उसका पता लगानेके लिये रौलट साहबकी अध्यक्षतामें एक जांच कमेटी बैठी थी। उसने बंगाल आदि देशोंमें भ्रमण किया और पता लगाया कि क्रान्तिकारी दल अब भी वर्तमान है और युद्धके बाद इनसे अशान्तिको सम्भावना है। इससे इनकी प्रगति रोकनेके लिये दो कानूनोंकी व्यवस्था की गई। इस रिपोर्टके प्रकाशित होते ही भारतमें सन्नाटा छा गया।

यह रिपोर्ट जुलाई १९, १९१८ को प्रकाशित हुई। इसकी सिफारिशें भारत-रक्षा कानूनको स्थायीरूप देनेवाली थीं। इसकी व्यवस्थाके अनुसार विद्रोहके अभियोगमें न ता जूरियों और असेसरोंद्वारा विचार हो सकता था, न अभियोग लगानेकी साधारण कार्रवाई हो सकती थी और सजा हो जानेके बाद अपीलका अधिकार भी नहीं रह जाता था। दूसरी ओर अभियुक्तोंका विचार एकान्तमें करनेकी सिफारिश थी, गवाहोंका बयान हो सकता था पर उनकी जिरह नहीं हो सकती थी और अदालत उनके बयानको दर्ज नहीं कर सकती थी। इसके अतिरिक्त प्रबन्धक विभागको अधिकार था कि वह फैल जामिनी मोचलिका तथा जमानत आदि द्वारा व्यक्ति विशेषकी स्वतन्त्रताका अपहरण कर सकती थी। उसे निर्दिष्ट स्थानके भीतर बन्दकर सकती थी, उसे एक स्थानसे हटाकर दूसरे स्थानपर कर सकती थी अर्थात् नगर बदलका दण्ड दे सकती थी, तथा अनेक

तरहके काम करनेसे उसे रोक सकती थी, जैसे समाचारपत्र निकालना, नोटिश छपाना व बांटना, तथा सार्वजनिक सभाओंमें शामिल होना। आवश्यकता पड़नेपर उसे गिरफ्तारकर तथा हवालतमें डालकर भी उसका नियन्त्रण कर सकती थी। भारत रक्षा कानून तथा इस तरहके अन्य प्रान्तीय रेगुलेशनोंके द्वारा प्रबन्धक विभागको जो अधिकार दिया गया था तथा उस अधिकारका उसने जिस प्रकार दुरुपयोग किया था उसका कडुवा फल भारतीयोंको अभीतक भूला नहीं था। उन्होंने भली भांति देख और समझ लिया था कि यदि यह एक स्वीकार हो गया तो भारत वासियोंकी दुर्दशा हो जायगी। इससे रौलट रिपोर्टके प्रकाशित होतेही देशमें असन्तोष फैलगया। १६१८में जिस समय युद्ध समाप्त हुआ भारतमें अशान्ति फैल रही थी। भारतीय इस विश्वास घातसे बड़ेही असन्तुष्ट तथा निराश होरहे थे। इसका परिणाम यह हुआ कि अब भावी शासन सुधारोंके बारेमें भी अनेक तरहकी आशंकायें उठने लगीं। लोगोंने प्रत्यक्ष देखा कि सुधारोंसे तो कुछ फल निकलेगा नहीं उलटे क्रान्तिका बहाना करके लोगोंकी लिखने, पढ़ने, बोलने, रहने तथा बैठने उठने तककी स्वतन्त्रता हर ली जायगी। अतएव १६१६की फरवरीकी बैठकमें रौलट साहबकी सिफारिशें विचारार्थ व्यवस्थापक सभामें उपस्थित की गई। सारे भारतने एकस्वरसे इनका विरोध किया। गैरसरकारी सदस्योंने भी इनका घोर विरोध किया। यहीं आन्दोलनका आरम्भ था। इस

सरहका आन्दोलन देशमें कभी भी देखनेमें नहीं आया था। बाहर नगरोंमें इस रिपोर्टके विरोधमें सभायें की गई और कौंसिलोंमें ऐसा एक भी सदस्य (गैरसरकारी) नहीं था जो इसका समर्थन करता।

पर यह सब व्यर्थ था। सरकारने कानमें तेल डाल लिया था उसने देशकी रक्षाके लिये रोलट ऐक्टको कानूनी रूप देना आवश्यक समझा। सरकारी सदस्योंकी अधिकता थी ही मार्चके प्रथम सप्ताहमें उस बिलको काननी रूप देही दिया गया।

हड़ताल और उपद्रव

सारे देशके एक मत हो कर विरोध करने पर भी भारत सरकारने रौलट ऐक्ट पास कर दिया? इसके विरोधमें व्यवस्थापक सभाके अनेक गैर सरकारी सदस्योंने स्तीफा दे दिया। महात्मा गांधी अब तक एकान्तमें बैठे इस रिपार्ट और बिलकी गवेषणा कर रहे थे। इसकी हानियोंका पूरी तरहसे समझ कर उन्होंने बड़े लाटको नोटिस दी कि यदि आपने इस कानूनके निर्माणका साहस किया तो हमें वाध्य होकर सत्याग्रह करना पड़ेगा। देशमें चारो ओर सत्याग्रहकी तैयारियां होने लगीं। सत्याग्रह प्रतिज्ञा पत्रपर लोग हस्ताक्षर करने लगे। इस प्रतके ग्रहण करनेवालोंको उन सभी कानूनोंकी सविनय अवज्ञा करनी थी जिन्हें उक्त उद्देश्यसे संगठित एक कमेटी

बलसी और दूसरे उन्हें हर तरहके हिंसाके भावको त्याग कर सत्यांग्रहका अनुसरण करना था अर्थात् उन्हें मनसा, वाचा या कर्मणा या किसी भी तरहसे किसीके जान माल या सम्पत्तिपर आक्रमण नहीं करना था और न वे झूठ बोल सकते थे। तदनुसार २३ मार्चको महात्माजीने सूचना निकाली कि इस व्रतमें दीक्षित होनेके पहले आत्माको पवित्र तथा शुद्ध करनेके लिये २४ घंटेका उपवास तथा प्रार्थना करना आवश्यक है और इसलिये छ अप्रेल (रविवार) का दिन नियत किया जिस दिन अखिल भारत वर्षीय हड़ताल करके लोग कोई काम न करें और सारा दिन केवल उपवास और व्रतमें बितावें। समझका भूलके कारण दिल्लीमें ३० मार्चकोही हड़ताल मनाई गई। उस दिन रेलवे स्टेशनके कुछ दुकान दारों तथा हड़तालियोंके बीच झगड़ा तथा दंगा फसाद हो गया। अधिकारियोंने तुरन्त सेना मंगाई और गोली चलवा दी। परिणाम यह हुआ कि कुछ आदमी मारे गये। ६ अप्रेलको अखिल भारत वर्षीय हड़ताल हुई। हड़ताल पूर्ण समारोहसे मनाई गयी और/पूर्ण शान्तिसे बीती। कहीं भी किसी तरहका उपद्रव नहीं हुआ। भारतवर्षके इतिहासमें यह पहलाही अवसर था जबकि किसी इस तरहके सार्वजनिक काममें अमीर, गरीब, धनी, निर्धन, छोटे बड़े, शिक्षित अशिक्षित, शहरी तथा देहाती लोगोंने भाग लिया था। इस समारोहको देखकर यही प्रतीत होता मानों भारतकी सन्तान अपनी सदियोंकी

कुम्भकर्णी निद्राको त्यागकर उठ बैठी है और अपने अतुल पराक्रम तथा प्रभावका स्मरण कर रही है। मानों उन्होंने पुनर्जीवन लाभ किया हो।

दिल्लीकी जनता क्षुब्ध थी। महात्मा गान्धीने उन्हें शान्त करनेके लिये ८ अप्रेलको दिल्लीके लिये प्रस्थान किया। पर अधिकारियोंको यह अभिप्रेत न था। मार्गमें ही उनपर नोटिस तामील की गई कि वे दिल्ली तथा पञ्जाबमें न घुसें। सच्चे सत्याग्रहीकी हैसियतसे उन्होंने उस बेजा आज्ञाको मानना स्वीकार नहीं किया। वे गिरफ्तार कर लिये गये और बम्बई लौटाये गये। इसका बुरा असर पड़ा। इस समाचारके फैलते ही लोग उत्तेजित हो उठे। पञ्जाबके लोगोंमें अधिक जोश फैला। इसका एक कारण वहाके छोटे लाट सर माइकल ओडायरका दमनकारी शासन था जिसके मारे प्रजाके नाकों दम हो गया था। क्रोध और रोषका प्याला लबालब भर गया था। केवल उसमें एक ठेस लगनेकी आवश्यकता थी। महात्मा जीकी गिरफ्तारीने वही काम किया। ये सब बातें आग लगानेके लिये काफी थीं। बीचमें ही ओडायर साहबने एक और कार्रवाई करदी जिससे ज्वाला मुखी फट पड़ा और उसकी लपट सारे पञ्जाबमें फैल गई। १० वीं अप्रेलको बिना किसी कारणके अमृतसरके दो प्रधान नेता डाक्टर सत्य-पाल और डाक्टर किचलू सर माइकल ओडायरकी आज्ञासे निर्वासित किये गये। इस सम्वादसे क्षोभ शोक छा गया।

विद्वान जनताका एक दल पूर्ण शान्तिके साथ निहत्था डिपटी कमिश्नरके बङ्गलेकी तरफ इस लिये चला कि उससे प्रार्थना करके उन दोनों नेताओंको छोड़ालें। रास्तेमें वे रोके गये और जब उन्होंने मानना स्वीकार नहीं किया तो उनपर गोलियां चलाई गईं। इससे जनता अतिशय उत्तेजित हो गई और उपद्रव मच गया। फिर क्या था क्रोधमें अन्धी और रोषपूर्ण जनताने जो कुछ मनमें आया किया। बङ्कों, तथा पोस्ट आफिसोंको लूट लिया, उनमें तथा अन्य इमारतोंमें आग लगा दी, सरकारी घरोंको जला दिया, अनेक अंग्रेजोंकी हत्यायें की और दो अंग्रेज़ी महिलाओं पर आक्रमण किया। किसी तरह शान्ति स्थापित की गई पर चारों ओर आतंक फैल गया था।

जालियांवाला बागका कत्लआम

अमृतसर सैनिक शासनके अधीन कर दिया गया। ११ वीं अप्रेलकी रातको जनरल डायर अमृतसर पहुंचे और नगरका अधिकार उनके हाथमें सौंप दिया गया। ११ वीं तथा १२ वींको किसी तरहकी दुर्घटना नहीं उपस्थित हुई। १३ वीं अप्रेलको जालियांवाला बागमें एक सार्वजनिक सभा होने वाली थी। जेनरल डायरने सूचना निकाली थी कि कोई भी सार्वजनिक सभा न की जाय और यदि इसके प्रतिकूल आचरण किया गया तो प्राण जानेका भय

है। इसलिये इस सभाका संवाद सुनते ही वे सदल बल तथा मशीन गनें लेकर उस स्थानपर जा पहुंचे। रामनवमीका दिन था। हिन्दुओंके लिये यह दिन बड़े महत्वका है। दूर दूरके देहाती लोग इस उत्सवको मनानेके लिये अमृतसर आये थे। इस लिये सभास्थानमें खासी भीड़ थी। सभास्थल पर पहुंचनेके तीस सेकेण्ड बाद ही जेनरल डायरने गोलियां चलाना शुरू कर दिया और जिन स्थानोंपर सबसे अधिक भीड़ थी वही अधिक निशाने लगाये गये। इस प्रकार दस मिनिट तक अनवरत गोलियां चलती रहीं। जब गोली बारूदका सामान चुक गया तब उसने गोली चलाना भी बन्द कर दिया। प्रायः ६०० आदमी मारे गये और २००० के करीब घायल हुए। जलियावाला बागके चारों ओर ऊंची दीवालें हैं इससे भागकर रक्षा करना भी कठिन था। गोली चलानेके पहले न तो किसी तरहकी सूचना या चेतावनी दी गई और न बादको मुर्दों और आहतोंकी फिकर की गई। इसके बाद ही अमृतसर, लाहोर, गुजरात और लायलपुरमें मार्शल लाकी घोषणा कर दी गई और आतङ्कका राज्य छा गया। मार्शल लाकी अदालतमें लोग पकड़ पकड़कर लाये जाते और बिना किसी जांच आदिके जेल भेज दिये जाते। धनी मानी किसीका विचार नहीं था। कितनोंके चूतड़ोंमें बेंत लगे, कितने पेटके बल रेंगाये गये और अनेक तरहके भीषण अत्याचार किये गये। हवाई जहाजोंपरसे लोगोंपर बम फेंके गये।

महात्मा गांधीकी गिरफ्तारीके कारण अहमदाबाद आदि स्थानोंमें भी उपद्रव मचा। मार्शल लाकी घोषणा की गई पर यह अधिक दिनतक नहीं कायम रहा।

मोक्षदान और हंटर कमेटीकी जांच।

मार्शल लाके जमानेमें इतनी कड़ाई कर दी गई थी कि पञ्जाबकी घटनाओंका समाचार किसी भी तरह विदित नहीं हो सकता था। मार्शल लाके उठ जानेपर लोग पञ्जाब गये और जो समाचार लाये उससे सारे भारतमें शोक छा गया। पञ्जाबके अत्याचारोंकी जांचके लिये जनताने एक निरपेक्ष जांच कमीशनके लिये प्रार्थना की। किसी न किसी तरह उनकी प्रार्थना स्वीकार की गई और लार्ड हण्टरकी अध्यक्षतामें जाँच कमेटी बैठी। इस कमेटीने अपनी कार्रवाई आरम्भ भी न की थी कि भारत सरकारने मार्शल लाके दोषी अपराधियोंकी रक्षाके लिये एक कानून बना दिया। कमेटीने अपनी जांच शुरू की। गवाहोंके जो बयान लिये गये उससे यही प्रगट होता था कि घोर पशुता और बर्बरतासे काम लिया गया है। कांग्रेस कमेटीने अपनी एक सबकमेटी बनाई थी जो जनताकी ओरसे गवाहियां संग्रह करके हण्टर कमेटीके सामने रखती। इस काममें सुभीता पानेके हेतु कांग्रेस सबकमेटीने लार्ड हण्टरसे प्रार्थना की कि कुछ समयके लिये पञ्जाबके प्रधान प्रधान नेता जमानत कर छोड़ दिये जायं। इससे जांचमें सुविधा होगी।

पर लार्ड हण्टरने इसे स्वीकार नहीं किया। निदान कांग्रेस सबकमेटीने हण्टर कमेटीका बहिष्कार करना निश्चय किया। उसने अलग जांच आरम्भ की और अपनी रिपोर्ट अलग प्रकाशित की। मार्च २६, १९२० को इस सबकमेटीने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की और गवाहियोंके अनुसार जनताकी ओरसे मार्शल लाके अधिकारियोंके अपराधके लिये कुछ दण्डकी सिफारिशकी जो बहुत ही साधारण थीं। हण्टर कमेटीकी रिपोर्ट सब सम्मत नहीं थी। यूरोपियन सदस्योंने अधिकारियोंकी क्रूर करनीका मनमाना लीपापोती की थी, खूब सफेदी पोती थी पर हिन्दुस्तानी सदस्योंने एक मतसे स्वीकार किया था कि पञ्जाबमें मार्शल लाका समर्थन किसी भी तरह नहीं किया जा सकता। एक तो कमेटीकी सिफारिश योंही असन्तोषजनक थी, सरकारने जो कुछ किया उससे जनता सन्तुष्ट नहीं हुई। इस असन्तोषने असहयोग आन्दोलनको जन्म दिया।

खिलाफतका प्रश्न

उधर खिलाफतका प्रश्न भी लोगोंके चित्तको अशान्त कर रहा था। तुर्कीने जर्मनीका साथ देकर भारतीय मुसलमानोंकी स्थिति दोलायमान कर दी थी। एक तरफ तो खलीफाका ख्याल जो उनके धर्मका रक्षक और प्रधान पुरुष समझा जाता है और दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार जिसकी वे प्रजा थे और जिसकी छत्रछायामें इतने दिनोंसे रहते थे। वे स्थिर नहीं कर सकते थे

कि किसका साथ दें, किसकी सहायता करें। इसी समय प्रधान मन्त्रीकी घोषणा हुई। उस घोषणाको सुनकर उन्होंने अंग्रेज सरकारका ही साथ देना निश्चय किया क्योंकि उस घोषणाके अनुसार उन्हें पूर्ण आशा थी कि वे अपने धर्मकी रक्षा कर सकेंगे। उसके पवित्र धर्मक्षेत्रोंपर किसी तरहका संकट नहीं आवेगा और तुर्कोंके साथ ऐसी शर्तें पेश की जायंगी जिससे उनकी क्षति नहीं होगी। प्रधान मन्त्रीने अरेबिया, मेसोपोटामिया तथा जेदाहके पवित्र धर्मक्षेत्रोंपर हस्तक्षेप न करनेका वचन दिया था। प्रधान मन्त्रीने अपनी उस घोषणामें साफ कहा था:—"इस युद्धमें ब्रिटनके भाग लेनेका यह अभिप्राय नहीं है कि तुर्कोंके हाथसे उसके समृद्ध और उन्नत एशिया माइनर तथा थ्रेस प्रदेश हर लिये जायं क्योंकि उनपर तुर्कोंका सोलहों आने हक है।"

इधर तो मुसलमानोंने इस आशापर युद्धक्षेत्रोंमें अपने खून बहाये कि हमारे धर्मक्षेत्र बचे रहेंगे उनपर किसी तरहकी चोट नहीं पहुंचाई जायगी उधर युद्ध समाप्त होते ही मित्रराष्ट्र—विशेषकर ब्रिटनके दिमाग फिर गये और वह तुर्कोंका अंगभंग करनेका युक्तियां सोचने लगा। तुर्कोंके साथ जो सन्धि-की जानेवाली थी उसका मसौदा सुनकर मुसलमानोंके कान खड़े हो गये। उन्होंने ब्रिटिश अधिकारियोंके पास डेपुटेशनपर डेपुटेशन भेजना आरम्भ किया। प्रधान मंत्रीको उनके वचन स्मरण कराये और प्रार्थना की कि उसका पालन करना चाहिये। पर अधिकारियोंने इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। वही कुटिल

राजनैतिक चालें चली जाती रहीं। निदान नवम्बर २३, १९१९ को दिल्लीमें प्रथम खिलाफत कांफरेंसकी बैठक हुई। उसमें मुसलमानोंने महात्मा गांधी तथा अन्य हिन्दुओंको खिलाफतके प्रश्नमें उनकी तत्परताके लिये धन्यवाद दिया और प्रस्ताव स्वीकार किया कि यदि खिलाफतका निपटारा मुसलमानोंके धार्मिक भावोंके अनुकूल हो तो कोई भी मुसलमान शान्ति उत्सवमें भाग न ले और सरकारके साथ सहयोग करना त्याग दे और ब्रिटिश मंत्रीमण्डल तथा ब्रिटिश जनताका तुर्कोंके साथ सन्धि तथा खिलाफतके मामलेपर मुसलमानोंके हृदयके भावोंकी जानकारी करानेके लिये यूरोपमें एक प्रतिनिधिमण्डल भेजा जाय। अमृतसर कांग्रेसके साथ ही साथ खिलाफत कांफरेंसकी दूसरी बैठक हुई। इसमें पहली बैठकके प्रस्तावोंका समर्थन हुआ और बड़े लाट तथा तुर्कों के पास भी प्रतिनिधिमण्डल भेजनेका निश्चय किया। सेन्ट्रल खिलाफत कमेटीको चन्दा एकत्रित करनेका आदेश किया। दिसम्बर १९१९ में सर आगा खां, सैय्यद अमीर अली तथा अन्य अनेक यूरोपियन तथा भारतीयोंके हस्ताक्षरसे एक मेमोरियल प्रधान मंत्रीकी सेवामें उपस्थित किया गया। इसी समय मौलाना शौकत अली तथा मुहम्मद अली जेलसे छोड़ दिये गये। उनके स्वतंत्र हो जानेसे खिलाफतके प्रश्नने और भी जोर पकड़ा।

खिलाफत डेपुटेशन

पूर्व निश्चयके अनुसार जनवरी २०, १९२० को डाक्टर

अन्सारीके सभापतित्वमें बड़े लाटकी सेवामें मुसलमानोका एक डेपुटेशन भेजा गया। बड़े लाटने उस प्रतिनिधि मण्डलको जो उत्तर दिया, वह नितान्त असन्तोष जनक था। तदनुसार मुसलमानोंने अपना निर्णय निकाला कि यदि सन्धिकी शर्तें मुसलमानोंके हकमें न हुईं तो उनकी राज-भक्तिपर कड़ी चोट पहुंचेगी इसलिये उनकी मांग थी कि अरेबिया तथा अन्य मुसलमान धर्म क्षेत्र खलीफाके हाथसे न निकाले जायं तथा ब्रिटिश प्रधान मंत्री मिस्टर लायड जार्जने जो वचन दिया है उसे पूरा किया जाय। इस समयतक विलायत डेपुटेशन भेजनेकी तैयारी हो चुकी थी। तीसरी खिलाफत कांफरेंस बम्बईमें हुई। उसने इस डेपुटेशनमें अपना दृढ़ विश्वास प्रगट किया और एक सूचना पत्र निकाला जिसमें मुसलमानोंकी मांगका सविस्तार विवरण था। इस सूचना पत्रको निकालते समय उसने साफ कह दिया था कि यदि मुसलमानोंकी इस मागमे जरा भी कमी की गई तो मुसलमानोंके धार्मिक भावोंपर गहरी चोट पहुँचेगी, ब्रिटिश प्रधान मंत्री तथा मित्रराष्ट्रोंके प्रधान पुरुषोंके दिये वचनका भंग किया जायगा और विश्वासघात समझा जायगा कि जब युद्धक्षेत्रमें रक्त बहानेके लिये मुसलमान सैनिकोंकी इतनी अधिक जरूरत रही तब तो उन्होंने हर तरहके वचन देकर अपना काम चलाया पर अब अवसर बीतते ही अपना वादा भूल गये। पर इसका परिणाम इनके लिये हानिकर होगा क्योंकि यह मांग केवल सारी मुसलमान प्रजाकी ही मांग

नहीं है बल्कि भारतकी समस्त हिन्दू जनता भी इस न्यायोचित मांगमें मुसलमानोंका साथ दे रही है।

जो प्रतिनिधिमण्डल विलायत गया उससे भारत मन्त्रीकी ओरसे मिस्टर फिशरने मुलाकात की तथा प्रधान मन्त्रीके पास भी उसने अपना निवेदन उपस्थित किया। डेपुटेशनने सन्धि सभा-के सुप्रोम कौंसिलके सामने भी अपनी प्रार्थना उपस्थित करनी चाहा पर उसे इजाजत नहीं मिला। उधर तो डेपुटेशन यूरोपके भिन्न भिन्न नगरोंमें भ्रमणकर रहा था इधर मई १४, १९२० को तुर्कीके साथ जो सन्धिकी जानेवाली थी उसकी शर्तें प्रकाशित कर दी गईं और बड़े लाटकी ओरसे भारतीय मुसलमानोंके नाम एक अलग पर्चा भी प्रकाशित हुआ जिसमें उन शर्तोंकी व्याख्या की गई थी। बड़े लाटने खेद प्रगट किया था कि उन शर्तोंसे मुसलमानोंको दुःख और असन्तोष अवश्य होगा पर साथ ही आशा प्रगट की थी कि वे पूर्ण धैर्य और शान्तिसे काम लेकर अपने धर्मभाई तुर्कोंकी इस विनाश गाथाको सुनकर चुप लगा जायंगे। इन शर्तोंके प्रकाशित होनेसे मुसलमान एकदमसे उत्ते-जित हो गये। इसी समय हण्टर कमेटी रिपोर्ट प्रकाशित हुई और इसने आगमें घीका काम किया। सारे देशमें आग लग गई। निदान मई २८ १९२० को बम्बईमें खिलाफत कमेटीकी पुनः बैठक हुई और उसने महात्मा गांधीके असहयोग आन्दोलनपर विचार किया। कमेटीका अन्तिम निर्णय यही हुआ कि अब मुसलमानोंके उद्धारका एकमात्र यही मार्ग रह गया है। उसीके

दो ही दिन बाद ३० मईको बनारसमें अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटीकी बैठक हुई और इसने हण्टर कमेटीकी रिपार्ट तथा तुर्कोंके प्रश्नपर विचार किया। कमेटी की बैठक लगातार तीन दिनतक होती रही। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि असहयोग आन्दोलनपर विचार करनेके लिये शीघ्र ही कांग्रेसका विशेष अधिवेशन किया जाय।

असहयोगकी स्वीकृति।

जून ३० १९२० को इलाहाबादमें हिन्दू तथा मुसलमानोंकी एक सम्मिलित सभा हुई और उसमें असहयोगका कार्यक्रम स्वीकार कर लिया गया और यह निश्चय हुआ कि एक मासकी सूचना बडे लाटको देकर इसको कार्यक्रममें लानेका प्रबन्ध किया जाय। नगर नगरमे भिन्न भिन्न दलोंकी सभायें की गईं। सभीमें हण्टर कमेटीके रिपार्टकी निन्दा की गई तथा पञ्जाब और खिलाफतके साथ किये गये अन्यायपर असन्तोष प्रगट किया गया। जून २२ को अनेक प्रधान मुसलमानोंके हस्ताक्षरसे बडे लाटके पास एक प्रार्थना पत्र भेजा गया कि वे चेष्टा करके तुर्कोंके साथ जो शर्तें की गई हैं उनमें सुधारकी योजना करें अन्यथा भारतके मुसलमान हिन्दुओंके साथ होकर असहयोग स्वीकार करेंगे, उसमें यह भी लिखा था कि यदि बडे लाटने ध्यान नहीं दिया और उसपर कोई कार्रवाई नही की तो पहली अगस्तसे हमलोग ब्रिटिश सरकारके साथ सहयोग करना छोड देंगे और हिन्दू तथा अन्य मुसलमानोंसे कहेंगे कि वे हमारा साथ

दें इसी समय महात्माजीने भी बड़े लाटके पास एक पत्र भेजा जिसमें उन्होंने खिलाफतके साथ अपने सम्बन्धकी पूरी व्याख्या की थी। उन्होंने उस पत्रमें सविस्तर दिखलाया था कि ब्रिटिश सरकारकी इस नीतिका फल मैंने मुसलमानोंमे बढ़ते असन्तोाष और ब्रिटिश सरकारके प्रति उनके अविश्वासको देखा और उन्हें सान्त्वना दिया कि निराश होनेका कोई कारण नहीं है। पर सन्धिकी जो शर्तें पेश कोगई हैं उनसे प्रधान मन्त्रीका प्रतिज्ञा भंग हो गई है और मुसलमानोंके धार्मिक भावोंको रक्षा नहीं की गई है। मैं कट्टर हिन्दू हूं और अपने मुसलमान भाइयोंके साथ अपना घना सम्बन्ध बनाये रखना चाहता हूं। ऐसी अवस्थामें यदि इस सकटके समय मैं उनके काम न आया तो मैं सच्चा भारतीय कहलानेके योग्य नहीं रहा हण्टर कमेटीके बहुमतकी रिपार्ट तथा आपके खरीतोने हमलोगोंके अविश्वासको और भी बढ़ा दिया। ऐसी अवस्थामें मेरे सदृश मनुष्यके लिये दो ही मार्ग रह गया है कि तो हताश होकर ब्रिटिश शासनके साथ हरतरहसे सम्बन्ध त्याग दू और नाता ताड दूं या यदि ब्रिटिश न्याय और शासन प्रणालीमें कुछ भी विश्वास शेष रह गया है तो ऐसा यत्न करूं जिससे इन बुराइयोंका प्रतिशोध हा जाय और सरकारकी नीति विश्वास करनेके योग्य हो जाय। ब्रिटिश शासन प्रणालीकी उत्कृष्टतामें मेरा आज भी विश्वास है और मुझे पूर्ण आशा है कि यदि किसी प्रकारसे हम लोगोंने योग्यता दिखलाई तो अब भी हम लोगोंके साथ न्याय हो सकेगा।

ब्रिटिश शासन प्रणालीकी उत्कृष्टतामें मेरे अटल विश्वासके ही कारण मैंने अपने मुसलमान भाइयोंको सलाह दिया है कि वे आपकी सरकारके साथ सहयोग त्याग दें और मैं अपने हिन्दू भाइयोंको सलाह देता हू कि वे मुसलमानोंका साथ दें।

तदनुसार पहली अगस्तको खिलाफतका दिन मनाया गया। अखिल भारतवर्षीय हड़ताल मनाई गई और असहयोगका प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इसी अवसरपर असहयोग व्रत स्वीकार करके महात्मा गांधीने अपना कैसरे हिन्दका तमगा बड़े लाटको वापिस किया और साथ ही निम्नलिखित पत्र लिखा —

"विगत महीनोंमे जो घटनायें हुई उनसे मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि खिलाफतके मामलेमे ब्रिटिश सरकारने मुसलमानोंके साथ घोर अन्याय किया है और अपनी इस बेईमानीको छिपानेके लिये गलतीपर गलती करती गई है। ऐसी सरकारके लिये मेरे हृदयमें किसी तरहकी श्रद्धा तथा भक्ति नही रह सकती। इसके अतिरिक्त पंजाबके मामलेमें आपकी सरकारने तथा ब्रिटिश सरकारने जो न्याय शून्य पक्षपात दिखाया है उससे मेरा असन्तोष आपकी सरकारकी ओरसे और भी घट गया। पंजाबके अधिकारियोंके अत्याचारोंको आपने जिस उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा, सर माइकल ओडायरके अत्याचारोंकी आपने जो प्रशंसा की, मिस्टर मांटेगूके खरीते तथा लार्ड सभाने पंजाबकी घटनाओंपर जो अनजानकारी प्रगट की और हिन्दुस्तानियोंके दुःखोंका जरा भी ख्याल नहीं किया गया, इन सब कारणोंने मेरे हृद

साम्राज्यके भविष्यके लिये निताम्त चिन्तित कर दिया है वर्तमान सरकारकी ओरसे दिल फेर दिया है, और जिस तरहकी राज भक्ति मैं इसके प्रति सदासे दिखलाता आ रहा था उस तरहकी राजभक्तिसे हमे विचलित कर दिया है।" पर इन सब बातोंका सरकारपर दिखौआ कोई भी असर नहीं पड़ा। मुसलमानोंके धार्मिक भावोंकी पूर्णतया अवज्ञा होती रही और साथ ही इङ्गलैण्डमे लार्ड सभा तथा भारतीय अंग्रेज पंजाबके हत्याकारी जेनरल डायर आदिकी प्रशंसा करते ही गये। भारतके अंग्रेज तो यहां तक आगे बढ़ गये कि उन्होंने डायर स्मारक फण्ड खोल डाला और उसकी सहायताके लिये बहुत सा चन्दा एकत्रित किया। यूरापियनोंकी संस्थाये तथा भारतीय अंग्रेजी पत्र जेनरल डायरकी प्रशंसाके पुल बांधने लगे।

कलकत्ताकी विशेष कांग्रेस

असहयोग आन्दोलनका मर्म समझानेके लिये महात्मा गांधी तथा मौलाना शौकत अली भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमे भ्रमण करने लगे। इसी बीचमें सितम्बरके प्रथम सप्ताहमे कलकत्तामें कांग्रेसका विशेष अधिवेशन हुआ और लाला लाजपत राय इसके सभापति बनाये गये। चार दिन तक घोर वादविवाद होता रहा। अन्तमें कांग्रेसने महात्मा गांधीके असहयोग प्रस्तावको स्वीकार किया। महात्मा गांधीने जो प्रस्ताव उपस्थित किया था उसमें लिखा था :—"चूंकि खिलाफतके मामलेमें भारत सरकार तथा ब्रिटिश सरकारने भारतीय

मुसलमानोंके प्रति अपने कर्तव्यका पूरी तरहसे पालन नहीं किया है और प्रधान मन्त्रीने अपने वादोंको जान बूझकर लापरवाही और उदासीनतासे काम लिया है, हत्या करनेवाले सरकारी कर्मचारियोंको किसी तरहका दण्ड नहीं दिया, पंजाबके प्रधान अपराधी सर माइकल आडायरकी प्रशंसा की है, और लार्ड सभामें पंजाबके मामले पर जो विवाद हुआ उससे स्पष्ट प्रगट होता है कि उन लोगोंकी भारतीयोंके साथ किसी तरहकी सहानुभति नहीं है, और पञ्जाबमें जो भीषण आतंक तथा क्रूरतापूर्ण अत्याचार किये गये थे उसके वे समर्थक हैं, इसलिये कांग्रेसका यह दृढ मत है कि जबतक इन दोनों बुराइयोंका प्रतिशोध नहीं हो जाता, देशमें किसी तरहसेभी शान्ति नहीं स्थापित हो सकती और राष्ट्रको मर्यादा स्थापित करने तथा भविष्यमें इस तरहके अत्याचारोंको रोकनेका एकमात्र उपाय स्वराज्यकी स्थापना है। कांग्रेसका यह भी दृढ़ मत है कि अब इन बुराईयोंको दूर करनेके लिये देशके हाथमें कोई दूसरा उपचार नहीं रह गया है सिवा इसके वह तबतकके लिये शान्तिमय, अहिंसात्मक असहयोगको स्वीकार करे जब तक ये बुराईया दूर न हो जायं और स्वराज्य-न स्थापित हो जाय। इससे कांग्रेसका मत है कि :—(१) भारतके प्रत्येक उपाधिधारी अपनी उपाधियां त्याग दें तथा स्थानीय संस्थाओंमें सरकारकी कृपासे हुए पदोंसे स्तीफा दे दें। (२) सरकारी दरबार सविमें न जायं, (३) सरकारसे

स्थापित तथा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों और कालेजोंसे बालकोंको धीरे धीरे हटाकर उनका वहिष्कार करें तथा उनके स्थानपर राष्ट्रीय स्कूलों और कलेजोंकी स्थापना (४) वकीलों तथा मुवक्किलोंद्वारा ब्रिटिश अदालतोंका बहिष्कार तथा जातीय झगड़ोंके निपटाराके लिये पञ्चायती अदालतोंकी स्थापना, (५) सैनिक, मुहर्रिर तथा मजूरोंका मेसापाटामिया आदि स्थानोंमें जानेसे इन्कार करना (६) सुधारकौंसिलोंका बहिष्कार अर्थात् न तो इनमें जानेके लिये कोई उमेदवार खड़े हों और न मतदाता किसीको मत दे (७) विदेशी मालका बहिष्कार। स्वदेशी कपड़ोंका प्रयोग और इसकी आवश्य-कताकी पूरी करनेकी चेष्टा करना। चरखे तथा करघेका पुनरुत्थान करके भारतके प्राचीन कलाको जगाना।

इस प्रस्तावमें मिस्टर विपिन चन्द्र पालने निम्न लिखित सुधार उपस्थित किया था कि भारतीयोंकी दुरवस्थाओं असन्तोष का वृत्तान्त लेकर एक डेपुटेशन प्रधान मन्त्रीके पास जाय उन्हें सभी व्यवस्थाका दिग्दर्शन करावे और भारतके लिये पूर्ण स्वराज्य मांगे। इधर महात्मा गांधीके असहयोग कार्यक्रमपर विचार किया जाय। यदि प्रधान मन्त्री डेपुटेशनकी बातें न सुने तो असहयोग तथा और सुविधा जनक तथा कारगर व्यवस्था की जाय। पर संशोधनको कांग्रेसने बहुमतसे रद्द कर दिया।

असहयोग आन्दोलन

असहयोगके कार्यक्रमको कांग्रेसकी स्वीकृति मिल गई। इससे असहयोग आन्दोलनको नया प्रोत्साहन मिल गया। असहयोगका कार्यक्रम निर्धारित करनेके लिये कलकत्तामें ही एक सब कमेटी बनाई गई। उस कमेटीने अपनी रिपोर्ट उपस्थित की। उसपर विचार करनेके लिये अक्तूबर २ को अखिल भारत वर्षीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक हुई और तदनुसार पूर्ण विवरण प्रकाशित किया गया। पर लोगोंको इस बातकी आशङ्का बनी रही कि नागपूरमें वार्षिक अधिवेशनके अवसर पर कांग्रेस इस प्रस्तावको अवश्य रद्द कर देगी। इधर महात्मा गान्धीने अपना दौरा जारी किया और नगर नगर भ्रमण कर प्रचार करने लगे। इस अवसर पर जनताने जो उत्साह प्रगट किया वह अकथनीय था।

नागपुर कांग्रेस

धीरे धीरे दिसम्बर मास आ पहुंचा और कांग्रेसका साधारण वार्षिक अधिवेशन नागपूरमें उपस्थित हुआ। इस अधिवेशनके सभापति मद्रासके श्रीयुत विजयराघव आचारियर थे। इस वर्ष कांग्रेसने अपने ध्येयमें निम्नलिखित परिवर्तन किया :—"कांग्रेसका ध्येय सभी शान्तमय तथा उचित तरीकों द्वारा भारतके लिये पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना

है।" इस कांग्रेसने कलकत्ताकी विशेष कांग्रेसके असहयोगके प्रस्तावका समर्थन किया। इस कांग्रेसमें यह स्पष्टतया घोषित हो गया कि शान्तिमय असहयोगका कोई भी अंश किसी भी समय चलाया जा सकता है। अर्थात् कांग्रेस अथवा अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीकी आज्ञासे असहयोगका कार्यक्रम सरकारके साथ सहयोग न करनेसे लेकर मालगुजारीका देना बन्द करने तकका कार्यक्रम किसी भी समय कार्यक्रममें लाया जा सकता है। इसके बीचमें देशको इसके लिये तैयार करनेके हेतु अभिभावकोंको समझाया जाय कि वे अपने बालकोंको सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयोंसे हटा लें और जिन लड़कोंकी अवस्था सोलह वर्षसे ऊपर है उन्हें स्कूल तथा कालेजोंको छोड़नेकी प्रार्थना की जाय; वकीलोंसे प्रार्थना की जाय कि वे अदालतोंके वहिष्कारकी अधिकाधिक चेष्टा करें और अपनी शक्तिको राष्ट्रीय काममें लगावें और अन्य वकीलों तथा मुवक्किलोंको अदालतोंके वहिष्कारके लिये प्रेरित करें; चरखे तथा करघेके अधिकाधिक प्रचारसे विदेशी कपड़ेका प्रचार घटावें, देशके प्रत्येक नरनारीको इस निमित्त अधिकाधिक त्याग करनेके लिये कहें और प्रत्येक गांवमें तथा कई गावोंको एक साथ मिलाकर एक कमेटी बनाई जाय और सबका केन्द्र प्रान्तीय कमेटी हो। इन कमेटियोंमें काम करनेके लिये राष्ट्रीय स्वयंसेवकदल नियुक्त किये जायं और आवश्यकता पड़नेपर तिलक स्वराज्य

कोषसे उनकी सहायता की जाय। जिन लोगोंने यह देखकर भी मतदाताओंकी अधिकांश संख्याने निर्वाचनमें भाग नहीं लिया, कौंसिलोंके लिये निर्वाचन कराया उन्हें उचित है कि वे अब भी अपने पदोंसे स्तीफा दे दें और यदि वे ऐसा नहीं करते तो जनताका धर्म है कि वह उनसे अपने हितकर किसी तरहका काम न ले। पुलिस सैनिक तथा जनताके बीच जिस सद्भावकी स्थापना हो रही थी उसके लिये कांग्रेसने सन्तोष प्रगट किया और उनसे प्रार्थना की कि राष्ट्रीय आवश्यकताओंको पूरी करनेके लिये उन्हें तैयार रहना चाहिये कि कांग्रेसकी घोषणाके साथ वे लोग सरकारी नौकरीसे तुरत स्तीफा दे दें तथा जनताके साथ व्यवहार करनेमें पूर्ण नम्रता और ईमानदारीसे काम लें और विना किसी भयके पूर्णसाहसके साथ सार्वजनिक जलसोंमें भाग लें पर उन जलसोंकी कार्रवाईमें किसी तरहका भाग न लें। कांग्रेसने अहिंसा शब्दपर विशेष जोर दिया और बतलाया कि असहयोग आन्दोलनका सबसे प्रधान विषय अहिंसा है और हिन्दू मुसलमान मेलको बढ़ाने तथा ब्राह्मण और अब्राह्मणके झगड़ेको निपटानेकी अपील की। इसके अतिरिक्त कांग्रेसने हिन्दुओंका ध्यान अछूत तथा पतित जातियोंको ओर आकृष्ट किया और प्रार्थना की कि हिन्दू धर्मकी लाज रखनेके लिये इनकी दशा सुधारनेकी चेष्टा की जानी चाहिये। कांग्रेसका प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

यहींसे असहयोग आन्दोलनका प्रथम चरण आरम्भ हुआ। हताश जनताका तिनकेको सहारा मिल गया। उसको सारे दुःखोंके प्रतिकारकी आशा हो गया और उसने उसे कसकर पकड़ा। जिस दुराचार अपमान बेईमानी तथा धोखेबाजीके तले वह नित्य प्रति दबाई जा रही थी और पंजाबकी दुर्घटना तथा खिलाफतके प्रति विश्वासघात जिसकी परम सीमा थी उसकी दवा उन्हें इसमें दिखाई दी। अब राष्ट्रने यहो निश्चय किया कि यातना सहकर ही हम स्वराज्य प्राप्त करेंगे। आज प्रायः २५ मास हो जाते हैं पर राष्ट्रने अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी। जिस समय जो कहा गया कर डाला, जिस त्यागकी शिफारिस की गई, खुशीसे दे दिया और आज भी उसी तरह अटल और दृढ़ खड़ा है।

अक्तूबरकी पहली सप्ताहमें मौलाना मुहम्मद अली यूरोपसे लौटे। महात्माजी उन्हें साथ लेकर अक्तूबर १२ को अलीगढ़ पहुंचे। यहींसे सरकारी स्कूलों और कालजोंका वहिष्कार आरम्भ हुआ जो ४।५ मास तक पूरे जोर पर रहा। अलीगढ़ कालेजको राष्ट्रीय बनानेकी व्यवस्था की जाने लगी। कालेजके टस्ट्रियोंमें अनेक असहयोगी थे। उन्होंने अन्य ट्रस्ट्रियोंके पास पत्र भेजा और अपना विचार प्रगट किया। तदनुसार अक्तूबर १७ को ट्रस्ट्रियोंकी एक सभा। हुई। महात्मा गान्धीने भी उनके पास इसी विषय पर एक पत्र लिखा था। पर ट्रस्टियोंने यही निर्णय किया कि

हम लाग इस विद्यालयको पुराने ढर्रे पर ही चलावेंगे। निदान अलीगढ़में राष्ट्रीय मुस्लिम विद्यालयकी स्थापना की गई। उसके सभापति शेखुलहिन्द मौलाना मुहम्मदुल हुसेन साहब बनाये गये और मौलाना मुहम्मद अली कालेजके प्रिन्सिपल बने। इसीके बाद महात्माजी पञ्जाब पहुंचे। वहां भी वही जोश दिखाई दिया। प्राय: सभी कालेजोंके लड़कोंने हड़ताल कर दी। गवर्मेण्ट कालेज, खालसा कालेज तथा अन्य विद्यालयोंके छात्र उन्हें राष्ट्रीय बना देनेके लिये जोर मारने लगे। नवम्बर १५ को गुजरात विद्यापीठकी स्थापना स्वय महात्माजीने थी और वे ही उसके चान्स-लर बनाये गये और इसमें प्राय: ५०० छात्रोंको शिक्षा दो जाने लगी। थोड़े ही दिनोंके बाद काशी विश्वविद्यालयके छात्रोंने भी हड़ताल कर दो। दिसम्बर मासके आरम्भमें महात्माजी विहार पहुंचे और राष्ट्रीय विद्यालयकी स्थाप-नाकी राय दीया। जनवरी ५, १९२१ को पटना राष्ट्रीय विद्यालयकी स्थापना हुई। इसके पहले ही दिसम्बर मासमें बम्बईमें तिलक महा विद्यालयको स्थापना हा चुकी थी। तेरह फरवरीको स्वयं महात्माजीने काशी विद्यापीठकी स्थापना की और बाबू भगवानदास उसके प्रधान बनाये गये।

ड्यक आफ कनाटके स्वागतका बहिष्कार।

असहयोग नीतिके अनुसार नागपुरमें एक और महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इसका आशय यह था कि ड्यूक आफ कनाट-

की भारत यात्राके सम्बन्धमें जो उत्सव मनाये जायं उनमें भारतवासी किसी रूपमें शामिल न हों। यह वहिष्कार पूर्णतया सफल रहा और जिन जिन नगरोंमें ड्यूक गये उनमें जो पूरी और अपनी इच्छासे लोगोने हड़तालें कीं उनसे यह बात प्रमाणित हो गयी कि भारत अपनेको वर्तमान् बन्धन और अपमानमय परिस्थितिसे मुक्त करना चाहता है। इधर तो कलकत्ते और दिल्लीकी सूनी सड़कोमें ड्यूकका सरकारकी ओरसे स्वागत किया गया, उधर उन्हीं नगरोंमें महात्माजीके मुखसे स्वाधीनताका सन्देश सुननेके लिये सहस्रों मनुष्य एकत्र होते थे।

नयी संगठन नियमावली

नागपुर कांग्रेसने पुरानी सङ्गठन नियमावलीके स्थानमें एक नयी नियमावली भी स्वीकार की। इसमें निम्नलिखित बातें प्रधान थीं—कांग्रेसके उद्देश्यमें परिवर्तन, भाषाके अनुसार प्रान्तोका विभाग, कांग्रेस और तदधीन कमेटियोंका पुनः सङ्गठन, प्रतिनिधियोंकी संख्या और निर्वाचनका नियन्त्रण और एक कार्यसमितिकी नियुक्ति। कुछ लोगोंका यह आक्षेप है कि इस नयी नियमावली और विशेषतः उस स्थानने, जो सर्व भारतीय कांग्रेस कमेटीको कार्य समितिको दिया गया है, अधिकारको केन्द्रीभूत कर दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि महात्माजीके नेतृत्वमें कांग्रेसकी इस प्रधानतम् कार्य्यकारिणी संस्थाने बहुत महत्व प्राप्त कर लिया है और कांग्रेसकी नीतिको निश्चित

करनेमें इसने बहुत भाग लिया है। परन्तु यह बात वस्तु-स्थितिको देखते हुए अनिवार्य थी।

जन, धन और रख सामग्री

मार्चके महीनेतक आन्दोलनके रचनात्मक भागपर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। ३१ मार्चको बेजवाड़ामें सर्व भारतीय कमेटीकी बैठक हुई और उसने ऐसे प्रस्ताव स्वीकृत किये जिनमें देशसे यह अनुरोध किया गया कि (१) एक करोड़ रुपया एकत्र किया जाय, (२) एक करोड़ सदस्य बनाये जांय और (३) ३० जून १६२१ तक भारतीय गृहस्थियोंमें २० लाख चरखे चलने लगें। देशने इस कामको बड़े उत्साहसे अपनाया और समय पर एक करोड़से ऊपर रुपया एकत्र हो गया। परन्तु शेष दो बातोंपर पूरा ध्यान नहीं दिया जा सका और उनमें पूर्ण सफलता न हो सकी।

कांग्रेसका रचनात्मक कार्य

१६२१ के शेष महीनेमें कांग्रेसके कामके रचनात्मक अंशका विशेष ध्यान दिया गया और बम्बईमें सर्व भारतीय कांग्रेस कमेटीकी जो बैठक हुई उसमें 'आगामी सितम्बर मासकी ३० वीं तारीखतक विदेशी वस्त्रके पूर्ण बहिष्कार कर देने और चरखेको सहायतासे खद्दरकी तैयारी पर विशेष जोर दिया गया। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये अधीन कांग्रेस संस्थाओं तथा कांग्रेसके सब सदस्योंके लिये ब्योरेवार नियम प्रकाशित किये गये। श्रीमान् प्रिन्स आफ वेल्सकी भारतयात्राका बहिष्कार,

शराबकी दूकानोंपर पहरेका (जो आरम्भ हो गया था) समर्थन, अलीगढ़ और मालेगांवमें जनताके द्वारा किये गये उपद्रवोंपर खेद प्रकाश और कार्यकारिणी समितिको सर्व भारतीय कांग्रेस कमेटीकी आगामी बैठकमें विचारार्थ पेश करनेके लिये कांग्रेसकी वैदेशिक नीतिकी एक विज्ञप्ति तैयार करनेका अधिकार दान सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

परिमित सविनय अवज्ञा स्वीकृत।

कमेटीके निश्चयोंमेंसे ४ था निश्चय इस प्रकार है—

"सर्व भारतीय कांग्रेस कमेटीका ध्यान संयुक्त प्रांत तथा अन्य प्रदेशोंके कार्यकर्ताओंकी इस न्याय्य इच्छाकी ओर गया है कि प्रांतिक सरकारोंकी दमननीतिके प्रतीकारमें सविनय अवज्ञा की जाय। कमेटीके ध्यानमें यह बात भी है कि सदर खिलाफत कमेटीने सरकारी कर्मचारियोंके द्वारा बन्नूमें किये गये अत्याचारोंकी शिकायतोंकी जांच करनेके लिये जिस सीमा जांच कमेटीकी नियुक्त की थी उसको पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तकी सरकारने अपने प्रान्तमें घुसने ही न दिया। परन्तु सारे भारतमें अहिंसात्मक भावोंके सुदृढ़ हो जानेके उद्देश्यसे और इस बातकी परीक्षा करनेके लिये कि कांग्रेसने जनतापर कहांतक प्रभाव स्थापित कर लिया है तथा देशमें स्वदेशीके उचित और शीघ्र प्रचारके लिये राष्ट्रमें शान्तिपूर्ण परिस्थिति कायम रखनेके लिये, सर्व-भारतीय कांग्रेस कमेटीकी यह सम्मति है कि जबतक वह कार्यक्रम न पूरा हो ले जिसका स्वदेशी सम्बन्धी निश्चयमें जिक्र

है तबतक सविनय अवज्ञा स्थगित रहे। उसके बाद यदि आवश्यक होगा तो कमेटी सविनय अवज्ञाकी सिफारिश करनेमें आगा पीछा न करेगी, चाहे इसके लिये कांग्रेसका विशेष अधिवेशन करना पड़े। इसके साथ ही प्रत्येक प्रांत या स्थानको यह अधिकार दिया जाता है कि अपनी प्रान्तीय कमेटीके द्वारा कार्य समितिसे विधिवत् अनुमति लेकर अपने यहां सविनय अवज्ञा आरम्भ कर दे।"

स्वतन्त्र मतका नैसर्गिक अधिकार।

इसके बाद सर्वभारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक ४ और ५ नवम्बरको दिल्लीमें हुई। पहिली बैठकमें स्वदेशी और मादक द्रव्य-निषेध सम्बन्धी जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए थे उनके अनुसार लोग बड़े उत्साहसे काम कर रहे थे। परन्तु अली भाइयोंकी गिरफ्तारी और सजाने इस कामके शान्त क्रममें विघ्न डाल दिया था। इसके प्रत्युत्तरमें कमेटीने प्रत्येक प्रान्तको कुछ शर्तों पर यह अधिकार दे दिया कि वह अपने दायित्वपर सविनय अवज्ञा, जिसमें टैक्स न देना भी सम्मिलित था, आरम्भ करे। उसके उचित प्रकारका निर्णय तत्तत् प्रांतीय कमेटीपर छोड़ा गया। कमेटीने निम्नलिखित विज्ञप्ति द्वारा अपना यह मत प्रगट कर दिया कि सरकारी नौकरोंसे पदत्याग करनेके लिये कहनेमें अली बन्धु किसी अपराधके कर्ता नहीं थे —"प्रत्येक नागरिकका यह नैसर्गिक अधिकार है कि वह सरकारी नौकरोंके सैनिक या गैर-सैनिक नौकरी छोड़ देनेके औचित्यपर अपनी सम्मति प्रकट

करे और प्रत्येक नागरिकका यह भी नैसर्गिक अधिकार है कि सैनिक या गैर-सैनिक सरकारी नौकरोंसे खुलकर ऐसी सरकारसे सम्बन्ध तोड़नेके लिये अनुरोध करे जो भारतकी जनताके एक बहुत बड़े अंशका साहाय्य तथा विश्वास खो बैठी है।” कमेटीने कार्य समितिके वैदेशिक नीति सम्बन्धी प्रस्तावका भी समर्थन किया।

१९२१ की अन्तिम बैठक २४ दिसम्बरको हुई। इसमें श्री चित्तरञ्जनदासके स्थानमें, जो उस समय हवालातमें थे, हकीम अजमल खां कांग्रेसके स्थानापन्न सभापति चुने गये।

स्वयंसेवक संस्थाका केन्द्रीभूत किया जाना।

कार्य समितिके निश्चयोंका विशेष उल्लेख नहीं किया गया है, क्योंकि सभी महत्वपूर्ण बातोंमें सर्व भारतीय कांग्रेस कमेटीने उनका समर्थन किया। २२ और २३ नवम्बरको बम्बईमें कार्यसमितिकी जो बैठक हुई उनका महत्व विशेष है। दो ही चार दिन पहिले बङ्गाल, संयुक्त प्रांत और पञ्जाबमें क्रिमिनल ला अमेण्डमेण्ट ऐक्ट लगाया गया था। समितिने अपने ५ संख्याके प्रस्ताव द्वारा यह निश्चय किया कि सभी तत्कालीन स्वयंसेवक संस्थायें एक केन्द्रीय शासनके अधीन कर ली जायं। यह निश्चय सरकारकी चुनौतीका उत्तर था। इसके बाद निरंकुश दमन आरम्भ हुआ।

असहयोगके आरम्भसे अहमदाबाद कांग्रेसतकके इतिहासके दिग्दर्शन करानेमें सरकारके भाव और उसकी चलायी दमन

नीतिका बहुत कम उल्लेख किया गया है। इसका कारण यह है कि यद्यपि यह विषय इस इतिहासका एक मुख्य अङ्ग है तथापि इसका महत्व ऐसा है कि इसका विशेष और पृथक् वर्णन करना आवश्यक है।

सरकारकी परेशानी।

पीछे जिन घटनाओंका उल्लेख है उनसे विदित होगा कि असहयोगकी जबर्दस्त लहर उठते ही सारे देशमें अति शीघ्र फैल गयी। ज्यों ज्यों वह एक प्रान्तसे दूसरेकी ओर बढ़ी त्यों त्यों उसका वेग बढ़ता गया। सरकार आरम्भसे ही इस आन्दोलनकी अद्भुत सफलता देखकर घबरा गयी। उसको यह डर था कि इस समय दमन करनेसे उसका बल घटनेके स्थानमें बढ़ जायगा। इसलिये उसने पेंशन पानेवालोंकी पेंशनें बन्द करना, असहयोगी जमींदारोंको नहरका पानी न देना तथा इसी प्रकारकी और भी तङ्ग करनेकी युक्तियां निकालीं। कहीं कहीं किसी किसीपर मुकदमें भी चलाये गये। पर ऐसा प्रतीत होता था कि सरकारने यह समझ लिया है कि इस समय आन्दोलनके विरुद्ध बलका प्रयोग करना आत्मघातक होगा।

'नरमदल वालोंको मिलाओ'

लार्ड चेम्सफोर्ड आन्दोलनकी हंसी ही उड़ाते रहे पर उनका चित्त स्वस्थ नहीं था। यही भाव भारतके सरकारके ६ नवम्बर १९२० के उस निश्चयमें अन्तर्निहित है जिसमें आश्चर्य-

अथक आत्मप्रशंसाके साथ यह कहा गया कि यह "अत्यन्त मूर्खतापूर्ण कार्यक्रम स्वतः निष्प्राण होकर मर जायगा।" उस समय दमन करना उचित नहीं समझा गया। इसलिये नरमदलवालोंको उत्तेजित करनेका पूरा प्रयास किया गया। यह कहकर कि यदि अंग्रेजोंका हाथ हट गया तो भारत अराजकतामें निमग्न हो जायगा, डरानेकी चेष्टा की गयी। यह कहा गया कि असहयोगी लोग देशको बोलशेविज्मकी ओर गिरा रहे हैं और एंग्लोइण्डियन पत्रोंमें इस आशयके भयोत्पादक लेख निकलते थे कि भारत ऊंची पहाड़ी चोटीसे ढकेला जानेवाला है। हिन्दू मुसलमानोंमें मतभेद उत्पन्न करनेके लिये अफगान आक्रमणका हौआ खड़ा किया गया। कौंसिलके सदस्योंसे सरकारकी इस विपत्तिके समय उसका साथ देनेका साग्रह अनुरोध किया गया।

सर हारकोर्ट बटलरका आतंक।

सर हारकोर्ट बटलरने एक भाषणमें कहा,—"व्यवस्थापक सभाके सदस्यो, मैं आप लोगोंसे प्रार्थना करता हूं कि इस सभामें तथा इसके बाहर अपने अपने स्थानोंमें अपनी सरकारकी सहायता कीजिये।" गवर्नर महोदय जानते थे कि व्यवस्थापक सभा केवल सरकारी बातोंको दुहरा दिया करती है। अतः उसकी सहयताका कोई महत्व नहीं है। इसीलिये उन्होंने सदस्योंसे बाहर निकलकर जनताके बीचमें काम करनेके लिये कहा। परन्तु व्यवस्थापक सभाके सदस्य जानते थे कि

निर्वाचक जिनके हम विश्वासपात्र समझे जाते हैं, हमारा कैसा स्वागत करेंगे, इसलिये उन्होंने चुप पड़ा रहना ही अच्छा समझा। यह बात सर हारकोर्ट बटलर भी समझ गये इसलिये उन्होंने एक विचित्र सर्कुलर द्वारा सब किस्मतोंके कमिश्नरोंको, नरमदलवालोंको उभारनेका अनुरोध किया इस पत्रसे कुछ चुने हुए अवतरण नीचे दिये जाते हैं:—

"अपनी सफलता असफलताके अनुसार असहयोग भी अपने कार्यक्रमको बार बार बदलता रहता है। उसकी प्रणालियोंका पहलेसे अनुमान नहीं किया जा सकता, इसलिये प्रतीकार-स्वरूप जो प्रणालियां निकाली जाती हैं वे उससे पिछड़ी रहती हैं।

"असहयोग आन्दोलनको हरानेके ही उद्देश्यसे देशके नरम विचारवालोंका सङ्गठन और उपयोग किया जाय।"

"यदि सरकारी कर्मचारी अपनेको खुलकर असहयोगी विरोधी प्रकटकर दें तो शायद नरमदलमें वह क्रियाशीलता और एकलक्ष्यता आजाय जिसकी उसमें कमी है।"

इसी प्रकारका अनुरोध अन्य प्रान्तिक शासकोंने भी किया।

भारत सरकारका प्रान्तीय सरकारोंको परामर्श।

१६२१ जनवरीतक यह बात स्पष्ट हो गयी कि नरमदल ब्रिटिश जनताकी आंखोंमें धूल झोंकनेका काम तो दे सकता है पर इस राष्ट्रीय आन्दोलनके दबानेमें असमर्थ है। नागपुर कांग्रेसके परिणामसे सरकार खिन्न हुई क्योंकि उसे यह आशा

थी कि राष्ट्रीय दलमें ही मतभेद हो जायगा। इसलिये उसने प्रान्तीय सरकारोंके नाम एक पत्र भेजा जिसमें एक नयी नीतिका वर्णन था। सर विलियम विन्सेण्टने व्यवस्थापक सभामें २३ मार्चको भाषण करते हुए इस पत्रका जिक्र किया था। इस पत्रमें लिखा था

इस समय भारत सरकार इस प्रकारके उपायोंसे काम लेना पसन्द करती है जैसे

(१) ग्रामीण जनता, तथा बड़े बड़े नगरों अथवा व्यवसाय केन्द्रोंके श्रमजीवियोंमें असहयोगी लोग असन्तोष फैलानेके जो प्रयत्न करें उनपर दृष्टि रखना।

(२) जिन भिन्न प्रान्तोंमें आवश्यता हो उनमें कष्टनिवारक कानून, जैसे किसानोंके सम्बन्धके कानून, शीघ्र ही हाथमें लिये और बनाये जाय।

(३) प्रचारका उत्तर प्रचारसे दिया गया। उदाहरणके लिये, सरकारको कष्टनिवारक कानून बनानेकी जो इच्छा है वह खूब अच्छी तरह घोषित की जाय।

(४) जो लोग राजद्रोहात्मक व्याख्यान देते हैं और लोगोंको हिंसाके लिये उभारते हैं और जिनके विरुद्ध प्रमाण मिल सके उनपर साधारण कानूनके अनुसार अभियोग चलाया जाय।

भारत सरकार इस उपायसे जिसे वह अत्यन्त महत्वपूर्ण समझती है, काम लेनेके लिये प्रान्तीय सरकारोंसे पहिले भी "

आग्रह कर चुकी है, पर उसे खेद है कि अभीतक बहुत थोड़े ऐसे अभियोग चलाये गये हैं। भारत सरकार प्रान्तीय सरकारोंको भलीभांति समझा चुकी है कि वह नेताओंपर असहयोगकी शिक्षा देनेके ही लिये क्यों अभियोग नहीं चलाती। पर वह प्रान्तीय सरकारोंको फिर समझा देना चाहती है कि दूसरोंपर अभियोग चलानेमें यह कारण बाधक नहीं हो सकता।

(५) कानूनका सम्मान करना। भारत सरकारको कई ऐसे उदाहरणोंका पता है जबकि बहुतसे लोगोंने मजमा कायम कर ऐसे काम किये हैं जो स्पष्टतया कानूनके विरुद्ध थे। ऐसी बातोंका अगत्या परिणाम यह होता है कि लोगोंके दिलोंमें कानून और अमनके लिये जो सम्मान है वह कम हो जाता है।"

अन्धाधुंध दमन।

इस परामर्शके बाद प्रान्तीय सरकारोंका एक साथ ही दमनमें प्रवृत्त हो जाना कोई आश्चर्यकी बात न थी। उन्होंने इन हिदायतोंको अपने जिलेके कर्मचारियोंके पास जिन सर्कुलर पत्रों द्वारा भेजा उनमें भारत सरकारके सर्कुलरपर भी नमक-मिर्च लगाया गया। बिहारका प्रसिद्ध रेनी सर्कुलर इसका उदाहरण है। केवल सेडिसस मीटिंग्ज एक्ट (राजद्रोही सभावरोधक कानून) और क्रिमिनल ला एमेण्डमेण्ट

एक्टकी घोषणा करके ही असहयोगियोंकी प्रगति रोकनेका प्रयत्न नहीं किया गया बल्कि दफा १४४ और क्रिमिनल प्रोसीड्चेर कोड (ज़ाब्ता फौजदारी) के मुचलके और जमानतवाले दफाओंका भी बहुत ही अवैध और अत्याचारपूर्ण उपयोग किया गया।

सरकारी नौकरोंका अमन · खोलना।

गवर्नमेण्ट सर्वेण्ट कण्डक्ट रूल्स (जिनमें सरकारी कर्मचारियोंको किसी प्रकारके राजनीतिक आन्दोलनमें योग देना मना है) में कुछ संशोधन करके जिलोंके कर्मचारियोंको राजनीतिक आन्दोलनोंमें शामिल होनेकी अनुमति दी गयी और इस प्रकार उनके लिये अमन सभाओंको स्थापित करनेमें अनुचित दबाव डालनेका मार्ग खोल दिया गया। इन संस्थाओंके सदस्योंके सामने यह प्रलोभन रहता है कि उनके साथ अधिकारी किसी प्रकारकी छेड़ छाड़ नहीं कर सकते। कुछ दिनोंतक तो कुछ नरमदलवाले भी इन सभाओंकी कारवाइयोंमें सम्मिलित होते रहे पर जब उनको इन संस्थाओंके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान हो गया तो प्रमुख लिबरलोंने अपना पद त्याग कर दिया। लोगोंको जबर्दस्ती सरकारका प्रेमी बनानेका प्रयास किया गया पर बुरी तरह असफल रहा। जो मजिस्ट्रेटोंने सरकारकी हिदायतोंका अन्धा होकर पालन किया। इन लोगोंने शासनकी क्षणिक जरूरतोंके सामने अपनी स्वतन्त्र बुद्धिको

तिलाक दे दिया। इसका प्रमाण बिहार कौंसिलकी उस बहससे मिलता है जो बाबू राजेन्द्र प्रसादपर दफा १४४ का हुक्म लगनेपर हुई थी। यह हुक्म इसलिये नहीं दिया गया था कि मजिस्ट्रेटको सार्वजनिक शान्तिके भङ्ग होनेकी आशङ्का थी वरन् इसलिये कि वह सरकारी सर्कुलरकी पाबन्दी कर रहा था। एक अभियोगमें, जो दफा १०७के अनुसार चलाया गया था एक सब इन्स्पेक्टरने इकबाल किया कि मैंने एक असहयोगीके विरुद्ध इसलिये रिपोर्ट की कि उसके किसी अफसरने शिकायत की थी। यह गवाह खिलाफ ठहराया गया और हटा दिया गया।

अंग्रेजों और ऐंग्लो-इण्डियनोंकी 'दृढ़ता' के लिये चिल्लाहट।

इस बातके माननेके कई कारण हैं कि उग्र दमन न केवल भारत सरकारकी अशङ्काओंके कारण आरम्भ किया गया बल्कि इग्लैण्डसे भी उसके लिये चिल्लाहट मची थी। 'दृढ़ता दिखाने' के लिये जो पुकार उठी थी वह दिन दिन तीव्र होती गयी और इण्डोब्रिटिश असोसियेशनकी एमर्जेन्सी कमेटीने आन्दोलनके विरुद्ध सबल और अन्यायपूर्ण प्रचार आरम्भ किया। भारतनिवासी अंग्रेजोंमें जो नरम विचारके हैं वे समझते थे कि इंग्लिस्तानमें जो आन्दोलन किया जा रहा था उसका भारतकी राजनीतिक परिस्थितिपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। पर जब सर फ्रांक स्लाईने एमर्जेन्सी कमेटीके पास

साधधानोंका तार भेजा तो वहांसे यह अपमानजनक जवाब आया कि 'अपना काम देखो'।

अली-भाइयोंका मुक़दमा।

लण्डनमें जो आंधी उठ रही थी वह अली भाइयोंके सिरोंपर आकर टूटी। ये दोनों सज्जन सितम्बरमें गिरफ्तार किये गये और करांचोके दौरा जजके न्यायालयमें इनपर कई अपराध लगाये गये। इनमेंसे दफा १२० और दफा १३१ (षड्यन्त्र-रचना और बलवेमें सहायता देना) जो सबसे कड़े थे वे तो ठहर न सके पर गौण आक्षेपों अर्थात् दफा ५०५ दफा १०६ और दफा ११७ (बलवा करानेके उद्देश्यसे झूठी बातें फैलाना) पर इनको कड़े दण्ड दिये गये। मुकदमेका यह परिणाम होनेपर भी सर विलयम विन्सेण्टने व्यवस्थापक सभापर एक तीसरे व्यक्तिके लिखे किसी पत्रका जिक्र करके दबाव डालना चाहा, यद्यपि अलीबन्धु उसे खुले तौरपर जाली बताते हैं और मुकदमेके वक्त सरकारके कब्जेमें होते हुए भी वह गवाहीमें पेश नहीं किया गया। ऐसी व्यवस्थापक सभामें जिसमें कई प्रसिद्ध वकील भी हैं ऐसे बयानपर किसी प्रकार-का तर्क न किया जाना कौंसिलके सदस्योंकी गैरजिम्मेदारीका प्रमाण है।

अली-बंधुओंके अपराधको सहस्रोंने दुहराया।

अली बन्धुओंको १ नवम्बरको सजा दी गयी। कांग्रेस-

ने उन्हें दण्ड दिये जानेको विचार-स्वतन्त्रताका अपमान माना और अपनी कमेटियोंमें तथा सहस्रों भाषण मञ्चोंपर प्रस्ताव रूपसे उस अपराधको दुहराया। सहस्रों मनुष्य इस काममें सम्मिलित हुए। सरकार इस बातसे निरुत्तर हो गयी और किसी एक व्यक्तिपर भी अभियोग न चलाया गया। परन्तु सेडिशस मीटिङ्ग्ज ऐक्ट तथा क्रिमिनल ला एमेण्डमेंट ऐक्टका और तीव्र प्रयोग करके कांग्रेस और खिलाफत स्वयंसेवक दलोंको दबानेकी पूरी चेष्टा की गयी।

श्रीमान् प्रिन्स आफ वेल्स।

श्रीमान् प्रिंस आफ वेल्स १७ नवम्बरको भारत आये। उसी दिन समस्त देशव्यापी हड़ताल हुई। सर विलियम विंसेंट इसे 'एक घृणित बात' कहते हैं पर वस्तुतः यह हड़ताल भारतीय जनताके इस दृढ़ सङ्कल्पका प्रमाण थी कि वह राजनीतिक उद्देश्योंके लिये राजवंशका दुरुपयोग न होने देगी। यह आरम्भमें ही स्पष्ट कर दिया गया था कि श्रीमान्का किसी प्रकार अपमान करना अभीष्ट नहीं है। सर्वभारतीय कांग्रेस कमेटीकी इस विषयकी जो विस्तृत विज्ञप्ति है तथा महात्माजीने २ अक्तूबर १९२१ के 'यङ्ग इण्डिया' में 'प्रिंसका सम्मान करो' शीर्षक देकर जो अग्र लेख लिखा था उसमें यह बात भलीभांति स्पष्ट कर दी गयी है। परन्तु नौकरशाहीने अपने पूर्व-निश्चित मार्गको बदलना स्वीकार न किया। जिन लोगोंको इस विषयकी

पूरी जानकारी होनी चाहिये थी वे ब्रिटिश शासन पद्धतिके इस नियमकी दुहाई देते रहे कि बादशाहका किसी दल विशेषके राजनीतिक विचारोंसे सम्बन्ध नहीं होता। भारतका एक एक बच्चा जानता था कि श्रीमान् पहले उन्हीं सुधारोंको आरम्भ करनेके लिये लाये जाने वाले थे जिनको देशने अस्वीकार कर दिया था, परन्तु जब वे अस्वस्थ हो जानेके कारण ऐसा न कर सके तो उनके पूज्य पितृव्य जो अब सार्वजनिक कामोंसे पृथक् हो गये हैं इस कामके लिये लाये गये। इस दशामें ऐसा अनुमान करना स्वाभाविक था कि प्रिंस द्वारा उन्हीं विवादास्पद सुधारोंका समर्थन कराया जायगा। आगे चलकर यह अनुमान सत्य निकला। जिस समय सारा देश असन्तोषसे क्षुब्ध हो रहा था उस समय सारे भारतको युवराजके स्वागतके नामपर एकत्र करके नौकरशाही एक राजनीतिक लाभ उठाना चाहती थी। इन स्पष्ट बातोंके होते हुए भी बार बार यही कहा जाता था कि प्रिंसकी यात्राका राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं था।

नरमदलके नेताओंका युवराजकी यात्राका विरोध।

सारा देश इस यात्राका विरोध कर रहा था। नरमदल भी इसके पक्षमें न था। बम्बईमें लिबरल कान्फरेन्समें भाषण करते हुए श्री शास्त्रीजीने कहा था:—

"इसके सिवा, एक बात और थी जिसने अधिक इस

द्विकशासनकी कठोरता प्रगट कर दी और उसे बहुत स्पष्ट रूपमें दिखला दिया। यह युवराजके आगमनकी घटना थी। मैं नहीं समझता कि कोई भी मनुष्य युवराजके आनेका अत्यधिक उत्साहपूर्वक अभिलाषी था। कमसे कम मेरी तो यह इच्छा न थी। जहांतक मुझसे बन पड़ा मैंने इस यात्राका विरोध किया, किन्तु युवराजका आगमन हो ही गया। आखिर, जब असहयोगियोंने उनका स्वागत न करनेकी घोषणा की तब क्या हुआ? परिणाम यह हुआ कि इस विरोधके होते हुए भी उसे सफल करनेके लिये सरकारको अपने अभिगत सारे साधनोंका प्रयोग करना पड़ा। उसने दमनके उन सब कानूनोंका प्रयोग किया जो उसके विचारोंमें आ सके। इसका यह नतीजा हुआ कि उदार मतवादी जनता तथा नरमदल वालोंने भी सरकारके साथ कानून और अमनकी रक्षामें उस सहयोगसे हाथ खींच लिया जिसकी प्रतिज्ञा वे कर चुके थे। इससे द्विकशासनका अप्रिय स्वरूप और भी स्पष्ट हो गया। मैं इसका वर्णन यह दिखलानेकी इच्छासे करता हूं कि सरकारकी ही करतूतसे द्वैधप्रणालीकी बुराई प्रत्येक मनुष्यपर प्रगट हो गयी थी।

युवराजके लिये शान्त वातावरणकी आवश्यकता।

युवराजकी यात्राके समय शान्तवातावरण प्राप्त करनेके निमित्त बहु संख्यक तथा विविध प्रकारके दमन-विधानोंका

प्रयोग किया गया। इस प्रकारकी रिपोर्टकी सीमाका अतिक्रमण किये बिना उनका पूरा पूरा वर्णन करना असम्भव है। पञ्जाब, संयुक्त प्रान्त, बङ्गाल तथा आसाममें दमन नीति बिलकुल गैर-कानूनी और निर्दयता पूर्ण थी। कानून और अमनके नामपर तरह तरहके मनमाने जुल्म किये गये। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि इन प्रान्तोंके अनेक जिले समय समयपर कांग्रेस तथा खिलाफतके अधिक उत्साही कार्यकर्त्ताओंसे प्रायः शून्य कर दिये गये थे। ये लोग क्रिमिनल ला एमेण्डमेण्ट एक्ट जाब्ता फौजदारीकी १०७ और १०८ धाराओं तथा भारतीय दण्डविधानकी १२४ (अ) और १५३ (अ) धाराओंके अनुसार दलके दल एवं मनमाने तौरपर गिरफ्तार कर लिये जाते थे। संयुक्त प्रान्तोंको तो इस बातका श्रेय प्राप्त है कि पुलिसने इसकी प्रान्तीय कमेटीके ५५ सदस्योंको एक साथ ही उस समय गिरफ्तार कर लिया जबकि वे लोग इलाहाबादमें की गयी एक जरूरी बैठकमें स्वयंसेवकोंकी भर्तीके सम्बन्धमें प्रस्तावपर विचार और बहस कर रहे थे।

सबके सब हवालात पहुंचाये गये।

प्रस्तावका मसविदा जब्त कर लिया गया। प्रत्येक सदस्यसे पूंछा गया कि क्या आप इसे पसन्द करते हैं। हां, कहनेपर वह नीचे सड़कपर खड़ी हुई पुलिसकी गाड़ीमें पहुचा दिया गया। जो लोग शीघ्र न चल पड़े उन्हें चलानेके लिये पीछेसे थोड़ासा

जोर लगाया गया और क्रमसे एक सदस्यपर तो शीघ्र चलनेके लिये हलका आक्रमण भी किया गया था। इन ५५ सदस्योंपर स्वयं-सेवकोंकी भर्तीके प्रस्तावका मसौदा तैयार करने तथा उसपर विवाद करनेके कारण क्रिमिनल ला एमेंडमेंट ऐक्टके अनुसार एक योग्य न्यायाधीशकी अदालतमें मुकदमा चलाया गया। प्रत्येक सदस्यको अठारह अठारह मासकी सजा दी गयी। विशेष प्रकारकी सजा पानेकी योग्यताके सम्बन्धमें जिस सद-स्यका मजिस्ट्रेटके दिमागपर जैसा प्रभाव पड़ा, उसीके अनुसार उसे कड़ी या सादी सजा दी गयी। यह तो बनी बात थी कि न तो किसीने मुकदमोंकी पैरवी की और न उनकी अपील की गयी, किन्तु प्रान्तीय सरकारने बादमें कुछ विशेष प्रकारके राज-नीतिक मामलोंकी जांच करनेके निमित्त जिस विशेष जज को नियुक्त किया। उसने संभवतः यह राय दी थी कि इन २५ सदस्योंने कोई जुर्म नहीं किया था। प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाके सदस्योंने इस रिपोर्टको सभाके अवलोकनार्थ मेजपर रखनेके कई प्रयत्न किये, किन्तु निष्फल हुए। यद्यपि अन्तमें सरकारको यह मानना पड़ा कि अभियुक्तोंपर जो जुर्म लगाये गये थे वे कानूनके अनुसार न थे, तोभी उसपर इस सलाहका इतना असर न पड़ा कि वह प्रान्तके इन ५५ चुने हुए सार्व-जनिक नेताओंका अपने चंगुलसे निकल जाने देती। इस प्रकार ये लोग जेलमें ही बने रहे। कुछके साथ प्रथम श्रेणीके राजनीतिक अपराधियोंकासा और दूसरोंके साथ मामूल

कैदियोंकासा व्यवहार किया जाने लगा। प्रान्तीय सरकारने इन्हें जेलमें डाल रखनेका यह कारण बतलाया कि इन लोगोंने अपील नहीं की। और यदि इन्होंने अपील की होती तो अपील सुननेवाली अदालतको यह अधिकार था कि वह इनपर लगाये गये दोषोंको बदलकर जाब्ता फौजदारीकी उन धाराओंके अनुसार कर देती जो इनपर अधिक लागती होतीं। इनमेंसे एक सदस्य जो कि अपने कुटुम्बका पालन करनेवाला बलवान् नवयुवक था लखनऊ जेलमें ज्वरसे पीड़ित होकर स्वर्गवास कर गया। इस युवककी मृत्युके समयकी परिस्थितिके सम्बन्धमें समाचार पत्रोंमें लिखा पढ़ी हुई थी और खुली जांच करानेका अनुरोध किया गया था, किन्तु खुली जांच न होने दी गयी। बचे हुए लोग अपनी सजाके आधेसे ज्यादा दिन काट चुके हैं। अभी हालमें ही विशेष घोषणा द्वारा वे छोड़ दिये गये हैं।

भारतमें ब्रिटिश न्यायका स्वरूप दिखलानेके निमित्त यहां पर दो चार अन्य प्रसिद्ध मुकदमोंका संक्षिप्त उल्लेख कर देना अच्छा होगा।

देशबन्धु दासका दीर्घकाल व्यापी मुकदमा

कांग्रेसके मनोनीत सभापति देशबन्धु श्रीचित्तरञ्जन दास लोगोंसे स्वयंसेवक बननेका अनुरोध प्रकाशित करनेके कारण, क्रिमिनल ला एमण्डमेण्ट एक्टके अनुसार २३ दिसम्बर

१६२१ को, अहमदाबादके लिये रवाना होनेके ठीक पहले, गिरफ्तार किये गये। उनका मुकद्दमा भिन्न भिन्न कारण बता कर बारम्बार १२ फरवरी १६२२ तक टाला जाता रहा। अभियुक्तने पैरवी करना या वक्तव्य उपस्थित करना अस्वीकार किया, अतः उन कागज़ोंपर उनके हस्ताक्षरोंको प्रमाणित करना आवश्यक हुआ जो समाचार पत्रोंमें छपनेके लिये भेजी गयी मूल हस्तलिपियां बतायी गयीं।

सरकारी विशेषज्ञका मिथ्या कथन

अन्य गवाहीके अतिरिक्त सरकारी विशेषज्ञने उक्त हस्ताक्षरोंकी तुलना उन हस्ताक्षरोंके साथ कर जिन्हें दास महोदयने अपना स्वीकार किया था इस बातकी कसम खायी कि ये हस्ताक्षर भी उन्हींके हैं। देशबन्धु दोषी समझे गये और दो मासतक हवालातमें रखे जाकर उन्हें छः मासके कारावासका दण्ड दिया गया। दोषी ठ[illegible] जानेके बाद उन्होंने देशवासियोंके नाम सन्देश प्रकाशित करते हुए यह स्पष्ट कह दिया कि जो हस्ताक्षर मेरे कहे गये हैं वे वास्तवमें उन व्यक्तियों द्वारा किये गये हैं जिन्हें मैंने ऐसा करनेकी आज्ञा दी थी। इसके कुछ समयके बाद बङ्गालकी कार्यकारिणी सभाके एक भारतीय सदस्य, मद्रासके भूतपूर्व प्रधान न्यायपतिने यह सूचित किया कि सरकार दास महोदयके मुकदमेंपर विचार कर रही है। सरकारने इतने धैर्यके साथ इसका विचार किया कि देशबन्धु

दास पूरी सजा भोगकर जेलसे छूट आये पर सरकारका विचार समाप्त न हो सका।

लाला लाजपत रायका दण्ड, रिहाई, फिर दण्ड

३० बङ्गालके प्रसिद्ध हिन्दू नेताको जेलमें सुरक्षित कर अब दमननीतिको विजय पूरी करनेके निमित्त मुसलमानोंके भी किसी प्रसिद्ध नेताकी आवश्यकता हुई। इसके लिये प्रधान खिलाफत कमेटीके उपसभापति, कांग्रेसके उत्साही सदस्य, प्रतिष्ठित धार्मिक मुसलमान मौलाना अबुल कलाम आजाद उपयुक्त समझे गये। इसके बाद आप भी गिरफ्तार किये गये भारतीय दण्डविधानकी धारा १२४ अ (राजविद्रोह) के अनुसार आप दोषी समझे गये और आपको भी कारावासका दण्ड दिया गया। आपके छूटनेका समय अब निकट हो है।

लाला लाजपतरायजी पर जो कि पहले कांग्रेसके सभापति रह चुके हैं, प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी एक बैठकमें सभापति बननेके कारण राजविद्रोही सभाओंके कानूनके अनुसार मुकद्दमा चलाया गया। सभाकी इस बैठकके सम्बन्धमें लालाजी और मजिस्ट्रेटके बीच पहले ही कुछ लिखा पढ़ी हो चुकी थी और मजिस्ट्रेटको यह अच्छी तरह मालूम था कि सभाकी यह निजी बैठक थी, उसमें सर्वसाधारण नहीं जा सकते थे। फिर भी लालाजी दोषी समझे जाकर जेल भेज दिये गये। सरकारके कानूनी सदस्यने, जिसकी सलाह मुकदमा चलानेके पहले ही

ले लेनी चाहिये थी, कहा कि लालाजी पर राज्यविद्रोही सभाओंका कानून नहीं लगता, अतः वे छोड़ दिये गये, किन्तु जेलके मुख्यद्वारके बाहर होते ही वे दूसरे अभियोगमें पुनः पकड़ लिये गये। यथासमय उनपर दोष प्रमाणित किया गया और उन्हें दो वर्षकी सजा दी गयी जिसे वे जेलमें समय काट रहे हैं।

बनारसके अत्यन्त सम्मानित नागरिक, संयुक्त प्रान्तीय कमेटीके अध्यक्ष बाबू भगवानदासजी, युवराजके आगमनके दिन व्यापारियोंसे हड़ताल करनेका अनुरोध करनेके निमित्त एक पर्चा प्रकाशित करने तथा उसे बांटनेके कारण 'क्रिमिनल ला एमण्डमेण्ट एक्' के अनुसार गिरफ्तार किये गये और उन्हें कारावासकी सजा दी गयी। दोष प्रमाणित करनेकी प्रणाली इतनी बेबुनियाद थी कि समाचारपत्रोंकी लिखापढ़ीसे, जिसमें मद्रास हाईकोर्टके भूतपूर्व प्रधान न्यायपति डाक्टर सुब्रह्मण्यम् ऐय्यर भी सम्मिलित थे, विवश होकर सरकारको उनकी बकाया सजा रद्द करनी पड़ी।

श्री जवाहरलाल नेहरूको फिर १८ मास

किसी सार्वजनिक सभामें विदेशी कपड़ोंकी दूकानोंपर पहरा देनेकी इच्छा प्रगट करने एवं उपस्थित लोगोंसे सहायताका अनुरोध करनेके लिये श्रीजवाहरलाल नेहरूपर भारतीय दण्ड विधानकी धारा ३८५ और ५०५ के अनुसार दोषारोपण किया गया। उनपर दूसरा अभियोग जबर-

सौ रुपया वसूल करनेका लगाया गया। इसका आधार यह था कि वे कमेटीकी उस बैठकके सभापति बने थे जिसमें कई वस्त्र व्यवसायियोंके पास, उन्हींकी संस्था द्वारा उन्हींके बनाये हुए नियमोंके अनुसार किये गये। जुरमाना अदा करानेके निमित्त चिट्ठियां भेजनेका निश्चय किया गया था। उन्हें १८ मासकी सख्त कैदकी सजा दी गयी जिसे वे भुगत रहे हैं।

उपर्युक्त मामलोंका पूरा विवरण जाननेके लिये परिशिष्ट संख्या १३ में दिये गये भिन्न भिन्न अभियुक्तोंके वक्तव्य देखिये।

झूठी गवाहीके लिये प्रोत्साहन

ये वे प्रसिद्ध प्रसिद्ध मामले हैं जिनकी ओर जनताका ध्यान इस कारण आकृष्ट हुआ है कि उनसे विख्यात पुरुषोंका सम्बन्ध था। किन्तु ऐसे अगणित मामले हुए हैं जिनमें असहयोगियोंपर झूठ मूठ अभियोग लगाये गये हैं और थोड़ेसे थोड़े सबूत पर ही वे अपराधी प्रमाणित समझे गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अपने मुकदमोंमें असहयोगियोंके उदासीन भाव धारण करनेके कारण ऐसा करना और भी सरल हो गया। यह जानकर कि वे लोग न तो अपनी पैरवी करते हैं और न गवाहोंके साथ जिरह करते हैं झूठी गवाही देनेवालोंको प्रोत्साहन दिया जाने लगा है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण इस जांच समितिके सदस्य पण्डित मोतीलाल नेहरूके मुकदमेमें पाया जाता है। हिन्दीमें किये गये उनके हस्ताक्षरको जो कि उन्होंने

अपने जन्ममें कदाचित पहली ही बार किया था प्रमाणित करने लिये मुक़दमा चलानेवालोंने चिथड़े पहने हुए एक व्यक्तिको पेश किया जो देखनेमें सड़कोंपर भीख मांगनेवाला ही प्रतीत होता था और जिसे पण्डितजीने पहले कभी नहीं देखा था। उसने कागजको उलटा पकड़कर आधे सेकेण्डमें कसम खाकर कह दिया कि यह हस्ताक्षर अभियुक्तका ही है। स्वयंसेवकोंके फार्मपर हस्ताक्षर करनेका केवल इतना ही सबूत पेश किया गया। इसी पर कांग्रेसके भूतपूर्व सभापति तथा वर्तमान प्रधानमन्त्री क्रिमिनल ला एमेण्डमेंट ऐक्टके अनुसार दोषी साबित किये गये और उन्हें छः मासका दण्ड दिया गया जिसे वे पूर्णरूपसे भुगतकर आये हैं।

भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें दमन लीला

असहयोगियोंके मुकदमोंमें जो गैर-कानूनी कार्रवाइयाँ हुईं वे अदालतके बाहर प्रचलित घोर अन्धाधुन्धके सामने कुछ भी नहीं हैं। मोटे तौरसे यह कहा जा सकता है कि असहयोगियोंके शरीर या उनकी सम्पत्ति अथवा प्रतिष्ठाको क्षति पहुंचानेके कार्य्यको अपराध समझना तो दूर रहा उलटे ऐसा करना सरकारके प्रति ऊंचे दर्जेकी राजभक्तिका कार्य समझा जाने लगा। ऊपर देशमें दमननीतिकी सामान्य प्रवृत्ति दिखलायी गयी है जिसमें विशेष महत्वके उन खास खास मामलोंका उल्लेख किया गया है जिनके कारण उक्त प्रान्तके

अधिकारियोंने खूब नाम कमाया है। बम्बई, गुजरात, अजमेर, मारवाड़ा, तथा मध्यभारत, ये प्रान्त दूसरी ओर थे और अभी तक इस प्रकारकी विशेष बाधासे बच सकनेके कारण बधाईके पात्र हैं। मध्य प्रान्त (हिन्दी भाषी तथा मराठी-भाषी) बरार, महाराष्ट्र करनाटक, और तामिल नाडू, इन प्रान्तोंमें भी, विशेष कर मदिराकी दूकानोंपर धरना बैठानेके सम्बन्धमे दमन-नीतिका प्रसार हुआ। तामिल नाडू तथा आन्ध्र प्रान्तमें जमानतवाली धाराओंका स्वच्छन्द प्रयोग किया गया। बिहारके मुजफ्फरपुर तथा संथाल परगना जिलोंमें भी खूब अत्याचार हुआ, किन्तु साधारणतया इस प्रान्तमें शान्ति रही। केरल प्रान्तकी स्थिति, जिसके अन्तर्गत मोपलोंकी निवासभूमि है, एक ओर तो धर्मोन्मत्त जनताकी अमानुषिक क्रूरताओंके कारण और दूसरी ओर कानून और अननकी क्रोधोन्मत्त शक्तियोंके कारण सभी प्रान्तोंसे निराली है। इसके सिवा मालावार ट्रेनकी विख्यात दुर्घटना तो, मनुष्योंके प्राणोंकी जघन्य उपेक्षाके कारण, देशके किसी भी भागमे जनता द्वारा कीगयी बुरीसे बुरी ज्यादतियोंको भी सहज ही मात करती हैं। उत्कल और आन्ध्र प्रान्तमें भी कठोर दमननीति काफी मात्रामें प्रचलित थी—इनका नम्बर उत्तरी प्रान्तोंके बाद ही समझना चाहिये।

दमननीतिकी भयंकर विभिन्नताएं

समूचे देशके विचारसे असहयोगके विरुद्ध भिन्न भिन्न प्रकार 'की कारंरवाइयोंका संक्षिप्त उल्लेख थोड़ेसे छोटे छोटे वाक्यों

द्वारा किया जा सकता है। समस्त भारतमें प्रायः सभी अधि-कारियोंको गांधी टोपी और खद्दरके कपड़े पहननेवाले अप-राधी नजर आते थे। ये लोग खासकर तरह तरहके तिरस्कारों और अपमानोंके तथा झूठ मूठ ही मुकदमा चलाये जानेके योग्य समझे जाते थे। स्वयंसेवकोंपर आक्रमण करना, उनके कपड़े उतार डालना और जाड़के महीनोंमें गांवोंके नालोंमें उन्हें डुबकी खिलाना, इत्यादि कुछ इस प्रकारकी दिल्लगीके उदाहरण हैं जो हानिप्रद न थे और जिसे पुलिसवाले अपने ही विनोदके लिये किया करते थे। हथियारोंका लाइसन्स लौटा लेना, जागोरे, वेतनों तथा इनामोंको जब्त कर लेना खेत सींचनेके लिये नहरोंसे पानी न देना, तथा तकावी देनेसे इनकार करना इत्यादि नरम सजायें उन लोगोंको दी जाती थीं जिनपर कोई विशेष अभियोग नहीं लगाया गया। कांग्रेस और खिलाफतके तथा राष्ट्रीय पाठशालाओंके भी दफ्तरों और कागजोंको विनष्ट कर डालना, मकानों तथा फसलोंको जला डालना तथा माल असबाब लूट लेना, इत्यादि उपायोंका प्रयोग अधिक हठीले विरोधियोंके लिये किया जाता था। स्त्रियोंके शरीरपरसे जबरदस्ती गहने उतार लेने, उनपर अभद्रजनोचित आक्रमण एवं असदव्यवहार करने तथा धार्मिक पुस्तकों और अन्य पवित्र वस्तुओंका जलाने तथा पांवोंके नीचे कुचलनेके भी कई उदाहरण पाये गये हैं। उत्कल प्रान्तके एक अति राजभक्त जमींदारकी, अपनी रियासतमें शिकार खेलने,

स्त्रियोंपर आक्रमण करने तथा ऊंची जातिके लोगोंपर शराब छिड़ककर और उन्हें अपने कन्धोंपर मैला उठानेके निमित्त बाध्यकर इस नयी विधिसे उनका अपमान और तिरस्कार करने-के मामलोंके कारण उस प्रान्तमें विशेष प्रसिद्धि हो गया है।

अहिंसाका अपूर्व भाव

जनताने प्रशंसनीय धैर्य एवं आत्मसंयमके साथ इन सब बातोंका सहन किया। सारी जनतामें अहिंसाका भाव आशासे भी अधिक फैल गया है। यह निःशङ्क रूपसे कहा जा सकता है कि संसारमें ऐसा कोई देश नहीं है जहांकी जनता, समष्टिरूपमें ऊपर लिखी हुई ज्यादतियोंको भारतकी साधारण जनताकी तरह उस आत्मसंयमके साथ कह सकती जो प्रायः दिव्य कहा जा सकता है। वस्तुओंके उचित अनुपातकी ओर दृष्टिपात न कर भारतके समान विशाल देशमें इधर उधर एकाध बार हो जानेवाले उपद्रवोंकी ओर ध्यान दिलाना और बुद्धिमत्तापूर्ण प्रतीत होनेवाले तर्कों द्वारा असहयोगके साथ उनका सम्बन्ध दिखलानेकी चेष्टा करना बहुत सरल है। इस प्रकारकी इनी गिनी दुःखद घटनाओंके निमित्त असहयोगीको ही जिम्मेदार समझना चाहिये या कठिन उत्तेजनाके समय भी सामान्य शान्ति बनी रहनेका एक मात्र श्रेय उसे देना चाहिये, यह बतलाना भविष्यके निष्पक्ष इतिहास लेखकके लिये छोड़ दिया जाता है। यूरोपियनोंके दिमागमें यह बात आनी सम्भवतः कठिन है कि भार-

तीयोंके लिये सहिष्णुताका सिद्धान्त जीवनका ही सिद्धान्त है। यदि ऐसा नहीं है तो इसका क्या कारण है कि उन बहुसंख्यक स्थानोंमें जहां कठोरसे कठोर और अत्यन्त असहनीय दमन किया गया था, सरकारकी ओरसे होनेवाली ज्यादतियोंको छोड़कर अन्य कोई बड़ा उत्पात नहीं हुआ? क्या भारतीय निन्दनीय रूपसे कायर हैं? या वे इतने कमजोर हैं कि उनमें घूंसेका जवाब घूंसे द्वारा देनेका साहस या शक्ति नहीं है? इसका स्पष्ट और निर्विवाद उत्तर वर्तमान परिस्थितिमें इस प्रमुख लक्षणसे ही मिल जाता है कि उत्तर भारतकी युद्धप्रिय जातियोंने ही पंजाबमें तथा संयुक्त प्रान्तमें पाशविक व्यवहारसे पीड़ित होकर भी अत्यन्त आश्चर्यजनक आत्म-संयम प्रदर्शित किया है।

वीर अकाली—संसारको आदर्श शिक्षा

इस समय पञ्जाबके वीर अकाली अजेय साहसके साथ प्रशान्त आत्म-संयम दिखलाते हुए संसारको आदर्श शिक्षा दे रहे हैं। इस घटनासे वीरतापूर्ण कार्यों एवं उज्ज्वल सफलताओंसे परिपूर्ण उनके जातीय इतिहासमें एक और उत्साहवर्द्धक परिच्छेदकी सृष्टि होगी। संसारकी प्रशंसापूर्ण आंखोंके सामने इस बड़े संग्रामका विवरण देना अनावश्यक है, क्योंकि कांग्रेसकी कार्य-समिति द्वारा नियुक्त गुरुका बाग-जांच समितिने अपना निर्णय प्रकाशित किया है। यहांपर तो

उन दो वक्तव्योंकी ओर संकेत करना ही काफी होगा जिन्हें श्रीयुत सी० एफ० एण्ड्रूजने समाचार पत्रोंमें प्रकाशित कराया है। उन्होंने कानून और अमनके पवित्र नामसे इन विरोध न करनेवाले अकालियोंपर किये गये पाशविक व्यवहारोंको अपनी आंखोंसे देखा है। उक्त दोनों दलोंमें उनकी योग्यताके अनुसार वीरता और भीरुताका विभाग करना पाठकोंके ही हाथमें छोड़ दिया गया है।

युवराजकी सवारीके लिये सड़कोंपर राज्यका प्रबन्ध

राजकुमारके भारत-दर्शनका सविस्तर वृत्तान्त देनेका प्रयत्न नहीं किया गया है किन्तु जिन बातोंका इस भूमिकासे सम्बन्ध है वे संक्षेपमें दे दी जाती हैं। जहां जहाँ राजकुमारका गमन हुआ वहां वहां हड़ताल हुई। नौकरशाहीने देशके वास्तविक भावको छिपाकर बनावटी भाव दिखलानेके लिये कोई उपाय उठा न रखा। इस उद्देश्यसे उसने राजकुमारके मार्गपर ताल्लुकेदारों तथा जमींदारों द्वारा धन देकर बुलाये गये मनुष्यों, कोर्ट आफ वार्ड्सके काश्तकारों और कुछ ऐसे ग्रामीणोंको पंक्तिमें खड़ा कर दिया जो महात्मा गांधीके दर्शन करानेके बहाने लाये गये थे। शाहजादेको देखने आनेके लिये नगरोंमें मोटर गाड़ियां मुफ्त दी गयी थीं। नगरोंमें निश्चित स्थानोंपर एकत्र होनेके लिये प्रोफेसरों और शिक्षकों द्वारा कालिज और स्कूलके विद्यार्थियोंपर दबाव डाला गया था और भारतीयों द्वारा राजकुमारके

"हार्दिक स्वागत" की अतिशय शक्तिपूर्ण झूठी खबरें प्रकाशित करनेके लिये अपने पक्षकी खबर देनेवाली संस्थाओंसे काम लिया गया था। पर सब जानते है कि "यहाँ भारतमें (जेसा कि बड़े लाटने एक दूसरे सम्बन्धमें उस दिन कहा था) वास्तवमें क्या बात हुई।"

हड़तालोंकी पूरी विजय

भारतीयोंको प्रत्येक बस्ती और बाजारमें हड़तालकी पूरी विजय हुई। जो ग्रामीण महात्माजीके दर्शनार्थ आये थे, उन्होंने राजकुमारके पाससे होकर जाते समय 'महात्मा गांधीकी जय' का घोष कर अपना निराशाका दुःखभार हलका किया। सड़कोंपर फिरनेवाले कुछ बालकोंने मुफ्त मोटर मिलनेके लालचसे निश्चित स्थानपर आना कबूल किया, पर राजकुमारके उस स्थानसे गुजरनेके बहुत पहले ही वे वहाँसे नौ-दो-ग्यारह हो गये। अधिकांश स्थलोंपर कालेज और स्कूलके विद्यार्थियोंकी अनुपस्थिति साफ प्रगट होती थी। एक बड़े नगरमें तो उन्होंने राजकुमारके जुलूसके रास्तेपर ही उनके आगमनके दिन विदेशी कपड़ोंकी होली जलायी।

हिन्दू विश्वविद्यालयमें उदासीन स्वागत

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके अधिकारियोंने, आशा-स्वरूप अपने विद्यार्थियोंको ठट्ठासे दिखलानेके लिये एक बड़ा मण्डप तैयार किया था। पर अन्त समयमें सुसज्जित

स्थानोंको भरनेके लिये उन्हें बड़ी कठिनाई हुई और उन्हें इसमें बहुत कम सफलता हुई।

प्रयागमें पूरी हड़ताल

पक्षपातयुक्त संवाद एजन्सियां, यहांके सभी श्रेणियोंके भारतीयोंका उत्सव सम्बन्धी कार्योंसे अलग रहनेका दृढ़ संकल्प न छिपा सकीं। प्रयागमें तो उनका यह कार्य पूर्णतः असम्भव हो गया, क्योंकि राजकुमारके आगमनके कुछही काल पूर्व यहांके प्रतिष्ठित नागरिकोंकी गिरफ्तारीसे आत्मसम्मानमें आघात पहुंचनेके कारण सारा शहर क्षुब्ध हो उठा था। कहा जाता है कि यह कार्य दबाव डालकर तथा भय दिखलाकर कराया गया था। इस सम्बन्धमें लन्दनके 'टाइम्स' पत्र द्वारा एक लेखकने जो यह प्रश्न पूछा था कि "अनेकानेक कार्य्यकर्ताओंकी गिरफ्तारीके बाद दबाव डालने और भय दिखलानेके लिये रह ही कौन गया था?" उसका उत्तर नहीं दिया गया। क्या यह सम्भव है कि संसारमें सबसे अधिक दृढ़तासंकल्प और शक्तिशालिनी जाति' के प्रतिनिधियोंके कड़े प्रयत्न पर भी, ओरसे छोरतक सारा देश केवल मुट्ठी भर ऐसे व्यक्तियोंके भयप्रदर्शन ओर दबावसे एक ही लहरके अधीन हो गया जो लार्ड रेडिङ्गके शब्दोंमें 'देशके वास्तविक भावोंके परिचायक नहीं हैं" और जिसमेंसे अधिकाँश जेलोंमें बन्दकर दिये गये थे? यदि है तो, यह संसारकी सबसे अधिक दृढ़संकल्पवाली

जाति जितनी शीघ्र अपने वर्तमान प्रतिनिधियोंको हटाकर अपना सुनाम इन मुट्ठीभर लोगोंकी हिफाजतमें छोड़ दे उतनी ही अधिक दोनोंके भविष्य सुख और समृद्धिकी वृद्धि होगी।

युवराजके मनमें भारत-दर्शनकी सुखद स्मृति

राजकुमार भारतमें आये और चले गये। यह प्रसन्नता-की बात है कि लौटनेपर भी भारत दर्शनकी सुखद-स्मृत्ति उनके मनमें बनी रही। उन घटनाओंकी दुःखद स्मृत्तिका उल्लेख करनेका अप्रिय कार्य अनिवार्य हो गया था जो युवराजकी यात्राके समय उन लोगोंकी कार्रवाईसे उत्पन्न हुई थी जिन्होंने देशकी अशान्त परिस्थितिमें इस यात्राका प्रबन्ध किया था और जिन्होंने असन्तोषसूचक तरंगके दबानेकी असफल चेष्टा की थी। यहांपर कांग्रेस द्वारा कई बार दिलाये गये विश्वासको फिर दोहरा देना चाहते हैं कि राजकुमार या राजपरिवारके प्रति भारतके हृदयमें किसी प्रकारकी बुराई या अनादरका भाव नहीं है।

अहमदाबादमें राष्ट्रीय सभाका सम्मेलन।

पीछे कही गयी बातोंपर विचार करनेसे प्रगट होगा कि अमहदाबादमें राष्ट्रीय सभाका महा अधिवेशन होनेके पहले ही असहयोग आन्दोलनकी पहली सीढ़ी समाप्त की जा चुकी थी। राष्ट्रीय सभाके इस प्रसिद्ध अधिवेशनमें स्वीकृत किये गये प्रधान प्रस्तावमें उस परिस्थितिका संक्षिप्त आलोकन किया गया जो उस समय देशके सामने उपस्थित थी। वाइसरायके दिल्ली तथा

कलकत्तेवाले भाषणोंमें दी गयी चुनौती भी उक्त प्रस्ताव द्वारा स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकृत की गयी। कार्य-कर्त्ताओंने जनताकी सहायतासे, कार्य-समितिकी २३ नवम्बर १९२१ की बम्बईवाली बैठकमें स्वीकृत प्रस्तावके आदेशोंका अनुपालन किस उत्साहके साथ किया, इसका उल्लेख पहले कर किया गया है। अब उन्हें समूचो राष्ट्रीय सभाकी आज्ञाका बल भी प्राप्त हो गया। उन्होंने द्विगुणित साहस और दृढ़ताके साथ यह अपूर्व संग्राम जनवरी तथा फरवरीके भी कुछ भागतक जारी रखनेका ऐसा प्रयत्न किया कि जिसके सामने दमन नीतिकी शक्ति भी परास्त हो गयी। उत्तर भारतमें इधर पञ्जावके पश्चिमी कोणसे लेकर उधर बङ्गाल और आसामके पूर्वी कोण तक राष्ट्रीय सभाके सभी परिस्थितिके कार्य-कर्त्ताओंके दलके दल पकड़े जानेपर एवं सरकार द्वारा दमन नीतिके अन्य उपायोंका प्रयोग होनेपर भी स्वतन्त्र भाषण एवं सहगमनके नैसर्गिक अधिकारोंपर आरूढ़ रहनेका जनताका निश्चय टससे मस न हुआ। कलकत्ता, प्रयाग, लखनऊ तथा अन्य संख्यातीत स्थानोंमे आम सड़कोंपर तथा पुलिसके थानोंके सामनेसे स्वयं-सेवक दलके दल अपने कार्य-सूचक चिह्न लगाये हुए और स्वराज्य-के झण्डे हाथमें लिये हुए एकके बाद एक अविच्छिन्न धाराके रूपमें निकला करते थे। वे अपनेको पकड़वानेके लिये समुद्यत थे, किन्तु बहुधा उनसे कोई चूं-चां तक न करता था। हवा-लातोंमें स्थान न था, जेलखाने भर गये थे। दमन नीति इस

बड़ी उत्तेजनाके साथ दौड़ न लगा सकी, विवशताके कारण उसकी गति मन्द पड़ गयी।

"वाइसराय हैरान और परेशान"

दिसम्बरके आरम्भमें वाइसरायने निःसंकोचरूपसे स्वीकार किया कि "मैं हैरान और परेशान हूं"। अब सारे शासनकी कल खरखराने लगी और उसके शीघ्र पतनके लक्षण नजर आने लगे। २६ जनवरीको बारडोलीने सविनय अवज्ञा जारी करनेका महत्वपूर्ण निर्णय किया। महात्मा गान्धीने इसे "बारडोलीका अन्तिम और अमिट निर्णय" कहा और वाइसरायके पास अपनी अन्तिम सूचना भेज दी। बड़ी बड़ी आशाएं की जाने लगीं। सारा देश शारीरिक शक्तिपर आत्मिक शक्तिकी पूर्ण विजय देखनेके लिये समुत्सुक हो उठा। किन्तु ईश्वरकी इच्छा कुछ और ही थी।

चौरीचौराकी दुःखावह घटना

तारीख ५ फरवरी १९२२ को चौराचोराकी दुर्घटना हुई। इसने सारी परिस्थिति बदल दी। ११ और १२ फरवरीको बारडोलीमें कार्य-समितिकी बैठकमें निर्णय हुआ कि "बारडोली तथा अन्यत्र जिस सविनय अवज्ञाका सूत्रपात किया जानेवाला था, उसका विचार तबतक स्थगित कर दिया जाय जब तक परिस्थिति इतनी अहिंसापूर्ण न हो जाय कि गोरखपुरके समान सार्वजनिक निष्ठुरताओं अथवा बम्बई और मद्रासके समान

हुल्लड़शाहीकी पुनरावृत्ति होनेकी कोई संभावना न रह जाय। "गिरफ्तार किये जाने एवं कैद होनेकी इच्छासे ही" किये जाने वाले सब कार्य तथा सारे स्वयंसेवकोंके जुलूसोंका निकलना और ऐसी सार्वजनिक सभाओंका होना, जो केवल इनके निषेधार्थ निकाली गयी सरकारी सूचनाओंकी अवहेलनाके उद्देश्यसे की जाती हों, अन्य आदेश दिये जाने तक बन्द कर दिया गया, और एक नया रचनात्मक कार्य-क्रम उपस्थित किया गया।

बारडोली तथा दिल्लीका प्रस्ताव

जैसा कि दिल्लीमें किये गये सर्वभारतीय समितिके २४ और २५ फरवरीवाले अधिवेशनमें महात्मा गांधीने समझाया था, कि यह बिलकुल सत्य है कि इस प्रस्तावका अभिप्राय नागपुरके असहयोग प्रस्तावसे किसी प्रकार हटनेका न था। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि अहमदाबादमें जो सिद्धान्त और कार्य-प्रणाली निश्चित की गयी थी उसके सर्वथा बदल दिये जानेसे समुत्सुक जनताको बड़ी निराशा हुई। यद्यपि जनताकी उत्कण्ठाका ख्याल कर सर्वभारतीय कांग्रेस कमेटीने प्रान्तीय कमेटियोंको इस शर्तपर व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा करनेकी स्वीकृति देनेका अधिकार दिया कि राष्ट्रीय सभा, सर्वभारतीय .कांग्रेस कमेटी तथा कार्य-समिति द्वारा जिन जिन शर्तोंका पूरा किया जाना आवश्यक बताया गया था उनका भलीभांति पालन किया गया, तोभी विधायक कार्य-क्रमको

पूरा करनेके निमित्त जनतामें काफी उत्साह उत्पन्न न किया जा सका।

महात्मा गान्धीने यह हालत देखकर तुरन्त ही अपनी अथक शक्ति परिस्थितिका वास्तविक दिग्दर्शन करानेकी ओर लगा दी, किन्तु जिसे हम महात्माजीकी शक्ति कहते हैं वही सरकारकी दृष्टिमें उनकी कमजोरी थी। जनताको उत्तेजना बढ़ता हुआ प्रवाह जिस सीमातक पहुंच चुका था, उसे महात्माजीके सदृश केवल चेतावनीकी उंगली उठाकर वहां ही रोक देना अन्य किसी मनुष्यके लिये कदाचित संभव न था।

महात्माजीकी गिरफ्तारी और सजा

किन्तु जनताके हृदयपर महात्माजीके इस अपूर्व अधिकारका आशय उनके घटते हुए प्रभावका द्योतक समझा गया और इसी अवसरपर भारतमाताका सबसे अधिक विख्यात पुत्र गिरफ्तार कर लिया गया ब्रिटिश राजपुरुषोंकी बुद्धि मारी गयी, और शासन-कलाका ऐसा अधःपात हुआ कि उसका अर्थ अपने पक्षकी दलील पेश करना एवं इङ्गलैण्डके उन्नति-विरोधी लोगों तथा भारतके ब्रिटिश कर्मचारियों द्वारा उठायी गयी आवाजका आंख मीचकर अनुसरण करना ही रह गया। महात्माजीपर मुकदमा चलाया गया, वे दोषी समझे गये और बन्दीगृहमें डाल दिये गये। थोड़े ही समयमें समाप्त कर दिये गये उनके अभियोगके सम्बन्धकी घटनाओंकी स्मृति

सर्वसाधारणके मस्तिष्कमें अभी ज्योंकी त्यों बनी है। अभियुक्तके कठघरेमें खड़े होकर उन्होंने जो उच्च भाव प्रगट किये थे वे लोगोंकी आत्माके भीतर भलीभांति प्रविष्ट हो गये हैं। महात्माजी मुसकुराते हुए जेलखाने गये और जनताने उस अनुकरणीय आत्म-संयम तथा पूर्ण अहिंसाका पालन कर जिस पर महात्माजीका इतना अधिक अनुराग था, इनके प्रति सम्मान-सूचक अपना भक्तिभाव प्रगट किया। उन्होंने अभियोग चलते समय जो सुप्रसिद्ध वक्तव्य उपस्थित किया था उससे अधिक कुछ कहना अनावश्यक है।

महात्माजीकी अनुपस्थिति

महात्माजीके अतिरिक्त और किसी मनुष्यमें यह सामर्थ्य न थी कि वह उस शिथिलताको दूर कर सकता जो बारडोली तथा दिल्लीके प्रस्तावोंके कारण समस्त कार्य-कर्त्ताओंपर छा गयी थी, और न कोई कांग्रेसकी गति बदलकर ही उसे उक्त प्रस्तावों द्वारा निर्धारित मार्गपर ला सकता था। यदि उन्हें देशमें विद्युत् गतिसे एक बार भ्रमण करनेका अवसर भर दे दिया गया होता तो गत छः मासोंका इतिहास और ही रूपमें लिखा जाता। किन्तु यहांपर जो कुछ है उसीका विचार करना है, क्या हुआ होता इसका नहीं। यदि महात्मा गान्धी पकड़े न जाते और जेल न भेजे जाते तो क्या हुआ होता, इसकी जांच करनेसे कोई लाभ नहीं है। उसी प्रकार

बारडोली तथा दिल्लीमे स्वीकृत किये गये उक्त प्रस्तावोंके औचित्य अथवा अनौचित्यके सम्बन्धमें जो अनुकूल-प्रतिकूल मत प्रगट किये गये हैं उनपर विवाद करना भी व्यर्थ है। जिस मुख्य बातकी उपेक्षा नहीं की जा सकती वह यह है कि बारडोली और दिल्लीके निश्चयोंके बाद एवं इसके अनन्तर महात्माजीके कैद होनेके बाद सारे देशमें व्यापक शिथिलता छा गयी। उस शिथिलताके कारण नरमदलवालों तथा शासक मण्डलमें जो आशायें उत्पन्न हो गयी हैं वे कहां तक उचित है, यह अलग बात है।

कुछ कार्य कर्त्ताओंमें काफी विश्वासकी कमी

इस कृत्रिम शिथिलताका एकमात्र कारण उन अधिकांश कार्य-कर्त्ताओंकी ओरसे रचनात्मक कार्यक्रममें पर्याप्त विश्वासका अभाव था जिन्हे उसे पूरा कराना था। उत्साहका सहसा अवरोध कर दिये जानेसे उत्पन्न निराशाके कारण उक्त कार्य-क्रमकी अप्रगट महती शक्तिकी ओर लोगोंका ध्यान ही न गया। यह मान लिया गया है कि उसके लिये अभी कोई जल्दी नहीं है, क्योंकि उसकी पूर्तिके निमित्त कई वर्षोंतक स्थिर रूपसे कार्य करनेकी आवश्यकता है। कार्य कर्त्ताओंकी इस अन्यमनस्कताकी प्रतिच्छाया किसी अंशतक सर्वसाधारणपर भी दृष्टिगोचर हुई, किन्तु राष्ट्रीय सभा तथा महात्मा गान्धीके उपदेशोंमें उनका विश्वास वैसा ही बना रहा।

अपूर्व राष्ट्रीय जागृति

अपने अपने स्थानोंकी बातोंसे परिचित, देशके सभी भागों से आये हुए लोगोंकी साक्षीसे जो उन्होंने असहयोग जांच कमेटीके सामने दी है देशकी वर्त्तमान महत्त्वपूर्ण परिस्थितिके सम्बन्धमें ये बातें प्रमाणित होती हैं—(१) राजनीतिक स्वत्वों और विशेष अधिकारोंके विषयमें जन समूहकी सामान्य जागृति (२) वर्त्तमान शासन-प्रणालीमें श्रद्धाका पूर्ण अभाव (३) यह विश्वास कि भारत अपने ही प्रयत्नोंसे स्वतन्त्रताकी आशा कर सकता है (४) यह धारणा कि राष्ट्रीय सभा ही एक ऐसी संस्था है जो स्वतन्त्रता पानेके निमित्त राष्ट्रीय प्रयत्नमें हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकती है। (५) लोगोंको भयभीत करनेमें दमन नीतिकी सम्पूर्ण असफलता।

वातावरणकी विभिन्नतायें

यह सत्य है कि भिन्न भिन्न नगरों तथा भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें (राजनीतिक) वातावरणकी विभिन्नताएं उस मात्रामें दृष्टिगोचर होती थीं जिसमें कि सरकार द्वारा छोड़े गये दमन-नीतिके ठण्डे प्रवाहका प्रयोग प्रायः अविच्छिन्न रूपसे उसके स्थानीय कर्मचारी उससे भी अधिक ठण्डी अपनी निजी करामातो समेत या उनके बिना ही किया करते थे।

असहयोग अभी जीवित है

किन्तु इने गिने नरमदलों तथा देश और विदेशके स्थायी स्वार्थवाले मनुष्योंको छाडकर समूचे देशका जो क्षेत्र था वही अब भी वर्तमान है। जहांका वातावरण अधिक ठण्डा (शिथिल) था वहां केवल थाड़ेसे प्रोत्साहनकी गर्मी पहुंचाते ही वह समस्त देशके सामान्य वातावरणकी ही स्थितिको प्राप्त कर लेता। संक्षेपमें, एक ओर असहयोगको उन्नतिका और दूसरी ओर उसे दबानेके लिये किये गये प्रतिरोधात्मक उपायोंका यही विशुद्ध परिणाम है।

सरकारी विवरण

गत मार्च महीनेमें, महात्मा गान्धीकी गिरफ्तारीके ठीक पहले, वह प्रसिद्ध विवरण प्रकाशित किया गया जिसमे भारत सरकार द्वारा "असहयोगके कारण उत्पन्न परिस्थितिका साधारण सिंहावलोकन" दिया गया था। इस विवरणमें आन्दोलनके उद्देश्यों, अभीष्टों तथा साधनोंका बिलकुल उलटा अर्थ बतलाकर सरकारने बड़े परिश्रमके साथ अपना नीतिका समर्थन किया था। इसके बाद उसने, नाक-भौंह सिकोड़ते हुए निम्न लिखित शब्दोंमें यह बात स्वीकार की थी कि असहयोगमे सच्चा राष्ट्रीय भाव और धार्मिक प्रेरणा शक्ति विद्यमान है एवं वह चारों ओर दूर दूरतक फैल गयी है—

"इतना होने पर भी, यद्यपि गम्भीर और समझदार भार-

नीय असहयोगकी मांगोंको कार्यमें परिणत किये जाने योग्य नहीं समझते तोभी, इस बातकी उपेक्षा करना संभव न हो सका कि असहयोग आन्दोलन राष्ट्रीय भावों द्वारा परिचालित और समर्थित है एवं मुसलमानोंकी वे धार्मिक भावनायें भी उसका साथ दे रही हैं जो उन लोगोंपर भी अपना प्रभाव डालती हैं जिन्होंने उसका कार्य-क्रम स्वीकृत नहीं किया है।"

शास्त्रीजीको सरकारकी अविश्वसनीयता और अप्रामाणिकताका आभास

इधर कुछ दिनोंसे जनताके वास्तविक भाव उन लोगोंको छोड़कर जो देखना ही नहीं चाहते, अन्य सब लोगोंको स्पष्ट देख पड़ रहे हैं। हालमें भारतवर्षके आर-पार यात्रा करते समय स्वयं शास्त्रीजी भी इसका आभास प्राप्त किये बिना न रह सके। गत अप्रेल मासमें बम्बईकी सभामें सम्मिलित अपने 'उदार दलवाले' भाइयोंके सामने उन्होंने कहा था कि सरकारमें इतना गहरा अविश्वास, उसकी सचाईके प्रति श्रद्धाका सम्पूर्ण अभाव, उसकी आज्ञाओं एवं घोषणाओंको निःसार समझकर उनकी उपेक्षा करनेकी इतनी प्रबल प्रवृत्ति मैंने आज-की तरह पहले कभी नहीं देखी थी।"

परोपकारिताके साधन

एक पखवाड़ेके बाद वाइसरायके निवास-स्थान पर भोज समाप्त होनेके पश्चात् उन्हीं महाशयने उन कर्मचारियोंकी

उज्वल पंक्तिके सामने एक और व्याख्यान दिया जिन्हें आप उस परोपकारिताके उच्च भावके चुने हुए साधन समझते हैं जो ब्रिटिश सरकारको संसारमें अपना कर्त्तव्य पालन करनेमें सदा प्रवृत्त करती है। भाषण करते समय आपने कहा था—

"हमने प्रचलित सरकारके प्रति विश्वास और आशाका इतना अभाव इस देशमें पहले कभी नहीं देखा। मैं यह बात खूब विचार पूर्वक कहता हूं। लोगोंकी ओर श्रद्धाका ऐसा नितान्त अभाव आजसे पहले हमने कभी नहीं देखा।"

वायसराय द्वारा अपने विश्वासी सहायकके कथनकी उपेक्षा

लार्ड रेडिङ्गने अपने इस विश्वासी मित्र और सहायकके द्वारा दी गयी उक्त कड़ी चेतावनीकी ओर ध्यान न दिया। उनका आतिथ्य स्वीकार करते समय शास्त्रीजी द्वारा उपरोक्त भाव प्रगट किये जानेके एक मास पश्चात् वाइसरायने प्रतिनिधि-मण्डलके रूपमें आये हुए व्यापारिक संस्थाओंके सदस्योंको यह विश्वास दिलानेकी चेष्टा की कि '(वर्त्तमान) सरकार जो पहलेकी केन्द्रस्थ सरकारोंकी अपेक्षा अधिक अंशमें भारतकी प्रतिनिधि है, जनतामें विश्वास और श्रद्धा उत्पन्न कर रही है।' श्रीमाण्टेगूके सामन प्रबल भारत-मन्त्री भी भारतमें स्वयं उपस्थित होकर और मौक़े पर ही जांच कर भारतीयोंके वास्तविक भावोंका अन्दाज़ा न लगा सके। इससे प्रगट होता है कि भारतीय प्रश्नोंका वास्तविक अभिप्राय

समझनेका ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंका प्रयत्न व्यर्थ ही है। नये सहायक भारत मन्त्री, जिन्हें परिस्थितिका विशेष ज्ञान नहीं है और जिनके विचार विण्टरटनके अर्ल होनेके कारण पहलेसे रंगे हुए हैं, केवल उसी सलाहके सहारे अपना काम चला सकते हैं जो उन्हें शिमला एवं दिल्लीसे तौल कर दी जाती हैं। कामन्स सभामें भारतके सम्बन्धमे विवाद होते समय उक्त अर्ल महोदयने इन वाक्योंका उच्चारण किया—

"भारत सरकारने तब तक ठहरना उचित समझा जबतक महात्मा गान्धीके राजनीतिक सिद्धान्तोंकी असारता एवं रचनात्मक परिणामोंको उत्पन्न करनेमें उसकी पूर्ण विफलता देखकर उनके अधिक समझदार समर्थकोंका भ्रम दूर हो जाय। इसके बाद उनके अनुयायियोंने अपेक्षाकृत उदासीनताके साथ उनका पतन स्वीकार किया। जिस अपढ़ जनताको उनका नाम जपनेका पाठ पढ़ाया गया था और जो प्रतिज्ञा स्वराज्यकी तिथिकी बाट जोह रही थी एवं जिसे उसने कई बार बीतते हुए भी देखा था, उसी जनताके सामने गान्धीजीकी अस्वाभाविक शक्तिका बुलबुला बातकी बातमें फूट गया।

महात्माजीकी अस्वाभाविक शक्तिका बुलबुला

सारी मनुष्य जातिके पांचवें भाग (भारतीयों) की राजनीतिक जागृति ही—जिसमें, यह सत्य है, कभी कभी दो एक अवाञ्छित घटनाएं भी हो जाती हैं—यहांपर 'रचना-

त्मक परिणामोंको उत्पन्न करनेमें पूर्ण असफलता' कही गयी है। कार्यक्रमके किसी किसी मदके सम्बन्धमें असहयोगियोंमें उचित मतभेदका ही अर्थ अधिक समझदार समर्थकोंका भ्रम दूर होना' लगाया गया है। महात्माजीकी गिरफ्तारी पर जनसमूहमें अशान्त उपद्रवोंके न होनेका श्रेय उनके 'अस्वाभाविक शक्तिके बुलबुले' के शीघ्र फूट जानेको दिया गया है।

पूर्ण शान्तिका कारण महात्माजीका उपदेश है

वास्तवमें गान्धीजीकी गिरफ्तारीके बाद पूरी शान्ति बनी रहनेका कारण यह हृदयग्राही अनुरोध है जिसे उन्होंने हजारहों बार इन शब्दोंमें प्रगट किया था—

"मेरे लिये यह अभिमान या आनन्दकी बात न होकर लज्जाकी बात है कि सरकार मुझे इसलिये गिरफ्तार नहीं करती कि ऐसा करनेसे उसे देश-व्यापी उपद्रव एवं तदुत्पन्न भीषण हत्याकी आशङ्का है। यदि मेरा दण्डित होना समस्त देशमें तूफानका उत्पादक हो तो जिस अहिंसाका मैंने उपदेश दिया है और कांग्रेस एवं खिलाफतने जिसका पालन करनेकी प्रतिज्ञा की है, उसके सम्बन्धमें यह घटना निराशाजनक टिप्पणीका काम देगी। अतः मुझे आशा है कि कांग्रेस तथा खिलाफतके अन्तर्गत काम करनेवाले पूर्ण शक्तिसे प्रयत्न कर यह दिखला देंगे कि सरकार और उसके हिमायतियोंकी शङ्का बिलकुल गलत थी। मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूं कि इस प्रकारका

आत्मसंयम हमें अपने त्रिविधि लक्ष्यकी ओर कई मील आगे पहुंचा देगा। इस लिये (मेरी गिरफ्तारी पर) कोई हड़ताल न मनाई जाय, कोई जोर शोरके प्रदर्शन न किये जायं, न जुलूस निकाले जायं।"

दो ही बातें हो सकती हैं, या तो लोग वास्तवमें गान्धी-जीको महात्मा समझते थे या वे ऐसा न समझते थे। यदि जनता उन्हें महात्मा न समझती थी तो फिर उस बुलबुलेका अस्तित्व ही कहां था जो फूटता? यदि लोग उन्हें महात्मा ही मानते थे तो ऐसा कोई भी भारतीय नहीं जो तोपके सामने खड़े होकर भी ऊपरके अवतरणमें किये गये हृदयग्राही अनुरोधकी उपेक्षा करता। किन्तु शासकवर्ग दोनों तरहकी बातें करता है। इस प्रकार दिन दिन झूठे स्वर्गका निर्माण किया जाता है।

सरकारका एक और समर्थक

श्री रशब्रुक विलियम्स, जो सरकारी नीतिका समर्थन करनेवाले कर्मचारी हैं, अपनी पुस्तक "सन् १९२१—२२ का भारत" में असहयोगके सामान्य परिणामोका वर्णन करते हुए, अपनी इच्छाके विरुद्ध, देशभक्तिके भावको अस्तित्व माननेके लिये विवश हुए हैं। हां, उन्होंने उसे उच्च श्रेणीके लोगों तक ही परिमित कर दिया है और उसे उन रङ्गोंसे रङ्ग डाला है जो उन्हें सेक्रेटरी-विभाग (सेक्रेटरियट) से प्राप्त

हुए थे। रिपोर्टका वह अंश नीचे दिया जाता है। यह शासकोंकी विचार-शैलीके उस भोलेपनका नमूना है जो अपरिहार्य सत्यके सामने उन्हें मिथ्या विश्वासोंका आश्रय ग्रहण करनेके लिये वाध्य करता है—

"किन्तु समूचे आन्दोलन पर दृष्टिपात करनेसे यह नहीं कहा जा सकता कि वह निष्फल हुआ। इसके परिणाम वाञ्छनीय हुए हैं या अवांछनीय, यह समय बीतने पर ही मालूम हो जायगा, किन्तु इन परिणामोंकी वास्तविकताके सम्बन्धमें अब कोई शङ्का नहीं की जा सकती। जिन श्रेणियोंके लोग पहले राजनीतिक विचारोंके प्रति उदासीन थे उन्हींमें सन् १९२१—२२ के गांधीजीके प्रबल आन्दोलनने विदेशियोंके प्रति जाति द्वेषसे उत्पन्न विरोधात्मक देशभक्तिका दृढ़ भाव भर दिया है। नगर और ग्रामोंकी अल्पोन्नत श्रेणियोंके लोग वर्तमान राजनीतिक परिस्थितिकी अनेक बातें समझने लगे हैं। सब बातोंका ख्याल कर अभीतक असहयोगकी सबसे भारी सफलता यही समझी जानी चाहिये। कई बातोंमें उससे लाभ होनेकी संभावना है, यह बहुतोंकी धारणा है; उसके कारण भविष्यमें कुछ वर्षों तक भय तथा कठिनाइयां बहुत बढ़ जायंगी, यह कम लोग अस्वीकार करेंगे।"

उपरोक्त अवतरणसे यदि हम विशेषणों एवं विशेषता द्योतक शब्दोंको निकाल दें तो कामन्स सभामें अर्ल विण्टरटन

द्वारा उपस्थित किये गये सरकारी वक्तव्यकी अपेक्षा वह सत्यके अधिक निकट पहुंचा है।

वायसरायकी आशा तथा निराशा

सहायक भारत मन्त्रीने जिस प्रकार जबर्दस्ती ही आशावाद प्रगट करना चाहा था, उसी प्रकारका एक भाषण हालमें वाइसरोय महोदयने भी बड़ी व्यवस्थापक सभाका उद्घाटन करते समय किया था। किन्तु जहां इस भाषणका प्रारम्भ विश्वासपूर्ण शब्दोंमें किया गया है वहां उसके अन्तिम भागमें किया गया अनुरोध निराशासे भरा हुआ है—

"यहां भारतमें तो हम जानते हैं कि वे (असहयोगी) भारतीय जनताके वास्तविक विचारोंके प्रदर्शक नहीं है किन्तु क्या आप लोगोंको यह जान कर आश्चर्य होता है कि भारतकी अधिकांश जनताके राजभक्त होने हुए भी उन लोगोंने समस्त साम्राज्यके अंग्रेजों पर बुरा प्रभाव उत्पन्न कर दिया!"

यहां पर यह अप्रिय प्रश्न किया जा सकता है कि भारतकी अधिकांश जनताका अर्थ सर्वसाधारण नहीं तो और क्या है? किन्तु अपने भाषणके दूसरे अंशमें वाइसरायने अपने श्रोताओंको यह आदेश देना आवश्यक समझा कि आप लोग सर्व-साधारणकी बुद्धि पर प्रभाव डाल कर उनकी सहानुभूति प्राप्त करनेकी चेष्टा कीजिये। उन्होंने यह भी कहा था—

"हमें उनको अपने उद्देश्यकी सचाईका विश्वास दिलाना चाहिये, हमें उनको इस बातका निश्चय करा देना चाहिये कि

हमारे सब कामोंका पहला उद्देश्य उनका हित ही है। आप लोगोंको जो उज्वल दृष्टि प्राप्त है वही आप उन लोगोंमें फैलाइये। आप लोगोंके जैसे व्यापक विचार हैं और भौतिक सुखके जो अवसर आप लोगोंको प्राप्त हैं उनमें भाग ले सकनेके निमित्त दूसरोंकी सहायता करना भी आपका कर्त्तव्य है। अपनी नीतिका संरक्षण करना ही पर्याप्त नहीं है। हम लोगोंको आगे बढ़ना होगा और उनका पथ-प्रदर्शन करना होगा। यह काम सरल नहीं है। इसमें अध्यवसाय एवं धैर्यकी आवश्यकता है, किन्तु मुझे विश्वास है कि आप लोगोंके प्रयत्नसे यह कार्य सफलता पूर्वक किया जा सकता है। इस काममें मेरी सरकारकी ओरसे आप लोग पूरी सहायताकी आशा कर सकते हैं। सिविल सर्विसके कर्मचारी भी आपके सहायक हैं जिन्होंने अनेक झूठी बातों एवं विरोधका सामना कर संशोधित शासन-प्रणालीके अनुसार कार्य करनेमें स्वतन्त्र और असंकुचित रूपसे सहयोग किया है और अब भी उसकी सहायताके लिये प्रयत्न कर रहे हैं। वे आपकी सहायताके लिये तैयार हैं और उन्हें भी आपकी सहायताकी आशा है। आप लोग अपने चारों ओर सुधारोंके विरुद्ध बातें सुन रहे हैं, आपके अभिप्रायोंका उलटा अर्थ लगाकर आपके अधिकारोंकी आलोचना की जा रही है, आपकी सफलताओंका महत्त्व कम दिखलाया जाता है, आपके उद्देश्य निन्द्य कहे जाते हैं।"

व्यवस्थापकोंके विशेषाधिकार और भावकी उन्नति

उन लोगोंकी राजभक्तिका अर्थ समझना कठिन है जिनकी बुद्धिपर प्रभाव डालकर सहानुभूति प्राप्त करना अभी बाकी ही है और जिन्हें अभी उनलोगोंकी सचाईका विश्वास दिखाना बाकी है जिनके वे भक्त और अनुयायी हैं। इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि 'यह काम सरल नहीं है, इसमें अध्यवसाय एवं धैर्यकी आवश्यकता है।, व्यवस्थापक सभाके सदस्योंके प्रयत्नोंसे कार्यके सफलतापूर्वक किये जानेमें विश्वास प्रगट किया गया है, किन्तु साथ ही उन्हें इस बातका निश्चय दिलाना भी आवश्यक हुआ है कि आप इस काममें मेरी सरकार तथा सिविल सर्विसकी पूरी सहायता' का आशा कर सकते है। इसके सिवा अन्य बातोंके साथ साथ उनके 'विशेषाधिकारों और भावी उन्नति' की ओर भी संकेत किया गया है। सरकार जिस तरह सारी बातोंका प्रबन्ध करता है उसे देखकर आश्चर्य होता है। सरकारका तथा सिविल सर्विसका सहायताका आश्वासन देकर सदस्योंसे उत्सुकतापूर्वक यह अनुरोध किया गया है कि आप अपने विशेषाधिकारों और भावी उन्नतिका ख्याल कर" उस उज्ज्वल दृष्टिका प्रसार कीजिये जो आपको प्राप्त है और इसका एकमात्र उद्देश्य उसी जनतासे भेंट करना और उसकी सहानुभूति प्राप्त करना है जिसके वे निर्वाचित प्रतिनिधि है! इन राज 'भक्त' और 'अनुयायी' लोगोंके रंग-ढंग विचित्र हैं—नगरमें या गांवमें सभा

होनेकी सूचना देनेवालेकी आवाज़ सुनकर वे हजारोंकी संख्यामें असहयोगियोंको सभामें आ जुटते हैं जो उनकी पथप्रदर्शक नहीं हैं और जिन लोगोंके वे भक्त और अनुयायी हैं उन्हें बिलकुल अकेला छोड़ देते हैं जब तक कि सरकारके अधिक प्रसिद्ध कर्मचारियों विशेषकर पुलिसवालों द्वारा वे 'शान्ति-पूर्वक फुसलाये' नहीं जाते।

प्रधान सचिवका सिर हिलाना अधिक अर्थपूर्ण

श्री लायड जार्जके हालके ऐतिहासिक भाषणका—जिसने हमारे नरमदलवाले भाइयोंमें इतनी खलबली पैदा कर दी है,—एव शब्दोंके अर्थपर प्रधान सचिवके सिर हिलानेके प्रभावके सम्बन्धमें दिये गये वाइसरायके भाषणका वर्णन व्यवस्थापक सभाओंमें असहयोगियोंके जानेके प्रश्नका विचार करते समय किया जायगा। यहाँपर इतना कह देना ही उचित होगा कि शासकोंके ये भाषण उस मानसिक अवस्थाके द्योतक हैं जो आशाके विफल होनेसे उत्पन्न होती है और जो क्रोधमयी भाषामें प्रगट होती है। यदि निर्वाचकोंको प्रभावित करनेमें असहयोगी इस प्रकार सर्वथा विफल हुए हैं जैसा कि कहा जाता है, तो उन्हें यह धमकी देनेकी क्या आवश्यकता थी कि यदि आप लोग सुधारोंका विध्वंस करनेका साहस करेंगे तो इसका परिणाम अच्छा न होगा? इतना और कह देना आवश्यक है कि इन बड़ी बड़ी वक्तृताओंके कारण असहयोगी तनिक भी उद्विग्न नहीं हुए हैं।

नरमदलवाले भाई

फिर भी किसी प्रकारके प्रतिरोधका भय न कर यह बात कही जा सकती है कि इस आन्दोलनके सिद्धान्तों तथा कांग्रेसके भिन्न भिन्न कार्यक्षेत्रोंमें उनके प्रयोगके सम्बन्धमें उनका चाहे कितना भी मतभेद रहा हो, अभी तक नरमदलके किसी भी विख्यात नेताने देशकी वर्त्तमान जागृतिका श्रेय एकमात्र असहयोगको देनेमे आपत्ति नहीं की है। इसके विरुद्ध उनके अग्रगण्य नेताओंने मुक्त कण्ठसे असहयोगकी सफलता स्वीकार की है। यह बात दूसरी है कि ऐसा स्वीकार करते समय प्रत्येक बार उन्होने कार्यक्रमके विशेष मदोंके सम्बन्धमें अपना असम्मति प्रगट की है। गत मई मासमें अहमदाबादमें किये गये सर चिमनलालजी सीतलवाडके भाषणसे एक अवतरण नीचे दिये जाता है। साधारणतया यह समस्त नरमदलवालोंकी रायका द्योतक समझा जा सकता है—

"मैं यह खुशीसे स्वीकार करता हूं कि किसी हदतक गरमदलने अच्छा काम किया है। उसने जनतामें राजनीतिक जागृति उत्पन्न कर, उसके स्वाभिमान एवं देश प्रेमको प्रज्वलित कर बड़ा काम किया है। सज्जनो, मैं यह भी मानता हूं कि अन्य रूपसे भी उन्होने उपयोगी कार्य किया है। उसने जनतामे स्वदेशीके पक्षका भाव पैदा कर एवं अन्त्यजोंके प्रति छूतका भाव दूर करनेको लोगोंसे कह कर अच्छा काम किया है।"

राष्ट्रीय सभाकी समर्थक महती शक्ति

इस प्रकार यह बात सन्देहों और आपत्तियोंसे रहित प्रमाणित हो चुकी कि भारतकी राष्ट्रसभाकी समर्थक (जनताकी) ऐसी महती शक्ति है जो किसी प्रकारके उत्पीड़न अथवा दमनसे दबायी नहीं जा सकती। असहयोगी नेता देशको उचित मार्गकी ओर ले जा रहे हों या अनुचित मार्गकी ओर, वे कार्यक्रमके भिन्न भिन्न मदोंकी पूर्तिमें सफल हुए हों या विफल, पर यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि भविष्यमें वर्त्तमान शासन प्रणालीके अनुसार देशका शासन करना नितान्त असम्भव है। हाँ, कुछ समयके लिये अवश्य कठोर दमन नीतिके लगातार प्रयोगसे शासन किया जा सकता है, किन्तु ऐसा करनेसे असन्तोषकी फाँस लोगोंके हृदयमे और भी गहरी पैठती जायगी। जिन्हें देखनेकी शक्ति प्राप्त है वे हालमें दी गयी प्रधान सचिव और वाइसरायकी धमकियोंका उत्तर वर्त्तमान संग्रामका सब कुछ सहकर अपने अधिकारोंकी प्राप्ति तक जारी रखनेके जनताके दृढ़ निश्चयको देखकर समझ सकते हैं।

व्यवस्थापक सभाओंके निर्वाचनपर प्रभाव

प्रथम चुनाव होनेके ठीक पहले कलकत्तेमे राष्ट्रीय सभाका विशेष अधिवेशन हुआ था। सारे कार्यकर्ताओंको व्यवस्थापक सभाओंका बहिष्कार सफल करानेके प्रयत्नमें समूची शक्ति लगा देनेका आदेश दिया गया था। राष्ट्रीय सभाके अनुरोधका जो उत्तर दिया गया उसे देखकर

सरकार एवं विरोधी दलके संवादपत्रोंको भी आश्चर्य हुआ। राष्ट्रीय दलके सभी उम्मेदवारोंने, चाहे उन्होंने कांग्रेसमें बहिष्कारके पक्षमें अपनी सम्मति दी हो या विपक्षमे, इस समय उसके आदेशका श्रद्धापूर्वक पालन किया और यद्यपि कोई कोई सज्जन इसके पहले ही अधिक परिश्रम और व्यय कर चुके थे, तोभी उन्होंने निर्वाचनके लिये खड़े होने वालोंकी सूचीसे अपने नाम वापस ले लिये। अधिकांश निर्वाचकोंने भी सच्चे हृदयसे अपने नेताओंका अनुकरण किया। यद्यपि सरकारी कर्मचारियों तथा कुछ जमींदारोंने उनपर अनुचित दबाव डालना चाहा पर वे चुनावके स्थानों पर अपना मत देने न गये। मिर वालेंटाइन शिरोलने एक स्थानके निर्वाचनका वर्णन करते हुए जो पत्र लन्दनके 'टाइम्स' पत्रके पास भेजा था, उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है—

"मैं गाड़ीमें बैठकर इलाहाबादसे परतापगढ़की ओर २५ मीलपर एक बड़े गांवके लिये जहां चुनाव होने वाला था, रवाना हुआ। जब हमलोग उस बड़े गांव 'सारांव' में पहुचे, जिसे हम एक छोटा सा शहर कह सकते हैं, तो वहां अभी तक ऐसे कोई चिह्न न देख पड़े जिनसे मालूम होता कि आज वर्त्तमान भारतके इतिहासमें वह महत्वपूर्ण दिन है जब कि यहां वालोंका स्वराज्य-प्रवेश-संस्कार होनेवाला है। हमने यह अलबत्ता देखा कि वहांकी छोटीसी कचहरी जिसमें निर्वाचन किया जानेवाला था झाड़-पोंछकर साफ कर दी गयी थी।

"भीतर, अध्यक्ष महाशय अपने सहकारियों सहित मेज़ लगाकर बैठ हुए थे। उनके सामने हालकी ही छपी हुई निर्वाचकोंकी सूची तथा मत देनेके लिये कागज रखे हुए थे जो कि प्रत्येक मतदाताको उस कोठरीमें प्रवेश करनेके पूर्व दे दिये जाते थे जिसमें मत-संग्रहके निमित्त सन्दूक रखी हुई थी। किन्तु सवेरे आठ बजेसे लेकर बारह बजेके उपरान्त तक दिनभरमे वहां एक भी निर्वाचकके दर्शन न हुए।"

सरकारी पत्रोसे विदित होता है कि प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओंके निर्वाचनमे फी सैकड़े ७० से ८० मनुष्य तक अपना मत देने नही गये। बड़ी व्यवस्थापक सभाके लिये लगभग ८० फी सैकड़े निर्वाचकोने मत नहीं दिया और राज्य-परिषद्की संकुचित रचना एवं विचित्रताके होते हुए भी ६० फी सैकडे निर्वाचक चुनावके स्थान पर उपस्थित नही हुए। नरमदल वालों तथा गोरे समाचारपत्रोंने चतुरतापूर्ण बातें प्रकाशित कर सरकारकी पूर्ण पराजय एवं 'चुने गये' उम्मेदवारोंका अप्रतिनिधित्व छिपानेकी चेष्टा की, किन्तु स्वतन्त्र आलोचकोंने, जो असहयोग सिद्धान्तके पूरे विरोधी थे और जो व्यवस्थापक सभाओंके बहिष्कार पर दुःख प्रगट करते थे, विवश होकर निर्वाचनोंकी निःसारता स्वीकार की है। पार्लिमेण्टके सदस्य कर्नल वेजवुड कहते हैं—

'निर्वाचन किये गये, किन्तु ऐसे निर्वाचनोंका किया जाना शायद ही उपयोगी हो। असंख्य मनुष्य जिन्होंने मत दिया होता

घर ही बैठे रहे। निर्वाचकोंमेंसे कुल २४ फी सदी मनुष्योंने मत दिया। मद्रास तथा बङ्गालमें कुछ अधिक लोगोंने तथा बम्बई और मध्यप्रान्तमें कुछ कुछ लोगोंने मत दिया। सभी जगह मुसलमानोंमें और भी कम लोगोंने मत दिया, क्योंकि उन लोगोंके लिये असहयोग अब उनके धर्मका अंश हो गया है।"

पढ़ी लिखो जनता द्वारा सुधारोंके बहिष्कारसे चिढ़कर कर्नल महोदय लिखते हैं—

"निर्वाचन हो गया, अयोग्य स्वार्थ-साधकोंने द्रव्य खर्चकर अपना निर्वाचन करा लिया और राष्ट्रीय दलके सभी बुद्धिमान तथा 'चुनिन्दा' लोग बाहर ही खड़े खड़े अपना क्रोध प्रगटकर रहे हैं। इस 'बुरी स्थिति' मे कोई भी समझदार सरकार समझौतेकी आशासे निर्वाचन स्थगित कर देती।"

अन्य समालोचक सुधारोंकी विफलता माननेको तैयार न थे और वे यह बात बढ़ाकर प्रगट करना चाहते थे कि व्यवस्थापक सभाओंके सदस्योंकी संख्या पूरी हो गयी। उन्होंने भी यह स्वीकार किया है कि बहिष्कारके कारण योग्य सदस्योंका निर्वाचन न हुआ। नये सभासदोंका सकेत करते हुए लन्दनके 'नेशन' पत्रने लिखा था—

"सम्भव है, उनमे अत्यन्त प्रतिष्ठित, धनाढ्य और पदवीयुक्त सज्जन शामिल हों, किन्तु सब बातोंका विचार कर उनमें प्रायः ऐसे ही वयोवृद्ध और कायर मनुष्य हैं जिनमें दूसरोंको प्रेरित करनेकी शक्ति नहीं, जो स्वयं किसी बातका प्रारम्भ नही कर

सकते और जनतामें जिनका पक्ष लेनेवाले थोड हा लोग हैं।"

स्कूलों और कालेजोंपर प्रभाव

व्यवस्थापक सभाओंके वहिष्कारके प्रयत्नके साथ साथ महात्मा गान्धीने देश भरमें घूम घूम कर वकीलोंको अदालतोंका और विद्यार्थीयोंको सरकारी या सरकारसे सहायता लेने वाले विद्यालयोंका वहिष्कार करनेका आदेश दिया। प्रथम आक्रमण अलीगढ़ कालेज पर हुआ—पहले मौलाना महम्मद अली, शौकत अली द्वारा फिर महात्माजी द्वारा। बङ्गालमें श्रीचित्तरञ्जन दासने यह कार्य अपने हाथमें लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि कलकत्ते तथा मुफस्सिलमें हजारों विद्यार्थीयोंने सरकारी स्कूल, कालेज छोड़ दिये। कलकत्ता विश्वविद्यालयके वाइस चान्स-लरकी हैसियतसे बोलते हुए सर आशुतोश मुखोपाध्यायने बंगा-लके विद्यार्थीयोंमे असहयोगकी सफलता स्वीकार की थी। इसी प्रकारके प्रयत्नोंसे पञ्जाब तथा अन्य प्रान्तमे भी सफलता हुई। सर्व साधारणके चन्दे से सारे देशमें बहुतसे राष्ट्रीय विद्यालय तथा महा विद्यालय स्थापित हो गये। इनमें ऐसे अध्यापकोंने काम करना आरम्भ किया जिनमे देशभक्ति और स्वावलम्बनकी प्रवृत्ति कूट कूट कर भरी हुई थी और जो आर्थिक कठिनाइयोको झेलते हुए भी प्रसन्नता पूर्वक अपना काम करते थे। सरकारी स्कूलोंसे जो लड़के निकल आये थे उनमेंसे कुछ तो राष्ट्रीय विद्यालयो तथा महाविद्यालयोंमें पढ़ने

लगे, कुछ राष्ट्रीय सभाके काममें लग गये, किन्तु अधिकांश विद्यार्थियोंको, राष्ट्रीय विद्यालयोंकी कमीके कारण पुनः अपने पुराने स्कूलोंको लौट जाना पड़ा। स्कूलों तथा कालेजोंके वहिष्कारसे कांग्रेसके कार्य कर्ताओंकी श्रेणियोंमें कार्य-तत्पर लोगोंका भी समावेश हो गया जिनके देश प्रेम और उत्साहसे देशके कार्यमें बड़ी सहायता मिली।

असहयोगके असली भावका ग्रहण किया जाना

सरकारी स्कूलोंसे जो विद्यार्थी निकल आये थे उनमेंसे बहुतेरे पुनः लौट गये इस घटनाका अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है। कहा जाता है कि स्कूलोंका वहिष्कार असफल हुआ। इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि सरकारी स्कूलों तथा कालेजोंसे विद्यार्थियोंको हटानेके प्रयत्नमें बहुत कम सफलता हुई, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि समस्त देशके अधिकांश छात्र-समुदायने असहयोगका असली भाव ग्रहण कर लिया है। भिन्न भिन्न सार्वजनिक कार्योंकी ओर उनकी प्रवृत्तिसे बारम्बार यह बात प्रमाणित हो चुकी है। असहयोगियोंने जिन बड़ी बड़ी सभाओंमें व्याख्यान दिये हैं उनमें बहुसंख्यक विद्यार्थी उपस्थित रहे और उन्होंने धैर्यपूर्वक तथा विचारपूर्वक उनके व्याख्यान सुने हैं। किन्तु नरम दलवालोंके प्रसिद्ध नेता भी, जिनमेंसे कुछ अभीतक छात्र-समुदायकी श्रद्धा और सम्मानके पात्र रहे हैं, जिस समय व्याख्यान देने खड़े हुए उस समय उनकी प्रशंसा करने वाले इन्हीं छात्रोंने

उनका व्याख्यान तक सुनना अस्वीकार किया। महात्मा गांधी तथा अन्य प्रसिद्ध कार्य-कर्ताओंने अपने लेखों द्वारा इसकी तीव्र निन्दा की है। किन्तु यह स्पष्ट ही है कि नरम दल-वालोंके विचार देशके नौजवानोंको इतने असह्य हो गये हैं कि वे अपनी भारतीयता भूल जाते हैं और पश्चिमी ढँगों द्वारा अपना असन्तोष प्रगट करते हैं। असल बात यह है कि सारे विद्यार्थी स्कूलों ओर कालेजोंको इस कारण नहीं छोड़ते कि उन्हें शिक्षा पानेके निमित्त अन्य कोई स्थान नहीं है। इसका कारण यह नहीं है कि असहयोगका उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है उनके लिये एक ओर कुआँ है तो दूसरी ओर खाई। वे यह भली भाँति समझते हैं। असहयोगकी नैतिक विजय ता पूरी हुई है। उसके कारण सरकारी पाठशालाओंकी प्रतिष्ठा गिर गयी है और उनमे प्रचलित बुरी बातोंसे विद्यार्थी सचेत हो गये हैं।

राष्ट्रीय विद्यालय

राष्ट्राय विद्यालयोंकी आवश्यकता देखते हुए उनकी संख्या अपर्याप्त है, इसका उल्लेख किया जा चुका है। देशमें जिस प्रकारका संग्राम जारी है उसके कारण राष्ट्रीय स्कूलों और कालेजोंका पूर्ण संघटन रुका रह गया, किन्तु विद्यार्थियों एवं अध्यापकोंके उत्साहके कारण उनका कार्य, अयोग्य और अपर्याप्त रूपसे भले ही कहिये, बरा बार चलता रहा। बार-

डोलीके प्रस्तावोंके कारण यह हुआ कि सरकारी स्कूलों-के विरुद्ध क्रियात्मक प्रचार बन्द कर दिया गया और भिन्न भिन्न कांग्रेस कमेटियोंकी शक्ति सरकारी स्कूलों और कालेजोंके विद्यार्थियोंको आकर्षित करनेके अभिप्रायसे राष्ट्रीय विद्यालयोंके संघटन तथा उनमें प्रचलित शिक्षाके सुधारकी ओर लगा दी गयी। सारे देशके राष्ट्रीय विद्यालयोंकी वर्तमान दशा सन्तोषजनक नहीं है। वे सब बड़ी कठिनाइयों और असुविधाओंका सामना करते हुए वीरता पूर्वक अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। अध्यापकोंको वेतन मिलता है उससे केवल जीवन-निर्वाह ही हो सकता है। विद्यालयोंकी इमारतें प्रायः किराये पर ही ली गयी हैं और वे इस कार्यके लिये अनुपयुक्त हैं। अधिक विद्यालयोंमें प्रायः वही पाठ्यक्रम रक्खा गया है जो सरकारी स्कूलोंमें प्रचलित है। हां, इतना जरूर है कि उनमें चरखा करघा, एवं हिन्दीका सिखलाया जाना भी आवश्यक रखा गया है।

यद्यपि इन विद्यालयोंकी पढ़ाईमें बहुत ही थोड़ा परिवर्तन किया गया है तोभी यह देखकर ही कि वे सरकारी सहायताके बिना चलाये जा रहे हैं उनके अध्यापकों और विद्यार्थियोंके चरित्र और विचार दृष्टिमें स्पष्ट परिवर्तन हो गया है।

वकील, मुवक्किल और अदालतें

विद्यार्थियों तथा स्कूलों और कालेजोंके विषयमें जो कुछ कहा गया है, आवश्यक परिवर्तनके साथ वही बात

वकीलों, मुवक्किलों और अदालतोंके सम्बन्धमें भी कही जायगी। यदि वहिष्कारकी सफलताका माप उन वकील और मुवाक्किलोंकी संख्या समझी जाय जिन्होंने अदालत जाना छोड़ दिया है तो, जैसा कि विद्यार्थियोंके सम्बन्धमें कहा गया था, वसा ही यहाँ कहना पड़ेगा कि कार्यक्रमका यह अंश असफल हुआ। समस्त देशमें सम्भवत: कुल १२०० से १५०० तक वकीलोंने असहयोगके कारण अपनी वकालत स्थगित की। वकीलोंकी पूरी संख्याकी तुलनामें यह संख्या दालमें नमकके बराबर है। अब घरेलू बातों तथा अन्य कारणोंसे कुछ लोग पुनः वकालत करने लगे है, जिससे यह संख्या और भी घट गयी है। किन्तु जो लोग अदालतोंके वहिष्कारकी अपनी प्रतिज्ञापर अभीतक आरूढ़ हैं, उन्होंने इस आन्दोलनको अमूल्य लाभ पहुंचाया है। जो लोग अब भी वकालत कर रहे हैं, उन्होंने बड़ी संख्यामें इस आन्दोलनका, खासकर इसके रचनात्मक अंशका, भिन्न भिन्न रूपोंसे समर्थन किया है। उन्होंने तिलक-स्वराज्य कोषमें अच्छा चन्दा दिया है। इससे प्रगट होता है कि वकीलका पेशा करनेवाले प्रायः सभी लोगोंने असहयोगका भाव भलीभांति ग्रहण कर लिया है। वकीलोंकी चन्द संस्थाओंने सबल और स्पष्ट शब्दोंमे सरकारी दमन नीतिके विरुद्ध प्रस्ताव पास किये, कलकत्तेकी बार लाइब्रेरीने इसीके विरोधमें लार्ड रेडिङ्गको भोज देनेका विचार भी त्याग दिया, मद्रासके वकीलोंकी संस्थाने

कांग्रेस तथा खिलाफतकी सविनय अवज्ञा जांच समितिके वकोल सदस्योंको हाईकोर्टकी इमारतमें बने हुए वकीलोंके कमरोंमें अपना अतिथि बनाया और रजिष्ट्रारके द्वारा दी गयी चीफ जस्टिस (प्रधान न्यायाधीश) की धमकियोंका दृढ़ और स्वाभिमानयुक्त उत्तर दिया। इन सब बातोंसे वकीलोंके सम्मान और कीर्तिकी वृद्धि होगी। इतना होते हुए भी यह सत्य है कि कुछ वकोलों, खासकर ऊंचे दर्जेके वकीलोंने असहयोगके सिद्धान्त तथा कार्यक्रमसे अपनी असम्मति प्रगट की है और कुछने उसका प्रत्यक्ष विरोध किया है।

असहयोगके कार्यक्रममें वकीलोंका स्थान

जिस सिद्धान्तपर अदालतोंका वहिष्कार आश्रित है वह बिलकुल निर्दोष है, किन्तु विवश होकर यह कहना पड़ता है कि कार्यमें परिणत किये जाते समय उसका अवाञ्छित प्रयोग किया गया है। जिन वकीलोंने वकालत नहीं छोड़ी है, यदि वे कांग्रेसका ध्येय स्वीकार करते हैं तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे इस संस्थाके अन्तर्गत सभी विभागोंमें सम्मिलित होनेके एवं निर्वाचनाधिकारके स्वतन्त्र प्रयोग द्वारा चुने जानेपर पदोंपर भी नियुक्त होनेके पूरे पूरे अधिकारी हैं। राष्ट्रीय सभाने उनके लिये कोई रुकावट नहीं रखी है। हां, महात्मा गान्धीने अवश्य उन्हें पर्देके पीछे अप्रगट रूपसे भाग लेकर ही सन्तुष्ट रहनेका उपदेश दिया था। अधिक उत्साही

समितियोंने इसका अर्थ यह लगाया कि वकालत न छोड़नेवाले वकील पदोंपर नियुक्त नहीं किये जा सकते। कुछ प्रान्तोंने तो सत्य ही ऐसे नियम बना डाले कि जिसमें वे किसी पदपर नियुक्त न किये जा सकें। वकालत स्थगित न करनेवाले स्वाभिमानी वकीलोंके लिये, अपनी इच्छाके विरुद्ध भी, कांग्रेसके बाहर रहनेका यह अकेला ही काफी प्रबल कारण है, किन्तु बादमें सामान्यतः जिस अक्षम्य अभद्रताका व्यवहार उनके साथ होने लगा उसके कारण वे सचमुच सार्वजनिक कार्योंसे अलग रहने लगे। जब कि वकालत करनेवाले सम्मानित वकील, जो सार्वजनिक कार्योंमें अपनी योग्यताके कारण प्रसिद्ध थे, बड़े परिश्रमके साथ और कभी कभी अप्रिय रीतिसे कांग्रेसके बाहर रखे जाते थे तो फिर देशावरसे राशी राशी विदेशी कपड़ा मंगानेवालोंके सभी कांग्रेस समितियोंमें निर्विघ्न प्रवेश पाने और उनके अन्तर्गत उत्तरदायी पदोंपर नियुक्तक होनेका कोई कारण नहीं। यह सच है कि विदेशी कपड़ा मंगानेवाले कुछ व्यापारियों तथा मिलके मालिकोंने तिलक-स्वराज्य कोषमें बड़ी बड़ी रकमें दी थीं, किन्तु साधारणतया वकीलोंको तो इतना मौका भी नहीं दिया गया कि वे सार्वजनिक कार्योंकी सहायतामें अपनी सुप्रसिद्ध मुक्त-हस्त उदारता पूर्णरूपसे प्रगट कर सकते।

नयी रीतिसे पन्द्रह मास तक काम करनेका परिणाम देशके सामने है। अदालतों, स्कूलों तथा व्यवस्थापक सभाओंका बहिष्कार कार्यक्रमका मुख्य अंश है।

पञ्चायतें

अदालतोंके बहिष्कारके साथ पंचायतोंकी स्थापना भी आवश्यक बतायी गयी थी। यह काम भी उत्साहपूर्वक प्रारम्भ किया गया। देश भरमें अक्तूबर १९२० से जनवरी १९२१ तक बहुसंख्यक पञ्चायतें स्थापित हो गयीं। इनमेंसे बहुतोंने अच्छा काम किया, कुछ असफल हुईं। दण्ड देनेकी आवश्यक शक्ति न होनेके कारण ये राष्ट्रीय न्यायालय कठिन असुविधाओंमें ही अपना काम कर सकते थे, किन्तु इसी समय उनपर दमन नीतिका प्रहार हुआ और कई प्रान्तोंमें उनकी तथा उनके साथकी विविध सामग्रीकी बिलकुल सफाई हो गयी। संयुक्त प्रान्तमें पुलिसने पञ्चोंको ढूढ़ ढूढ़ कर पकड़नेका नियमित कार्यक्रम सा बना लिया। बहुत कम ऐसे लोग थे जिन्हें पुलिसके थानो, हवालतों और जेलोंकी भीतरी कारवाई देखनेका मौका न मिला हो। असहयोग जांच कमेटीके सामने दी गई गवाहियोंसे प्रगट होता है कि पञ्जाब, बंङ्गाल तथा विहारमें अब भी कई पञ्चायतें थोड़ा बहुत सन्तोषजनक कार्य कर रही हैं, किन्तु सब बातोंके विचारसे वर्तमान अदालतोंके स्थानमें उपयुक्त संस्थाओंकी स्थापना करनेका प्रयत्न 'कानून और अमनके' प्रचारकोंके उत्साहकी कृपासे निष्फल हुआ है।

कुछ स्थानोंमें पञ्चायतोंका प्रयोजन और कार्यक्रम बिलकुल गलत समझ लिया गया था। कानूनके किसी चतुर ज्ञाताने अंग्रेजी अदालतोंसे बहुत कुछ मिलती हुई जटिल न्याय प्रणाली

तैयार कर डाली जिसमें अपील करने, फैसलोंकी समीक्षा या निगरानी करने तथा न्यायाधीशों इत्यादिकी स्थापनाकी व्यवस्था की गयी थी। ऐसी प्रणालीका विफल होना पूर्वनिश्चित था। आश्चर्य इस बातका है कि यह व्यवस्था कुछ दिनोंतक भी भली भांति चल सकी। यह कहना अनावश्यक है कि पञ्चायतोंकी विशेषता उसमें जनताका विश्वास होना है, लम्बी चौड़ी दिखाऊ कार्य-प्रणाली नहीं। अच्छा हो यदि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियां भिन्न भिन्न जातियोंकी पञ्चायतोंमें प्रचलित पुराने नियमोंमें देशकी परिवर्तित परिस्थितिके अनुसार उचित सुधार कर अपने अधीन समितियोंके पथ-प्रदर्शनके लिये कुछ सरल और एकसा नियम बना ले।

उपाधियोंका छोड़ना

उपाधियोंके बहिष्कारमें जितनी सफलता हुई है उतनी कार्य-क्रमके अन्य किसी भागमें नहीं हुई। यह मालूम है कि बहुत कम उपाधियोंका त्याग किया गया है और अपने समय पर निकलनेवाली 'सम्मान' सूचियां सदाकी तरह नामोंसे पूर्ण थीं—संभवतः पहलेसे भी अधिक पूर्ण थीं, क्योंकि दमन नीतिमें सरकारका समर्थन करने वालोंके कारण उपाधियोंके योग्य समझे जाने वालोंकी संख्यामें असाधारण वृद्धि हो गयी थी। किन्तु उपाधि पानेका सम्मान और यश सदाके लिये नष्ट हो गया। सरकारी इमारतों और सरकारी कागजोंके बाहर सार्वजनिक या अर्द्ध-सार्वजनिक

समारोहोंके समय उपाधियोंको अब कोई महत्व नहीं दिया जाता। 'सम्मान-सूचक' उपाधियोंवाले सज्जन बड़े असमञ्जसमें पड़ गये हैं। वे केवल पंडित, लाला, मुन्शी या मिस्टर द्वारा ही सम्बोधित किया जाना अधिक पसन्द करते हैं। साधारण मनुष्यको इनकी असाधारणताका ज्ञान होते ही वह इनके पाससे अलग हट जाता है।

स्वदेशी

'स्वदेशी' के निमित्त किया गया सारा प्रयत्न खद्दरकी तैयारी और प्रचार पर ही केन्द्रीभूत रहा है। यद्यपि तैयारीकी गति धीमी है, वह बढ़ी हुई मांगका साथ नहीं दे सकती, तोभी यह जानकर सन्तोष होता है कि राष्ट्रीय महासभा द्वारा विभाजित देशके १६ प्रान्तोंसे १६ में बहुत अच्छी उन्नति हुई है। खद्दर विभागका प्रबन्ध हालमें ही सेठ जमनालाल बजाजकी योग्य अधीनतामें रख दिया गया है, वे अपनी सारी शक्ति उसीमें लगा रहे है। उनके परिश्रमका व्यौरा यहां नहीं दिया गया है और उन्होंने जिस प्रणाली-का सूत्रपात किया है उसके सम्बन्धमें इतना शीघ्र कुछ नहीं कहा जा सकता। फिर भी इस सम्बन्धमें कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। खद्दरकी अधिक मांगसे प्रलोभित होकर विदेशी कारखानेवालों तथा देशी व्यापारियोंने भारतके बाजारोंमें विदेशी खद्दरका प्रचार करना शुरू किया। यह बेईमानी इतनी चतु॰

रतासे की गयी कि उसका पता लगाना आसान बात न थी। बड़े शहरोंके खद्दर-भण्डारवाले सहज ही इसके फन्दे में पड़ जाते हैं क्योंकि खद्दरकी मांग ज्यादा है और उसकी पूर्तिके साधन कम हैं। यह भी एक दुःखपूर्ण अनुभव है कि बेजवाड़ा, जिसे भारतका आधुनिक ढाका नगर कहलानेकी उचित ख्याति प्राप्त है, तथा उसके समीपके कुछ अप्रामाणिक बारीक पोतके वस्त्र तैयार करने वालोंने लोभमें पड़कर अपने जिलेका नाम जनताकी दृष्टिमें गिरा दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य प्रान्तोंकी मांग पूरी करनेके लिये इन लोगोंने अधिक परिमाणमें विदेशी तथा भारतीय मिलोंके सूतका प्रयोग किया। देशभरमें जितने खद्दर-भण्डार खुले हैं उनमें ऐसे भण्डारोंकी संख्या अधिक नहीं है जो केवल विशुद्ध खद्दर ही बेचते हों। सच तो यह है कि अब किसी विशेष कपड़ेके बारेमें निश्चयपूर्वक यह कह देना कि वह विशुद्ध खद्दर है असम्भव हो गया है। विना लम्बी चौड़ी जांचके ऐसा सम्भव नहीं, जांचका परिणाम भी अधिकतर असन्तोष-जनक होता है। कहा जाता है कि कुछ मनुष्य ऐसे प्रवीण हैं कि वे तुरन्त शुद्ध और अशुद्ध खद्दर पहिचान लेते हैं। किन्तु कपड़ा खरीदते समय उसे प्रत्येक बार उन्हें दिखला सकना असम्भव है। इस कठिनाईको दूर करनेका एकमात्र उपाय यही है कि कांग्रेसकी सारी शक्ति घरू उद्योगधन्धोंके प्रोत्साहनमें लगायी जाय और बड़े बड़े भण्डार तथा वस्त्रालय खोलकर उनमें ऐसा कपड़ा रखकर—जिनकी उत्पत्ति अज्ञात हो—नगरवासि-

योंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिका प्रयत्न त्याग दें। तामिल नाडू प्रान्तके कोयम्बतूर जिलेके उत्तुकुलि ग्राम ऐसा केन्द्र है जहां कपास ओटनेसे लेकर वस्त्र तैयार होने तकका सब काम कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओंकी देखरेखमें ही होता है। दक्षिण भारतमें तथा अन्यत्र इसी प्रकारके बहुतसे कारखाने हैं। इसके लिये विशेषज्ञोंकी एक छोटी समिति इन प्रश्नोंपर विचार करनेके निमित्त शीघ्र ही स्थापित होनी चाहिये। बड़े मार्केकी बात यह है कि विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारका प्रभाव लङ्काशायरपर भी पड़ने लगा है।

तिलक स्वराज्य कोष

दुःखकी बात है कि सर्व भारतीय तिलक स्वराज्य कोषके लिये चन्दा एकत्र करनेमें कठिन दमन नीति तथा उसके बादकी शिथिलताके कारण बड़ी बाधा पड़ी। इस महत्वपूर्ण विशेष कार्यके करनेवाले बहुतेरे कार्यकर्त्ता अब जेलमें हैं। पुलिसने कितने ही कांग्रेसके दफ्तरोंपर आक्रमण कया और हिसाब, बही, रसीदें तथा अन्य कामके कागजात उठा ले गई। यह कारवाई किसी ऐसे मुकद्मेंके सम्बन्धमें नहीं की जाती थी जो अदालतमें पेश था या जिसकी जांच पुलिस कर रही थी, प्रत्युत यह मनमानी कार्रवाई थी जिसके कारण पुलिसपर, यदि उसपर मुकदमा चलानेके लिये कोई न्यायालय हो तो, कई बड़े बड़े अभियोग लगाये जा सकते हैं।

इस कोषमें सब दिशाओंसे स्वतन्त्रतापूर्वक चन्दा प्राप्त न होनेका एक और कारण उन कमेटियों द्वारा इसके आयव्ययका प्रकाशित न किया जाना है जिनके दफ्तरोंसे उपरोक्त रीतिसे पुलिस सब कागजात उठा ले गयी। पुनर्वार चन्दा देनेके पूर्व जनताके लिये यह जाननेकी इच्छा स्वाभाविक है कि हमने जो रुपया दिया है उसका प्रयोग किस प्रकार किया जा रहा है। आशा की जाती है कि जनता उन कठिनाइयोंको समझेगी जो कांग्रेसके कार्यमें पड़ रही हैं और कार्यकर्त्ता भी बची हुई सामग्रीके आधार पर जनताकी इच्छा पूरी करनेके लिये आयव्ययका हिसाब तैयारकर उसे प्रकाशित करनेकी चेष्टा करेंगे।

जिन लोगोंके मनकी शांति व्यर्थ ही इस आशंकासे भंग हो गयी थी कि पहली जुलाई १९२१ को जिस एक करोड़ रुपयोंके चन्देकी घोषणा की गयी थी, संभव है वास्तवमें वह रकम प्राप्त न हुई हो, उनके सन्तोषके लिये यह लिख देना आवश्यक होगा कि मांगी रकमसे अधिक वसूल हुई है। हिसाब देखनेसे मालूम होगा कि चन्देमें १२, ७१, ४०७ रुपये ११ पाई-की रकम एक करोड़के अतिरिक्त प्राप्त हुई थी।

कांग्रेसके सदस्य बनाना

कांग्रेसके सदस्य बनानेके काममें भी वैसी ही बाधायें उपस्थित हुईं। जो प्रांत दमन-नीतिसे प्रायः बचे रहे उनमें उन प्रान्तोंकी अपेक्षा अच्छा काय हुआ जिनमें

ओरोंका दमन किया गया था। किन्तु सब बातोंके ख्यालसे इस सम्बन्धमें बिलकुल सन्तोषजनक कार्य नहीं हुआ। इसका कारण दमन नीति अथवा बारडोलीमें स्वीकृत प्रस्तावोंसे उत्पन्न शिथिलता बतलायी गयी है। उत्तर भारतमें दोनों ही कारण बताये जाते हैं। समस्त देशमें जो बड़ा उत्साह फैला हुआ है उसे देखकर आशा होती है कि रजिस्टरोंमें नाम लिखना आरम्भ होनेके कुछ ही दिनों बाद वे नामोंसे भर जायंगे।

स्वयंसेवक-दल

दिसम्बर जनवरीके दिनोंमें कांग्रेसके स्वयंसेवकोंने जो कर्तव्यनिष्ठा और आत्मत्यागकी तत्परता प्रगट की थी उसे सम्भवतः न जनता ही भूल सकती है और न शासक ही भूलेंगे। उनके संयममें कोई कमी थी तो इसका सारा दोष उन्हींके मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता। स्मरण रखना चाहिये कि उनके भर्ती होनेके बाद गिरफ्तार किये जानेतक इतना कम समय मिलता था कि इस बीचमें वे शिक्षा पा ही न सकते थे। बहुतसे तो अपना नाम भी रजिस्टरमें न चढ़वा पाते कि गिरफ्तार कर लिये जाते थे। अनुभवसे यह प्रगट होता है कि भविष्यमें स्वयंसेवकोंकी भर्ती करते समय योग्य मनुष्योंको ही स्वयंसेवक बनानेकी चेष्टा की जायगी। यह सत्य है कि कुछ स्वयंसेवक नामधारी

व्यक्तियोंने न अपना ही नाम उज्वल किया और न आन्दोलनको ही लाभ पहुंचाया, किन्तु इतना स्वीकार करते हुए भी कोई भी निष्पक्ष मनुष्य उन वीर और कार्यपरायण मनुष्योंकी पर्याप्त प्रशंसा किये बिना न रहेगा जो देशकी आवश्यकताके समय परिणामोंका ख्याल न कर हजारोंकी संख्यामें सामने आये। इनमेंसे अनेक अब भी जेलमें हैं, बहुतेरे किसी कार्यविशेषके अभावसे पुनः अपने पुराने कामोंमें लग गये हैं और बहुतेरे अब भी बने हुए हैं जो आवश्यकता होते ही आत्म त्यागके लिये तुले बैठे हैं।

अस्पृश्यता।

दक्षिण भारतमें तथा किसी अंश तक मध्य भारत और पश्चिम भारतके कुछ भागोंमें भी अस्पृश्यता खूब फैली हुई है। दो चार स्थानोंको छोड़कर अन्यत्र भारतकी उज्वल कीर्तिसे यह कलंक मिटा डालनेका कोई विशेष प्रयत्न नहीं हुआ। फिर भी धीरे धीरे सारे देशमें वाञ्छित परिवर्तन हो रहा है। कठिनाई यह है कि यह प्रश्न व्यर्थ ही धार्मिक विश्वासोंके साथ मिश्रित कर दिया गया है। खुशी इस बातकी है कि मानसिक घृणा अब बिलकुल दूर हो गयी है। अतः निराश होनेकी कोई बात नहीं है।

मदिरा-निषेधका यत्न।

सन् १९२० और १९२१ में मदिरा निषेधका प्रयत्न देश भरमें जोरोंसे चलता रहा। कई स्थानोंपर मदिराकी दूकानोंपर पहरा भी बैठा-

या गया। तत्काल इसका फल यह हुआ कि मदिराकी खपत-में मार्केकी कमी हुई, किन्तु पहरा हटा लेनेके बाद परिस्थिति फिर बदल गयो और यह दुर्व्यसन पुनः रोजोंसे प्रचलित हो गया। किन्तु मद्यपानकी बराइयोंकी ओर सभी श्रेणियोंके लोगोंका ध्यान आकर्षित करनेमें जैसी सफलता इस आन्दोलनको हुई है वैसी पहलेके किसी आन्दोलनको नहीं हुई।

भिन्न भिन्न जातियोंकी एकता

इङ्गलैण्डके तत्कालीन प्रधान सचिव (श्री लायड जार्ज) ने हालमें जो व्याख्यान कामन्स सभामें दिया था उसमें भारतीय सिविल सर्विसको भविष्यमें भी सर्वदा कायम रखनेके समर्थनमें कहा था—

"भारतमें जातियों तथा धार्मिक विश्वासियोंमें इतने विभेद है कि शायद सारे यूरोपमें भी उतने न होंगे। वहां देशको विभक्त करनेवाली अनेक शक्तियां विद्यमान हैं और यदि ब्रिटन अपना प्रबल हाथ वहांसे हटा ले तो इसका परिणाम भेद-भाव, लड़ाई झगड़ों और अराजकताके सिवा और कुछ न होगा।"

'ब्रिटनका प्रबल हाथ' भारतका ब्रिटिश सिविल कर्मचारीवर्ग हैं। 'भेद भाव, लड़ाई-झगड़ों और अराजकता' का कारण दूर कीजिये तो उन प्रसिद्ध कर्मचारियोंको कायम रखनेका एकमात्र समर्थक कारण भी दूर हो जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि 'भेद-भाव लड़ाई-झगड़ों और अराजकता' का एकमात्र कारण

भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके भेद हैं। भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंकी एकतासे यह कारण दूर हो जायगा और तब सिविल कमचारियोंको बनाये रखनेका कारण भी न रहेगा। यह बात समझनेके लिये बहुत ऊंचे दर्जेकी प्रजा-शक्तिकी जरूरत नहीं है।

सिविल सर्विसवालोंकी धारणा।

भारतीय सिविल सर्विसमें ऐसे मनुष्य भी हैं जिनका विश्वास है कि भिन्न भिन्न जातियों, विशेषकर हिन्दू और मुसलमानोंके बीच गहरी खाई पड़ी है और इन लोगोंमें ब्रिटिश साम्राज्यके विनाशके अतिरिक्त अन्य किसी कार्यके लिये एकता नहीं हो सकती। पञ्जाबमें सैनिक शासनके दिनोंमें यह बात स्पष्ट हो गयी थी। भारतीय सिविल सर्विसके एक उत्तरदायी कर्मचारीने अभियुक्तोंपर यह दोषारोपण किया था कि उन्होंने कानून द्वारा स्थापित सरकारको विनष्ट करनेकी इच्छासे हिन्दू-मुसलमानोंमें भ्रातृभाव उत्पन्न करने या उसे प्रोत्साहित करनेका यत्न किया था। भ्रातृभाव बस यही था कि हिन्दू और मुसलमान दोनों एक ही गिलासमें पानी पीने लगे, ऐसा करना कट्टर हिन्दुओं तथा कुछ मुसलमानोंमें भी वर्जित है। यह कोई प्रेमका प्याला तो था नहीं जो इन विशुद्ध जलपीनेवालोंके बीच गुप्त स्नेह बन्धनको मजबूत करनेके लिये घुमाया जाता रहा हो। ये लोग बार बार 'महात्मा गान्धीकी जय' या 'अल्लाहो अकबर' चिल्लानेके कारण बीच बीचमें सिर्फ अपनी प्यास बुझानेके

लिये या गला सूखनेपर ही पानी पीते थे। किन्तु यह भी अपराध समझा गया क्योंकि वे पानी पीनेके उस छोटेसे प्याले द्वारा अपना एक प्रधान भेद अलग कर रहे थे।

मलाबार तथा मुलतानकी घटनाएं

'उपद्रवों' तथा उत्सवों के कार्योंका सामना करनेका जो संयुक्त प्रयत्न कांग्रेस तथा खिलाफत कमेटियों द्वारा किया जाता है उसमें बहुत कुछ सफलता हुई है, किन्तु, जैसा कि मलाबारकी दुःखद घटना तथा हालके मुलतानके उपद्रवसे प्रगट होता है. इस सम्बन्धमें अभी और भी अधिक उन्नतिकी आवश्यकता है। इन दुर्घटनाओंकी विशेष बातोंके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहना क्योंकि मलाबारकी घटनाकी जांच करनेके लिये कार्य-समितिने पृथक् कमेटी नियुक्त कर दी है जिसके अध्यक्ष मद्रास हाईकोर्टके भूतपूर्व जज श्री फैज तैयबजी बारिस्टर हैं, और मुलतानका उपद्रव अभी हालमें ही हुआ है, अतः इतना शीघ्र उसके सम्बन्धको वास्तविक बातोंकी ठीक ठीक मीमांसा नहीं हो सकती। किन्तु इन उपद्रवोंका मूल कारण चाहे जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि इन्हें राष्ट्रीय विपत्ति ही समझना होगा। यह जानकर पुनः आशाका सञ्चार होता है कि दोनों स्थानोंके हिन्दूमुसलमान नेता पुनः प्रीतिमय पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। कभी कभी इधर-उधर सुनायी देनेवाली मलाबार तथा मुलतानकी प्रतिध्वनिके छोड़कर देशके

अन्य सब भागोंमें इन दोनों जातियोंका परस्परका सम्बन्ध सन्तोषजनक है। कई बार उपद्रव मचानेके लिये 'उपद्रव-प्रवर्तकों' के द्वारा किये गये प्रयत्न समयपर कांग्रेस तथा खिलाफतके कार्यकर्त्ताओं समयके हस्तक्षेपसे विफल कर दिये गये हैं।

परिस्थिति

यहांतक तो असहयोगके आरम्भसे अबतकके इतिहास तथा इसकी सफलता और असफलतापर सरसरी तौर से निगाह डाली गई है। इस आन्दोलनको शक्तिभर दबानेके लिये सरकारकी कड़ी और अन्धाधुन्ध दमन नीतिके पथका भी दिग्दर्शन कराया गया है। सरकार और उसके समर्थक इस आन्दोलनपर पूर्णविजय-लाभका दावा करते हैं। जबतक शासनशक्ति देशवासियोंके अधिकारमें नहीं आती तब-तक असहयोगी विजयी कहला भी नहीं सकते। इस समय इसकी वास्तविक परिस्थिति क्या है, इसे आगेकी पंक्तियोंमें संक्षेपसे दिखलायी जायगी।

कांग्रेसकी स्थिति

शक्तिशालिनी सरकारका दो वर्ष तक सामना करनेके अनन्तर कांग्रेसके कर्मचारी गण, कई बड़े नेताओंके साहाय्यसे वंचित होनेपर भी, भ्रान्त या अभ्रान्त रूपसे ऐसा विश्वास कर लेनेपर कि वे अन्तिम आक्रमणके लिये तैयार हैं, सहसा रोक

दिये जाते हैं (मान लिया जाय इसके लिये उचित कारण भी हों) और पुनः तैयार होनेके लिये उनसे कहा जाता है, पर उन्हें इस बातका कोई आश्वासन नहीं दिया जाता कि वे इस दूसरी तैयारी पर भी इस विस्तृत देशके किसी एक प्रान्तमें कुछ व्यक्तियोंकी हत्याके कारण पुनः रोक न दिये जायंगे। दो सप्ताह बाद सर्व भारतीय कांग्रेस कमेटीमें सार्वजनिक भाव व्यक्त होनेपर आक्रमणात्मक एवं रक्षणात्मक व्यक्तिगत सविनय अवज्ञाका अधिकार जो प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंसे ले लिया गया था उन्हें पुनः लौटा दिया गया। इसके बाद शीघ्रही महात्माजीको कारावासका दण्ड हुआ और उन्होंने किसी प्रकारके जुलूस इत्यादिका निषेध कर दिया। दिल्लीकी बैठकमें स्वीकृत बारडोली प्रस्तावके सुधारोंसे जनताके दबे हुए भावों तथा रचनात्मक कार्यक्रमको पूरा करनेके लिए काफी चौड़ा द्वार मिल गया था। महात्माजीकी जेल यात्राके बाद शीघ्र ही कार्य समितिने इस द्वारको प्रायः बन्दसा कर दिया। दिल्लीकी बैठकमें अनिच्छापूर्वक जो सुविधाएं दी गयी थीं उन्हें प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंसे वापस लेकर रक्षणात्मक एवं आक्रमणात्मक व्यक्तिगत सविनय अवज्ञाके अधिकारोंके जल्दबाजीसे प्रयोगके सम्बन्धमें चेतावनी दे दी गयी। इस प्रकार कार्यकर्त्तागण जिनका उत्साह आवेशके कारण बढ़ा हुआ था, निरुत्साह हो बैठे, क्योंकि कार्यक्रमका वह अंश जो उनके सुपुर्द किया गया है, उन्हें उत्साहवर्द्धक प्रतीत नहीं होता और वे इसमें

बहुत कम दिलचस्पी दिखलाते हैं। कार्यक्रमके उत्साहसे प्रभावित होकर कार्यकर्त्तागण आपही आप पुलिसके शिकार बन बैठे और उसने जहां कहीं इन्हें अपना निर्दोष कार्य सम्पादित करते देखा फौजदारीकी किसी अनुकूल धाराके अनुसार फांस लिया और कभी कभी ता अपने कार्यको वैध दिखलानेका भी कष्ट नहीं उठाया। सर्वभारतीय कांग्रेस कमेटीकी लखनऊमें पुनः बैठक हुई और उसने कदम आगे बढ़ानेका भाव सारे देशमें देखकर परिस्थितिकी पूरी जांच करनेके लिए जांच कमेटीको नियुक्त की। देश नवे भारतीय कमेटीकी ओरसे मार्गदर्शकको प्रतीक्षामें है। यही इस चित्रके एक पहलूका दृश्य है।

सरकारकी स्थिति

बारडोली प्रस्तावकी कमजोरीका चिह्न समझनेमें सरकारने बड़ी भूल की। दिल्लीके सुधार प्रस्तावोंसे यह परिणाम निकाल-कर कि महात्मा गांधीकी सर्वप्रियता घट रही है उनके ऊपर उसने कड़ी निगाह डाली। महात्माजीकी गिरफ्तारीके बाद भी देशका वायुमण्डल पूर्णतः शान्त बना रहा। इससे दमनकी कठोरता और गति भी बढ़ गयी और कई प्रान्तोंमें तो शान्तिपूर्वक रचनात्मक कार्य करना असम्भवसा हो गया। सरकारने यह समझा कि इस प्रकारकी जबर्दस्तीकी शान्तिसे जनता सन्तुष्ट न रहेगी, इसलिये उसने सभी विदेशी और स्वेच्छाचारी सरकारोंकी तरह जनताको भयसे दबाये रखनेका

प्रयत्न शुरू किया। साम्राज्यकी शक्तिका प्रदर्शन किया गया और चारों ओर सैनिक तथा सशस्त्र पुलिसके दर्शन होने लगे। बार बारकी जांचोंसे यह प्रगट हो गया है कि व्यवस्थापक सभाके सदस्योंका, जो प्रारम्भमे प्यारकी बातोंसे फुसलाये गये थे, जनतापर कुछ भी प्रभाव नहीं है, सुधारोंके अनुसार जो पद उन्हें मिला है उससे हटाकर वे एक कोनेमें डाल दिये गये हैं और उनके साथ ऐसे अभद्र तरीकेसे बर्त्ताव किया जाता है कि वह घोर घृणासे शायद ही कम समझा जाय। दिखौआ सुधारके अनुसार भी अपने असन्दिग्ध अधिकारोंको काममे लानेके कारण जब उन्हें कौंसिल भवनमें फटकार सुननी पड़ती हैं तब शासन-विधिके प्रति उनकी भक्ति, जिसे वे बड़े प्यारकी दृष्टिसे देखते हैं, गवर्मेंट हाउसके भीतरी कमरेमें आगे-की फटकारोंके सामने विनीत भावसे सर झुकाना उन्हें सिखला देती है। यही उनकी स्वतन्त्रता-प्राप्तिके प्रयत्नका उचित प्रायश्चित है और इससे वे पुनः कौंसिलके प्रति आकृष्ट भी हो जाते हैं। सरकारका आधार शारीरिक शक्तिपर होने और संसार-में किसी अधिक बलवती शक्तिका अस्तित्व माननेमें असमर्थ होनेके कारण इसने यही समझ लिया है कि असहयोग हमारे पैरों पड़ता है। मुंह लगे बच्चों—कौंसिलके सदस्योंको इसे चिढ़ानेकी आवश्यकता अब नहीं रही, फलतः उन्हें ताड़न करनेकी भी इसे इच्छा नहीं रही। अब यह उन्हें यह धारणा बंधाती है कि तुम्हारा भविष्य हमारी—दूसरे शब्दोंमें अंग्रेज़

जातिकी—सदिच्छापरही अवलम्बित है। उन्हें यह ऐसा विश्वास दिलाकर बिदा करती है कि यदि तुम हमारे इच्छानुसार विधान-रचनासे सन्तुष्ट न होते तो किसी बुरे मार्गपर जा पड़ते। इन कतिपय कामोंको कर लेनेपर सरकारको विश्राम लेनेकी सूझती है। पर नये चुनावके निकट पहुंच जानेसे फिर यह घबरा उठती है। देश असहयोगियोंका समर्थक है यह उन्हें धमकी देती है कि यदि तुम सुधारोंको विफल करनेका साहस करोगे तो इसका परिणाम बहुतही बुरा होगा। सरकारको यह पूरा विश्वास है कि असहयोगियोंके हृदय व्यवस्थापक सभाके सदस्योंको तरह कच्चे नहीं हैं, जो निर्णय उन्होंने दृढ़ होकर कर लिया उसका अन्तिम समय तक वे पालन करेंगे।

सविनय अवज्ञा जांच समिति

सिफारिशोंके अनुसार हकीम अजमल खांके सभापतित्वमें सविनय अवज्ञा जांच समितिका सङ्गठन किया गया। हकीमजीके अतिरिक्त इसमें निम्न लिखित सदस्य थे :—श्रीकस्तूरी रङ्ग ऐयङ्गर राजगोपालाचारी, एम० ए० अन्सारी, वी० जे० पटेल, तथा पण्डित मोतीलाल नेहरू। भिन्न भिन्न स्थानों पर भ्रमण करके इस समितिने राष्ट्रके प्रधान प्रधान पुरुषोंकी गवाहियां लीं और अन्तमें १७ अक्तूबर १९२२ को अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की।

गवाहियोंसे जो कुछ अवस्था प्रतीत हुई उसके अनुसार कमेटीके सदस्योंने अनेक सिफारिशें की हैं।

इन सिफारिशोंके देखनेसे स्पष्ट विदित हो जाता है कि छोटी मोटी बातोंमें समितिके सदस्योंमें मतभेद है। पर प्रधान विचारणीय विषय समितिके सामने तीन थे। ब्रिटिश 'वस्तुओंका वहिष्कार सविनय अवज्ञा तथा कौंसिलोंका वहिष्कार।' प्रथम दो विषयों पर समितिके सभी सदस्य एक-मत हैं। केवल ब्रिटिश वस्तुओंके वहिष्कारकी शिफारिसमें राजागोपालाचारीने कुछ सुधारकी योजना की है। पर तीसरे प्रश्नपर अर्थात् कौंसिलोंके बहिष्कारके प्रश्न पर सदस्योंमें घोर मतभेद है। आधे सदस्योंकी राय है कि कौंसिलोंका बहिष्कार होना चाहिये और आधे सदस्य उसमें जानेकी व्यवस्था बतलाते हैं।

इसी समय अपनी अवधिको पूरा करके श्रीयुक्त देशबन्धु दास जेलसे मुक्त होकर आये। अमरावतीमें सार्वजनिक सभामें भाषण करते समय उन्होंने कौंसिलोंके जानेके पक्षमे अपनी राय दी। सविनय अवज्ञा जांच समितिकी रिपोर्ट पर विचार करनेके लिये नवम्बर २२, १९२२ को कलकत्तामें अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक हुई। उपस्थिति बडी ही अच्छी थी। प्रायः सभी सिफारिशें स्वीकार की गईं। पर कौंसिलोंके वहिष्कारके प्रश्न पर घोर मतभेद रहा। चार रोजतक सुबह शाम बैठक होती रही पर कुछ निर्णय नहीं

हो सका। नेताओंने अलग बैठ कर परामर्श किया पर किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सके। निदान इस प्रश्नको गया कांग्रेसके लिये टाल कर अधिवेशन समाप्त किया गया।

गया कांग्रेस

गया कांग्रेसका अधिवेशन भी बड़े ही महत्वका था। कांग्रेसके भविष्यका निर्णय इसी कांग्रेसके हाथमें था। देशने अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करनेके लिये देशबन्धु दासको फिर राष्ट्रपतिके पदके लिये चुना। दिसम्बरके चौथे सप्ताहमें कांग्रेसका अधिवेशन स्वराज्यपुरीमें बड़े उत्साहके साथ आरम्भ हुआ। कांग्रेसके सामने दो प्रधान प्रश्न थे। ब्रिटिश वस्तुओंका वहिष्कार और कौंसिलोंका प्रश्न। खुली कांग्रेसमें पहला प्रश्न रखा गया। प्रतिनिधियोंने इसे अस्वीकार किया। जागृतिका यह ज्वलन्त उदाहरण था। कांग्रेसके इतिहासमे यह प्रथम अवसर था कि विषय निर्धारिणी समितिमें बहुमतसे निर्धारित विषयको प्रतिनिधि लोग इस तरह अस्वीकार कर दें। कौंसिलोंके प्रश्न पर कई दिनतक विषय निर्धारिणीमें विवाद होता रहा। अनेक सुधार उपस्थित किये गये। हर तरहसे सुलहकी चेष्टा की गई पर फल कुछ नहीं निकला। खुली कांग्रेसमें यह प्रश्न उपस्थित किया गया और जनताने अधिक सम्मतिसे कौंसिलोंके वहिष्कारका समर्थन किया। इस प्रकार गया कांग्रेसका अधिवेशन समाप्त हुआ और कांग्रेस अर्थात् असहयोगियोंमें दो दल हो गया।

कांग्रेस और बाद

कांग्रेसका अधिवेशन समाप्त हुआ। दूसरे ही दिन अखिल भारत वर्षीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक गयामें हुई। श्रीयुत देशबन्धुने कमेटोसे स्तीफा दिया। पण्डित मोती-लालजी नेहरू, हकीम अजलम खां, बाबू भगवान दास, बाबू श्रीप्रकाश तथा अन्यान्य नेताओंने भी सम्बन्ध तोड़ा। श्रीयुत दासके नेतृत्वमें इन लोगोंने अलग दल कायम किया और इसका नाम रखा "कांग्रेस खिलाफत स्वराज्य पार्टी।" इनका लक्ष्य कांग्रेसके अन्दर रह कर भारतको स्वराज्यके लिये तैयार करना और स्वराज्य दिलाना है। अपने दलके लिये तैयारी करनेके हेतु श्रीयुत दासने अभी भिन्नभिन्न स्थानोंमें यात्रा की। काशीमें बाबू भगवान दासके साथ स्वराज्यकी व्याख्या तैयार की। जिसपर विचार हो रहा है।

इसी बीचमें मौलाना अबुल कलाम आजाद भी अपनी अवधि समाप्त करके छूट आये। दोनों दलोंमें सुलह करानेके लिये वे बम्बई गये। इसके लिये उन्होंने सेठ छोटानीके साथ घोर प्रयत्न किया। बम्बईमें वर्किङ्ग कमेटीकी बैठक हुई। सुलहनामेंका मसौदा तैयार किया गया। मौलाना साहब यह मौसादा लेकर इलाहाबाद पहुंचे। पंडित मोतीलाल नेहरू तथा हकीम अजमलखां साहबने इससे सम्मति प्रगट की। निदान इसपर

निर्णय करनेके लिये २७ फरवरीको अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक हुई। उस बैठकमें यह निर्णय हुआ कि अप्रेल मास तकके लिये दोनोंदल अपने भिन्न मतोंका प्रचार छोड़कर चन्दासंग्रह करने तथा स्वयंसेवक दलका संगठन करनेमें हा अपनी शक्ति लगावें। देखें इस समझौतेका क्या फल निकलता है।

यहा आजतकका स्वराज्यका इतिहास है। देखें दोनों दल देशको किस तरह ले जाते हैं और मतभेदका क्या परिणाम निलकता है।

यही असहयोग आन्दोलनका संक्षिप्त इतिपास है। यङ्ग इण्डियाके लेखोंमें पाठकोंको इसका विस्तृत विवरण मिलेगा।

उपसंहार

इन दो वर्षोंमे जा जागृति हुई है, देशको जो प्रकाश मिला है उसको उपलब्धि शायद १५० के ब्रिटिश शासनसे भा नहीं हो सकी थी। नागपूर कांग्रेसके अधिवेशनके समाप्त होनेके थोड़े ही दिन बाद कांग्रेसका सम्वाद नगर नगर और घर घर पहुंच गया। इस समय देश निरीह अवस्थामें निराशाके घोर अन्धकारमें पड़ा था। पर इस आन्दोलनने जादूका काम किया। निराशाको भो आशाकी मोटी रेखा दीखने लगी। राष्ट्रका भाग्यसूर्य गगनमें तपने लगे। लोगोंने राष्ट्रके बलको भली भांति समझ लिया। उन्हें यह

बात विदित हो गई कि सरकार कितनी भी जोरावर क्यों न हो यदि राष्ट्रकी प्रजाने अपनेको स्वाधीन बनाना तथा उसके लिये यन्त्रणा सहना स्वीकार कर लिया है तो कोई कारण नहीं है कि सरकार सिर न झुकावे। उसे विवश होकर सिर झुकाना ही पड़ेगा। उन्हें विदित हो गया है कि इन अपमानों तथा दीनताओंके कारण स्वयं हम हैं। जिस दिन हम इच्छा कर लेंगे कि कलसे हम अपमानित नहीं होना चाहते, नीच बन कर नहीं रहना चाहते और उसके निमित्त एक होकर डट गये तो फिर क्या मजाल कि कोई हमें जरा भी पीछे हटा सके। इसके लिये भारतकी भिन्न भिन्न जातियोंमें—हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख पारसी, ईसाई यहूदी तथा अन्य जातियां—परस्पर मेल तथा सद्‌भाव होना आवश्यक है। इस महत्वशाली युद्धका सफल बनानेके लिये सबसे आवश्यक बात यह है कि पञ्चायतें खोली जायं और ग्रामको ग्रामसे जिलेको जिलेसे, प्रान्तको प्रान्तसे अर्थात् सबको मिलाकर एक कर दिया जाय। इसके लिये दूसरी आवश्यकता इस बात की है कि चरखे तथा करघेका प्रचार करके देशी खद्दरको इतना पर्याप्त तैयार कर दिया जाय कि देशका एक पैसा भी विदेश न जाने पावे। इस प्रकार आर्थिक कठिनाई हल हो जायगी। सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि समाजके सुधारकी योजना होनी चाहिये। समाजके अन्तर्गत शराब खोरी, मुकदमेबाजी आदि अनेक तरहकी बुराईयां आ गई हैं, उन्हें दूर करना अत्यन्त आवश्यक

है। तथा अछूत जातियोंका उद्धार इनसेभी आवश्यक है। इसके कारण जो ह्रास हो रहा है उसका अनुमान तक नहीं किया जा सकता।

असहयोग आन्दोलनका मुख्य अभिप्राय भारतीय समाजका शुद्ध बनाकर उसका संगठन करना है। इसको शक्ति आत्मबल पर निर्भर है, पशुबलमें इसका ह्रास है। यही कारण है कि इस आन्दोलनने अथवा शब्दोंमें अपील की है। यदि भारत इस पराधीनता, और निरीह अवस्थासे विना शस्त्र प्रयोगके ऊपर उठ गया तो वह संसारके सामने एक अभूत पूर्व उदाहरण रखेगा ;और इस कोठीवाद तथा साम्राज्यवादके युगपर पानी फेर देगा। ईश्वर करें इसकी आशा फलवती हो।

छबिनाथ पाण्डेय

यंग इण्डिया

प्रथम भाग

॥ वन्देमातरम् ॥

यंग इण्डिया

परिचय

जिस समय यंग इण्डियाका स्थान बम्बईसे अहमदाबाद लाया गया था उस समय ८ अक्तूबर १९१९ के अंकमें महात्माजीने निम्नलिखित लेख लिखा था :—

इस अङ्कसे यङ्ग इण्डिया नया रूप धारण करता है। श्रीयुत हार्निमैनके निर्वासन और बम्बे क्रानिकलका गला घूंटनेके बादसे यह पत्र अर्धसाप्ताहिक रूपमें प्रकाशित होता रहा। जबसे बम्बे क्रानिकल पुन प्रकाशित होने लगा है, हम और इसके सञ्चालकगण इसे पुनः साप्ताहिक कर देनेका विचार कर रहे थे। गुजरातीके नवजीवनको साप्ताहिकका रूप देकर उसे हमारे हाथमें दे देनेसे उस विचारका शीघ्र फैसला हो गया, क्योंकि एक साथ एक साप्ताहिक और एक अर्ध साप्ताहिक पत्रका सम्पादन हमारे लिये अति कठिन कार्य है और साप्ताहिक यङ्ग इण्डिया उतना

ही काम कर सकता है जितना अर्ध साप्ताहिक। अब इस बातकी सदा चेष्टा की जायगी कि इसमें उतने ही लेख रहेंगे जितने कि सप्ताह भरमें अर्ध साप्ताहिक यङ्ग इण्डियामें रहते थे।

* * * *

अभीतक यङ्ग इण्डियामें अधिकांश पञ्जाबकी दुर्घटनापर ही लेख रहते थे पर यह काला बादल अब हट रहा है और हमें भी अपनी शक्ति दूसरी ओर चलानेका अवसर मिलेगा।

हमें अंग्रेजी पत्रका सम्पादन करना जरा भी रुचिकर प्रतीत नहीं होता। पर कई कारणोंसे हमें वाध्य होकर अंग्रेजीमें ही यङ्ग इण्डिया निकालना पड़ता है। उसमेंसे प्रधान कारण तो यह है कि अभी हमारे देशके अधिकांश निवासी हिन्दी भाषासे सर्वथा अनभिज्ञ हैं, न तो अपने भावको हिन्दीके द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं और न दूसरोंके भावको समझ ही सकते हैं। इसमें मद्रास प्रान्त तो एकदमसे पीछे है। और गौण कारण यह है कि भारत सरकार तक अपना मत पहुंचानेका दूसरा कोई अन्य सहारा नहीं है। राज्यकी प्रचलित भाषा अंग्रेजी है और सरकारी आलोचना जब तक अंग्रेजीमें न लिखी जाय, देखा या उसपर विचार नहीं किया जा सकता।

पर नवजीवनके प्रकाशनसे हमें नई बात मालूम हुई है। यङ्ग इण्डियाकी ग्राहकसंख्या इस समय केवल १२,०० है पर नवजीवनकी ग्राहक संख्या १२,००० है और यदि कोई छापनेवाला मिल जाय तो २०,००० प्रतियां तक खप सकती हैं। इससे

प्रत्यक्ष है कि मातृभाषाकी धीरे धीरे प्रतिष्ठा बढ़ने लगी है। हमें यह लिखते और भी प्रसन्नता होती है कि हमारे नवजीवनके उदार पाठकोंमें अनेक किसान और मजूर है। वे भी भारतके अङ्ग है। उनकी हीनता, दीनता और दरिद्रता भारतके लिये पाप है। उनका सुधार और उन्नति ही भारतको मनुष्यके रहने योग्य देश बना सकती है। उनकी संख्या भी कम नहीं है। प्रायः ८० प्रति सैकड़े इनकी ही संख्या है। और अँग्रेजोंका अनुमान करते तो हँसी आती है। भारतमें उनकी संख्या भूसीमें अन्नके दानेके बराबर है।

यही कारण है कि यद्यपि हमारा दृढ़ मत है कि भारतका उपकार करनेवाले प्रत्येक उदारचित्त महानुभावोंकी चेष्टा भारतवासियोंके समक्ष अंग्रेजी जाननेवालोंके सुविचारोंको मातृभाषामें लिखकर रखनेकी होनी चाहिये, फिर भी जब तक हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं हो जाती और जब तक इसका प्रचार सारे भारतमें नहीं हो जाता, तथा जब तक प्रत्येक व्यक्ति इसके प्रयोगकी योग्यता नहीं प्राप्त कर लेता, जब तक हिन्दी शिक्षाका माध्यम नहीं बन जाती तब तक हमें बाध्य होकर उन लोगोंके ख्यालसे जिनमें हिन्दीका प्रचार नहीं है विशेषकर मद्रासवालोंके लिये, अंग्रेजी भाषाका ही प्रयोग करना पड़ेगा।

* * * *

सर्वसाधारणके दोषों और त्रुटियोंकी कड़ी आलोचना करते हुए यङ्ग इण्डियाका प्रधान लक्ष्य सत्याग्रहकी मीमांसा करना

और सत्याग्रहकी शिक्षा देकर जनताको सत्याग्रहके लिये तैयार करना होगा। सत्याग्रहके क्या रूप हैं, सत्याग्रहीको अपनी आत्मा किस प्रकार शुद्ध करनी चाहिए, सच्चा सत्याग्रही किस प्रकार हो सकता है, इत्यादि बातोंपर अधिक प्रकाश डालनेकी चेष्टा की जायगी।

प्रथम खण्ड

सत्याग्रह आन्दोलन

सत्याग्रह आन्दोलन

सत्याग्रहकी मीमांसा

सत्याग्रह आन्दोलनकी आरम्भिक समालोचनाके रूपमें इस लेखको महात्मा गांधीने हण्टर कमेटीके समक्ष उपस्थित किया था। यह लेख यंग इण्डियाके नवम्बर १६१६ के अंकमें प्रकाशित हुआ था।

साधारण सिद्धान्त

विगत ३० वर्षों से मैं सत्याग्रहका अभ्यास और प्रचार करता चला आ रहा हूं। इतने दिनोंके अनुभवसे मुझे जो कुछ मालूम हुआ है उसके आधारपर मैं यही कह सकता हूं कि सत्याग्रहका सिद्धान्त शनैः-विकासका सिद्धान्त है अर्थात् तपद्वारा आत्माको पूर्णरूपसे जागृत करना ही इस व्रतका उद्देश्य है।

सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोधमें उतना ही अन्तर है जितना उत्तर और दक्षिणमें है। निष्क्रिय प्रतिरोध दुर्बलोंका

अस्त्र है और अपनी सिद्धिके लिये आवश्यकता पड़नेपर यह बल प्रयोगकी भी मीमांसा करता है अर्थात् निष्क्रिय प्रतिरोधक सिद्धान्तमें सर्वथा 'शान्ति' धारण किये रहनेकी मीमांसा नहीं हैं, आवश्यकता पड़नेपर बलप्रयोग किया जा सकता है । पर सत्याग्रह बलवानोंका अस्त्र है और इसको स्वीकार करनेवाले को किसी भी अवस्थामें बलप्रयोगकी दीक्षा नहीं है, अर्थात् सत्याग्रही सदा शान्त रहेगा और किसी भी अवस्थामें बल-प्रयोगसे काम न लेगा।

सत्याग्रह शब्दको मैंने ही जन्म दिया है। इसका पहले पहल प्रयोग दक्षिण अफ्रिकामें उस युद्धका नाम प्रगट करनेके लिये किया था जिसे वहांके निवासी भारतवासी प्रायः आठ वर्षोंसे चला रहे थे। उस समय निष्क्रिय प्रतिरोधका युद्ध संयुक्तराज्य, इङ्गलेण्ड और दक्षिण अफ्रिकामें चल रहा था। उस निष्क्रिय प्रतिरोधके युद्धसे भारतीयोंके इस युद्धका भेद दिखलानेके लिये ही मैंने इस शब्दका प्रयोग किया था।

इसका शाब्दिक अर्थ है सचाई पर डटे रहना, इस लिये इसे सत्यमार्ग या सत्यबल कह सकते है। मैंने इसका नाम प्रेमबल या आत्मबल भी रखा है। जिस समय इस अस्त्रका प्रचार मैंने पहले.पहल किया था उसी समय मुझे स्पष्ट हो गया था कि सत्यबलकी सफलता केवल इतनेसे ही नहीं हो सकती कि सत्याग्रही सदा इस बातको चेष्टा करता रहे कि वह अपने शत्रु पर अस्त्र प्रहार नहीं करता, उसके साथ ज्यादती नहीं

करता, वल्कि इस वातसे है कि धैर्य और शान्तिके शस्त्रोंका प्रयोग करके वह अपने अन्तर्गत सभी बुराइयों और दुर्बलताओंको मिटानेकी चेष्टा करता रहे। क्योंकि सम्भव है कि जो मुझे अच्छा और गुण प्रतीत होता हो वही दूसरेको बुरा और दुर्गुण प्रतीत होता हो। धैर्यके माने यह हैं कि अपने स्वयं कष्ट उठाना। इसलिये सत्याग्रहके सिद्धान्तका असली रूप यह हुआ कि इस व्रतको स्वीकार करनेवाला आत्मबलपर सदा निर्भर रहकर अपने शत्रुको किसी तरहका कष्ट न देकर अपनी साधनाको पूरी करनेके लिये, जिस निमित्त सत्याग्रहका व्रत धारण करता है, उसे प्राप्त करनेके लिये, स्वयं कष्ट भोगेगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि राजनैतिक क्षेत्रमें सत्याग्रहका क्या अभिप्राय हो सकता है? राजनैतिक युद्ध—जहां सत्याग्रहके प्रयोगकी आवश्यकता पड़ेगी—प्रायः राजा और प्रजामें होगा। उस अवस्थामें बुराइयोंका एकमात्र प्रतिकार अत्याचारी नियमोंका विरोध करना है। मान लीजिये कि व्यवस्थापकोंने किसी कानूनको बनाया जो सर्वथा जालिम और अत्याचारी है। प्रजाने अनुनय विनय तथा प्रार्थना पत्र द्वारा उन नियमोंमें परिवर्तन तथा सुधारके लिये यत्न किया। व्यवस्थापकोंने उसपर कान न दिया। अब प्रजाके लिये दो ही मार्ग रह गये। यदि वह उन बुरे कानूनोंको स्वीकार करना नहीं चाहती, तो वह बल प्रयोगसे व्यवस्थापकोंको लाचार कर दे कि वे उसकी बात

माननेके लिये बाध्य हो जायं या उन कानूनोंकी अवज्ञा करके उसका फल भुगतनेके लिये तथा उसके कारण यातनायें सहनेके लिये तैयार हो जाय। इस उदाहरणसे सत्याग्रहका अर्थ सविनय अवज्ञा या सविनय प्रतिरोध होता है। सविनय इस लिये कि यह हिंसाके भावसे रहित है।

इतना लिखनेके बाद सत्याग्रही और साधारण कानून तोड़नेवालेमें जो भेद है उसे भी यहीं लिख देना आवश्यक होगा। साधारण कानून तोड़नेवाला चालबाजीसे या धोखा देकर कानून तोड़ता है और कानून तोड़नेके निमित्त जो दण्डकी धारायें बनी हैं उनसे सदा बचे रहनेकी चेष्टा करता रहता है, अर्थात् कानून तोड़ता है पर दण्डसे डरता है। पर सत्याग्रहीका आचरण इससे एक दम भिन्न होता है। सत्याग्रही राज्यके कानूनोंको डरके मारे नही मानता, उनको इसलिये नही मानता कि अन्यथा उससे बलपूर्वक स्वीकार कराये जायंगे बल्कि इसलिये कि वह उन्हें उस समाजकी समृद्धिके लिये उपयोगी समझता है जिसमे वह रहता है। पर कभी कभी—बहुत कम—ऐसा भी अवसर आ जाता है कि वह किसी कानूनको इतना अनुचित समझता है कि उनको मानना वह नितान्त अनुचित और अपमान जनक समझता है। ऐसी अवस्था उपस्थित होने पर वह सत्याग्रह करता है और सविनय अवज्ञा द्वारा उन कानूनोको भंग करता है और शान्तिपूर्वक उनके तोड़नेके निमित्त दिये गये दण्डको भुगतता है। इतना हो नहीं।

व्यवस्थापकोंकी बेईमानी और अन्यायके प्रति अपनी नाराजगी दिखलानेके लिये वह प्रचलित शासन प्रणालोके साथ या राज्यके साथ असहयोग कर लेता है। उस अवस्थामें वह राज्यके उन अन्य नियमोंकी भी अवज्ञा करता है जिनके तोड़नेसे चारित्रिक पतनकी सम्भावना न हो।

मेरे मतसे सत्याग्रहका व्रत इतना पूर्ण तथा महान् है और इसके सिद्धान्त इतने सरल है कि इसकी शिक्षा छोटे छोटे लड़कों तकको दी जा सकती है। इसकी शिक्षा मैंने हजारों उन नर नारियों, वालवृद्ध तथा युवकोंको दी थी जिन्हें लोग शर्तबन्द कुली कहते हैं और यह लिखने मुझे अतिशय प्रसन्नता होती है कि इसमें मुझे पूरी सफलता मिली।

रौलट बिल्स

इसी सिद्धान्तके आधारपर मैंने रौलट बिलोंका विरोध किया। जिस समय रौलट बिलोंका मजमून सरकारी गजटमे निकला मैंने उन्हें पढ़कर देखा कि मनुष्यकी स्वतन्त्रताको छीननेका उनमे इतना जबर्द्दस्त बल है कि उनका विरोध पूर्ण शान्तिके साथ होना आवश्यक है। मैंने यह भी देखा कि प्रत्येक विचारवान भारतवासीका यही मत है। मैं इस बात को जोर देकर कह सकता हू' कि कितना भी उच्छृंखल शासन क्यों न हो उसे इस बातका जरा भी अधिकार नहीं है कि वह ऐसे कानून बनावे जिसके द्वारा सारी प्रजा पर एक साथ ही वज्रपात

हो, फिर भारत सरकारके विषयमें तो यह बात और भी अधिक लागू है क्योंकि उसका सञ्चालन स्थिर सिद्धान्त और नियमोंके द्वारा होता है। मैंने यह भी देखा कि यदि बलप्रयोग, रक्तपात और असफलतासे इस अन्दोलनकी रक्षा करनी है तो इसके लिये कोई निर्दिष्ट मार्ग बना लेना भी आवश्यक होगा, जिस परसे होकर लोग चलें।

छठीं अप्रेल

इतना देख भालकर मैंने यही स्थिर किया कि ऐसी अवस्थामे एकमात्र सत्याग्रह ही हमारा रक्षक हो सकता है। निदान मैंने देशके सामने सत्याग्रहका सिद्धान्त रखा। मैंने इसके सविनय प्रतिरोधके अंगपर विशेष ज़ोर दिया। मैं पहले ही लिख चुका हूं कि सत्याग्रहका मूलमन्त्र अन्तरात्माकी पवित्रता है, इसलिये मैंने अनुरोध किया कि छठीं अप्रेलको लोग सारा कामकाज बन्द कर दें, दिन भर (२४ घंटेतक) उपवास करें, तथा आत्मशुद्धिके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करें। यह काम इतना जल्दी किया गया था कि न तो इसके लिये किसी तरहका संगठन हो सका था और न किसी तरहकी तैयारी कीगई थी। फिर भी समस्त भारतकी जनताने इसको जिस प्रकार अपनाया उसका उदाहरण नहीं। यहांतक कि सुदूर देहातोंमें भी छठी अप्रेल मनायी गई। मेरे मनमें यह बात ज्योंही आई थी मैंने उसे प्रगट कर दिया था। छठीं अप्रेलको जनताने

किसी तरहका बल प्रयोग नहीं किया और न पुलिसके साथ कोई ऐसी दुर्घटना हुई जिसका वर्णन किया जा सके। हड़ताल आपसे आप हुई थी। लोगोंने अपनी इच्छाके अनुसार ही हड़ताल किया था।

मेरी गिरफ्तारी

छठीं अप्रेलके उपवास और व्रतके बाद ही सविनय अवज्ञा प्रारम्भ होनेवाली थी। इसके निमित्त सत्याग्रह सभाकी निर्धारिणी समितिने चन्द सिविल कानूनोंको चुना, जिनको तोड़नेका निश्चय था। इनमेंसे एक कानून यह भी था कि जब्त पुस्तकोंको खुले तौर पर बांटना और बेंचना। यह काम हम लोगोंने जोरोंमें जारी किया और अनेक जब्त पुस्तकें बेंची और बांटी जाने लगी।

उपद्रव

छठीं अप्रेलने भारतमें एक अपूर्व ज्योतिका उदय कर दिया। लोगोंके हृदयोंमें वह प्रकाश और वह शक्ति आ गई जो उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। जिन लोगोंके दिलोंमें लाल पगड़ीका हौआ समाया था वे अब बड़े बड़े अधिकारियों तककी परवा नहीं करने लगे। इसके अतिरिक्त आज तक साधारण जनता उदासीन पड़ी थी। नेताओंने उन्हे जगानेका प्रबन्ध नहीं किया था, उनका सञ्चालन नहीं किया था। निदान उनमें संगठनका सर्वथा अभाव था। उनके हाथमें एक बलिष्ठ अस्त्र आ गया सही

पर न तो वे इसको समझ सकते थे और न इसके प्रयोगके बारेमें कुछ जानते थे।

दिल्लीका जनता जो आजतक निश्चेष्ट और उदासीन पड़ी थी, एकाएक उठ खड़ी हुई। वहांके नेतागण उनपर अधिकार न कर सके। अमृतसरकी अवस्था भी नाजुक थी। डाक्टर सत्यपालने मेरे पास लिखा था कि आप यहां आकर लोगोंको सत्याग्रहका मर्म सुना जाइये नहीं तो महा अनर्थ होगा। इस समय भी दिल्लीसे स्वामी श्रद्धानन्दने तथा अमृतसरसे डाक्टर सत्यपालने लिखा कि जनता उत्तेजित हो गई है। आपके आनेसे शान्ति हो जानेकी संभावना है। इसलिये आप चले आइये। इस निमित्त न तो मैं कभी पञ्जाबमें ही गया था और न अमृतसरमें ही। अधिकारियोंने इन दोनों पत्रोंको पढ़ लिया था और वे जानते थे कि मेरी इस यात्राका उद्देश्य शान्तिमय है।

आठवीं अप्रेलको मैंने बम्बईसे दिल्ली और पञ्जाब जानेके लिये प्रस्थान किया। मैंने डाक्टर सत्यपालको तार दे दिया था कि मुझसे दिल्लीमें मिलिये क्योंकि मेरा इनके साथ कभी पहलेका परिचय नहीं था। मथुरा पहुंचते न पहुंचते मुझे सरकारी सूचना द्वारा दिल्ली प्रान्तमें प्रविष्ट होनेसे रोका गया। मैंने देखा कि इस आज्ञापत्रको मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मैंने इसकी अवज्ञा की और आगे बढ़ा। पलवाल पर मुझे दूसरी नोटिस मिली। इस नोटिसके द्वारा मेरा पंजाबमें प्रवेश रोका गया था और बम्बई प्रान्तके बाहर कहीं

अन्यत्र जानेका मुझे अधिकार नहीं दिया गया था। वहीं पर पुलिसके एक दलने मुझे गिरफ्तार कर गाड़ीसे उतार लिया। पुलिसके जिस सुपरिण्टेण्डेटने मुझे गिरफ्तार किया उसने मेरे साथ बड़ा अच्छा बर्ताव किया। वहांसे मैं सबसे पहली गाड़ीमें मथुरा लाया गया। वहांसे माल गाड़ीमें रवाना होकर दूसरे दिन प्रातःकाल सिवाई मधुपुर पहुंचा। यहांसे पेशावरसे आनेवाली बम्बई मेलमें सवार कराया गया और सुपरिण्टेण्डेण्ट वाउरिंग मेरे निरीक्षक हुए। ता० १० अप्रेलको मैं बम्बई लाकर छोड़ दिया गया।

इतने ही समयमें मेरी गिरफ्तारीका समाचार सारे भारतमें फैल गया। अहमदाबाद, वीरगांव और गुजरातमें इसका विशेष प्रभाव पड़ा। जनतामें घोर उत्तेजना फैल गई। दूकानें बन्द हो गईं कारबार रुक गया, चारों तरफ भीड़ इकट्ठा होने लगी और उपद्रव आरम्भ हो गया। बिना किसी रोक टोकके उत्तेजित जनता जो कुछ कर सकती है वह हुआ। मारपीट लूट पाट, हत्या, आग लगाना, तारके सामानोंको काट देना और गाड़ियोंको लाइनों परसे उलट देना, इत्यादि सभी प्रकारके उपद्रव हुए।

उपद्रवका कारण

इसके थोड़े ही दिन पूर्व खैरागढ़की घटना हुई थी। उस समय मैंने वहांके दीन किसानोंके साथ काम किया था।

हजारों नरनारियोंसे मेरी जान पहचान हो गई थी। श्रीमती अनुसूया साराभाईके आग्रह करनेपर उनके साथ मैंने अहमदाबादको मिलोंके कुलियोंके साथ भी काम किया था। मिलोंके मजूर उनकी उदार हृदयतापर मुग्ध थे और उनको देवताको तरह मानते थे। उसी समय अहमदाबादमें गोगा (अफवाह) फैला कि श्रीमती अनुसूया साराभाई भी गिरफ्तार कर ली गई। मिलके मजूर इस सम्वादसे बेतरह उत्तेजित हो गये। उनका क्रोध उबल आया। गिरगांवके मिलके कुलियोंमें भी हम दोनोने काम किया था और संकटके दिनोंमें उनकी सहायता की थी। इससे ये भी उत्तेजित हो गये। इन स्थानोंमें जो कुछ ज्यादतियां हुईं उनका एकमात्र कारण मेरी गिरफ्तारी और श्रीमती अनुसूया साराभाईकी गिरफ्तारीका गोगा था।

इससे पहले भी मुझे भारतके कोनेकोनेमें जानेका और हर तरहके लोगोंसे मिलनेका अवसर मिल चुका था। मेरे साथ लोगोंका बड़ी स्वतंत्रताके साथ मिलनाजुलना होता था। मेरा पक्का विश्वास है कि यह धारणा एकदम निर्मूल है कि इन ज्यादतियोंके पीछे जनताकी क्रान्तिकी प्रवृत्ति छिपी थी। ऐसी कोई बात नहीं थी और न इसका कोई लक्षण ही था। उत्तेजित लोगोंने जो कुछ किया था उसे 'क्रान्ति' का रूप किसी भी प्रकार नहीं दिया जा सकता।

कार्रवाई

सरकारी कार्रवाई एकदम अनुचित थी। लोगोंपर राजविद्रोहका अभियोग चलाना सरासर भूल थी। इस आचरणसे सरकारने लोगोंके साथ बड़ी सख्तीका बर्ताव किया और कहीं कहीं अधिक दण्ड प्रदान किया। क्षतिपूर्तिके लिये अहमदाबाद नगरपर जो जुर्माना बैठाया गया वह अनुमानसे भी कहीं अधिक था और जिस तरह यह जुर्माना गरीब मजूरों और कुलियोंसे वसूल किया जा रहा था नितान्त क्रूर और उत्तेजक था। मेरी समझमे नहीं आता कि गरीब मजूरोंपर एक लाख सरसठ हजार रुपया जुर्माना ठोक देना कहांका न्याय था। बरेजडीहके किसानोंसे तथा नदियादके बनियों और किसानोंसे जो रकम वसूल की गई थी उसमें क्रूरता और बदलेकी बू आती थी। मेरी समझमें अहमदाबादमें मार्सल लाके जारी करनेका भी सरकारके पास कोई यथेष्ट कारण नहीं था और न इसकी आवश्यकता ही थी। इसके प्रयोगमे जिस लापरवाही और बेरहमीसे काम लिया गया है, उससे हजारों बेकसूरोंकी जानें मुफ्तमें गई हैं।

मेरी समझमें बम्बईके अधिकारियोंने इस समय दूरदर्शिता और धीरतासे काम लिया, क्योंकि उस समयकी अधिकारियोंको उत्तेजनाकी प्रवृत्ति और जनताके अविश्वासका स्मरण करके उनके आचरणपर आश्चर्य होता है। विशेष कर ऐसे समय जब कि जनताकी उस गाड़ीको उलट देनेकी चेष्टाके कारण—जिसमे

शान्ति स्थापित करनेके लिये सेना आ रही थी—उनका मिजाज और भी बिगड़ गया था।

महात्माजीका बयान

लार्ड हण्टरसे प्रश्नोत्तर।

प्रश्न—मिस्टर गान्धी, मेरी समझमें आप ही इस सत्याग्रह आन्दोलनके जन्मदाता हैं ?

उत्तर—जी हां।

प्रश्न—क्या आप संक्षेपमें सत्याग्रहका परिचय हमें दे सकते हैं ?

उत्तर—यह आत्मबल और सत्यका सिद्धान्त है। पशुबल और हिंसाको रोककर उसके स्थानपर इसका प्रचार करनेका मेरा अभिप्राय था। यह एक तरहका घरेलू अस्त्र है। इसका प्रचार मैं राजनैतिक क्षेत्रमें भी करना चाहता था। मुझे जो कुछ अनुभव प्राप्त हुआ है उससे मेरी यही धारणा हो गई है कि राज्यकी प्रचलित बुराइयोंको रोकनेके लिये अन्य देशोंमें जो हिंसाकी प्रवृत्ति वर्तमान है उससे बचकर भारत यदि अपना उद्धार करना चाहता है तो उसके लिये एकमात्र यही शस्त्र है।

प्रश्न—आपने रौलट ऐक्टके विरोधमें इस शस्त्रका प्रयोग किया था और उसी सम्बन्धमें आपने लोगोंसे सत्याग्रहके प्रतिज्ञापत्रपर हस्ताक्षर करनेका अनुरोध भी किया था ?

उत्तर—जी हां।

प्रश्न—क्या आप इस आन्दोलनमें अधिकाधिक लोगोंको लाना चाहते थे ?

उत्तर—हां, वहीं तक जहां तक सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तके अनुकूल था। यदि मेरी समझमें पूरे एक करोड़ आदमी इस सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तके अनुसार चलनेके योग्य हो जाते तो मैं बिना किसी सोच विचारके सबको साथ लेनेको तैयार था।

प्रश्न—क्या यह आन्दोलन सरकारकी मन्शाके एक दम विरुद्ध नहीं था, क्योंकि आप सरकारकी आज्ञाके सामने सिर न झुकाकर सत्याग्रह कमेटीकी आज्ञाओंका पालन करना चाहते थे ?

उत्तर—इस आन्दोलनका इस रूपमें किसीने भी नहीं समझा था और न जनताने ही इसका यह अभिप्राय लगाया था।

प्रश्न—मेरा अनुरोध है कि आप सरकारकी दृष्टिके अनुसार इस आन्दोलनपर विचार करें। मान लीजिये कि आप किसी देशके शासक हैं और उस देशकी प्रजाने उसी तरहके कानूनोंको तोड़नेके लिये आन्दोलन उठाया जिस तरहके कानूनोंके तोड़नेकी राय आपकी सत्याग्रह कमेटी दे रही है। ऐसी अवस्थामें आप उस आन्दोलनको किस दृष्टिसे देखते ?

उत्तर—इस प्रकार सत्याग्रहके उच्च सिद्धान्तकी पूरी तरहसे मीमांसा नहीं हो सकती। आपके ही कथनानुसार यदि मैं किसी देशका शासक होता और यदि मेरे सामने ऐसी समस्या

उपस्थित होती कि कुछ लोग सत्यकी खोजमे अहिंसाके पथ पर अटल रह कर अत्याचारी कानूनोंसे अपनी रक्षाका यत्न कर रहे हैं तो मैं उनका सहर्ष स्वागत करता और उनकी गणना न्याय-प्रेमियोंकी सर्वोच्च कोटिमें करता और शासककी हैसियतसे मैं उन्हें अपना दाहिना हाथ बना लेता क्योंकि उनकी सहायतासे मैं कभी सत्य और न्याय मार्गसे भ्रष्ट नहीं हो सकता था।

प्रश्न—पर प्रत्येक कानूनके विषयमे मतभेद हो सकता है कि यह उचित है कि अनुचित, संगत है या असंगत ?

उत्तर—यही कारण है कि सत्याग्रह सिद्धान्तमे हिंसाकी प्रवृत्तिको स्थान नहीं दिया गया है। सत्याग्रही अपने शत्रु और प्रतिद्वन्द्वीको भी उतनी ही स्वतन्त्रता देना चाहता है जितना आप भोगना चाहता है और इसीलिये वह आप कष्ट झेलना स्वीकार करता है पर दूसरोंको कष्ट देना नहीं चाहता।

प्रश्न—मैं इसपर दूसरी दृष्टिसे विचार कर रहा हूं अर्थात् शासनकी सार्थकताकी दृष्टिसे। मैं यह देख रहा हूं कि क्या ऐसी अवस्थामे किसी प्रकारका शासन चल सकता है जब वहांकी प्रजाका एक दल सरकारके सिद्धान्तों और मतोंको न स्वीकार कर एक स्वतन्त्र दलको आज्ञाको माननेके लिये तैयार हो ?

उत्तर—मेरा अनुभव तो आपके कहनेके एकदम प्रतिकूल है। दक्षिण अफ्रिकामें मैंने यह संग्राम आठ वर्ष तक चलाया था और मैंने देखा था कि शासनके कार्यमें इसके द्वारा किसी तरह-

की बाधा नहीं पड़ती थी। उस समय दक्षिण अफ्रिकाके प्रधान शासक जनरल स्मट्स थे। आठ वर्षतक उन्हें कड़ी आंचमें तपना पड़ा था। पर अन्तमें उन्होंने यही कहा था:—यदि प्रत्येक प्रजाका इन्हीं सत्याग्रहियोंकासा आचरण हो जाय तोभी डरनेकी कोई बात नहीं है।

प्रश्न—पर जिस प्रकारकी प्रतिज्ञा आपके इस सत्याग्रह अन्दोलनमें है उसका वहां कहीं चर्चा तक नही थी?

उत्तर—ठीक यही बातें वहां भी थीं। प्रत्येक सत्याग्रही-को इस बातकी प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह ऐसे किसी भी नियमको स्वीकार नहीं करेगा जिनको वह न्यायशून्य और अनुचित समझता है पर जो फौजदारी कानूनकी ध्वनि नही रखते और इसीके द्वारा वह सरकारको अपने सामने झुका देगा।

प्रश्न—सत्याग्रहकी प्रतिज्ञामे यही लिखा है न, कि केवल उन्हीं कानूनोंका तोड़ा जायगा जिनके तोड़नेकी सत्याग्रह कमेटी अनुमति देगी?

उत्तर—जी हां। यहां पर मैं आपकी कमेटीको यह समझा देना उचित समझता हूं कि कानून भंग करनेके लिये कमेटीकी शिफारिसपर इतना जोर क्यो दिया गया था। व्यक्ति-गत स्वच्छन्दता और उसके कारण होनेवाली उच्छृङ्खलताको रोकनेके लिये ही यह सब किया गया था। चूंकि यह आन्दो-लन सवसाधारणका था अर्थात् सामूहिक आन्दोलन था, इस

लिये मेरी समझमें एक ऐसी कमेटीका होना नितान्त आवश्यक था और इसीलिये हमलोगोंने उस कमेटीको बनाया ताकि कोई भी सत्याग्रही अपना कर्त्तव्य आप ही निर्धारित न कर ले और इसीलिये हमलोगोंने कमेटीको यह अधिकार दिया कि वह निश्चय करे कि कौन कानून तोड़े जायं।

प्रश्न—एक ही बीमारीके निदानमें भिन्न भिन्न डाक्टरोंके भिन्न भिन्न मत होते हैं। क्या सत्याग्रहियोंमें उस तरहका मतभेद सम्भव नहीं है?

उत्तर—आपका कहना सर्वथा सत्य है। मुझे भी यही अनुभव हुआ।

प्रश्न—मान लीजिये कि कोई सत्याग्रही किसी एक कानूनको न्यायसंगत और उचित समझता है पर निर्धारिणी समिति उसे असंगत समझती है और उसकी अवज्ञाकी मन्त्रणा देती है, ऐसी अवस्थामें वह सत्याग्रही क्या करेगा?

उत्तर—यह आवश्यक नहीं है कि वह उस कानूनकी अवज्ञा करे। ऐसे अनेकों सत्याग्रही हमारे साथ थे।

प्रश्न—क्या यह आन्दोलन भीषण नहीं है?

उत्तर—यदि आप मेरी दृष्टिसे विचार करें और यह देखें कि इसका मुख्य लक्ष्य देश और जनतामेंसे हिंसाकी प्रवृत्ति दूरकर देनी है तो आप भी मेरी भांति इसके पूर्णसमर्थक और पक्षपाती हो जायेंगे। मेरी तो यही धारणा है कि किसी भी उपायसे इस आन्दोलनको परम पवित्र बनाये रखना चाहिये।

प्रश्न—सत्याग्रहकी प्रतिज्ञाद्वारा क्या आप उस व्यक्तिके आत्मनिर्णयपर प्रतिबन्ध नहीं रख रहे हैं ?

उत्तर—सत्याग्रहकी जो व्याख्या मैंने की है यदि आप उस पर गौरसे विचार करें तो आपको निश्चय हो जायगा कि आपकी यह धारणा निर्मूल है। यदि आप यह दिखला दें कि मैने सत्याग्रह प्रतिज्ञाकी व्याख्या गलत तरीकेसे की है तो मैं उसका संशोधन और सुधार करनेके लिये तैयार हूं (इतना सुनकर लार्ड हण्टरने कहा, नहीं मिस्टर गांधी, मेरा यह अभिप्राय नहीं है), मै चाहता हूं कि मैं कमेटीके हृदयमेसे यह बात निकाल दूं कि सत्याग्रहका सिद्धान्त किसी भी प्रकार भया-वह है और यह सिद्ध करके दिखला दूं कि इसका प्रधान और सर्व प्रथम लक्ष्य देशमेसे हिसाके भावको दूर कर देनेका है।

इसके बाद लार्ड हण्टरने संक्षिप्तमे उन अवस्थाओंका वर्णन किया जिनके कारण रौलट ऐक्टका निर्माण हुआ, भारतीयोंके एकमत होकर इसके विरोध करनेका वर्णन किया। इसके बाद उन्होंने महात्मा गांधीसे पूछा कि इसके निर्माणमे क्या आपत्ति थी जो लोगोंने इसका इस तरह विरोध किया।

उत्तर—मैंने रौलट कमेटीकी रिपोर्टको शुरुसे अन्त तक पढ़ा और उन कानूनोंपर भी विचार किया जिनके निर्माणका शिफारिस की गई थी। पूरी तरहसे विचार करनेके बाद मैं इस परिणाम पर पहुंचा कि कमेटीने अपनी रिपोर्टमें जिन बातोंका उल्लेख किया है वास्तवमें उनका कहीं नाम निशान

नहीं है। मैंने यह भी देखा कि इस विधानके द्वारा मनुष्य-की नैसर्गिक स्वतन्त्रतापर भीषण वज्रप्रहार होगा और जिस देश, जाति या व्यक्तिको आत्म गौरवका लेशमात्र भी ध्यान है वह इस तरहके कानूनको कभी भी नहीं जारी होने देगी। व्यवस्थापक सभाओंके गैरसरकारी सदस्योंने जिस उत्साहसे इसका विरोध किया था उसे पढ़कर मेरी धारणा और भी पुष्ट हो गई। जब मैंने चारों ओरसे इसके प्रतिकूल आन्दोलन उठते देखा तो आत्माभिमानी पुरुषकी हैसियतसे चुपचाप बैठे रहना और इसकी उपेक्षा करना मेरे लिये नितान्त अनुचित और असम्भव था। निदान मैंने इसका पूर्णरूपसे विरोध करना ही स्थिर किया।

प्रश्न—उन कानूनोंका अभिप्राय अराजकता और क्रान्तिको दबानेका है। क्या आप इनको दबाना उचित नहीं समझते ?

उत्तर—जो अभिप्राय बतलाया गया है नितान्त उचित और प्रशंसनीय है।

प्रश्न—तो आपका विरोध इनके प्रयोगके तरीकेसे है ?

उत्तर—बहुत ठीक।

प्रश्न—कदाचित आपका अभिप्राय यह है कि प्रबन्धकोंके हाथमें आवश्यकतासे अधिक अधिकार दे दिया गया है ?

उत्तर—कहीं अधिक।

प्रश्न—क्या भारत रक्षा कानूनके अन्तर्गत प्रबन्धकोंके हाथमें इतना ही अधिकार नहीं दे दिया गया था ?

उत्तर—आपका कहना बहुत ठीक है। पर भारत रक्षा कानूनका निर्माण एक आवश्यक स्थितिके लिये किया गया था। उस समय यूरोपीय महासमर हो रहा था। युद्धके दिनोंमें घरकी अशान्ति या कलह बड़ी ही भयानक होती है। यदि भारतमे किसी तरहकी अशान्ति उत्पन्न हो जाती तो युद्धपर इसका बहुत बुरा असर पड़ता। इसीलिये इस कानूनका निर्माण किया गया कि प्रत्येक व्यक्ति इस काममे सरकारकी सहायता करे जिससे इस समय किसी भी भांति देशमें हिंसावृत्ति न जागने पावे। और व्यवस्थापक सभामें बड़ी ही खींचातानीके बाद इसपर अनुमति दी गई थी। पर रौलट ऐक्ट भारतरक्षा विधानसे एकदम भिन्न है। दूसरे, भारतरक्षा कानूनका जिस प्रकार दुरुपयोग किया जा रहा है उससे भी इस विधानके विरोधकी अधिकाधिक आवश्यकता प्रतीत होती है।

प्रश्न—मिस्टर गान्धी, आपको मालूम होगा कि रौलट ऐक्टका प्रयोग तभी सम्भव है जब प्रान्तीय सरकारको यह पक्का विश्वास हो जाय कि देशमें अराजकताकी सम्भावना है ?

उत्तर—पर व्यवस्थापकको हैसियतसे मैं उस प्रबन्धक विभागके हाथोंमे इतना भी अधिकार नहीं देखना चाहता जिसे मैंने समय समयपर इस देशमें पागलोंकी भांति काम करते देखा है।

प्रश्न—इससे विदित होता है कि आपके विरोधका कारण यह है कि भारतसरकारने किसी उपयोगी कानूनके प्रचारमें गलत तरीकेसे काम लिया। तो क्या इस बातका प्रतीकार कानूनी

कार्रवाईसे नहीं हो सकता था। क्या सरकारको उस कानूनके सुधारकी आवश्यकता दिखलाकर उसमें उचित संशोधन नहीं किया जा सकता था?

उत्तर—मैंने अतिशय विनीत भावसे दीनतापूर्वक लार्ड चेमस्फोर्डसे प्रार्थना की। मैंने इस विधानकी अनुपयोगितापर उनसे वादविवाद किया। इसी तरहका वादविवाद मैंने उन अन्य अंग्रेज अफसरोंके साथ किया जिनसे मैं मिल सका। मैंने अपना मत उनके समक्ष रखा। पर उन लोगोंने एक स्वरसे यही उत्तर दिया कि हमलोग लाचार हैं और रौलट कमेटीने जो शिफारिसें की हैं उनपर अमल किया जाना नितान्त आवश्यक है। इस तरहके प्रतीकारके जितने तरीके थे सबसे हम लोगोंने काम लिया पर सब निष्फल हुआ।

प्रश्न—यदि आपका किसीसे मतभेद है तो आप उसे एक ही दिनमें अपने मतका नहीं बना सकते। इसके लिये आपको कुछ समय तक धैर्यपूर्वक अनवरत चेष्टा करनी होगी। ऐसा न करके एकदमसे कानूनोंका भङ्ग करनेके लिये तुल जाना क्या उतावलापन नहीं कहा जायगा?

उत्तर—इस विषयमें मेरा आपसे घोर मतभेद है। यदि मुझे विदित होता है कि स्वयं मेरे पिताने मेरे ऊपर ऐसे कानूनका बोझ लाद दिया है जो मेरे आत्मगौरवके सर्वथा प्रतिकूल है तो यदि मैं विनयपूर्वक उनसे निवेदन कर दूं कि मैं इसको न माननेके लिये विवश हूं तो इसमें मैं किसी तरहकी ज्यादती नहीं करता।

इस उपायका अवलम्बनकर मैं अपने पिताके साथ सिवा न्यायके और कुछ नहीं कर रहा हूं। यदि मेरे निम्नलिखित कथनसे कमेटीकी किसी तरहकी हतक इज्जती न हो तो मैं जोर देकर कह सकता हूं कि मैंने सदा इसी नीतिका अवलम्बन किया है और इसे सदा लाभदायक पाया है। यही कारण है कि मैं इस नीतिकी शिक्षा देनेमें और भी अधिक दत्तचित्त रहता हूं। यदि उपरोक्त प्रकारसे अपना मत स्पष्ट कहकर मैं अपने पिता और मित्रका किसी तरहका अपमान नहीं करता तो मैं सरकारका भी किसी तरहका अपमान नहीं करता।

प्रश्न—रौलट ऐक्टके विरोधके लिये सत्याग्रह आन्दोलनको आरम्भ करते समय आपने सारे भारतवर्षमें हड़ताल मनाये जानेकी अनुमति दी थी। उस हड़तालके दिन हरतरहका कारबार बन्द होना था और जनताको अपने आचरणोंद्वारा यह प्रगट कर देना था कि वह सरकारकी इस कार्रवाईको नापसन्द करती है। सर्वव्यापी हड़तालके माने देशभरमें हरतरहके कारबारको बन्द कर देना है। क्या इससे भयानक विपत्तिके उपस्थित होनेकी सम्भावना नहीं थी?

उत्तर—यदि कारोबार अधिक कालतक बन्द रहे तो किसी प्रकारके विपत्तिकी सम्भावना हो सकती है।

यहाँपर महात्मा गान्धीने यह बतलाया कि किस प्रकार कुछ प्रान्तोंमें ३० मार्चको ही हड़ताल हो गई और शेष स्थानोंमें ६ अप्रेलको हुई। आपने बतलाया कि इसका कारण लोगोंका

गलत अनुमान नहीं था, बल्कि सरकारी निर्णयका संवाद था। निश्चय यह किया गया था कि रौलट ऐक्ट पास होनेके बाद जो रविवार पड़ेगा उसी पहले रविवारको हड़ताल मनाई जायगी। कुछ लोगोंको स्वीकृतिका समाचार ३० के पहलेही लग गया और उन्होंने ३० को ही हड़ताल मनाया।

प्रश्न—आपने घोषणा की थी कि कारबार बन्द करनेके लिये किसीके ऊपर किसी तरहका दबाव न डाला जाय। हड़ताल आपसे आप होनी चाहिये। जिसकी रुचि हो हड़ताल करे, न रुचि हो न करे?

उत्तर—आपका कहना एकदम ठीक है। मैंने सूचित किया था कि हड़ताल करनेके लिये उस दिन किसी तरहका दबाव नहीं डाला जाना चाहिये। पर हड़तालके लिये अन्य दिन नोटिस तथा व्याख्यान आदिके द्वारा प्रार्थना की जा सकती है। और जबतक पशुबलका प्रयोग न किया जाय मैं इस प्रकारके साधनोंको नितान्त उचित और सङ्गत समझता हूं।

प्रश्न—यदि हड़तालके दिन कोई व्यक्ति किरायेकी गाड़ी चलानेवालोंको रोकना चाहे या रोकनेकी चेष्टा करे तो आप उसकी कार्रवाईको उचित समझते हैं या अनुचित?

उत्तर—मैं उसकी कार्रवाईको नितान्त अनुचित समझता हूं।

प्रश्न—यदि ऐसे लोगोंके साथ पुलिस किसी तरहकी कार्रवाई करे तो क्या आप उसे अनुचित समझेंगे?

उत्तर—यदि पुलिसने अपनी मर्यादाके भीतर रहकर उचित तरीकेसे हस्तक्षेप किया तो मैं उसे किसी भी तरह अनुचित नहीं समझता ।

प्रश्न—इस बातको आप स्वीकार करते हैं कि हड़तालके दिन किसीके साथ जबर्दस्ती करना और गाड़ीवालोंका रोकना नितान्त अनुचित था ?

उत्तर—एक सच्चे सत्याग्रहीकी हैसियतसे मैं इस तरहके कार्रवाईको घोर पाप समझता हूं ।

प्रश्न—आपके प्रधान नायक स्वामी श्रद्धानन्दने दिल्लीसे आपके पास पत्र लिखकर आपको सचेत किया था कि दिल्ली तथा पञ्जाबकी घटनाओंको देखकर यही धारणा होती है कि यदि सर्वव्यापी हड़ताल की जायगी तो शान्ति भङ्ग होनेकी सम्भावना है ? (यहांपर महात्मा गान्धीने लार्ड हण्टरको रोककर कहा कि स्वामी श्रद्धानन्द मेरे नायक नहीं बल्कि मेरे साथी हैं) ।

उत्तर—मुझे अच्छी तरह याद नहीं है कि उस पत्रमें क्या लिखा था । जहांतक मुझे स्मरण है किसी पत्रमें उन्होंने इससे भी अधिक लिखा था । यहांतक कि उनका मत था कि बिना किसी तरहके शान्ति भङ्गके सामूहिक सविनय अवज्ञा नहीं चल सकती । हड़तालके बारेमें उन्होंने कुछ नहीं लिखा था । पर यह सब पत्र व्यवहार तब हुए जब मैंने सविनय अवज्ञा स्थगित कर दी । जिस तरहका अधिकार मैं जनतापर रखना चाहता था उस प्रकारका अधिकार मैं न रख सका और इसीलिये मैंने

सत्याग्रह आन्दालनका स्थगित कर देना उचित समझा। स्वामी श्रद्धानन्दका मत था कि सामूहिक सविनय अवज्ञा चल ही नहीं सकती। पर मैं इस मतसे सहमत न था। मैं नहीं कह सकता कि आज भी उनके मनमें परिवर्तन हुआ है या नहीं। * उस समय सविनय अवज्ञाका स्थगित कर देना उतना ही आवश्यक था जितना कानूनको भंग करनेवालेको दण्ड देना आवश्यक है। मैं कमेटीको हडताल और सविनय अवज्ञाके बीचके अन्तरको दिखला देना चाहता हूं। हडताल केवल जनता और सरकारकी दृष्टिको आकर्षित करनेके लिये की गई थी और सविनय अवज्ञा उन लोगोंके आचरणकी परीक्षा थी जो सत्याग्रहके मन्त्रको स्वीकार करने जा रहे थे। भारतकी जनताकी मानसिक स्थितिको समझनेके लिये इस प्रकारके किसी अस्त्रके प्रयोगकी नितान्त आवश्यकता थी। हडतालसे मुझे इस बातका पता लगाना था कि सविनय अवज्ञामें मुझे कहातक सफलता सम्भव है।

प्रश्न—यदि एक तरफ हडताल हो और साथ ही दूसरी तरफ सत्याग्रहको भी शिक्षा दी जाय तो क्या यह नहीं कहा जा सकता कि यह सब शान्ति भंग करनेकी प्रेरणायें हैं ?

उत्तर—मेरा अनुभव इससे विपरीत है। हजारों पुरुषों, स्त्रियों, लड़के लड़कियों,बुड्ढोंको एकत्रित होकर पूर्णशान्तिके साथ

* अकाली आन्दोलनमें उत्साहसे भाग लेना ही उनके मत परिवर्तनका प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन्हें अवश्य विश्वास हो गया है कि सविनय अवज्ञा सामूहिक भी सम्भव है। —अनुवादक

कतार बांधकर जाते देखकर मैं चकित हो गया। मेरी तो यही धारणा है कि यदि सत्याग्रहके व्रतको उचित तरहसे शिक्षा न दी गई होती तो इतनी शान्तिके साथ हड़तालका निस्पादन असम्भव था। पर मैंने अभी बतलाया है कि हड़ताल और सविनय अवज्ञामें किसी तरहका भी व्यवहारिक सबंध नहीं है।

इसके बाद लार्ड हण्टरके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए महात्माजीने अपनी गिरफतारीके सम्बन्धकी सभी बात कह सुनाई। उन्होंने कहा कि पलवालमें मुझे रोकना और वहांसे पुलिसकी निगरानीमें मुझे बम्बई लौटाना गिरफतारीके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। पर मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि कहीं कहीं लोगोंने इसे गिरफतारी नहीं बतलाया है बल्कि गिरफतारीकी सम्भावना लिखा है। पलवालमें मुझपर नोटिस जारी की गई कि आप पञ्जाब और दिल्लीके अन्दर नहीं घुस सकते और बम्बई प्रान्तके आगे नहीं बढ़ सकते। जिस अफसरने यह नोटिस तामील की बड़ा ही सभ्य था। नोटिस पढ़कर मैंने पुलिसके अफसरसे साफ साफ कह दिया कि मैं इस आज्ञाको स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं हूं। दिल्ली और पञ्जाब जाना मैंने निश्चय कर लिया है। मेरा उत्तर सुनकर उसने मुझसे कहा कि मिस्टर गांधी, इस अवस्थामें ऐसे छोटे स्टेशनपर हमें आपको गिरफतारकर बड़ी असुविधामें डाल देना होगा; जब मैं पलवाल पहुंचा तो पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट दिल्ली अपने आदमियोंके साथ वहां मौजूद थे।

उन्होंने मेरे कन्धेपर हाथ रखकर कहा कि मि० गान्धी मैं आपको गिरफ्तार कर रहा हूं। इतना कहकर उन्होंने अपने आदमियोंसे गाड़ीसे मेरा असवाब फौरन उतार लेनेके लिये कहा। यह सब हो गया। मै कुछ पुलिस कांस्टेबिलोंकी निगरानीमें रख दिया गया। जितनी कार्रवाईयां हुईं, उनसे व्यक्त था कि सिवा गिरफ्तारीके और कोई बात नहीं थी। यहां तक कि थूकनेके लिये मैं एक बार उठकर प्लेटफार्मकी तरफ से लाइनकी तरफ बढ़ने लगा तो एक पुलिस कर्मचारीने मुझे जानेसे रोक दिया। इससे मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि उस कर्मचारीने कोई अनुचित काम किया, क्योंकि मैं गिरफ्तार था और मुझे अपने मनसे कहीं जानेसे रोक कर वह अपने कर्त्तव्यका पालन ही कर रहा था।

इसके बाद महात्माजीने बयान किया कि जिस अफसरने मुझे गिरफ्तार किया था उसे यहां तक पता नहीं था कि मुझे किस गाड़ीसे, किस मार्गसे, किस प्रकार, कहां ले जाना होगा। जब मै सवाई माधोपुर लाया गया और पञ्जाब मेलमें बैठाया गया तब मि० बाउरिङ्गने एक दूसरे अफसरसे राय मिलाकर मुझसे कहा कि आप यहाँसे बम्बई ले जाये जायँगे और वहां छोड़ दिये जायंगे।

प्रश्न—जो नोटिस आपपर तामील की गई थी उसमें यही लिखा था कि आप दिल्ली या पञ्जाबमे घुसनेसे रोके जाते हैं? और उस नोटिसका यही अभिप्राय था?

उत्तर—नहीं, पालवाल तक जानेमें मैं कानून तोड़ चुका था क्योंकि नोटिस पहले ही तामील की जा चुकी थी। इस लिये मुझसे लौट जानेके लिये नहीं कहा गया बल्कि मुझे गिरफ्तार कर लिया गया और पुलिसकी निगरानीमें बम्बई पहुंचाया गया।

प्रश्न—आपने जो कुछ कहा है उससे तो यह मतलब निकलता है कि सरकारने आज्ञापत्र द्वारा आपको सूचित किया था कि आपको दिल्ली और पञ्जाब जानेकी मनाही है, इस लिये आप इन प्रान्तोंमें नहीं घुसने पावेंगे पर यदि बम्बई प्रान्तमें ही रहना चाहें तो वहां आप सुखपूर्वक, स्वतन्त्रताके साथ विचर सकते हैं?

उत्तर—हां, यही मतलब था।

प्रश्न—तब तो इससे और आपको गिरफ्तारकर जेलमें भेज देनेमें कुछ भेद अवश्य है। क्या आप भी इसे स्वीकार करते है?

उत्तर—पर मैं तो इसके सम्बन्धमें कोई अन्य बात नहीं कह रहा हूं। मेरा तो केवल यही कहना है कि सरकारको कोई अधिकार नहीं था कि वह मुझे इस प्रकार रोक कर मेरे शान्ति स्थापित करनेके कार्यमें बाधा डालती।

प्रश्न—पर यदि सरकारके हृदयमें इस बातका पक्का विश्वास जम गया हो कि आपके पञ्जाब या दिल्लीमें जानेसे अशान्ति और भी बढ़ जायगी, जिस आन्दोलनके कारण लोगोंमें पूर्ण

उत्तेजना आ रही थी उसीका प्रचार करने जो व्यक्ति जा रहा था वह लोगोंको और भी उत्तेजित कर सकता है? ऐसी दशामें उसकी उपरोक्त कार्रवाई जायज थी या नाजायज ?

उत्तर—उस विचारसे मुझे कुछ कहना नहीं है।

प्रश्न—आपकी गिरफ्तारीके बाद पंजाब, दिल्ली और अहमदाबादमें भीषण दुर्घटनायें हो गईं ?

उत्तर—हां।

प्रश्न—यहां पर केवल हमें अहमदाबादकी दुर्घटनाके बारेमें कुछ पूछताछ करना है। मैंने सुना है कि अहमदाबादकी मिलोंके मजूर आपको बहुत मानते हैं, आपकी उनमें बड़ी इज्जत है, वे आपपर प्राण देनेके लिये तैयार करते हैं ?

उत्तर—हां।

प्रश्न—मालूम होता है कि आपकी गिरफ्तारीके सम्बादसे वे अतिशय उत्तेजित हो गये और भयानक काण्ड करनेके लिये तयार हो गये। जिसका परिणाम १०, ११, १२ अप्रेलकी अहमदाबाद और विरामगाँवकी भीषण दुघटनायें हैं।

उत्तर—हां।

प्रश्न—इन दुर्घटनाओंके बारेमे आपकी आँखों देखी कोई जानकारी नहीं है ?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—मेरी समझमें इन घटनाओंके बारेमें आप कोई ऐसी बात हमलोगोंके सामने नहीं पेश कर सकते, जिससे सच्ची

दशाका ज्ञान प्राप्त करनेमें हमलोगोंको सुविधा हो, हमलोग अपना मत स्थिर कर सकें।

उत्तर—मुझे सिर्फ इतना कहना है कि अहमदाबाद और विरामगाँवको जनताने नितान्त अनुचित काम किया। उनका आचरण बड़ा बुरा था। किसी भी अवस्थामें उन्हें आपेसे बाहर हो जाना उचित नहीं था। इससे बढ़कर और कोई बात दुःखदायी नहीं हो सकती। साथ ही मुझे एक बात और कहनी है। सरकारकी कार्रवाई भी उचित नहीं थी। मुझे गिरफ्तारकर सरकारने अदूरदर्शिताका काम किया। जिन लागोंमें मैं विख्यात हूं, सही या गलत, जो लोग मुझे श्रद्धा भक्तिसे देखते हैं सरकारने उनकी कड़ी परीक्षा लेनी चाही। उसे जरा और समझदारीसे काम लेना रहा। स्थिर होकर घटनाकी पूर्वापर अवस्था पर जरा और विचार कर लेना था पर इससे मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि उसका दोष अक्षम्य है और उसके मुकाबिलेमें जनताका दोष कुछ नहीं है। वल्कि मेरा तो यह कहना है कि यदि किसी प्रकार सरकारका दोष क्षम्य हो सकता है तो जनताका आचरण सर्वथा अक्षम्य है।

इसके बाद महात्माजीने बतलाया कि मैंने अपनी शक्ति भर इस शोचनीय अवस्थाको सुधारनेका यत्न किया। मैंने अपनेको पूरी तौरसे अधिकारियोंके हाथोंमें सौंप दिया। मि० प्रैट तथा अन्य प्रधान कर्मचारियोंके साथ मैंने सलाह मशविरा किया। मेरी इच्छा थी कि १३ अप्रेलको मैं जनताकी

एक महती सभा करूं। पर मुझसे कहा गया कि उस दिन सभा करना असम्भव है क्योंकि कर्नेल फ्रेजरने मनाहीकी सूचना निकाल दी है। सभा करनेके लिये अधिकारीवर्ग मेरी हरतरहसे सहायता करनेको तैयार थे पर उनका कहना था कि आज लोगों तक सूचना नहीं पहुंचायी जा सकेगी। इस लिये १४ अप्रेलको सभा हुई। उस सभामें मैंने सारी घटना-का उल्लेख करके जनताकी निर्भत्स्ना की। कुछ लोगोंका कहना है कि मैंने उसी प्रसङ्गमें कहा था कि जिस तरहका आचरण आपलोगोंने किया है उससे आशंका हो सकती है कि इसके लिये आपने पहलेसे तैयारी किया था, आपका यह आचरण सुसँगठित और जानकारीमें हुआ है। बादमे यही शब्द मेरे और उन लोगोंके विरुद्ध अनेक वार प्रयोग किये गये। मैंने गुजराती भाषामें व्याख्यान दिया था। वास्तवमें उन शब्दोंका क्या अभिप्राय था और गुजराती भाषामें उनका क्या अर्थ हो सकता है इसका पता उन शब्दोंके प्रयोगसे तथा उस प्रसङ्गसे जाना जा सकता है। मेरा अभिप्राय केवल "साक्षरलोगोसे" था और मैं मिस्टर चिमनलाल सितलवाडसे प्रार्थना करूंगा कि वे उस भाषणको पढ़कर निश्चय कर लें कि उन शब्दोका वास्तवमें क्या तात्पर्य है।

मेरा यह अभिप्राय नहीं था कि जनताकी कार्यवाही पूरी तरहसे सुसङ्गठित थी। इस प्रसङ्गमें भी मै यही प्रार्थना करूंगा कि मेरा भाषण पढ़कर उन शब्दोंका शब्दार्थ और प्रासङ्गिक अर्थ

निश्चित कर लिया जाय। मेरे कहनेका केवलमात्र यही अभिप्राय था कि यह दुर्घटना जिस प्रकार हुई है उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि मानों इसकी पहलेसे तैयारी की गई थी और वह सुसङ्गठित थी। उस सभामें मैंने जो कुछ कहा था केवल अहमदाबादके लिये कहा था क्योंकि उस समयतक मुझे अन्य स्थानोंको घटनाओंका कुछ भी पता न था और न मुझे यही मालूम था कि विरामगांवमें क्या दुर्घटना हुई है। मैं इस बातको स्वीकार करता हूं कि घटनावलीको देखकर यही कहना पड़ता है कि यह उपद्रव सुसङ्गठित था पर उससे किसी तरह भी व्यक्त नहीं होता कि क्रान्तिके किसी तरहके भाव लोगोंके दिलमें जमे बैठे थे। अन्तमें मेरा यह कहना है कि एक बात आप लोगोंको सदा ध्यानमें रखना चाहिये कि मैं उस समय जनताको निर्भत्सना दे रहा था न कि किसी पुलिसके अफसरके सामने गवाही दे रहा था।

यदि मिस्टर गाइडरका यह कहना है कि मैंने अपराधियोंके नाम छिपाये और एकका भी नाम नहीं बतलाया तो वे मेरे प्रति घोर अन्याय करते हैं और इस बातको भूल जाते हैं कि मेरा क्या उद्देश्य था और साथ ही वे "सुसङ्गठित" शब्दपर अनुचित जोर दे रहे हैं। जनताने इतना भीषण उपद्रव क्यों मचाया, यह बुरा आचरण क्यों किया? इसका एक मात्र कारण श्रीमती अनुसूया साराभाईकी गिरफ्तारीका भ्रमपूर्ण सम्वाद था। अहमदाबादमें कुछ लोगोंका एक दल है जिन्होंने

थोड़ी शिक्षा प्राप्त कर ली है और वायस्कोपों, थेटरोंमे जा जाकर इसी तरहके भ्रमपूर्ण सम्वाद इकट्ठे करते हैं और उन्हें फैलाते हैं। उनके हृदयोंमें इस तरहके क्रान्तिकारी भावोंका आना गन्दे उपन्यासों और स्वमान्य नेताओंके द्वारा भी होता है। मैं उनसे मिल चुका हूँ और उनको उस भ्रमपूर्ण मार्गसे हटानेकी भी चेष्टा कर चुका हूं। इस काममें मुझे सफलता भी मिली है। आज सैकड़ों आदमी हम आपके सामने पेश कर सकते हैं जो किसी समय उसी दलके उत्साही मेम्बर थे और क्रान्तिकारी वायुका सेवन कर रहे थे। पर अब वे उससे एकदम अलग हो गये हैं।

उस समयमें मैंने जो कुछ कहा था उसका यही अभिप्राय था जो कुछ मैंने अभी आपलोगोंके सामने बयान किया है। मैंने कभी भी नही कहा था कि इस उपद्रवमे कालेजके छात्र या प्रोफेसर सम्मिलित हैं,मैंने यह भी कभी नहीं कहा था कि ये लोग ऐसा आचरण नहीं कर सकते है। पर मैंने केवल यह कहा था कि जहांतक मुझे मालूम है इसमे किसी पढ़े लिखे समझदारका हाथ नहीं है जो इन अनपढ़ जनताको उत्तेजित करता रहा हो।

प्रश्न—क्या आपके कहनेका यह तात्पर्य है कि सभी उपद्रवी एक ही अभिप्रायको लेकर उठे थे और उन सबका एक ही लक्ष्य था ?

उत्तर—मेरा कभी भी यह मत नहीं है और न मैं ऐसा कही सकता हूं। इस तरहकी कोई बात कहनी अत्युक्ति होगी। पर

मेरे विचारसे इतना अवश्य संभव है कि प्रत्येक छोटे छोटे दल एक ही अभिप्राय और उद्देश्यसे काम करते थे।

प्रश्न—क्या यह आन्दोलन इस तरहसे यूरोपियनोंके विरुद्ध नहीं था ?

उत्तर—मैं यह निःसङ्कोच कह सकता हूं कि यह उपद्रव सरकारके विरुद्ध था पर यूरोपियनोंके विरुद्ध था या नहीं, इसका निर्णय मैंने अभी तक नहीं किया है। पूरी तरहसे जांच करनेके बाद ही इस विषयमें मैं अपना स्थिर मत प्रगट कर सकता हूं।

प्रश्न—मैं नहीं जानता कि आप इस प्रश्नका उत्तर दे सकते हैं या नहीं पर मैं इस प्रश्नको पूछता हूं। क्या आप बतला सकते हैं कि सत्याग्रहके सिद्धान्तके अनुसार उन लोगोंको—जिन्होंने उपद्रव किया है—सिविल अदालत द्वारा सजा मिलनी चाहिये कि नहीं ?

उत्तर—इस प्रश्नका ठीक उत्तर देना जरा कठिन काम है, क्योंकि सजाका अभिप्राय बाहरी शक्तिद्वारा दबाव डालना है। पर मैं यह नहीं कहना चाहता कि सिविल अदालत द्वारा दण्ड देना अनुचित है लेकिन मैं यह कह देना चाहता हूं कि इससे भी अच्छे तरीके मौजूद हैं। मैं इतना जोर देकर कह सकता हूं कि सच्चा सत्याग्रही दण्डसे कभी भी विचलित नहीं होगा और न भागेगा। यदि उसने सत्याग्रह किया है तो वह हरतरहके दण्ड भोगनेके लिये तैयार रहेगा और इसके लिये वह सरकारका विरोध किसी भी अवस्थामें नहीं करेगा।

प्रश्न—यदि सत्याग्रही इस तरहके उपद्रवके समाचार देकर पुलिसकी सहायता करता है तो क्या वह सत्याग्रहके सिद्धान्तको तोड़ता है? क्योंकि सत्याग्रहके सिद्धान्तका कदाचित पहला नियम यही है कि सरकारको उसके काममें किसी तरहकी सहायता नहीं देनी चाहिये?

उत्तर—सत्याग्रहके सिद्धान्तोंमें केवल यही लिखा है कि पुलिस जिन तरीकोंसे काम लेती हैं और अनुसन्धान करती है उनमें एक सच्चे सत्याग्रहीको किसी तरहसे हाथ नहीं बटाना चाहिये। पर यदि वह सरकारकी या पुलिसकी सहायता इस लिये करता है कि लोग (सरकार और पुलिस भी) कानूनोकी मर्यादा ठीक तरहसे पालेंगे तो उसकी कार्यवाही सत्याग्रहके सिद्धान्तकी दृष्टिसे भी अनुचित और हेय नही है।

प्रश्न—मान लीजिये कि इस तरहके उपद्रवोंमें किसीने अतिशय भीषण अत्याचार किया और किसी सत्याग्रहीने ऐसा करते उसे देख लिया, ऐसी दशामे एक सच्चे सत्याग्रहीका क्या धर्म होना चाहिये? उसे उचित है कि वह उसकी सूचना सरकारी कर्मचारीको दे दे या नही?

उत्तर—इसके पहले ही मैंने इस प्रश्नका उत्तर मिस्टर गाइडरको दे दिया है और उसी उत्तरको मैं आपकी कमेटीके सामने भी दोहरा देना चाहता हूं। मैं इस देशके नवयुवकोंको बुरे मार्गपर ले जाकर पथभ्रष्ट नही करना चाहता। पर यह कठिन है कि कोई भी नवयुवक अपने भाईके विरुद्ध गवाही दे।

इस कथनमें मैंने जाति विशेष या देश विशेषके ख्यालसे कोई बात नहीं कही है। क्योंकि सत्याग्रहीकी दृष्टिमें इस तरहके भेद-भाव कोई महत्व नहीं रखते या यों कहिये कि वह इस तरहके भेदभावसे सर्वथा रहित है। इस अवस्थामें सत्याग्रहीको वही हालत है जो किसी अभियुक्तके वकीलकी होती है। मुझे बड़े बड़े भयानक गुनहगारोंका नाम याद है जिनको मैंने अनेक पापा-चरणसे हटाया है। मैं उनमेंसे एकका भी नाम नहीं बता सकता, क्योंकि ऐसा करना उनके प्रति घोर विश्वासघात करना है। मान लीजिये कि मै कुछ ऐसे लोगोंको जानता हूं जो भोषण गुनाह करनेवालोंमेसे है। मैं उनमें शामिल होकर उन्हें उस पापाचरणसे हटाना चाहता हूं। कोशिश करनेपर भी मुझे सफलता न मिली। तो उस समय मेरा धर्म क्या होगा ? क्या मुझे उचित है कि मैं जाकर पुलिसको सूचित करूं और उन्हें पकड़वा दूं। मुझे यह कहनेमें जरा भी सङ्कोच नहीं होता कि सत्याग्रहीका सच्चा धर्म यही है कि वह अदालतके सामने किसी भी अवस्थामे उन अभियागोके खिलाफ गवाही देने न जाय जो उसकी आंखोंके सामने भी किये गये हो। पर इस सिद्धा-न्तका प्रयोग कठिन है ओर बहुत हो कम होना चाहिये क्योंकि मैं स्वयं निश्चय नहीं कर सकता कि यदि कोई व्यक्ति मेरे सामने गुनाह करते पकड़ा जाय तो उसके खिलाफ मै गवाही देनेके लिये उद्यत होऊंगा या नहीं।

प्रश्न—साधारणतया इस स्थितिके बारेमें आपकी क्या राय

उत्तर—सरकारने बड़े धैर्यसे काम लिया और उसे भीषण कठिनाईका सामना करना पड़ा। मार्शल ला जारी है ही। जिस गाड़ीमें फौज भर कर आ रही थी उसको उलटनेकी चेष्टा नितान्त अनुचित थी। यदि क्रोध और आवेशमें आकर वे फौजी सिपाही किसी तरहकी ज्यादती कर देते तो उन्हें दोष देना उचित नहीं होता क्योंकि यह स्वाभाविक है। मैं फौजी सिपाहियोंकी अवस्थासे भलीभांति परिचित हूं। पर सैनिक शासनके सूचनापत्र जिस भाषामें निकाले गये थे उनको पढ़कर अनेक तरहके भ्रम उत्पन्न हो सकनेकी सम्भावना थी। मुझे जहांतक पता लगा है बिना सूचनाके लोगोंपर गोलियां चलाई गई। मान लीजिये कि ६ आदमी कहीं जा रहे थे और मार्गमें एक आदमी उनमें मिल गया जो उनका साथी नहीं था। केवल उसके मिल जानेसे सैनिक शासनके अनुसार वे दस हो गये * पर पूरी तौरसे विचार करनेपर क्या उनपर गोली चलाना किसी भी दशामें उचित प्रतीत होगा। और जिन लोगोंको मार्शल लाकी घोषणाका पता ही न था उनको सूचना देना किस कामका था।

प्रश्न—सरकारकी ओरसे जो खास अदालत बैठी थी उसके बारेमें आपकी क्या राय है?

* सैनिक शासनमें इस बातकी घोषणाकर दी गई थी कि किसी भी स्थानपर सैनिक शासनकी सीमाके भीतर यदि दस आदमी एक साथ जाते या परस्पर गोष्ठी करते पाये जायंगे तो उनपर फौरन गोली चला दी जायगी। —अनुवादक

उत्तर—सरकारके साथ युद्ध करनेका दोष लगाकर अभियुक्तोंको दण्ड देनेमें सरकारने भीषण भूल की। यह निःसंकोच स्वीकार किया जा सकता है कि उन खास अदालतोंने कानूनोंका जिस तरह प्रयोग किया था उस तरह उनका प्रयोग किसी असभ्य देशमें भी नहीं हो सकता। अभियुक्तों पर जो दफायें लगाई गई थीं उनकी चर्चा भी नहीं की जानी चाहिये थी। अभियुक्तोंका विचार करनेमें बड़ी जल्दीबाजी कीगई और इससे लोगोंकी बड़ी दुर्दशा हुई और कठिन यातनायें भोगनी पड़ीं जिनका न तो कोई परिमाण है न हिसाब है। अहमदाबादकी गरीब और निर्धन जनतापर बेशुमार जुर्माना लगा दिया गया है और जिस प्रकार यह जुर्माना वसूल किया जा रहा है वह आवश्यकतासे अधिक कठोर और उत्तेजक है। मैं दृढ़तासे कह सकता हूं कि आपने मिस्टर अम्बालालका जो मत अभी उद्धृत किया है उससे मेरा घोर मत भेद है। और मैं यह भी दृढ़तासे कह सकता हूं कि इस तरहका मत प्रगटकर मिस्टर अम्बालालने अपने देशभाइयोंके साथ घोर अन्याय और अतिशय ज्यादती की है। मेरी समझमें बरेजडिह और नदियादमें अतिरिक्त पुलिस रखकर सरकारने बड़ी भूल की और किसी भी तरह वह अपने इस नीतिका समर्थन नहीं कर सकती। नदियादके कलक्टरने जो दलील पेश की है उसको पढ़नेसे स्पष्ट मालूम हो जाता है कि उसमें कोई सार नहीं है, और प्रतिहिंसाके भावसे प्रेरित होकर इतना अधिक जुर्माना

लगाया गया है। मुझे इस बातकी प्रसन्नता है और मैं यह अभिमानके साथ कहता हूं कि नदियादकी जनताने फौजसे भरी गाड़ीको उलटनेमें किसी तरहका भाग नहीं लिया था वल्कि सरकारकी यथासाध्य सहायता की थी और अभियुक्तोंके गिरफ्तार करानेमें सरकारकी बड़ी मदद की थी। इस सहायताके लिये स्थानीय कलक्टरने उनकी बड़ी प्रशसा की है और कृतज्ञता प्रकाश की है।

जस्टिस रेकिनकी जिरह

प्रश्न—मिस्टर गांधी, मैं आपसे इस घटनाके सम्बन्धमें कुछ तारीखोंको जनाना चाहता हूं।

उत्तर—सत्याग्रह व्रतकी प्रतिज्ञा फरवरीके तीसरे सप्ताहमे ली गई थी। उस समय तक रौलट ऐक्ट नं० २ स्वीकृत नहीं हुआ था।

प्रश्न - इस ऐक्टके स्वीकृत होनेके पहलेही देशमें इसके विरोध करनेके लिये तरह तरहके मंसूवे गठे जा रहे थे? एक तरीका यह भी बतलाया गया था कि सरकारी मालगुजारी देना वन्द करके इन कानूनोंका विरोध किया जाय?

उत्तर—हां।

प्रश्न—मजिस्ट्रेटकी निकाली आज्ञाओंको भङ्ग करनेकी भी व्यवस्था थी?

उत्तर—मैं इसका विरोधी था। मैंने घोषणा कर दी थी कि

हड़तालके दिन पुलिसकी हर तरहकी आज्ञायें विना किसी तरहके इतराजके मानी जानी चाहिये।

प्रश्न—क्या आप अपने बयानको किसी तहरीर द्वारा तस्दीक करेंगे?

उत्तर—जो कुछ कागजी तहरीरें मेरे पास हैं उन्हें मैं अदालतमें पेश कर दूंगा।

प्रश्न—क्या आप दिल्ली जाकर अधिकारियोंका विरोध नहीं करना चाहते थे? क्या आपका यह इरादा नहीं था?

उत्तर—नहीं, मुझे अमृतसरसे डाक्टर सत्यपालका पत्र मिला था कि आप यहां आकर लोगोंको सत्याग्रहका सिद्धान्त समझा दीजिये। इसी बीचमें स्वामी श्रद्धानन्दजीका दिल्लीसे पत्र आया कि आप इधरसे होते जाइयेगा क्योंकि यहांकी जनता हाथसे बाहर होती जा रही है।

प्रश्न—वह आपको उद्धत जनताको शान्त करनेके लिये नहीं बुला रहे थे बल्कि सत्याग्रहके आन्दोलनकी उन्नति करनेके लिये तो?

उत्तर—नहीं, इस अभिप्रायसे उन्होंने मुझे नहीं बुलाया था। स्वामी श्रद्धानन्दने लिखा था कि जनता मेरे हाथसे बाहर होती जा रही है, इसलिये आप यहां आकर लोगोंको शान्त कीजिये। मैं सत्याग्रहकी प्रतिज्ञाके अनुसार सरकारकी आज्ञाओंको भंग करनेके निमित्त वहां नहीं जा रहा था।

मेरा विचार वहां जाकर सरकारी कर्मचारियोंकी सहायता करनेका था।

मिस्टर रैंकिनने महात्मा गांधोसे इस सम्बन्धमें लिखित कागज पत्र मांगा जिससे यह व्यक्त होता हो कि महात्माजीकी यात्राका क्या उद्देश्य था।

प्रश्न—मिस्टर गांधी, १४ अप्रेलको भाषण देते हुए आपने कहा था कि उपद्रवियोंकी कार्रवाईसे मैं लाचार हो गया नहीं तो मेरा इरादा एक बार फिर दिल्लीकी ओर जाने और अपनेको गिरफ्तार करनेका था? मैं समझता हूं कि आपका यह कथन केवल प्रासंगिक नहीं था?

उत्तर—नहीं, मैंने पुनः दिल्ली जानेका दृढ़ कर लिया था।

प्रश्न—गिरफ्तार होनेकी आपकी क्यों मंशा थी?

उत्तर—मैं तबतक गिरफ्तार होना चाहता था जबतक इस प्रकारके अनुचित कानून उठा न दिये जायं।

प्रश्न—जहाँतक मैं समझ सका हूं सच्चे सत्याग्रहीका यह अभिप्राय न होना चाहिये।

उत्तर—ऐसी बातें सत्याग्रही सदा नहीं करता। आत्मपीड़ाके हेतु मैंने ऐसा करनेका इरादा किया था।

प्रश्न—क्या आप समझते थे कि आपकी इस प्रकारकी गिरफ्तारीसे देशमें उत्तेजना फैलेगी और सरकार लाचार होकर उन कानूनों (रौलट ऐक्ट) को उठा देगी।

उत्तर—कदापि नहीं। यदि मेरा यह इरादा होता तो मैं सीधे दिल्लीके लिये पुनः रवाना हो गया होता। तबतक मुझे अमृतसर तथा अन्य स्थानकी घटनाओंका कुछ भी पता नहीं था। जिस समय मैं गिरफ्तार करके बम्बई लाया गया उसके दूसरे ही दिन अहमदाबादसे बड़े ही जरूरी समाचार मेरे पास आये थे।

इसके बाद महात्माजीने बतलाया कि सविनय अवज्ञा क्यों स्थगित की गई और यह भी कहा कि यद्यपि मेरा विचार सविनय अवज्ञा पुनः प्रारम्भ करनेका था पर बम्बई सरकार द्वारा उसी समय लार्ड चेमस्फोर्डकी प्रार्थना पहुंची और मुझे उसके अनुसार पीछे हटना पड़ा। पर प्रचारका काम बराबर जारी रहा। दूसरी प्रतिज्ञा तैयार कराई गई जिसमे लोगोंको केवल सत्य और अहिंसा पर अधिक तत्पर रहनेके लिये कहा गया था।

प्रश्न—क्या यह बात सच नहीं है कि भारतके प्रायः प्रत्येक प्रान्तमे लोगोंने आपके सिद्धान्तका गलत मतलब लगाया और उसका दुरुपयोग कर अराजकताको अधिकाधिक फैलानेकी चेष्टा की?

उत्तर—मैं नहीं समझता कि आपकी बातें सर्वथा सत्य हैं।

प्रश्न—मिस्टर गांधी, इस प्रश्नके लिये मुझे क्षमा कीजियेगा। क्या आपकी आत्मा इस बातको नहीं स्वीकार करती कि आपने न्यायप्रिय भारत प्रजाके हृदयोंमेंसे न्यायके प्रति जो

श्रद्धा थी उसपर भीषण आघात करने और उसका मटियामेट करनेकी चेष्टा की थी।

उत्तर—इसे मैं सहर्ष स्वीकार करता हूं। कुछ आदमियोंके हृदयोंमें इस तरहके भाव तो हमने अवश्य भरे है।

प्रश्न—क्या इस बातको आप मानते हैं कि कितने ही प्रान्तोंमें—विशेषकर पंजाबमें—आपके सिद्धान्तोंके उलटे अर्थ लगाये जानेकी सम्भावना थी ?

उत्तर—नहीं, कुछ लोग ऐसे थे जो इसका गलत माने समझ सकते थे। पर पंजाबके लिये तो आपकी आशंका सर्वथा निर्मूल है। मैंने अच्छी तरह जांचकर देखा है कि पंजाबके लोग सत्याग्रह व्रतकी मीमांसाको सबसे अधिक समझ सके हैं और पंजाबमे जहां कहीं मैं गया, मैने देखा कि लोगोंको इस दुर्घटनाका हार्दिक दुःख है।

प्रश्न—आपने अपने बयानमें कहा है कि किन कानूनोंको भङ्ग करना चाहिये, इसका निर्णय करनेके लिये जो कमेटी बनाई गई थी उसका अभिप्राय केवल नियन्त्रण था। तो क्या आप प्रत्येक प्रान्तके लिये ऐसा भिन्न भिन्न कमेटियां बनाना चाहते थे ?

उत्तर—हां, प्रत्येक प्रान्तके लिये अलग अलग कमेटियां बनानेका निश्चय था। पर सर्वत्रके सिद्धान्तोंमें समता रखनेके लिये प्रत्येक प्रान्तकी कमेटियोंका मैं ही अध्यक्ष बनाया गया था।

मुझे इस बातकी आवश्यकता प्रतीत हुई कि प्रत्येक प्रान्त भिन्न भिन्न कानूनोंको तोड़े।

यहीं पर महात्माजीने निष्क्रिय प्रतिरोध और सविनय अवज्ञामें भेद बतलाया और कहा कि निष्क्रिय प्रतिरोधमें विरोधके तरीकोंका अन्त नहीं हो जाता।

सर चिम्मनलाल शीतलवाडकी जिरह।

प्रश्न—जहांतक मेरी समझमें आया है सत्याग्रह वृतका अभिप्राय सत्यका पालन करना है और उस सत्यवृतके आचरणमें जो कुछ आपदायें उपस्थित हों उन्हें अपने सिरपर ओढ़ लेना है, पर किसी तरहकी हिंसा प्रवृत्तिको जगाकर दूसरोंको कष्ट देना नहीं है?

उत्तर—ठीक है।

प्रश्न—क्या यह सम्भव नहीं है कि सत्यका अन्वेषण करनेमें एक मनुष्य कितना भी तत्पर तथा दत्तचित्त क्यों न हो, उसका मत अन्य सत्यान्वेषियोंसे भिन्न हो सकता है? ऐसी अवस्थामें उचित मार्ग क्या है, इसका निश्चय कौन करेगा?

उत्तर—ऐसी अवस्थामें उसी व्यक्तिको अपना निर्णय करना होगा।

प्रश्न—सत्यके बारेमें तो भिन्न भिन्न व्यक्तियोंकी भिन्न भिन्न धारणा हो सकती है? क्या इससे किसी तरहकी गड़बड़ी नहीं मच सकती?

उत्तर—गड़बड़ीका कोई कारण नहीं प्रतीत होता।

प्रश्न—पर शुद्ध हृदयतापूर्वक सत्यकी तलाश करना प्रत्येक अवस्थामें, प्रत्येक व्यक्तिके लिये भिन्न भिन्न हो सकता है ?

उत्तर—इसीके लिये तो 'अहिंसा' की शर्त रखी गयी थी। यदि यह नहीं रहता तो गड़बड़ीकी सम्भावना थी।

प्रश्न—क्या इस बातकी आवश्यकता नहीं है कि सत्याग्रहका व्रत लेनेवाला उच्च आदर्शवाला, सदाचारी और प्रगाढ़ पण्डित हो ?

उत्तर—यह कोई आवश्यक नहीं है। प्रत्येक व्यक्तिमें इन गुणोंका पाया जाना यदि असम्भव नहीं तो नितान्त कठिन है। यदि गोविन्दने सत्यकी कोई मीमांसा की है जिसपर मकुन्द और श्यामको चलना है तो मैं यह आवश्यक नहीं समझता कि मकुन्द और श्याममें भी वही योग्यता हो जो गोविन्दमें है।

प्रश्न—मेरी समझमें आपका यह अभिप्राय है कि प्रकृष्ट बुद्धि-वाला मनुष्य किसी सिद्धान्तको स्थिर करता है और निष्कृष्ट बुद्धिवालोंको उसे आंख मूंदकर स्वीकार करना पड़ता है और उसीपर आचरण करना पड़ता है ?

उत्तर—आपने गलत समझा है। मेरा कभी भी यह अभि-प्राय नहीं है। मेरे कहनेका यही तात्पर्य है कि यदि कोई आदमी अपनी आत्माकी प्रेरणाके अनुसार स्वतन्त्ररूपसे सत्यका अन्वेषण नहीं कर सकता तो उसे उस व्यक्तिकी सहायता लेनी चाहिये जिसने सत्यका पालन किया है और उसका सिद्धान्त स्थिर किया है।

प्रश्न—पर आपके सिद्धान्तमें तो यही बात देखनेमें आती है कि प्रखर बुद्धि और सदाचारी लोग सत्यकी मीमांसा करें और जिन लोगोंमें ऐसी योग्यता नहीं है कि वे अपनी बुद्धिसे सत्यकी जांच कर सकें या पता लगा सकें वे आंखें मूंदकर उसी सत्यका अनुकरण करें हैं ?

उत्तर—पर मैं उनसे उतना ही चाहता हूं जितना साधारण बुद्धि रखनेवाला व्यक्ति कर सकता है।

प्रश्न—मेरी समझमें आपके आन्दोलनकी शक्ति अनुयायियों की मात्रापर है ? यदि अधिक अनुयायी होंगे तो आपकी शक्ति प्रवल होगी ?

उत्तर—यह कोई आवश्यक बात नहीं है। सत्याग्रहकी-सफलता केवल एक व्यक्तिके आचरण पर भी सम्भव है यदि वह व्यक्ति सत्याग्रहके सिद्धान्तकी मीमांसा जानता है और उसका अनुसरण करता है।

प्रश्न—मिस्टर गांधी, आपने अपने बयानमें कहा है कि आप अबतक अपनेको भी सच्चा सत्याग्रही नहीं समझते। क्या इससे मैं यह अभिप्राय निकाल सकता हूं कि आपसे नीचेके लोगोंकी अवस्था तो आपसे कहीं खराब होगी अर्थात् वे तो सत्याग्रहके सिद्धान्तोंको और भी कम समझ सके होंगे ?

उत्तर—आपका तर्क भ्रमात्मक है। मैं अपनेको कोई असाधारण व्यक्ति नहीं समझता। ऐसे लोग भी हो सकते हैं जो सत्यका निर्णय करनेमें मुझसे अधिक योग्यता रखते हों।

दक्षिण अफ्रिकाके ४० हजार प्रवासी भारतवासी एक दमसे अशिक्षित और मूर्ख थे। पर उन्होंने हृदयसे निश्चय कर लिया था कि वे सत्याग्रही होंगे। यदि आपको ट्रांसवालकी घटनाओं-का वर्णन सुनाऊं तो आप चकित हो जायगे कि दक्षिणी अफ्रिकामें आपके देश भाइयोंने किस साहस और आत्म संयमसे काम लिया था।

प्रश्न—पर वहाँपर आप सब एक मतके थे ?

उत्तर—वहाँसे यहाँकी अवस्था किसी तरह भी खराब नही है। मतैक्यताकी दृढ़ता यहाँ कही अधिक है।

प्रश्न—एक बात और थी। वहां आपका कर्त्तव्य निश्चित था और मार्ग निर्दिष्ट था। पर यहां वह बात नही है।

उत्तर—यहांकी अवस्था भी ठीक वहांकीसी है। यहां भी हमलोगोंका मार्ग साफ है और कतव्य निर्दिष्ट है अर्थात् रौलट ऐक्टका विरोध।

यहींपर महात्माजीने बतलाया कि हमने जनताको यह बात भलीभांति समझा दिया है कि सत्याग्रहका बल हिंसासे कहीं प्रबल है।

प्रश्न—बराबर यातना सहते रहनेके लिये असाधारण आत्म संयमकी आवश्यकता है ?

उत्तर—किसी तरहके असाधारण आत्म संयमकी आवश्य-कता नहीं है। हमारी प्रत्येक माताको कितनी यातनाये भोगनी पड़ती हैं। मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है कि हमारे देशवासियोंमें

आत्म संयमकी अधिकता है और आवश्यकता पड़नेपर उन्होंने इसका ज्वलन्त उदाहरण दिया है।

प्रश्न—अच्छी बात है। अहमदाबादकी घटना तो अभी नई है। यहांकी जनताने भी आत्म संयमका अच्छा परिचय दिया था?

उत्तर—*मैं इस बारेमें अधिक नहीं कहना चाहता। पर मुझे* केवल इतना ही कहना है यदि आप सारी भारतकी घटनाओंका पर्यवेक्षण करके देखेंगे तो आपको विदित होगा कि जहां कहीं उपद्रव हुआ है वहां यदि आपेसे बाहर हो जानेवालोंकी संख्या दस है तो आत्म संयमकी चरम सीमापर डटे रहनेवालोंकी संख्या १०० है। अहमदाबाद तथा अन्य स्थानोंकी घटनाओंसे यह साबित होता है कि यहांके लोग अभी अपनी आत्मापर पूरा अधिकार नहीं कर सके हैं। पर खैरागढ़की जनताकी क्या अवस्था थी? पारसाल उनको उभाड़नेके लिये जो उत्तेजनायें दी गई थीं उनके मुकाबिलेमें उन्होंने असीम आत्म संयमका परिचय दिया था।

प्रश्न—क्या आपका यह अभिप्राय है कि हिंसाकी इस तरह प्रवृत्ति असम्भावित दुर्घटनायें हैं।

उत्तर—नहीं। पर इस तरहकी दुर्घटनायें बहुत ही कम हुई हैं और ज्यों ज्यों सत्याग्रहके मर्मको लोग समझते जायँगे त्यों त्यों इनकी सम्भावना भी उठती जायगी। मेरी समझमें देशने इस सिद्धान्तके मर्मको भलीभांति समझ लिया है और इस बातकी आवश्यकता है कि सत्याग्रह एकबार पुनः जारी किया

जाय। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सत्याग्रहकी जिस आँचमें इस समय देश तपाया गया है उससे उसकी आत्मा और भी उन्नत हो गई है।

प्रश्न—साधारणतया आपके सत्याग्रह सिद्धान्तकी यही नीति है कि सरकारसे पूर्ण असहयोग किया जाय, वर्ग वर्ग तथा जाति और सम्प्रदायकी परस्पर घृणा वृत्तिको दूर किया जाय और इसके हेतु हर तरहकी यातनायें उठायी और सही जायं। क्या इस तरहकी यातनाओंसे घृणा और विद्वेष बढ़ नहीं सकता?

उत्तर—मेरा तीस वर्षका अनुभव आपके परिणामके एकदम विपरीत है। मैंने एक भी उदाहरण ऐसा नहीं पाया जहां सत्याग्रहके व्रतको स्वीकार कर दण्ड दिये जानेके कारण किसी भी व्यक्तिने सरकारके प्रति किसी तरहकी कुचेष्टायें या असद्भाव प्रगट किया हो। दक्षिण अफ्रिकाका उदाहरण ले लीजिये। भारतवासी लगातार १० वर्षतक सरकारके साथ सत्याग्रहका भीषण युद्ध करते रहे। पर युद्धके समाप्त होनेपर उनके मनमें किसी तरहकी मैल नहीं रह गई थी। दोनोंका सम्बन्ध प्रेमपूर्ण था और पूर्ववत् बना रहा। जनरल स्मट्सको भारतीय जनताने सर्वसम्मतिसे मानपत्र दिया था।

प्रश्न—क्या सत्याग्रहका व्रत लिये बिना और प्रतिज्ञा पत्रपर हस्ताक्षर किये बिना भी कोई व्यक्ति सत्याग्रह आन्दोलनमें भाग ले सकता है?

उत्तर—हां, बड़ी आसानीसे। सविनय अवज्ञाके अंशको छोड़कर वह अन्य सभी अंशोंमें भाग ले सकता है। सर्वसाधारण जबतक व्रत ग्रहण करके प्रतिज्ञापत्रपर हस्ताक्षर न कर लें तबतक वे सविनय अवज्ञाके अंशको कार्यक्रममें नहीं ला सकते। इसीलिये जो सविनय अवज्ञा नहीं करना चाहते थे उनके लिये यह दूसरा प्रतिज्ञापत्र तैयार किया गया था कि वे हरतरहसे सत्यका पालन करेंगे और हिंसाको प्रवृत्तिसे दूर रहेंगे। उस समय मैंने सविनय अवज्ञा बन्द कर दी थी। चूंकि यह निश्चय कर लिया गया था और सञ्चालकको यह अधिकार दे दिया गया था कि वह आवश्यकता और स्थितिके अनुसार सत्याग्रहके किसी भी अंशपर जोर दे सकता है, इसलिये मैंने सविनय अवज्ञाके अंशको छोड़ दिया क्योंकि इसका पालन जनताकी मानसिक स्थितिके बाहर था और सत्य पालनके अंशपर अधिक जोर दिया और उसीपर उनकी दृष्टि आकृष्ट की।

प्रश्न—क्या सत्याग्रह व्रतमें रौलट ऐक्टके विरोधकी चर्चा प्रत्यक्षरूपसे की गई थी? क्या इस विषयमें आपसे और मिसेज एनी बेसेण्टसे किसी तरहका मतभेद था?

उत्तर—बम्बईमें मुझे मालूम हुआ कि मिसेज बेसेण्टने भी सत्याग्रहका व्रत ग्रहण किया है केवल उन्होंने कानून भङ्ग करनेके लिये जो शिफारिस कमेटी बैठाई गई थी उसीकी सत्ता स्वीकार नहीं की है। पर बादको उन्होंने कहा था कि मैंने सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा नहीं की है।

प्रश्न—क्या उन्होंने यह नहीं लिखा था कि रौलट ऐक्ट नम्बर एकका विरोध करनेका अभिप्राय अराजकता स्वीकार करना है ?

उत्तर—हां, उन्होंने इस विषयपर लेख लिखा था। पर निश्चय यह किया गया था कि रौलट ऐक्टको किसी व्यवस्थित रूपसे तोड़नेकी चेष्टा न की जायगी।

प्रश्न—सत्याग्रह आन्दोलनका भीतरी भाव सरकारको तङ्ग करनेका है ?

उत्तर—कदापि नहीं। सत्याग्रहीकी आन्तरिक इच्छा कभी भी किसीको तङ्ग करनेकी नहीं रहती। वह सदा अपनी आत्माको सङ्कटोंके सामने रख कर ही विजय लाभ करना चाहता है।

प्रश्न—पर क्या सत्याग्रह व्रतको चलानेमें सङ्गठित सरकारका काम असम्भव नहीं हो जायगा ?

उत्तर—यदि कानून भङ्ग करनेवाले सच्चे सत्याग्रही है और पूर्ण अहिंसासे काम लेते हैं तो सरकारके कार्य सञ्चालनमें किसी तरहकी वाधा नहीं पड़ सकती। पर यदि सरकारने अपनी विचार शक्ति एकदमसे त्याग दी है तो उसका कार्य असम्भव कर देना ही उचित होगा।

प्रश्न—सत्याग्रह व्रत ग्रहण करनेवालोंके नाम आपने जो संदेशा भेजा था उसमें आपने लोगोंसे नम्र निवेदन किया था कि किसी भी तरह हिंसाको स्थान नहीं दिया जाय, फिर भी

हिंसा हो ही गई। क्या इससे यह परिणाम नहीं निकलता कि साधारण प्रवृत्तिके लोगोंके लिये अहिंसात्मक रह जाना कठिन है ?

उत्तर—अनेक कालसे जो लोग हिंसा पर ही चलते आये हैं उनके लिये इसका एकाएक त्याग कठिन है।

प्रश्न—मिस्टर गान्धी, हम लोगोंकी धारणा है कि इस उपद्रवके लिये पहलेसे ही सङ्गठन किया गया था और लोग तैयार किये गये थे। क्या इसकी पुष्टिके लिये आप कोई प्रमाण–यदि आपके पास हो—देकर हम लोगोंकी सहायता कर सकते हैं ?

उत्तर—आप लोगोंकी धारणा ठीक है। मेरे पास इस सम्बन्धमे जो कुछ प्रमाण मौजूद हैं मैं विना किसी एतराजके आपके सामने रखनेको प्रस्तुत हूं। पर मैं किसी भी अवस्थामे उन लोगोंका नाम नहीं बताऊंगा। उन प्रमाणोंसे यही विदित होता है कि उन लोगोंकी आन्तरिक कामना जानकी हानि करनेकी नहीं थी केवल मालकी हानि करनेकी थी। इस उद्देश्यसे १० और ११ अप्रेलको एक दल खड़ा किया गया था। इस विषयमें मैंने उन लोगोंके बयान लिये हैं जिनसे उपद्रव करनेके लिये कहा गया, जिन्होंने उपद्रव किया और करवाया और उन लोगोंका जिन्होंने उन घटनाओंको होते देखा था। मेरे पास इसके अनेक प्रत्यक्ष उदाहरण मौजूद हैं। मेरे पास अनेक ऐसे लोग आये जिनके पास शस्त्रास्त्र थे और वे उन्हें मेरे

हवाले कर देना चाहते थे पर उन्हें साहस नहीं होता था। सूचना देनेवालोंमेंसे चन्दको मैं सिनाख्त भी कर सकता हूं पर सबको पहचानना कठिन है। आसपासके नगरोंसे अनेक लोग मेरे पास आये और अपने आचरणपर आन्तरिक खेद प्रगट करते थे। उन्होंने साफ साफ कह दिया कि जो कुछ हमलोगोंने किया उसका प्रधान कारण हमलोगोंके हृदयमे आपके प्रति प्रेम और श्रद्धा भक्तिकी पराकष्ठा थी।

प्रश्न—मिस्टर गान्धी, आप यह किस तरह कह सकते हैं कि जो कुछ उन्होंने कहा, सच है ?

उत्तर—मैं समझता हूं कि मुझमें इतनी योग्यता अवश्य है कि मैं सच झूठका पता लगा सकूं। उन लोगोंने जनताकी उत्ते-जनाका दुरुपयोग किया और इस प्रकारके भाव उनके दिलमें भर दिये। खेरागढ़में गाड़ी उलटनेकी सारी जिम्मेदारी केवल दो या तीन व्यक्तियों पर है। तीनों पक्के शराबी हैं। इससे मैं नहीं कह सकता कि उनकी यह कार्रवाई किसी चेष्टासे हुई है और उन्होंने इसके लिये पहलेसे ही प्रबन्ध किया था। मेरी तो यही धारणा है कि नगरवासियोंको इस दुर्घनाका पता नहीं था नहीं तो इसके रोकनेकी अवश्य ही चेष्टा कीगई होती। जो कुछ मैं कह रहा हूं इसका आधार उन कतिपय मनुष्योंका बयान है जिसके ऊपर मेरी असीम श्रद्धा है। मैं यह नहीं कह सकता कि जिन लोगोंको दण्ड दिया गया है वे वास्तवमें दोषी हैं क्योंकि मुझे उनका नाम याद नहीं है।

मैंने सविनय अवज्ञा इसलिये बन्द किया कि मैंने देखा कि वर्तमान अवस्थामें यह सामूहिक रूपसे नहीं चलाया जा सकता। मुझे इस बातकी उतनी चिन्ता नहीं रहती कि लोग सत्याग्रहके व्रतकी आन्तरिक असीम शक्तिकी मर्यादाको समझ लें जितनी इस बातकी कि सत्याग्रहके व्रतमें दीक्षित न होते हुए भी उन्हें अहिंसासे दूर रहनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

प्रश्न—आपने अपने पत्रमें 'सत्याग्रह फिर कब जारी किया जायगा ?' शीर्षक लेखमें लिखा था कि जनताको सत्याग्रहके लिये तैयार हो जाना चाहिये क्योंकि तभी सांग्रामिक सेनाकी नियुक्तिका काम पूरा और चरितार्थ होगा। क्या इससे आपका यह मतलब नहीं था कि सैनिक सत्ता प्रत्येक नगरमें स्थापित कर दी जाय ताकि लोगोंको कानून भंग करनेमें सुभीता हो।

उत्तर—मेरे शब्दोंका जो अर्थ आप लगा रहे हैं वह कहींसे भी नहीं निकलता। मैं इतना भीषण पाप करनेका दोषी कभी भी नहीं होना चाहता। जैसा मैंने अनुमान किया था मैंने पहली जुलाईको सत्याग्रह नहीं जारी किया यद्यपि मेरे इस आचरणसे मेरे अनेक साथी बड़े ही असन्तुष्ट हुए। मेरे सत्याग्रह आन्दोलन न आरम्भ करनेका एकमात्र कारण यही था कि भारतके बड़े लाट तथा बम्बईके गवर्नरने मेरे पास लिखा था कि यदि आप सत्याग्रह आन्दोलन जारी कीजियेगा तो आपका यह देश केवल सैनिकोंसे भर दिया जायगा। इस बातको भलीभाँति

समझकर तब आप पुनः सत्याग्रह आन्दोलनमें हाथ लगाइयेगा, और उन्हींकी बातोंपर मैंने आन्दोलनको स्थगित भी किया।

प्रश्न—अहमदाबादके लोगोंपर जो अर्थदण्ड लगाया गया है उसके बारेमें आपकी क्या राय है ?

उत्तर—अर्थदण्ड लगानेका तरीका एकदम खराब है। उस-के वसूल करनेका जो समय रखा गया है वह और भी खराब है। जिस तरहसे ये जुर्माने वसूल किये जा रहे हैं उनको देखकर दिल और भी घबरा उठता है। किसी किसी अवस्थामें तो ऐसे लोग भी इसके शिकार बना दिये गये हैं जिनसे इस दुर्घट-नासे कोई किसी तरहका संबंध तक नहीं था। जो लोग अर्थदण्डसे बरी कर दिये गये हैं उनके बारेमें मुझे कुछ नहीं कहना है और न मैं यहांपर अधिकारियोंके अधिकारके विषयमें ही कुछ कहना चाहता हूं। हाँ, मैं अहमदाबादके कलक्टरकी प्रशंसा किये विना नही रह सकता क्योंकि उन्होंने पूर्ण योग्यतासे काम लिया और अवसरके अनुकूल काम किया।

पण्डित जगत नारायणकी जिरह

प्रश्न—महात्माजी, यदि सरकार अराजकता दबानेके लिये सैनिक बलका प्रयोग कर रही हो तो आप उसका विरोध करेंगे ?

उत्तर—कभी भी नहीं, पर अराजकताके अभियोगोंकी जांच भी तो साधारण फौजदारी कानूनके अन्तर्गत हो सकती है ?

प्रश्न—ऊपरकी बात जब आप स्वीकार करते हैं तब फिर आपने रौलट कानूनोंका विरोध क्यों किया ?

उत्तर—उसके विरोधका प्रधान कारण यह है कि उसके अन्तर्गत समस्त भारतके ऊपर कलंकका भावना है।

प्रश्न—आप जानते हैं कि राज्यमे सबकी रक्षाकी उचित व्यवस्था रहती है ?

उत्तर—बचावकी मर्यादाके विषयमें यदि मेरी राय चाहते हैं तो मैं यही कहूंगा कि मेरा अनुभव तो यही कहता है कि वे केवल दिखौआ और भ्रमात्मक ही नहीं हैं वल्कि भयानक फन्दे हैं जिसमें जाकर लोगोंके फंसनेकी अधिक सम्भावना रहती है। ये तो एक तरहके भ्रमजाल हैं और इनसे प्रबन्धकोंकी उच्छृं-खलता और भी अधिक बढ़ जाती है।

प्रश्न—लोगोंका कहना है कि सत्याग्रह आन्दोलनसे सर–कारके हाथपांव बंध जायंगे। क्या आपको अपनी कारवाई-से इस बातकी आशंका नहीं है ?

उत्तर—सरकारको तङ्ग करना या उसका हाथपांव बांधकर उसका काम बन्द कर देना सत्याग्रह आन्दोलनकी आन्तरिक इच्छा नहीं है। इस कामके लिये तो अन्य साधारण राजनैतिक आन्दोलन चलाये जा सकते हैं। यदि सत्याग्रही देखता है कि उसकी कार्यवाहीसे सरकार तङ्ग हो रही है तो उसका सामना करनेसे भी नहीं डरेगा।

प्रश्न—मेरी धारणा है कि प्रत्येक राजनैतिक आन्दोलनकी सफलता उसके अनुयायियोंकी संख्यापर निर्भर करती है। मैं समझता हूं इस विषयमें आप मुझसे सहमत होंगे ?

उत्तर—यदि आचरण न्याय पूर्ण है तो उसमें संख्याकी कोई अवश्यकता नही ; और उन मामलोंमें प्रत्येक आदमी चाहे वह ऊंच हो या नीच अपने दुःखोंका प्रतीकार करा सकता है।

प्रश्न—पर आप इतनी चेष्टा तो अवश्य करना चाहेंगे कि आपके आन्दोलनमें यथासाध्य अधिकाधिक आदमी शामिल हो जायं ?

उत्तर—यह कोई आवश्यक नहीं। सत्याग्रहीकी विजय तो सच्चाई और उसके लिये संकट भोगनेके लिये उसके साहस पर निर्भर है।

प्रश्न—महात्माजी, मेरी समझमे यह नहीं आया कि राज-नैतिक क्षेत्रमें एक आदमीकी बातें कौन सुनेगा ?

उत्तर—इसी धारणाको गलत साबित करनेकी तो मैं चेष्टा करता आ रहा हूं।

प्रश्न—क्या आपका दृढ़ विश्वास है कि कोई भी अंग्रेजी अफसर इस तरहके एकाकी प्रयासकी जरा भी परवा करेगा और उसपर ध्यान देगा ?

उत्तर—मेरा अनुभव तो यही कहता है। इतिहास भी इस बातकी साक्षी देता है। केवल एकमात्र श्रीकेशवचन्द्र सेनके प्रयाससे लाड बेनटिंक, लार्डसे मिस्टर हो गये।

प्रश्न—पर केशवचन्द्र सेन असाधारण जीव थे।

उत्तर—असाधारण व्यक्ति कोई अलग नहीं उत्पन्न होते। कोई भी साधारण व्यक्ति अपने चरित्र बलका संगठन करके उस

पदपर पहुंच सकता है। मैं अपने देशवासियोंकी अयोग्यता देखकर दुःखित होता हूं। शिक्षाके अभावके कारण उनमें सभी दोष बतलाये जा सकते हैं। उन्हें शिक्षित करनेकी नितान्त अवश्यकता है पर इसके माने यह नहीं है कि इन अनपढ़ लोगोंके हृदयोंमें सत्याग्रहके सिद्धान्तोंका पूर्णरूपसे जमा देना असम्भव है। सत्याग्रहके भाव इनके हृदयोंमें पूर्ण सफलताके साथ भरे जा सकते हैं, यह हमारा बहुत दिनोंका प्राचीन अनुभव है।

आपने सत्याग्रह और हड़तालमें भेद पूछा है। हड़तालसे सत्याग्रहसे कोई सम्बन्ध नहीं। नितान्त आवश्यकता पड़नेपर ही हड़तालरूपी अस्त्रका प्रयोग करना चाहिये। मिस्टर हार्निमैनके निर्वासन और खिलाफत आन्दोलनके अवसरोंपर मैंने इस शस्त्रसे काम लिया था और मैं इसके प्रयोगमें पूर्णरूपसे सफल रहा।

प्रश्न—इन उच्छृङ्खल विदेशी अफसरोंके विरुद्ध प्रयोग करनेका आपके पास कोई अन्य अस्त्र नहीं था, इसीलिये आपने सत्याग्रह आन्दोलनका सहारा लिया। क्या मेरी यह धारणा ठीक है?

उत्तर—मैं इसका कोई ठीक उत्तर नहीं दे सकता। मेरी धारणाहै कि हमलोगोंको इस अस्त्रका प्रयोग आनेवाले जिम्मेदार शासनके विरोधमें भी करना पड़ेगा क्योंकि विदेशियोंकी रक्षाका तो 'अनजानकारीका' साधन अब भी मौजूद है पर हमारे देशवासी तो इससे सदा वञ्चित रहेंगे।

प्रश्न—स्वराज्यके जो अधिकार हमें दिये जायँगे उनके द्वारा हम मन्त्रियोंको हटा भी सकते हैं?

उत्तर—उस बातपर मेरा दिल नहीं जमता और न मुझे इसकी सम्भावनापर ही विश्वास होता है। इङ्गलैण्डमें अबतक यह बात देखनेमें आती है कि कभी कभी मंत्री जनताका पूरा विश्वास खोकर भी अपने पदपर कायम रह जाते हैं। तो क्या इस बातकी इस देशमें और भी अधिक सम्भावना नहीं है। ऐसी दशामें स्वराज्य हो जाने पर भी सत्याग्रहको आवश्यकता पड़ सकती है।

प्रश्न—क्या आप चाहते हैं और समझते हैं कि सत्याग्रह आन्दोलनके आरम्भ हो जाने पर किसी तरहकी अशान्ति नहीं उत्पन्न हो सकती?

उत्तर—नहीं, मेरा ऐसा विश्वास नहीं है। यदि मेरी और श्रीमती अनुसूयाकी गिरफ्तारीपर किसी तरहका क्षोभ न उत्पन्न हो तो मुझे आश्चर्य और असन्तोष होगा। पर वह क्षोभ या अशान्ति हिंसाका रूप नहीं धारण करेगा। सत्याग्रही दूसरेको यन्त्रणा सहते नहीं देख सकता। इसलिये एकके बाद दूसरा सत्याग्रही जेल जानेकी चेष्टा करेगा। इस तरहकी गिरफ्तारीको मैं सदा प्रोत्साहन देता रहता हूं।

प्रश्न—११ अप्रेलको बम्बई पहुंचकर आप पिढोनी क्यों गये?

उत्तर—वहांसे हिंसा और उपद्रव आरम्भ होनेकी सम्भावनाके समाचार आये। इसीलिये मैं वहां गया।

प्रश्न—मैंने सुना कि वहांकी जनताने आपकी बातें न सुनी?

उत्तर—यह कहना अनर्गल है कि वहांकी जनताने मेरी बातें

मानना स्वीकार नही किया। जिन्होंने मेरी बातें सुनीं वे तुरत मेरा अनुसरण करनेके लिये तैयार हो गये।

प्रश्न—मुझे मालूम हुआ है कि आप अपना सब काम बड़ी फुर्तीके साथ सम्पादित करते थे पर बीमार रहनेका सदा बहाना किया करते थे

उत्तर—आपको इस सम्बन्धमें जो कुछ मालूम हुआ है सब गलत है।

प्रश्न—उसी सूचनामें लिखा है कि आप इतने भयभीत हो गये कि आप भागकर एक मकानमें जा छिपे।

उत्तर—यह भी गलत है। मैं जनताके साथ अन्तिम क्षणतक रहा। मेरीही आंखोके सामने घुड़ सवारोंने जनतापर गोलियां चलाईं। इसी विषयपर बातचीत करने मै मिस्टर ग्रिफिथके पास गया था।

मिष्टर केम्पकी जिरह

प्रश्न—आपने अभी कहा है कि अहमदाबादमें मार्शल ला जारी करनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। आपके इस कथ-नका क्या आधार है?

उत्तर—मेरा यही दृढ़ विश्वास है।

प्रश्न—पर यदि सैनिक अधिकारी मार्शल लाकी आवश्य-कता बतलाते हैं तो ऐसी अवस्थामें आप क्या करेंगे?

उत्तर—जो कुछ सबूत मेरे पास मौजूद हैं उनसे मैं दृढ़ता-पूर्वक कह सकता हूं कि उन्होंने कभी भी इसकी आवश्यकता नहीं बतलाई थी।

प्रश्न—आपने अभी कहा है कि अनेक निर्दोष व्यक्ति भी मारे गये ?

उत्तर—हां, यह मेरा गवेषणा पूर्ण विचार है।

प्रश्न—क्या अपने इस कथनकी पुष्टिके लिये आपके पास पर्याप्त प्रमाण है ?

उत्तर—अपनी धारणाको दृढ़ करनेके लिये मेरे पास पर्याप्त सबूत हैं।

प्रश्न—क्या आपने इसके संबंधमे मिस्टर चेंटफील्डको लिखा था ?

उत्तर—हां, मैंने लिखा था।

प्रश्न—क्या उन्होंने फरयादियोंको पेश करनेके लिये आपके पास लिखा था ?

उत्तर—हां, लिखा था।

प्रश्न—आपने उस पर कोई कार्रवाई की ?

उत्तर—मैंने उसपर कोई कार्रवाई नहीं की, क्योंकि जिस दिन मैंने मिस्टर चेटफील्डके पास लिखा उसके दूसरे ही दिन मार्शल ला उठा लिया गया। मेरी समझमें मिस्टर चेंटफील्ड बड़े ही सज्जन अधिकारी हैं। चन्द घंटोंमें उनकी नेक नियती और सचाईका पूरा अनुभव मुझे हो गया। इसलिये मैं उन बातोंको किसी भी प्रकार कहना उचित नहीं समझता जिसके कारण उनके आचरणपर किसी तरहका दोष आता हो। जहां कहीं उन्होंने भूल की है उसमें भी मैंने उनको उदा-

श्ता देखी है। मैं आपसे यही प्रार्थना करूंगा कि इस प्रश्न पर आप अधिक पूछताछ न करें। मैंने पहले ही स्वीकार कर लिया है कि अप्रेल मासमें बम्बई सरकारने जिस साहस, धैर्य और सहिष्णुताका परिचय दिया उसके सामने शिकायतकी कोई बात नहीं रह जाती।

पर जब मैं सम्पूर्ण स्थितिकी पड़ताल करता हूं तो यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं अत्यन्त नम्रताके साथ उसकी भूलोंको भी बतला दूं। और मैंने वैसा ही किया है। मैं इस बात पर जोर देकर कि चन्द बेकसूर भी मारे गये इस शिकायतको बड़ा नहीं बना देना चाहता।

मिस्टर केम्प—महात्माजी, इस बातको मैं बड़े हर्षके साथ स्वीकार करता हूं कि आपका बयान साफ, स्पष्ट और सच्चा है। अब आपको अधिक कष्ट नहीं देना चाहता।

सत्याग्रहकी सर्वव्यापकता

(जून २३, १९२०)

वह समय अभी बहुत ही दूर है जब प्रेमकी सर्वव्यापकता स्वीकार हो सकेगी। सरकारी कर्मचारी प्रजाके हृदयको एक दूसरेसे अलग रखनेके लिये स्वयं बाधारूप होकर बीचमें खड़े हो गये हैं। पर यूरोप और पूर्वीय एशियाकी हालकी घटनाका कच्चा चिट्ठा खोलकर देखें तो हमें तुरत विदित हो जायगा कि अब धीरे धीरे संसारके सभी लोग इस बातको समझने लग गये हैं कि व्यक्ति व्यक्तिकी भांति जाति जातिके प्रश्नका निपटारा भी बलशक्ति द्वारा सफलता पूर्वक नहीं हो सकता। पर असहयोगकी आर्थिक उपयोगिता साम्रांमिक और नाविक शक्तिसे कहीं प्रबल है और इसका प्रभाव उत्कट है। युद्धके बाद विजयी राष्ट्रोंकी भी क्या अवस्था हुई है। उनके सिरका बोझ हलका होनेके बनिस्पत और भी बढ़ गया है। विजित राष्ट्रोंके पेट और व्यवसायका प्रश्न विजित और विजेता दोनोंकी चिन्ताका कारण हो रहा है। इस समय मित्रराष्ट्रोंकी सारी बुद्धि केवल इसी प्रश्नको हल करनेमें लगी है कि कौनसा उपाय निकाला जाय जिससे अपनी मर्यादा (विजेता होनेकी मार्यादा) की रक्षा करते हुए भी उसपर किसी तरहका

आघात न पहुंचाकर हमलोग विजित राष्ट्रको ऐसी दशामें ले आवें जिससे वह दिवालिया न बनकर सुखसे अपना दिन काटे और संसारका काम चल सके। अमरीकाके स्वतन्त्र दलने जिस अन्तर्राष्ट्रीय मन्तव्यकी सूचना निकाली है उसे पढ़ कर यही धारणा होती है कि सूदूर पूर्वीय देश अब इस बातका समझने लगे हैं कि राष्ट्र संघका अन्तिम लक्ष्य अस्त्र शस्त्रकी बाढ़ न हाकर अन्तर्राष्ट्रीय वहिष्कार होना चाहिये अर्थात् प्रत्येक राष्ट्रोंका परस्पर असहयोग। इतना कर लेने पर प्रेमके सिद्धान्तको स्वीकार कर लेनेमें कोई अधिक कठिनाई नहीं रह जायगी। इस मतके चरितार्थ करनेके लिये जब तक किसी नई शक्तिकी योजना नहीं की जायगी तब तक पुराने मतके प्रतिपादक इसे अव्यवहारक, मन मोदक कहकर इसकी हंसी उड़ावेंगे। इतिहासके पढ़नेवालोंको विदित होगा कि जिस समय पहले पहल भाफ द्वारा गाड़ी चलानेकी चर्चा चली थी उस समय घोड़ासे गाड़ी चलानेवालोंने व्यङ्गकी हंसी हंसा थी पर जिस दिन उन्होंने यह देख लिया कि इसकी सहायतासे गाड़ी क्या, घोड़े भी एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाये जा सकते हैं तब जाकर कहीं उनका विश्वास दृढ़ हुआ। यही बात उस इञ्जीनियरके बारेमें भी कही जा रही थी जिसने विजलीका ईजाद किया। पर जब उसने ताम्बेके तारोंपर विजलीकी प्रवाहको दौड़ाकर दिखा दिया तो संसार भौंचकसा होकर उसका मुंह निहार-

ने लगा। इसी तरह प्रेमका अन्तर्राष्ट्रीय जाला अनन्त काल तक फैले, उसके फैलनेमें अधिक समय लगे पर अमरीकाके प्रजातन्त्र दलने जिस अन्तर्राष्ट्रीय असहयोगकी व्यवस्था की है उससे सच्ची उन्नतिकी सम्भावना है और इसके द्वारा सभी प्रश्न हल हो सकते हैं।

इसके संबंधमें सबसे प्रधान संवाद आयर्लैंण्ड विषयक अफवाह है। लण्डनके आवजर्वर पत्रने लिखा है कि ब्रिटिश सरकारके मन्त्री आयर्लैंण्डसे मार्शल ला उठाकर, सैनिक बलका प्रयोग न कर उसके साथ पूर्ण असहयोग करना चाहते हैं। उसने लिखा है कि जबतक आयर्लैंण्ड अपना होश नहीं सम्हाल लेगा उसे एक दमसे छोड़ दिया जायगा और उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा जायगा। न तो वहां पुलिस रखी जायगी, न सेना रखी जायगी, न तो व्यवसाय रहेगा, न तो शिक्षाका प्रवन्ध रहेगा, न मालगुजारी रहेगी, और न रेलवे रहेगी। शासन व्यवस्थाका एक दमसे वहिष्कार किया जायगा। सत्याग्रहकी यही खूबी है। किसी संग्राममें कोई भी दल इसका उपयोग कर सकता है। उसमें नियन्त्रणके साधन है जो आपसे आप उस दलकी सत्यनिष्ठा और न्याय परायणता व्यक्त करते हैं और ये उन्हीके लिये लाभदायक हो सकते हैं जिसमे सत्य और इमानदारीकी अधिक मात्रा पाई जाती है। इसका प्रयोग राजा और रंक सभी बराबर कर सकते हैं। राजा और प्रजा दोनोंके लिये वे बराबर हैं। यदि राजा सच्चा है और प्रजा भ्रममे है और बदनि-

बतीसे काम करती है तो प्रजाकी हार होगी और यदि प्रजा उचित मार्ग पर है और राजा न्यायसे विमुख हो जाता है तो यह राजाके लिये घातक है। यदि युद्धमें सत्याग्रह अस्त्रसे काम लिया गया तो बनावटी आन्दोलन—अर्थात् जो आन्दोलन सच्चे दिलसे नहीं किया गया है और जिसके चलानेके लिये जबर्दस्ती शक्तिका संचय करना पड़ता है—का एक दमसे नाश हो जायगा। थोड़ी देरके लिये मान लीजिये कि किसी देशकी प्रजा अपना शासन करनेके अयोग्य है अथवा किसी उच्च आदर्श या महत्वपूर्ण सिद्धान्तके लिये बलिदान करनेके लिये भी तैयार नहीं है तो चाहे वह असहयोगको लेकर कितना भी शोर गुल क्यों न मचावे उसकी विजय नहीं हो सकती। मान लीजिये कि कोई सरकार अच्छी है, उसकी शासन व्यवस्था प्रजाके हित साधनके अनुरूप है, प्रजाके दुःख वास्तविक दुःख नहीं हैं प्रजा भ्रममें है, या उसके दुःख इतने ओछे हैं कि उस सरकारसे प्राप्त बरकतोंके मुकाबले उनकी कोई गणना नहीं है, ऐसी अवस्थामें कोई भी दल असहयोग व्रत ग्रहण कर सकता है। इसका अन्तिम परिणाम यह होगा कि बिना किसी तरहके रक्तपातके विवादके प्रश्नका पूर्णतया निपटारा हो जायगा। चाहे इसका किसीको ज्ञान न हो पर महात्मा गांधीने इस बातको बराबर बतलाया है कि सत्याग्रहका अस्त्र राजा और प्रजाके लिये बराबर लागू है अर्थात् जिस तरह राजाके विरुद्ध प्रजा इसका प्रयोग कर सकती है उसी प्रकार प्रजाके विरुद्ध राजा इसका प्रयोग कर सकता है। यदि यह बात सच है कि आयर्लैण्डकी अशान्तिकी औषधिके रूपमें इस शास्त्रके प्रयोग पर विचार किया जा रहा है और यदि इसके प्रयोगकी सम्भावना है तो सत्याग्रहके सर्वव्यापकताका यहीं प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जायगा।

"बीती ताहि बिसारि दे, आगेकी सुधि लेहु"

(नवम्बर ४, १९१९)

पारसालकी घटनाओंका चिट्ठा उतारना कठिन है। युद्ध समाप्त हो गया पर उससे कोई लाभ न हुआ। जिन आशाओंको वह सींच रहा था वे अब मुरझाने लगी हैं। जिस शान्तिको हम लोग स्थायी समझ रहे थे वह केवल नाममात्रको शान्ति निकली। जिस युद्धकी भीषणताकी तुलना महाभारतसे की जा सकती है उसका अन्तिम परिणाम क्या निकला? उसके अन्तिम परिणामको देखकर तो यही कहना पड़ता है कि यह युद्ध एक भीषण युद्धका आरम्भमात्र है। इस समय अमरीका, फ्रांस और इङ्गलैण्डमें भीषण अशान्ति फैल रही है जिसकी कल्पनामात्रसे दिल दहल उठता है। जो कुछ हो रहा है वह एक पहेलीकी तरह है। भारतके कोने कोनेमें असन्तोष और निराशा झलक रही है। सबको पूर्ण विश्वास था कि युद्धके बाद भारतको कुछ उपयोगी और सारपूर्ण वस्तु मिलेगी पर सब आशा निराशामें परिणत हो गई। जो कुछ हम लोगोंको विदित है उससे तो हम यही चाहते हैं कि शासन सुधारका कानूनीरूप न दिया जाय। पर यदि वे अभी गये तो सर्वथा बेकार होंगे। कांग्रेस लीग स्कीम, दिल्ली

कांग्रेसकी स्कीम तथा इस तरहकी अन्य स्कीमें अब केवल हवाकी बातें नहीं रह गईं। अभी हम लोगोंको प्रतीक्षा करनी होगी। पञ्जाबमें महान अनर्थकारी दृश्य उपस्थित हो गया। हजारों बेगुनाहोंकी जानें चली गईं। अत्याचारका राज्य स्थापित हो गया। राजा और प्रजाका भेद और भी अधिक बढ़ गया। इन सब बातोंकी असलियत निकालकर स्थितिका ठीक पता लगाना कठिन है अर्थात् न्यायका पक्ष कितना प्रबल है और उसके साथ कितने अत्याचार लगे हैं, अथवा न्यायका अंश ही नहीं रहा है और हम लोग केवल अन्यायको लेकर काम करनेके लिये प्रस्तुत हैं।

क्या इस प्रकारकी निराशाके घोर तमके बीचमें आशाकी पतली पर निर्मल किरण अवशिष्ट थी? इसी समय ६ ठी अप्रैलको सारे भारतको प्रकाशित करनेके लिये सत्याग्रह सूर्यका उदय हुआ। निराशाका मेघ इधर उधर तितर बितर हो गया और बीचमेंसे आशाकी उज्वल किरणे दिखाई देने लगीं। पर उस ज्योतिर्मय सूर्यपर राहुकी क्रूर दृष्टि लगी हुई थी। पञ्जाब और अहमदाबादमें उसने उसे ग्रस लिया और उसकी (राहुकी) भीषण छाया आज भी हम लोगोंका पीछा कर रही है। पर तो भी लोगोंके हृदयमें सत्याग्रह धीरे धीरे अपना दृढ़ आसन जमाता चला जा रहा है। हड़ताल सर्वव्यापी थी। अधिकांश स्थानोंमें पूर्ण शान्तिसे बीती। जिन्हें सत्याग्रहपर पूरा विश्वास था उन्होंने उपवास किया और प्रार्थना तथा अराधना आदिमें दिन

बिताया। मुसलमानोंपर (खिलाफतके कारण) जो विपत्तिका पहाड़ गिरा था उसमें हिन्दुओंकी सच्ची सहानुभूति थी। इससे मुसलमानोंकी आशालता और भी हरी भरी हो गई और दोनोंका सम्बन्ध और भी दृढ़ हो गया। यह सम्बन्ध इतना दृढ़ हो गया है कि उसका तोड़ना अतिकठिन है।

यदि कोई प्रश्न करे कि गत वर्ष कौनसी उल्लेख योग्य और महत्वपूर्ण घटना हुई तो हमलोग निःसङ्कोच कह सकते हैं कि राजा और प्रजा दोनोंने सत्याग्रहका व्रत ग्रहण किया। उस व्रतकी मर्यादा कितनी भी कम क्यों न हो, चाहे उसे अनजानमें ही क्यों न स्वीकार किया गया हो। अपने कथनके समर्थनमें हम १७ अक्तूबरका उल्लेख कर देना ही पर्याप्त समझते हैं।

भारतकी सम्पूर्ण आशाका फलवती होना एकमात्र सत्याग्रहपर निर्भर है। पर सत्याग्रह है क्या? समय समयपर हमने इसकी मीमांसा की है। जिस तरह सहस्र मुखवाले शेषनाग भी सूर्य भगवानकी बखान पूर्ण रूपसे नहीं कर सकते, उसी प्रकार सत्याग्रह सूर्यका वर्णन करना भी अति कठिन कार्य है। वह नहीं हो सकता। जिस प्रकार हम लोग सूर्यको प्रतिदिन सुबहसे शामतक देखते रहनेपर भी उसके बारेमें बहुत कम जानते हैं उसी प्रकार हम लोग सत्याग्रह सूर्यको देखते रहनेपर भी उसकी उपयोगिताके बारेमें बहुत कम जानते हैं।

सत्याग्रहकी परिधि (सीमा) के अन्दर तीन बातें आ जाती हैं :—स्वदेशी, सामाजिक सङ्गठन और राजनैतिक सुधार।

इनका स्थायी सुधार तभी हो सकता है जब इनका आधार सत्याग्रह हो,नहीं तो इसकी कोई आशा नहीं है। आजतक संसार जिन उपायोंका अवलम्बन करके इन बातोंकी प्राप्ति करता आया है उनसे सत्याग्रहका मार्ग एकदम भिन्न है। और उसके मार्गका पता लगा लेना सहज काम नहीं है। उस मार्गका अनुसरण करके चलनेका साहस अभीतक बिरला ही किसीने किया है। इसलिये ऐसा कोई उदाहरण भी इतिहासमें वर्तमान नहीं है जिसकी रेखा या पद्चिह्नका अनुकरण करके लोग आगे बढ़ सकें। इसीसे लोग सत्याग्रहके नामसे डरते हैं। पर ऐसे लोगोंका अभाव नहीं है जो यह सब जानकर भी उसको स्वीकार करनेको तैयार हैं और उस मार्गपर अनवरत बढ़ रहे हैं यद्यपि उनकी गति अभीतक मन्द है।

जिन लोगोंकी दृष्टिमें सत्याग्रहका अभिप्राय केवल शान्तिमय असहयोग है अर्थात् जो लोग शान्तिमय असहयोगको ही सत्याग्रहका सर्वेसर्वा मानते हैं उन्होंने सत्याग्रहका मर्म नहीं समझा है। यह निर्विवाद है कि सत्याग्रहकी सीमाके अन्तर्गत सविनय अवज्ञा आ जाती है पर यदि सत्याग्रहकी परिभाषा सब तरहसे बटोर कर की जाय। पर सविनय अवज्ञाको सफलतापूर्वक वही चरितार्थ कर सकता है जिसने कानूनकी मर्यादाको पालन करनेमें प्रवीणता प्राप्त कर ली है। कहा भी है कि किसी वस्तुको ढहानेका साहस उसीको करना चाहिये जो उस वस्तुका पुनः निर्माण कर सकता है। कवियोंने भी कहा है :—

"सत्यके मार्गका अनुसरण केवल साहसिक योद्धा ही कर सकते हैं, दुर्बल आत्माओंकी शक्तिके यह बाहर है।"

स्वदेशीका व्रत सत्याग्रहका व्रत है। दुर्बल आत्माओंमें इतना साहस कहाँ कि वे स्वदेशीका व्रत ग्रहण करें और उसका पालन करें। दुर्बल आत्मायें हिन्दू मुसलमानोंमें मेलका प्रचार भी नहीं कर सकतीं। यदि एक मुसलमान हिन्दू पर आघात करे या एक हिन्दू मुसलमानपर आघात करे तो उस तीव्र चोटको धैर्य्य पूर्वक बर्दाश्त कर लेना सहिष्णुताकी पराकाष्ठा है। क्या इसकी आशा दुर्बल आत्माओंसे की जा सकती है? यदि इस तरहके सहिष्णुताके भाव हिन्दू और मुसलमान दोनोंमें आ जायं तो स्वराज्य चुटकी बजाते प्राप्त हो जा सकता है। सत्याग्रहके मार्गपर चलनेमें हमें कोई रोक टोक या विघ्न बाधा नहीं है। हमे कोई मना करनेवाला भी नहीं है। स्वदेशी और हिन्दू मुसलमानोंका मेल दानों बातें सत्याग्रहके अङ्ग हैं और धार्मिक हैं। भारतवर्ष धार्मिक देश है। इसलिये हमें पूर्ण आशा है कि इस धर्माचरणमें भारत दृढ़तासे डटा रहेगा और कभी भी पीछे कदम नहीं हटावेगा। इस नये सालके समारोहमें हमारी यही प्रार्थना है :—

"दयामय, इस पूण्य भूमिको सत्यका मार्ग दिखलाइये, इस धर्मशील देशको स्वदेशीके धर्ममें दीक्षित कीजिये और भारत माताकी प्रत्येक सन्तानको—चाहे वे हिन्दू हों, मुसलमान हों, ईसाई हों, पारसी हों या यहूदी हों,—सबको सौजन्यता, प्रेम, सद्भाव और एकताके दृढ़ बन्धनमें बांध दीजिये।"

लीडरकी भूल।

(जनवरी २८, १९२०)

प्रयागका लीडर पत्र इस बातके फेरमें पड़ा है कि सत्याग्रह आन्दोलनकी बुराई करनेमें वह सबसे आगे बढ़ा रहे। इस हेतु हण्टर कमेटीके सामने महात्माजीने जो बयान दिया है उसमेंसे कुछ अंश उद्धत करके सत्याग्रह आन्दोलनकी हीनता दिखलानेमें वह इतना व्यग्र है कि वह यह बात भूल ही गया कि महात्माजीने लिखित बयान भी दिया है और उसपर विचार नहीं किया। अपने बयानमें महात्माजीने स्वीकार किया है कि 'सत्याग्रह आन्दोलनसे चन्द लोगोंके हृदयमेंसे न्यायकी मर्यादा कुछ कालके लिये उठ गई थी।' इसी बातको लेकर लीडरने आकास पाताल एक करते हुए इस बातको साबित करना चाहा है कि सत्याग्रह आन्दोलनसे क्या भीषण परिणाम हो सकता है। उसने लिखा है—'क्या सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ करनेमें महात्माजीने जल्दी नहीं की? क्या रौलट ऐक्टोंको रद्द करनेके न्यायसङ्गत और इससे सहल अन्य तरीके बेकार हो चुके थे?' इस तरह अपने मनको तसल्ली देकर कि सत्याग्रह आन्दोलन कुसमय आरम्भ किया गया वह सार्वजनिक हित साधनके लिये चरित्र बल तथा मानसिक अन्य गुणोंकी आवश्यकताको वही

पुरानी डफली पीटता है। अन्तमें उसने लिखा है :—'सब साधारणमें यह योग्यता नहीं है कि वह सत्याग्रहके सिद्धान्तोंको सफलता पूर्वक अङ्गीकार कर सकें।'

महात्मा गान्धीने हण्टर कमेटीके सामने बयान देते हुए इन सभी एतराजोंका पूरी तरहसे उत्तर दिया है। सत्याग्रह आन्दोलनके कुसमय आरम्भ करनेके विषयमें महात्माजीने अपने बयानमें कहा है :—"लार्ड चेम्सफोर्ड तथा उन अन्य अंग्रेज अफसरोंके सामने—जिनसे मैं मिलने गया—मैंने विनीत भावसे नम्र निवेदनके साथ अपने हृदयके भाव प्रगट किये पर सभोंने एक ही उत्तर दिया—हम लाचार हैं, हम लाचार हैं……हम लोगोंके हाथमें जितने भी अन्य उपाय थे जिनका हम सहारा ले सकते थे हमने लिया।" व्यवस्थापक सभाके सभी गैरसरकारी सदस्योंने इस कानूनका घोर विरोध किया। सारे देशने इसका एक स्वरसे विरोध किया। प्रत्येक स्थानपर सभायें की गईं और हजारों तथा लाखोंकी संख्यामें उपस्थित होकर जनताने एक मतसे अपनी नाराजी जाहिर की। इस कानूनका विरोध करनेमें कहीं भी मतभेद नहीं था। ऐसी अवस्थामें हमारी समझमें कोई न्याय सङ्गत और सहल तरीका नहीं रह गया था जिसका प्रयोग नहीं किया गया हो। कदाचित हमारे सहयोगीको कोई ऐसे गुप्त तरीके मालूम हों। यदि ऐसा कोई उपाय या युक्ति शेष रह गई थी तो महात्मा गान्धीने सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित करके उन लोगोंको जो अवसर दिया उसमें उन नेताओंने

इसकी समीक्षा परीक्षा अवश्य की होगी। प्रायः ६ मास होते हैं कि महात्मा गान्धीजीने अब्दुल अजीजके पत्रके उत्तरमे निम्न लिखित शब्द लिखे थे :—

यदि आपके पास सविनय प्रतिरोधके अतिरिक्त और कोई उपचार है तो आप उसका प्रयोग अवश्य कीजिये और यदि आपको सफलता मिली तो सत्याग्रह आपसे आप ही मर जायगा। जितने दिनोंतक सत्याग्रह रुका रहेगा उतने दिनोंतक आपको तथा उन अन्य नेताओंको—जो कि सत्याग्रहको हौआ समझ कर उससे डरते हैं—अपने अपने तरीके बरतने का और उससे अभिवाञ्छित फलकी प्राप्तिका अच्छा अवसर मिला है। आप लोगोंको अपनी शक्तिभर चेष्टा कर लेनी चाहिये।"

दूसरे महात्माजीके बयानका वही अंश लेकर कि 'सत्याग्रह आन्दोलनसे कितने ही लोगोंके हृदयमें कानूनकी मर्यादाकी अवज्ञाके भाव आ गये हैं', लीडर पत्र लिखता है कि यदि सत्याग्रह आन्दोलन कुछ समय तक और जारी रहता तो इसका विषैला असर और भी बहुत लोगों पर पड़ा होता और इससे बहुत बुरा परिणाम निकलता। लीडरकी आशंका तो यहां तक बढ़ गई है कि इस आन्दोलनसे लोगोंके हृदयोंमें अराजकताके भाव उदय होनेकी भी सम्भावना थी। पर अपनी इस आशङ्काके समर्थनके लिये न तो लीडरने किसी घटनाका उल्लेख किया है और न तर्कसे ही काम लिया है। हमारी तो यही धारणा है—और यही यथार्थ है—कि सत्याग्रह

आन्दोलनकी ही बरकत थी कि सरकारकी इस प्रकारकी अनुचित कार्रवाईयोंके होनेपर जो परिणाम निकलता वह न घटित हो सका। इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोगोंके हृदयोंसे काननको तरफसे एक प्रकारका जो हौआ समाया था वह तो दूर होगया, पर उनके हृदयमें काननको ओरसे एक प्रकारकी असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गई है। क्योंकि वे लोग समझने लग गये हैं कि समाजकी स्थिति और उसकी उन्नतिके लिये काननकी आवश्यकता अति प्रबल है।" सत्याग्रही राज्यके काननोंका इस भयसे स्वीकार नहीं करता कि अन्यथा वे उसपर जबर्दस्ती मढ़ दिये जायँगे बल्कि इस लिये कि वह जिस समाजमें रहता है उसके हित तथा कल्याणके लिये वह उन्हें आवश्यक समझता है, और यदि कभी अपनी मर्यादा तथा आत्मगौरवकी रक्षाके लिये वह किसी कानूनको तोड़ता है तो वह अपनी कार्रवाई खुली रखता है और शान्ति भंग नहीं होने देता। इसलिये उसकी कार्रवाईसे सरकारको तंग होनेका भय नहीं रहता। दक्षिण अफ्रिका, चम्पारन तथा खैरागढ़के अपढ़ किसानोंने जिस दृढ़ता तथा वीरताके साथ इस आन्दोलनको पकड़ा था उसका इतिहास पढ़कर सत्याग्रहके आत्मनिग्रहपर किसी तरहका सन्देह नहीं रह सकता। रौलट ऐक्टके विरोधके अवसरको ही ले लीजिये। सरकारकी तरफसे उत्तेजनाके प्रत्येक साधन संग्रह कर दिये गये थे पर जनता अन्त तक शान्त रही, सत्याग्रहकी शान्तिप्रियताका ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित किया और यदि कहीं एकाध स्थानोंपर लोगोंने आत्म

संयम खो दिया और उपद्रव कर बैठे तो वहां भी सत्याग्रहियोंकी तरफसे कुछ नहीं हुआ था। उस अवस्थामें भी वे न्यायकी मर्यादा पालते ही जा रहे थे। लीडरने लिखा है—'इन उपद्रवोंकी सारी जिम्मेदारी सत्याग्रह आन्दोलनके ऊपर है। यदि आज सत्याग्रह जारी न किया गया होता तो इस तरहके उपद्रवोंके उठनेकी सम्भावना ही न थी।' पर वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। उपद्रव होनेका प्रधान कारण यह हुआ कि लोगोंने सत्याग्रहका पूरी तरहसे प्रचार नहीं किया और लोगोंमें अभी तक इतनी सहनशीलता नहीं आ गई है।

इन बातोंके उल्लेख कर देनेके बाद भी क्या लीडरकी यही धारणा बनी रहेगी कि सत्याग्रह आन्दोलन—जिसका आधार सत्यबल और अहिंसा है—जनतामे प्रचार करने योग्य नहीं है। यदि अब भी उसकी यही धारणा रह गई तो हमे बाध्य होकर लिखना पड़ेगा कि उसमें न तो मानव प्रकृतिको समझनेकी योग्यता है और न उसका इसमें विश्वास है कि भलाई बुराई पर अवश्य विजय पा सकती है।

छठीं और तेरहवीं अप्रेल।

मार्च १०, सन् १६२० के यंग इण्डियामें महात्मा गांधीने अप
नामसे निम्न लिखित लेख प्रकाशित किया है :—

छठीं और तेरहवीं अप्रेलने प्रत्येक भारतवासीके हृदयप
दृढ आसन जमा लिया है। ये दोनों पवित्र तिथियां कभी भ
भूली नहीं जा सकतीं। छठीं अप्रेलको भारतमें जागृतिके बीज
रोपण हुए थे। सारे देशमें एक नई स्फूर्ति पैदा हुई थी, न
शक्तिका संचार हुआ था और १३ वीं अप्रेलको बेगुनाहों
खूनकी नदियां बहाई गईं जिससे पंजाब प्रान्त प्रत्येक भारत
वासीके लिये पवित्र पुण्यक्षेत्र हो गया। छठीं अप्रेलको सत्य
ग्रहका जन्म हुआ। सत्याग्रहके सविनय अवज्ञावाले अंश
मतभेद हो सकता है पर इसपर किसी प्रकारका मतभेद न
हो सकता कि सत्यबल, शान्ति और अहिंसाका यह एक पवि
शस्त्र है। सत्यके साथ अहिंसाको मिलाकर आप संसार
प्रबलतम शक्तिका दमन कर सकते हैं। सत्याग्रहका मर्म रा
नैतिक जीवनमें अर्थात् राष्ट्रीय जीवनमें सत्य और विनय
समावेश करना है। अब चाहे कोई सत्याग्रह व्रत ग्रहण व
या न करे पर इतना तो निश्चय है कि प्रत्येक व्यक्तिके हृदय
सत्याग्रहने अपना स्थान बना लिया है। पंजाबमें भ्रमण क

समय मुझे लाखों पंजाबियोंसे मिलने और बातचीत करनेका अवसर प्राप्त हुआ था और उससे मैं इसी परिणाम पर पहुंचा हूं।

सत्याग्रहके जन्मके अलावे छठीं अप्रेल अन्य दो प्रधान और महत्व पूर्ण घटनाओंके लिये चिरस्मरणीय रहेगी। इसी दिन मुसलमान और हिन्दूकी एकताकी पहली गांठ बँधी और स्वदेशीका व्रत ग्रहण किया गया।

छठी अप्रेलने ही रौलट ऐकृपर भाषण आघात किया और उसका सदाके लिये मृत बना दिया। १३ वीं अप्रेलका स्मरण केवल इसीलिये नहीं किया जाता कि उस दिन बेगुनाहोंका रक्त नाहक बहाया गया था बल्कि इसलिये कि उस दिनकी दुर्घटनासे हिन्दू मुसलमानोंका रक्त एकही धारामें होकर बहा और हिन्दू मुस्लिम एकताकी गांठपर पक्की मुहर करता गया।

इन दो राष्ट्रीय पुण्य तिथियोंका उत्सव किस प्रकार मनाना चाहिये। मेरा विनीत प्रार्थना है कि जो लोग कर सकते हों वे लोग आगामी छठी अप्रेलको (२४ घंटेका) उपवास व्रत कर और प्रार्थना करें तथा सात बजे शामको प्रत्येक स्थानपर सभायें करके रौलट ऐकृका विरोध किया जाय कि जब तक भारत सरकार इन अनर्गल कानूनोंको रद्द नहीं कर देती प्रजाके चित्तमें शान्ति नहीं हो सकती। हम जानते हैं कि रौलट ऐकृ मुर्दा हो गया है अर्थात् भूलकर भी उसके प्रयोगकी चेष्टा नहीं की जायगी पर इतना ही पर्याप्त नहीं है। जब

तक वह कानूनको पुस्तक पर है, हमारे अपमानका कारण है। इसलिये उसका न होना ही उचित है। इसलिये उसे यथा-शीघ्र रद्द कर देना चाहिये। यदि शासन सुधारोंके पूर्व ही भारत सरकारने इसके रद्द करनेकी योजना कर दी तो यह भी उसकी सदिच्छाका एक ज्वलन्त प्रमाण समझा जायगा।

यह सप्ताहका सप्ताह (अर्थात् छठी अप्रेलसे लेकर तेरहवी तक) १३ वीं अप्रेलकी दुर्घटनासे संबन्ध रखने वाले किसी शुभ कार्यमें बिताना चाहिये। इसलिये हमारी राय है कि इस सप्ताहमें जलियांवाला बागके कोषके लिये चन्दा वसूल करना चाहिये। हमलोंगोको स्मरण रखना चाहिये कि इस निमित्त हमें १० लाख रुपये इकट्ठे करने हैं। प्रत्येक ग्राम या नगर अपनी सुविधाके अनुसार चन्दा संग्रह करनेकी व्यवस्था कर सकता है। पर प्रत्येक अवस्थामें इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि कोई व्यक्ति धोखेबाजीसे इस द्रव्यका दुरुपयोग नहीं करता। चन्दा संग्रह करनेका काम १२ अप्रेलकी शाम तक समाप्त हो जाना चाहिये।

१३ वीं अप्रेलको उपवास व्रत करना चाहिये और प्रार्थना करना चाहिये। उस दिन हिंसा और द्वेषके सभी भाव हृदयसे निकाल देना चाहिये। हमलोग उस दिन उन बेगुनहोंका स्मरण करेंगे जिन्होंने मातृभूमिकी वेदी पर अपनी बलि चढ़ा दी है। हमलोग यह उत्सव पापियोंके पापाचार और जालिमोंके जुल्मको स्मरण करनेके लिये नहीं मना रहे हैं। आत्मत्यागकी तरफ

तत्परता दिखानेसे ही राष्ट्रका उत्थान हो सकता है न कि बदलेकी आगमें जलनेसे। उस दिन हमे जनताको ओरसे की गई ज्यादतियों और उपद्रवोंको भी स्मरण करना चाहिये। और उसके लिये खेद प्रगट करना चाहिये तथा पश्चात्ताप करना चाहिये। शामको भारतके प्रत्येक स्थानमें सभा कर ब्रिटिश तथा भारत सरकारसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वे समुचित कारवाई द्वारा इस तरहकी दुर्घटनाओंका होना सदाके लिये असम्भव कर दें।

इस सप्ताहमे सत्याग्रहके सिद्धान्तोंका ज्ञान प्राप्त करनेकी भी पूरी चेष्टा करनी चाहिये। हिन्दू मुस्लिम एकताको बढ़ाना चाहिये और स्वदेशीका प्रचार करना चाहिये। हिन्दू मुस्लिम एकताको बढ़ानेके लिये १२ वीं अप्रेल शुक्रवारको सात बजे शामको हिन्दू मुसलमानोंका महती सभा होनी चाहिये और भारत सरकार तथा ब्रिटिश सरकारपर इस बातका दबाव डालना चाहिये कि खिलाफतका प्रश्न मुसलमानोंकी धार्मिक व्यवस्थाके अनुसार हल किया जाना चाहिये।

इस प्रकार यह राष्ट्रीय सप्ताह आत्माकी पवित्रता, परीक्षा, आत्मत्याग, नियन्त्रण तथा राष्ट्रीय उदार भावोंकी घोषणामें बिताना चाहिये। मनोमालिन्य, विद्वेष, तथा क्रोध मनसा, वाचा या कर्मणा किसी भी प्रकार न प्रगट किया जाना चाहिये।

कितने लोगोंने पूछा है कि छठीं और तेरहवींको हड़ताल

होनी चाहिये कि नहीं। हमारा उत्तर है कि नहीं। यह सप्ताह उन लोगोंके लिये सत्याग्रह सप्ताह है जिन्हें सत्य और अहिंसा पर दृढ़ विश्वास है। छठी अप्रेलकी हड़तालको 'सत्याग्रहकी हड़ताल' की उपमा इसलिये देते हैं कि सत्याग्रह आन्दोलनका सूत्रपात करनेके लिये यह पथ प्रदर्शक थी। यद्यपि यह हड़ताल आपसे आप हुई थी पर उस दिन लोगोंको गाड़ियोंका इस्तेमाल आदि करनेसे लिये रोक कर वाह्य प्रेरणाका कलंक इस पर अवश्य लगाया गया। इसलिये इस तपस्या और आत्मनिग्रहके सप्ताहमें हड़ताल नहीं होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त हड़तालोंका मूल्य भी इस तरह घट जायगा। इसका प्रयोग अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर ही होना चाहिये।

हमें पूरी आशा और भरोसा है कि प्रत्येक दल प्राणपणसे चेष्टा करेंगे कि यह राष्ट्रीय सप्ताह पूर्ण समारोहके साथ मनाया जाय और राष्ट्रीय जागृतिमे यह सच्ची ज्योतिको प्रज्वलित करता रहे।

सत्याग्रह सप्ताह ।

(मार्च २४, १९२०)

कई एक दिनमें ही सत्याग्रह सप्ताह आ उपस्थित होगा। हमे पूर्ण आशा है कि इस पवित्र तेवहारकी हम पूर्णतया मर्यादा रखेंगे ताकि उसका महत्व किसी भी अंशमें कम न होने पावे। पंजाबके काण्डका हमलोगोंके हृदयमे क्या भाव है, पंजाबकी तरफ हम लोग किस दृष्टिसे देखते हैं, इसके जांचकी कसौटी हम लोगोकी वह उदारता और तत्परता होगी जो हम लोग उन देश भक्तोंके वलिदानकी तिथि १३ वीं अप्रेलके स्मारकके निमित्त चन्दा संग्रह करनेमें दिखावेंगे। यही सच्ची जांच है जिसमें हम लोग पूरी तरहसे तौले जा सकेंगे। इसके निमित्त हमें केवल दस लाख रुपया चाहिये। ३३ करोड़की आबादीमेंसे १० लाख रुपया इकट्ठा कर लेना कोई कठिन काम नहीं है। केवल उत्साही और योग्य काम करनेवालोंकी आवश्यकता है। यदि प्रधान प्रधान महिलायें और पुरुष लोग इस कामको किसी प्रकार उठा लें तो १० लाख रुपया इस सप्ताहके भीतर ही भीतर एकत्रित हो सकता है। इस स्मारक कोषके लिये रुपया संग्रह करनेका सबसे उचित उपाय प्रत्येक प्रान्तोंकी हैसियतके अनुसार चन्दा होना चाहिये। इस बातकी सूचना (किस प्रान्तको कितने

भंगकी रंग जम रही है तो किसीमें सोलहों परीकी नाच हो रही है (जूआ खेला जा रहा है) तो कहीं पकवानोंकी ही फिक्रने व्यस्त कर रखा है। भला ऐसे व्रतोंसे आत्मा पवित्र होकर ऊपरको कैसे उठेगी! उलटे इससे तो और भी अधिक पतन होनेकी सम्भावना है। यदि उपवासका सच्चा उपयोग करना है तो उपवासके दिनको केवल सद्विचारोंमें भी बिताना चाहिये और बुरे तथा कुमार्गमें ले जानेवाले विचारोंके दमनकी दृढ़ प्रतिज्ञा करनी चाहिये। इसी प्रकार यदि प्रार्थनाका सुफल प्राप्त करना है तो वह विदित और भावगम्य होना चाहिये। प्रार्थना करनेवालेको उसी प्रार्थनामें रत हो जाना चाहिये। शरीर और आत्माको उसीका अवयव बना देना चाहिये। एक तरफ तो अंगुलियोंके सहारे मालाकी मनिया (दाना) घुमाते रहना और दूसरी ओर मनकी प्रवृत्तिको वहक कर इधर उधर जाने देना, इस प्रकारकी प्रार्थना निरर्थक और बेकार है। इसका फल बुरा ही होता है। इसलिये हमें पूर्ण आशा है कि आत्मत्याग और आत्म समर्पणके आगामी सप्ताहमें प्रार्थना और उपवासका व्रत राष्ट्रीय महत्ताका सच्चा द्योतक होना चाहिये न कि केवल नाम मात्रके लिये, केवल दिखलानेके लिये इसे स्वीकार करना चाहिये।

* * * *

हजारों मुसलमानोंका एक दलमें प्रार्थनाके लिये जाना और सच्चे हृदयसे सत्यकी विजयके लिये प्रार्थना करना सफलताको

और भी निकटवर्ती बना देनेका साधन हुआ है। हमें पूर्ण विश्वास है कि केवल प्रार्थनाके ही द्वारा खिलाफतके प्रश्नका पूर्णतया निपटारा हो सकता है। लोग कहते हैं कि प्रार्थनाका द्वार दोनोंके लिये बराबर खुला है अर्थात् इससे जितना लाभ हम उठा सकते हैं उतना ही हमारा शत्रु—जिसके मुकाबलेमें हम प्रार्थनाके साधनका प्रयोग करना चाहते हैं—उठा सकता है। इसे बतलानेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह साधारण बात सब कोई जानते हैं। पर इससे प्रार्थनाकी सार्थकता पर कोई क्षति नहीं पहुंचती। उसका मूल्य तो सदा बराबर है। हम लोगोंने प्रार्थनाका जो मूल्य रख लिया है उसके विरुद्ध ये सब बातें लागू हो सकती हैं। ईश्वरके साथ शर्तबन्दी करना उचित नहीं प्रतीत होता। केवल इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि अनादि कालसे प्रार्थना और आराधना राष्ट्रीय तथा वैयक्तिक सङ्कटोंके निवारणमें सदा प्रधान सहायक होता आया है। हमारी यही आन्तरिक कामना है कि इस सत्याग्रह सप्ताहमें उस प्राचीन व्यवस्थाका पुनरुद्धाटन हो और वह अपना पूर्ण विकास प्रगट करके अपनी असली सत्ता फिर स्थापित कर सके।

हिंसा और अहिंसा ।

महात्माजीने २४ मार्च १९२० के यंग इण्डियामें निम्नलिखित लेख लिखा है :—

खिलाफतकी तिथि आई और चली गयी। सत्याग्रहकी विजयका यह ज्वलन्त उदाहरण था अर्थात् सविनय अवज्ञाका नहीं बल्कि सत्य और अहिंसा का। जैसी हड़ताल इस बार हुई कभी नहीं हुई थी। १९ मार्चकी हड़तालमें एक विशेषता यह थी कि इसके लिये किसी तरहकी प्रेरणा नहीं की गई थी। १९ मार्चको तो किसीने कहीं जबानतक नहीं हिलाई। मिलके मजूरोंको हड़तालमें शामिल न होनेकी राय देकर खिलाफत कमेटीने अतीव दूरदर्शिता और आत्म संयमका परिचय दिया है। कमेटीका प्रबन्ध नितान्त सराहनीय था और हस्तक्षेप न होने देनेका जो यत्न कमेटीने किया था उसके लिये भी वह अतिशय धन्यवादकी पात्र है। जनताने जिस आत्म सयमका परिचय १९ मार्चको दिया है यदि उसी तरहके आत्म संयमका परिचय भविष्यमें दिया. और यदि आत्मत्यागमें भी उसी तरहकी तत्परता दिखाई तो खिलाफतके सम्बन्धमे हम लोगोंकी आशाके फलवती होनेमें किसी तरहकी बाधा नहीं उपस्थित हो सकती।

एक वर्ष पहले कोई इस बातका स्वप्नमे भी संभावना नहीं करता था कि ऐसे विकट प्रश्नपर—जिसमें मुसलमानोंका कट्टरपन जानमालकी भी परवा नही करता—इस प्रकारकी शान्तिसे काम लिया जा सकता है। तिसपर भी ऐसे दिन जब लोगोंकी बेकारी एकदमसे बढ़ जाती है और लोग फालतू हो जाते हैं। पर प्रार्थनाने बेकारीके प्रश्नको हल कर दिया था। सबके लिये यह कर्तव्य निर्दिष्ट कर दिया गया था कि कोई न दङ्गा सफाद करे, न क्रोध या गुस्सा करे, केवल न्याय और सचाईके लिये तन, मनसे प्रार्थना करे। यह सच है कि सबने प्रार्थना नहीं किया पर प्रार्थनाका भाव घट घटमें व्याप रहा था। और यह भाव क्रोध, रोष, आवेश तथा हिंसाके भावके कहीं ऊपर विराज रहा था। यही कारण था कि हड़तालका दिन इतनी शान्तिके साथ बीत गया मानों किसी भी प्रकारकी असाधारण घटना नहीं घटी है। बम्बईकी महती सभा जिसमें तीस हजार आदमी उपस्थित थे विचित्र दृश्य उपस्थित कर रही था। जो लोग वहांपर उपस्थित थे उनके चेहरेको देखकर यहा प्रतीत होता था कि उनमे पूरी द्रढ़ता है। पर उन लोगोंने अपनी द्रढ़ताको प्रगट करनेका कोई भी वाह्य उपकरण नही उपस्थित किया। प्रबन्धकोंका इस बातका श्रेय है कि उन्होंने एक बार पुनः प्राचीन शान्ति, स्थिरता और एकताको वर्तमान अशान्ति, शोरगुल और जोश खरोशके स्थानपर ला जमाया। आजकलके भावका फल हिंसा है और प्राचीन कालके भावका फल सत्याग्रह

है और इस हड़ताल और महती सभाका अभिप्राय हिंसा न होकर अहिंसा है। हमें पूर्ण आशा है कि अधिकारी वर्ग इस स्थितिको अनुचित प्रकारसे न देखेंगे। हमें पूर्ण आशा है कि वे इस समस्त कार्यवाहीका सच्चा अभिप्राय भलीभांति समझ जायंगे और इस महत्वपूर्ण प्रस्तावके अभिप्रायको भी अच्छी तरह समझ लेंगे। आजको सभामें जो प्रस्ताव किये गये हैं उसमे किसी तरहका विरोध भाव प्रगट करना किसी भी सच्चे देशभक्तके लिये असम्भव है। हमे इस बातकी भी आशा है कि वे लोग इस आन्दोलनकी गतिको भी पूरी तौरसे ध्यान पूर्वक देखेंगे और इसका भाव समझेंगे। हमें पूर्ण आशा है कि असाधारण धैर्य्य, आत्मसंयम, और पूर्ण शान्ति—जिसकी हम लोगोंमे शनैः शनैः उन्नति हो रही है—अपना पूर्ण प्रभाव प्रगट करेगी और भारत तथा ब्रिटिश सरकारको बतला देगी कि यद्यपि देश एक ओर पूर्णरूपसे शान्त है तथापि दूसरी ओर उसके हृदयमें दृढ़ प्रतिज्ञाके भाव भरे हैं जो अब 'नकारात्मक' उत्तरसे संतुष्ट होनेवाले नहीं हैं। हमे पूर्ण आशा है कि सरकार विगत सालकी अप्रेलकी तरह फिर भूल नहीं करेगी और न अत्याचार द्वारा उस जागृतिको दबानेकी भ्रमपूर्ण और निरर्थक चेष्टा करेगो क्योंकि जो जागृति इस समय प्रगट हो गई है उसके वशीभूत मनुष्य हीनता, दीनता, अपमान और पराजयके अतिरिक्त सब कुछ सहनेको तैयार है।

हमे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि लिबरल लीगके समान

सम्मानित और प्रतिष्ठित संस्थाने बिना समझे बूझे और पूर्णतया विचार किये उतावलापनके साथ हड़तालकी निन्दा कर दी है। जिस मनुष्य या जातिका हृदय शोक और आवेशसे भरा है और निराशा अपनी लाल लाल आंखे काढे जिसकी ओर क्रूर नेत्रोंसे देख रही है मानो वह उसे निगल जानेके लिये प्रतिक्षण तैयार बैठी है, ऐसी जातिके लिये अपने हृदयस्थ वेदनाके भावोंको प्रगट करनेके लिये कोई उपयुक्त साधन होना चाहिये। अभी थोड़े दिन पहले ही हमारी आत्मापर इतना भय लाद दिया गया था और हमलोग अपने हृदयके सच्चे उद्गारोंको लिखकर या कहकर प्रगट कर देनेसे इतना डरते रहे कि हम लोगोंकी आत्मा इतनी पतित हो गई थी जैसे सूर्यके प्रकाशको चिरकाल तक न पानेके कारण किसी वस्तुपर भुकड़ी लग गई हो। यही कारण था कि हमलोगोमेंसे कितनोंने ही गुप्त सभायें कायम की थी। पर आज हमलोग उस अन्धकारमय और बुरे युगसे आगे बढ़ गये है। आज हमलोग अपने हृदयके भावोंको लिख और कहकर दूसरों तक पूर्ण स्वतन्त्रता पूर्वक पहुंचा सकते हैं। आज कल हमलोगोंपर कानूनका केवल उतना ही दबाव है जितना प्रत्येक स्वतन्त्र मनुष्य पर होना चाहिये। लिबरल लीग तथा अन्य ऐसी संस्थाओंके सदस्योंसे हमारा सानुनय अनुरोध है कि वे हमारे उपरोक्त कथनपर धीरताके साथ विचार करें और डरसे दबकर हम लोगोंकी जो अवस्था हो रही थी उसके मुकाबलेमें इस साह-

सिकताको उचित प्रशंसा करें। यदि वे उन समग्रशक्तियोंको जो राष्ट्रके उत्थानके साधन रूपमें दिन प्रति दिन दृष्टिगोचर हो रही हैं, एक नाथमे नाथना चाहते हैं; यदि वे नये राष्ट्रीय उत्थानमे प्रतिष्ठाका स्थान प्राप्त करना चाहते हैं, तो उचित है कि समयकी प्रगतिको वे उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखें, नई पीढ़ीके आगे बढ़नेमें वाधा न उपस्थित करें, उनके बढ़ते उत्साहको भङ्ग न करें बल्कि उन्हें उचित है कि वे इन नवयुवकोंके बढ़ते दलका नेता बन बैठें और इनके उत्साहको बढ़ावें। उनके प्रत्येक कामोंके साथ सहानुभूति दिखावें, उनके हृदयके ऊफानोंको और भी उठने दें, और उनका नियन्त्रण करें। इससे दोनोंका लाभ होगा। नव युवकोंको ऐसे लागोंके निरीक्षणकी सहायता मिल जायगी जो समय और कालका पूर्ण अनुभव प्राप्त करके परिपक्क बुद्धिके हो गये हैं और उन वृद्धोंको एक ऐसा दल मिल जायगा जा पूर्ण नियन्त्रणके साथ मातृभूमिके चरणोंपर अपना सर्वस्व वारनेको सदा तैयार हैं। पर यदि उनकी परवा नहीं की गई, यदि उन नवयुवकोंको किसी तरह विदित हो गया कि ये वयो वृद्ध लोग हमारी आवश्यकताओंकी चर्चा सुननेके लिये तैयार नहीं हैं, हमारी सहायता करनेके लिये तैयार नहीं हैं, तो संभव है कि वे हताश और निराश हो जायं और निराशाका जो भयङ्कर परिणाम होता है वह किसोसे छिपा नहीं है। निराशाके वशीभूत होकर मनुष्य बुरासे बुरा काम करनेके लिये सन्नद्ध

हो जाता है। हमारी समझमें सत्याग्रहके सिद्धान्तकी शिक्षा देने और उसका प्रचार करनेके लिये इस देशमें इससे उपयुक्त समय कभी भी उपस्थित नहीं हुआ था। सत्याग्रहसे हमारा अभिप्राय सविनय अवज्ञाका नहीं है वल्कि सचाई और अहिंसा-के भावके प्रचारका है। इसमे किसी तरहके पराजयकी सम्भावना नहीं और यदि इसमे किसी प्रकारकी क्षति होने-की सम्भावना है तो उसका भोगनेवाला स्वयं कर्ता होगा।

अदालतोंका अपमान

मार्च २४, १९२० के यंग इंडियामें महात्मा गांधीने निम्न लिखित लेख प्रकाशित किया है :—

अहमदाबादके जिला मजिस्ट्रेटने सत्याग्रह व्रत धारण करनेके अपराधमें १७ वकीलोंपर अभियोग चलाया था उसके सम्बन्धमें जिलाधीश तथा वकीलोंमें पत्र व्यवहार हुआ था। यङ्ग इण्डियामें वे पत्र प्रकाशित कर दिये गये थे और सम्पादकीयमें उनपर नोट भी लिखा गया था। इसपर यङ्ग इण्डियाके सम्पादक और प्रकाशकपर मुकदमा चलाया गया था। उसका विचार हो गया और फैसला भी सुना दिया गया। अदालतने सम्पादक तथा प्रकाशकको किसी प्रकारका दण्ड न देकर केवल उन्हें कड़ी चेतावनी दे कर छोड़ दिया। हमारी इच्छा होती है कि हम उस फैसलेपर दो चार शब्द लिखें क्योंकि सत्याग्रहीके हैसियतसे हम उसमेंसे कुछ शिक्षा निकालना चाहते हैं। उस समय हमारे कितने हो घनिष्ट मित्रोंने हमें यही राय दी कि हम दोनों (सम्पादक और प्रकाशक) खुली अदालतमें क्षमा मांग लें। पर हमलोगोंने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। इसमे हमलोगोंकी जिद नहीं थी बल्कि हमने देखा कि ऐसा करनेसे एक बड़े सिद्धान्तकी हत्या हो रही है। उस समय हमें कानूनकी मार्यादा रखते हुए सम्पादककी स्वत-

न्वताकी रक्षा करनी थी। जहां तक हमे अनुभव है हमने भली भांति देख लिया था कि हमारी कार्रवाईसे अदालतका किसी भो तरहसे अपमान नहीं हुआ है। हमारा पैरवी करना इस बातपर निर्भर था कि क्षमा प्रार्थना तो नहीं ही करना था वल्कि भविष्यमें भी ऐसी अवस्था उपस्थित हो जाने पर हम फिर उसी तरहको आलोचना और प्रत्यालोचना करनेके लिये तैयार थे। हमारी धारणा है कि अदालतके सामने क्षमा प्रार्थना करनेके बाद मनुष्यको उसके पालनेकी भी चेष्टा करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त अदालतके प्रति भी हमारा एक कर्तव्य था। चीफ जस्टिसकी सलाहको स्वीकार कर लेना हमारे लिये साधारण बात नहीं थी विशषकर ऐसी अवस्था-मे जब कि वे हमारे साथ पत्र व्यवहार करनेमें बड़े ही सौजन्यतासे काम लेते हैं। हमारी स्थिति दोलायमान थी। इस लिये हमने यही निश्चय किया कि हम किसी तरहकी पैरवी नहीं करेंगे केवलमात्र लिखित बयान देकर साफ शब्दोंमें सच्ची स्थितिका दिग्दर्शन करा देंगे और इस बातका फैसला अदालतके हाथमें छोड देंगे कि वह जो उचित समझे करे। केवल यह बात दिखलानेके लिये कि हमारी मन्शा अदालतका किसी तरहसे अपमान करनेकी नहीं है और न हम यही चाहते हैं कि इस अभियोगको लेकर चारों ओर ढिंढोरा पीटा जाय इसलिये हमने इसके प्रकाशनको रोकनेकी चेष्टा की। आज हम इस बातको साहसके साथ लिखते हैं कि हमने अदालतको

अच्छी तरह बतला दिया कि मेरी अवज्ञा—यदि इसे अवज्ञा कह सकते हैं—घृणाके भावमें भरी न रहकर उदासीनताके भावसे भरी थी। हमारे हृदयमें किसी प्रकारका रोष या द्वेष नहीं था बल्कि पूर्ण आत्मसंयम और आदरका भाव भरा था। हमने क्षमा प्रार्थना नहीं की, इसका प्रधान कारण यही था कि सदिच्छासे रहित क्षमा प्रार्थना हमारी प्रकृतिके एकदम विपरीत है। हमारी धारणा है कि सविनय अवज्ञाका इससे उत्तम दूसरा उदाहरण नहीं मिल सकता। हमें इस बातका भी विश्वास है कि इस अवज्ञाके भावके पीछे शान्ति और नम्रताका जो भाव भरा था उसको अदालतने भली भाँति समझ लिया। जस्टिस मार्टनने अदालतके अपमानकी धाराकी व्याख्या करके अपनी बुद्धिका प्रखरताका परिचय दिया है और हमारे विरुद्ध फैसला किया है। पर हमें इस बातका अतिशय हर्ष है कि उन्होंने कहीं यह नहीं लिखा है कि हमने अनधिकार चर्चा की। जस्टिस हेवर्डने अपने फैसलेमें इसे निष्क्रिय अर्थात् सविनय अवज्ञाका रूप दिया है और यही कारण है कि उन्होंने किसी तरहके दण्डकी मीमांसा नहीं की। इस स्थानपर सविनय अवज्ञाका ज्वलन्त उदाहरण हमलोगोंके सामने है। यदि अवज्ञा सविनय होनी है तो सदिच्छापूर्ण, उदार, निर्यन्त्रित, अनुच्छृंखल होना चाहिये और किसी पूर्ण अनुभव किये हुए सिद्धान्तके आधारपर होनी चाहिये, उद्धत न होनी चाहिये और सबसे बढ़कर इसके अन्तर्गत असद्भाव और घृणा न होना चाहिये। जिस तरहका अवज्ञा हमने तथा श्रीयुत देसाईने की थी उसमें ये सभी भाव विद्यमान थे।

—:o:—

सत्याग्रह सप्ताह

(मार्च ३१ १९२०)

इस परम पवित्र राष्ट्रीय सप्ताहमें सर्व प्रथम और प्रधान करणीय काम उपवास और प्रार्थना है। राष्ट्रीय जीवनके विकासमें इसका कितना ऊंचा स्थान है इसके बारेमें हमने समय समयपर काफी लिखा है। इस सम्बन्धमें हमारा निजी अनुभव बहुत ही अधिक है। एक बार इसी विषय पर हम अपने एक मित्रको लिख रहे थे उस समय कवि टेनिसनकी कुछ कवितायें हमें स्मरण आ गईं जिन्हें उन्होंने प्रार्थनाके विषयमें लिखी हैं। आशा है कि इससे हमें सहायता मिलेगी। इसीसे हम इसे उद्धृत कर देना उचित समझते हैं। टेनिसनने लिखा है :—

"संसार जितना समझता है उससे कहीं अधिक मनोरथ प्रार्थना द्वारा पूरा हो सकता है। इसलिये मनुष्यको निरन्तर उसी परब्रह्म परमात्मामें ध्यान लगाये रहना चाहिये। जो मनुष्य ईश्वरका अस्तित्व मान कर भी प्रार्थनाके लिये हाथ नहीं उठाते। उनका जीवन भेड़ बकरियोंके समान है क्योंकि बुद्धिकी उपयोगिताका ज्ञान उन्हें नही है। यह निखिल विश्व सोनेकी जञ्जीरों द्वारा ईश्वरके चरणोंमें बंधा है।"

भारतमें दौरा करते समय हमें हरतरहके आदिमियोंसे सह-

वास हुआ है। हमने जिस जोश और उत्साहसे उनके साथ राष्ट्रीय प्रश्नपर विचार किया है उसका वर्णन इस समय करना कठिन है। इससे हमें अनुभव हुआ कि अभी तक हमारी आत्मा इतनी ऊपर नहीं उठ सकी है कि हम अपनी राष्ट्रीय स्थितिका सच्चा दिग्दर्शन कर सकें। अभी तक हमलोगोंमें वह स्थिरता नहीं आई जिससे हम लोग उस स्थितिका दिग्दर्शन कर सकें। हमारी समझमें इसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेके लिये प्रार्थना और उपवाससे बढ़कर अन्य कोई भी साधन मौजूद नही है। आत्मत्यागके भाव, दृढ़ता तथा नम्रताके भाव इसी तरह उत्पन्न होते है और बिना इनके उन्नतिका होना असम्भव है। इसलिये हमे पूर्ण आशा है कि इस देशके करोड़ों नर नारी इस सप्ताहका आरम्भ उपवास और व्रतद्वारा ही करेंगे।

इस सप्ताहमें हम सत्याग्रहके सविनय अवज्ञाके अंश पर जोर देना नही चाहते। हमे सत्य और अहिंसाका ही आवाहन करना चाहिये और उनकी सार्थकताका पर्यवेक्षण करना चाहिये। यदि हममेंसे प्रत्येक अपने जीवनको सत्य और अहिंसाके आधारपर चलावें तो हमारी समझमें फिर हमारे लिये सविनय अवज्ञा आदिकी कोई आवश्यकता नही रह जाती। सविनय अवज्ञाकी तभी आवश्यकता पड़ती है जब विरोधके सामने केवल कुछ ही लोग सत्य और अहिंसाके व्रतको स्वीकार करनेके लिये तैयार रहते है। सत्यको जानना अति कठिन है,

जबकि उसकी सविनय अवज्ञा से रक्षा करनी है और सत्यकी खोजमें सविनय अवज्ञा करके हिंसासे दूर रहनेका उपाय भी सोचना अति कठिन है। यह सप्ताह राष्ट्रीय उत्थानका महान साधन है। इसमें जातिपांतिके भेदभावको दूर करके सबकी सहायताकी आवश्यकता है। इसलिये ऐसे अवसर पर सविनय अवज्ञाकी सलाह देना उचित नहीं प्रतीत होगा।

६ और १३ को तो प्रार्थना और उपवास करना है। साथ ही जलियांवाला बागके स्मारक कोष के लिये चन्दा इकट्ठा करना है। हमें पूर्ण आशा है कि प्रत्येक प्रान्त, प्रत्येक जिला और प्रत्येक नगरमें इसके निमित्त पूर्ण संगठन होगा।

तीसरा प्रधान कार्य सप्ताहभरमें तीन सभायें करनी हैं, ये सभायें भारतके सभी स्थानोंपर एक नियत समयपर होनी चाहिये और उनमें निर्दिष्ट प्रस्ताव पास होना चाहिये। एक प्रस्ताव रौलट ऐक्टपर होना चाहिये जिसके कारण सत्याग्रहका जन्म हुआ है, दूसरा प्रस्ताव खिलाफतपर होना चाहिये क्योंकि यही हिन्दूमुस्लिम एकताका बीज है। तीसरा प्रस्ताव जालियांवाला बागके सम्बन्धमें १३ अप्रेलको पास होना चाहिये। इस प्रस्तावमें सरकारसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वह ऐसी व्यवस्था कर दे जिससे भविष्यमें इस तरहके अनर्थ होनेकी सम्भावना उठ जाय, जिस तरहके अनर्थ हमलोगोंने मार्शल लाके दिनोंमें पञ्जाबमें होते देखा है और जिसका प्रारम्भ मर्शल ला जारी करनेके पहले ही १३ तारीखके कत्ले आमके

रूपमें हुआ था। हमारी समझमें तीनों प्रस्तावोंका निम्नलिखित रूप होना चाहिये।

छठीं अप्रेल

अमुक नगरके निवासियोंकी यह सभा अपना दृढ़मन प्रगट करती है कि जबतक रौलट ऐक् उठा या रद्द नहीं कर दिये जाते तबतक देशमें शान्तिकी स्थापना नहीं हो सकती और इसलिये यह सभा भारतसरकारसे प्रार्थना करती है कि वह यथाशीघ्र इस कानूनको रद्द करनेकी व्यवस्था करदे।

९वीं अप्रेल

अमुक स्थानके हिन्दूमुसलमान तथा अन्य जातियोंकी यह सभा पूर्ण विश्वास करती है कि खिलाफतका प्रश्न भारतीय मुसलमानोंकी न्याययुक्त मागोंके अनुसार निपटाया जायगा और युद्धकालमें ब्रिटिश साम्राज्यके मन्त्रीने भारतीय मुसलमानोंको जो वचन दिया था उसका पूणत पालन किया जायगा। यह सभा इस निमित्त यह घोषणा करती है कि यदि भारत सरकारने इसके विरुद्ध आचरण किया तो प्रत्येक भारतवासीका धर्म होगा कि वह सरकारके साथ तबतक सहयोग करना छोड़ दे जबतक वचन पूरे न किये जायं और मुसलानोंकी धार्मिक अशान्तिका शमन न किया जाय।

१३वीं अप्रेल

अमुक स्थानके नागरिकोंकी यह सभा दुःख और वेदनाके साथ स्वीकार करती है कि अतिशय उत्तेजित किये जानेपर साधारण जनताने उपद्रवमें ज्यादती किया इसलिये उनकी निन्दा करनी चाहिये। पर जनरल डायरका जालियांवाला बागमें निहत्थों और बेगुनाहोंकी हत्या बर्बरताका सबसे निकृष्ट नमूना है। इसलिये यह सभा पूर्ण आशा करती है कि भारत सरकार और ब्रिटिश सरकार तुरत ऐसी कोई कार्रवाई करें जिससे इस तरहकी असभ्य घटनायें फिर कभी दोहराई न जायं और आशा करती है कि राष्ट्रीय महासभाकी सबकमेटीने जिन बातोंकी शिफारिसें की हैं उन्हें पूरी तरहसे स्वीकार करेगी।

सविनय अवज्ञा

(जून ७, १६२०)

यंग इण्डियाके प्रत्येक पाठक कदाचित इस बातको न जानते होंगे कि परसालकी अप्रेलकी दुर्घटनाके लिये अहमदाबादके लोगोंके ऊपर कड़ा जुर्माना लगाया गया था। यह जुर्माना अहमदाबादके नागरिकोंसे वसूल किया गया पर उनमेंसे अनेकोंको कलकृरने अपनी इच्छासे बरी कर दिया। इस जुर्मानाके देनेवालोंमे मालगुजारी देनेवाले ही अधिक थे। और उनसे मालगुजारीकी तिहाई रकम जुर्मानेमे ली गई थी। ऐसे लोगोंमे मिस्टर वी० जे० पटेल बारिस्टर-एट-ला और डाकृर कनूगा थे जो जुर्माना देनेमे असमर्थ थे। इन लोगोंने शान्ति स्थापित करने और उपद्रव हटानेमें अधिकारियोंकी बड़ी सहायता की थी। सच्चे सत्याग्रही होते हुए अपनी जानको खतरेमें डालकर उन्होंने उपद्रवियोंको शान्त करनेकी चेष्टा की थी। पर अधिकारी वर्ग उन्हें नहीं बरी कर सकते थे। ऐसी अवस्थामें उनके सामने विकट समस्या थी। यह जानकर कि हम लोग दोषी नहीं हैं, हम लोगोंने शान्ति भंग करनेके प्रतिकूल शान्ति स्थापित करनेकी चेष्टा की थी, ऐसी दशामें जुर्माना कैसे दें और बिना कमेटीकी आज्ञाके अपने मनसे अवज्ञा कैसे करें। वे अधिकारियोंके मार्गमें बाधा नहीं उपस्थित करना चाहते थे। पर

वे आत्म गौरवको भी बेचना नहीं चाहते थे। निदान इसके लिये उन्होंने किसी तरहका आन्दोलन खड़ा करना उचित न समझकर केवल अधिकारियोंको इस बातकी सूचना दे दी कि ऐसी अवस्थामें हम लोग जुर्माना देनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। इस लिये उनके नाम कुर्की जारी की गई। डाकुर कानूगाकी डाकृरी अच्छी है इसलिये उनकी सन्दूक सदा भरी रहती है। चालाक कुर्क अमीनने इसी सन्दूकको नीलाम पर चढ़ाया और जुर्माना वसूल करनेके लिये काफी रुपया ले गया। पर वकीलका पेशा ऐसा है कि वह सन्दूक लिये लिये नहीं फिर सकता इसलिये कुर्क अमीनने उनकी (श्रीयुत पटेलकी) एक पलंगको नीलाम करा ली। इस प्रकार इन सत्याग्रहियोंने अपने आत्म गौरवकी पूर्णतया रक्षा की।

संभव है अदूरदर्शी लोग इसे बेवकूफीका नमूना बताकर इसकी हंसी उड़ावें कि सीधी तौरसे जुर्माना न देकर माल असबाब कुर्की पर चढ़वानेसे क्या लाभ था? पर इस तरहके उदाहरणोंकी बहुलतापर विचार करके देखिये कि अधिकारियोंको हजारों कुर्की निकालनेमें कितनी कठिनाईका सामना करना पड़ेगा। चन्द आदमियोंके लिये ही कुर्की निकालना सम्भव है। पर यदि इनका प्रयोग अधिकांश उन महात्माओंके लिये प्रयुक्त होता है जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया है और जो किसी सिद्धान्तको चरितार्थ करनेके लिये जुर्माना देना स्वीकार नहीं करते, तो बड़ी कठिनाई उपस्थित हो

जाती है। संभव है कि इस सिद्धान्तका वैयक्तिक अवलम्बन अभीष्ट फलदायक न हो। पर ऐसे सच्चे उदाहरणोंमें एक जबर्दस्त योग्यता सदा बढ़ते रहने की है। उनकी ख्याति बढ़ जाती है और उनकी तरफ अंगुली न उठाकर लोग उनकी प्रशंसा करते है। थोरू सदृश महात्माओंने ही अपनी आत्माको कष्टमें डालकर दासताकी प्रथाको तोड़ा और उसका अन्त कर दिया। थोरूने लिखा था :—मुझे पक्का विश्वास है कि यदि एक हजार, एक सौ या दस ही आदमी जो कि गणनाके योग्य हो, बल्कि यदि एक ही सच्चे हृदयवाला व्यक्ति—जो इस मसाचस्टी राज्यमें गुलाम रखना छोड़कर इस राज्यसे संबंध त्याग दे और इसके दण्ड स्वरूप जेल जाना स्वीकार करे तो उसी दिन अमरीका-से गुलामी उठ जायगी। चाहे कार्यारम्भ कितना भी नगण्य हो पर यदि वह सत्कार्य है तो उसका अस्तित्व स्थायी है।" आगे चलकर उसने पुनः लिखा है : —मैंने विचार कर देखा तो मुझे प्रतीत हुआ कि इस कामकी सफलताके लिये राजकीय आज्ञाओंकी अवज्ञा करनेवालेको अर्थदण्ड न देकर जेल भेज देनेसे ही अधिक लाभ हो सकता है क्योंकि यद्यपि दानोंसे एक ही अभिप्रायको सिद्धि होगी पर कुर्कीसे इतना लाभ नहीं होगा क्योंकि जिसकी आत्मा इतनी उन्नत हो गई है उसके चित्तमें धनके लिये इतनी प्रबल लिप्सा रही नहीं सकता। "यही कारण है कि हम मिस्टर पटेल और डाकृर कानूगाको इस बातकी हार्दिक बधाई देते हैं कि उन्होंने उचित अवसर पर महत्व पूर्ण कार्यके लिये अपूर्व उदाहरण उपस्थित किया है।

दुर्गादास अद्वानी

(दिसम्बर ३, १९१९)

जिन लोगोंसे हमें आजतक मिलनेका सुअवसर प्राप्त हुआ है उनमें दुर्गादास अद्वानी सबसे उत्साही कार्यकर्त्ता प्रतीत हुए हैं। जिस समय हम १९१५ में भारत लौटकर आये थे हमारा उनके साथ प्रथम परिचय पत्रद्वारा हुआ था। जिस अवस्थामें पत्र लिखा गया था उससे ही हमने उनकी आत्माकी उत्कृष्टताका पता पा लिया था। सिन्ध प्रदेशमें वे बड़े ही उत्साही कार्य-कर्त्ता रहे हैं और कई वर्ष तक अनवरत परिश्रमसे कार्य किया है। अभी हालमें ही उन्हें एक वर्षके लिये कड़ी सजा हुई है। अपील अदालतके फैसलेपर हमसे मत मांगा गया है। हमारी समझमे फैसलेमें कोई दम नहीं है। अदालतने "पुन-राह्वान" (न्यू काल्स) नामी परचेको विद्रोही माननेमे भारी भूल की है और इस अवसरपर अद्वानीको दोषी ठहरानेके लिये उसने गवाहियोंका पर्यवेक्षण करनेमें अतुल परिश्रम किया है। पर सम्भव है कि दुर्गादासके प्रति स्वाभाविक अनुरागके कारण हमी भूल कर रहे हों। पर जहां तक हमारा अनुमान है हम दृढ़तासे कह सकते हैं कि जेलसे बचनेके लिये वह झूठ बोलनेवालोंमें नहीं है। सम्भव है कि अपील अदालतने जो अभि-प्राय निकाला है गवाहियोंसे वही अभिप्राय निकलते हों।

सच्चे सत्याग्रही और घनिष्ट मित्रके नाते हम इस दण्डाज्ञा पर न तो दुर्गादासके लिये खेद ही प्रगट कर सकते हैं और न उनके परिवारके साथ समवेदना ही प्रगट कर सकते हैं। दुर्गादासने खूब सोच समझकर सत्याग्रहका व्रत ग्रहण किया था। इस अवसरसे लाभ उठा कर हम अपने पाठकोंके सामने ऐसे मामलोंके विषयमें अपना मत रखना चाहते हैं। मुकदमेबाजीमें हम लोग असंख्य धन फूंक देते हैं। हम लोग जेलके नामसे हो थर्रा उठते है। हमारी पक्की धारणा और दृढ़ निश्चय है कि यदि न्यायालयोंपर हम लोग इतना अधिक निर्भर करना छोड़ दें तो समाजकी अवस्था इससे कहीं अधिक उन्नत हो जाय। अच्छे वकीलकी तलाश करना नितान्त अनुचित और निन्दनीय है। और यदि यही काम सार्वजनिक सम्पत्तिके सहारे किया जाय तो अक्षम्य है और यदि सत्याग्रही इस प्रकार मुकदमेबाजीमें अपव्यय करते हैं तो वह घोर पाप करते है। इसलिये हमें यह सुनकर मार्मिक वेदना हुई कि दुर्गादासके मुकदमेकी अपील की गयी थी। यदि हमने गुनाह किया है तो वीरोंकी भांति हमे उसे स्वीकार कर लेना चाहिये और उसके लिये जो उचित दण्ड हो उसे भोगनेके लिये तैयार रहना चाहिये। यदि दोषी न होने पर भो हम पर दोष प्रमाणित होता है और हम जेल भेज दिये जायं तो यह हमारे लिये अप्रतिष्ठाका कारण नहीं हो सकता। और यदि हम सच्चे सत्याग्रही हैं तो जेल जीवनकी यातनायें हमें किसी भी तरह भयभीत नहीं कर सकतीं।

इस देशमें तो जेल जीवनकी ओर भी अधिक आवश्यकता है क्योंकि एक तो इस देशकी वायुमे सन्देह और अविश्वासके जीवाणु भर गये हैं, दूसरे खुफिया विभागका इतना अधिक जोर है कि संसारमें इसकी कहीं भी तुलना नहीं की जा सकती और इसकी चालबाजियां और उच्छृंखलतायें इतनी जबर्दस्त होती हैं कि विना इस प्रकार यातना भोगे इसका दूर होना कठिन है।

यदि इस तरहके अविश्वास और गुप्त पुलिस विभागसे देशकी रक्षा करनी है तो सबसे उत्तम उपाय यही होगा कि लोगोंके हृदयोंमेंसे भयके भाव तथा हिंसाकी प्रवृत्ति दूर की जाय। पर जबतक यह सुदिन नहीं उपस्थित होता प्रत्येक भारत-वासीको जेल ही घर बना लेना चाहिये।

इसलिये हमें पूर्ण विश्वास है कि दुर्गादासके मित्र क्षमा याचनाके लिये नतो उन्हें सलाह देंगे और न उनकी पत्नीको। और न तो उनकी पत्नीके साथ सहानुभूति प्रगटकर उसके सुख और शान्तिमे बाधा पहुंचावेंगे। उसे अपने हृदयको कड़ा-करके इस बातपर हर्ष मनाना चाहिये कि उसका पति बिना किसी दोषके, आकरण जेल भेज दिया गया है। हमलोगोंका परम कर्तव्य दुर्गादासकी पत्नीको आवश्यक सहायता देना है। हमें विदित हुआ है कि दुर्गादासके मुकदमेमें प्रायः १५,०००) रु० व्यय हुए। इन रुपयोंका किसी अच्छे काममें प्रयोग हुआ होता। जहां हमलोग न्यायकी संभावना नहीं देखते वहां

व्यर्थकी लडाई लड़कर दरिद्र बन जाना हमारी दृष्टिमें बुद्धि-मानी नहीं है। राजनैतिक अभियोगके लिये किसी प्रकारकी चिन्ता करना मनुष्यत्वके विरुद्ध है क्योंकि उसमें किसी तरहका अपमान नहीं।

पंजाबमें मैंने विदीर्णहृदय माताओंका अपने पुत्रोंके लिये जारजार रोते देखा है क्योंकि उन्हें अकारण जेल दिया गया। हमें विदित था कि हम लाचार थे। पर उन्हें सान्त्वना देना कठिन कार्य था क्योंकि झूठी आशामें उन्हे बांधकर हम पापके भागी नहीं होना चाहते थे। उन्हें यह कहकर समझाना कि जो होना था सो हो गया, अबतो इसका प्रतीकार नही हो सकता — किसी तरह भी लाभदायक नहीं हो सकता था। इसलिये हम अति कठिन कार्य करनेकी चेष्टा कर रहे थे अर्थात् हम उन्हें पूर्ण-सत्याग्रही होकर इस बातका समझानेकी चेष्टा कर रहे थे कि जबतक हमलोग अपने बन्धुबान्धवोंको इस तरहकी गिरफ्तारी और राजनैतिक अभियोगपर आंसू बहाते रहेंगे तबतक यह यन्त्रणा और भी कठिन होती जायगी। यह लिखनेकी आव-श्यकता न होगी कि हमारा अभिप्राय उस सजासे नहीं है जो वास्तवमें अपराधके लिये दी जाती है।

सत्याग्रही वकील।

(अक्तूबर २२, १९१९)

हाईकोर्टने सत्याग्रही वकीलोंके अभियोगका फैसला सुना दिया। फैसला नितान्त असन्तोषजनक है। हाईकोर्टने मूल विषयको अलग रख दिया है। तर्क यही कहता है कि मुकदमा स्थगित करना उचित नहीं था, उचित तो फैसला ही कर देना था। सत्याग्रही वकीलोंने किसी तरहका पाश्चात्ताप नहीं प्रगट किया। आवश्यकता पड़नेपर वे सविनय अवज्ञाके लिये अब भी तैयार हैं। जब अभियोग चलाया गया तो वकीलोंने क्षमा दान न चाहकर विचार और निर्णय चाहा। हाईकोर्टने उनकी स्थिति सन्दिग्ध रख दी।

विद्वान जजोंने कानूनी आचरणकी जो मीमांसा की है वह हम लोगोंके मतसे विवादग्रस्त है। जजोंने फैसलेमें लिखा है—"जो कानूनके द्वारा जोविका कमाते हैं उन्हें कानूनकी मर्यादाका पालन करना चाहिये।" हमारी समझमें नहीं आया कि जजोंका इससे क्या अभिप्राय है? यदि जजोंका यह अभिप्राय है कि किसी भी अवस्थामें वकीलोंको सविनय अवज्ञा नहीं करनी चाहिये नहीं तो उन्हें अदालतकी अप्रसन्नताका कारण होना पड़ेगा तो हमें बाध्य होकर कहना पड़ेगा कि यह एकदम

फजूल है। वकील ही सबसे प्रथम व्यक्ति हैं जो कानूनोंकी बुराईको सबसे प्रथम समझ सकते हैं। इसलिये उनका कर्तव्य यही होना चाहिये कि यदि वे किसी अनुचित कानूनका निर्माण होते देखें तो सबसे पहले उसकी सविनय अवज्ञा करना आरम्भ कर दें ताकि अशान्ति और उपद्रव न होने पावे। वकीलोंको कानून और स्वतन्त्रताका अभिभावक होना चाहिये और इस हैसियतसे उन्हें सदा इस बातकी चेष्टा करनी चाहिये और ध्यान रखना चाहिये कि कानूनकी पुस्तकमें किसी तरहके बुरे कानून न भरे जायं। पर बम्बई हाईकोर्टके जजोंने उनके पदको केवल पैसा कमानेवाला बतलाया है और जजों तथा वकीलोंके कर्तव्यको अन्धेरेमें डाल दिया है। इस असह्य स्थितिके निवारणका एकमात्र यही उपाय है कि सत्याग्रही वकील अपने अभियोगको बोर्डमें पुनः विचारके लिये उपस्थित करें और फैसला करा लें। इस बातकी प्रसन्नता है कि जजोंने इस मार्गको अवरुद्ध नहीं कर दिया है।

सफाई

(फरवरी २५, १६२०)

एस० डवल्यू० क्रोम्सके साथ महात्मा गांधीका जो वार्तालाप हुआ वह पहले पहल लखनऊके इण्डियन विटनेस नामक पत्रमें प्रकाशित हुआ था और बादको वही यंग इंडियामें उद्धृत किया गया :—

प्रश्न—मिष्टर गान्धी, पूर्वीय देशोंके—विशेषकर भारतके—विकासके लिये पश्चिमी राष्ट्र क्या योगदान कर सकते हैं?

उत्तर—भारत इस समय अचेत पड़ा है। उसमें अनेक ऐसी बातें आ गई हैं जो निरर्थक और अकारण हैं। पाश्चात्य राष्ट्रोंके पर्यवेक्षणसे हमने दो बातें सीखी हैं। एक तो निर्मलता और दूसरी शक्ति। हमारा दृढ़ मत है कि जबतक भारतके लोग निर्मलता नहीं सीख लेते भारतका आत्मिक उद्धार नहीं हो सकता। पश्चिमके लोगोंमें बड़ी स्फूर्ति होती है। पर उन्होंने भौतिक पदार्थके लिये ही अपनी शक्तिका प्रयोग किया है। यदि भारतके लोग शक्ति सम्पन्न हो जायं और उसका सदुपयोग करें तो उन्हें अधिक लाभ हो सकता है।

प्रश्न—क्या आप बतला सकते हैं कि वर्तमान राष्ट्रीयताके भावके आधारपर ईसाईधर्मसे भारतका क्या उपकार हो सकता है?

उत्तर—हमें सहानुभूतिकी सबसे अधिक आवश्यकता है। जिस समय मैं अफ्रिकामें था मुझे यह अनुभव हुआ। जो लोग जलके निर्मल स्रोतका दर्शन करना चाहते है उन्हें गहरा कुआं खोदना चाहिये। जो लोग हमारे देशमे आकर यहांके निवासियों-का परिचय पाना चाहते हैं वे केवल ऊपरकी मिट्टी ही हटाकर काम चला लेना चाहते है। यदि सच्ची सहानुभूति दिखाकर वे अन्तस्तलतक प्रवेशकर जायं तो उन्हें विदित होगा कि वहां निर्मल जलका झरना बह रहा है

प्रश्न—क्या आप बतला सकते हैं कि किन पुस्तकों और मनुष्योंने आपको सबसे अधिक भावान्वित किया है। (मुझे पूर्ण आशा थी कि महात्माजी वेद या अन्य धर्मग्रन्थोंका नाम लेंगे। पर उनका उत्तर सुनकर मैं चकित हो गया।)

उत्तर—मैं निरर्थक पढ़नेवालोंमे नहीं हूं। मैंने केवल चन्द चुनी किताबे पढ़ी हैं। बाइबिल, रस्किन और टालस्टाय हमारी प्रधान पाठ्य पुस्तकें हैं। कभी कभी मैं किसी निर्णय पर न पहुंचनेके कारण निश्चेष्ट हो जाता था। उस समय मैं बाइबिल उठाकर पढ़ता और आश्वासन ग्रहण करता।

होमरुल लीगके मेम्बरोंको सन्देश

(अप्रैल २८, १६२०)

ऐसी संस्थासे संबन्ध रखना जो पूर्णरूपसे राजनैतिक है मेरे लिये एकदमसे नई बात है और अपने पथसे एकदम हटना है। पर अपने कतिपय इष्टमित्रों तथा हितैषियोंसे सलाह करनेके बाद मैंने इस संस्थाका सदस्य होना तथा इसके सभापतिका पद स्वीकार करना उचित समझा। अनेक मित्रों तथा हितैषियोंने यह भी कहा कि हमे राजनीतिमें भाग नहीं लेना चाहिये क्योंकि उस अवस्थामें हम अपने इस पदसे च्युत हो जायंगे। मैं निःसंकोच स्वीकार करता हूं कि इस चेतावनीका मुझपर बड़ा प्रभाव पड़ा। साथ ही साथ मेरे हृदयमें यह भी भाव उठा कि यदि होमरूल लीगने इसी अवस्थामें मुझे स्वीकार कर लिया तो उस आन्दोलनमें अपनेको रत न कर देना घोर पाप होगा। इतने दिनोंसे मैं जिस बातका अनुभव करता आया हूं, जिसमें मैंने असीम योग्यता प्राप्त की है, जिसे मैंने अनुभवों द्वारा शीघ्र सफलता देते देखा है उसका प्रयोग इस संस्थाके उद्देशकी सिद्धिके लिये न करना पाप होगा। जिन उद्देश्योंका मैंने जिक्र किया है वे स्वदेशी आन्दोलन, हिन्दू मुस्लिम एकता, हिन्दीको राष्ट्र

भाषा बनाना, और भाषाके आधारपर प्रान्तोंका संगठन है। यदि मैं इसके सदस्योंको अपने मतका बना सका तो मैं लीग-का ध्यान इन बातोंपर आकृष्ट करूँगा।

मैं यहीं पर स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि मेरी राष्ट्रीय संगठनकी व्यवस्थामें सुधारोंको गौण स्थान दिया जायगा। इसका कारण यह है कि यदि देशने मेरी व्यवस्था स्वीकार कर की और इसमें तत्परता दिखाई तो सारे अभिवाञ्छित सुधारो की योजना हो जायगी और पूर्ण स्वाधीनताकी प्राप्ति भी इसके द्वारा कमसे कम समयमें हो सकती है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इन उपायोंके अवलम्बनसे स्वराज्य प्राप्तिका मार्ग सरल हो जायगा। इसी उद्देश्यसे मैं इस मन्तव्यको लीगके सामने रख रहा हूं। मैं लीगको किसी व्यक्ति या दल विशेषकी संस्था नहीं समझता। आज तक न तो मैं किसी दल विशेष-में रहा हूं और न दलबन्दीमें मेरा विश्वास है। भविष्यम भी मैं किसी दल विशेषका होकर नहीं रहना चाहता। होम-रूल लीगके उद्देश्योंमें कांग्रेसके उद्देश्यको बढ़ानेकी भी शर्त है पर मैं कांग्रेसको भी दल विशेषकी संस्था नही मानता। जिस तरह ब्रिटिश पार्लिमेण्ट सदा किसी न किसी दल विशेषके हाथमें रहती है पर वह अभी भी दल विशेषकी संस्था न कहलाकर सारे इङ्गलैण्ड निवासियोंकी संस्था कहलाती है उसी तरह कांग्रेस यद्यपि अवस्था भेदके कारण दल विशेषके हाथमें हो जाती है पर वह सारे भारतवासियोंकी संस्था है।

मैं पूर्ण आशा करता हूं कि सभी मतके लोग इसमें सम्मिलित होकर अपना अपना मत जानताके समक्ष उपस्थित करेंगे और उचित नीति निर्धारित करेंगे। मैं भी उसी बातकी चेष्टा करूंगा कि लीग ऐसी नीतिपर चले जिससे कांग्रेस किसी दल विशेषकी संस्था न होकर राष्ट्रीय बनी रहे।

यहीं पर मैं कार्यक्रमके तरीकेके बारेमें दो शब्द कह देना उचित समझता हूं। मेरी धारणा है कि किसी देशके राष्ट्रीय जीवनमें अन्तर्हित सत्य और अहिंसाका प्रचार किया जा सकता है। यद्यपि मैं लीगको सविनय अवज्ञाके कार्यक्रमको स्वीकार करनेके लिये वाध्य न करूंगा तथापि मैं सत्य और अहिंसाके भावको धारण करनेके लिये लीगको अधिकाधिक दबाऊंगा। यह हमारे राष्ट्रका प्रधान अङ्ग होना चाहिये। ऐसी अवस्थामें हमें सरकारी कार्रवाइयोंसे भय या सन्देह नहीं होगा। मैं इस बातपर अधिक जोर नहीं देना चाहता। मैं सब बातें समयके हो हाथों छोड देता हूं। वही इन प्रश्नोंका निपटारा करेगा। इस समय न तो मैं अपने सिद्धान्तकी व्याख्या करना चाहता हूं न तो उसकी उपयोगिताका ही दिग्दर्शन कराना चाहता हूं। मैं केवल लीगके सदस्योंको अपने मतका बनाकर जिन सिद्धान्तोंको मैंने लीगके सामने रखा है उसपर केवल उनका मत चाहता हूं।

अंगरेज रमणीकी आशीष।

'एक अंगरेज महिला' ने कलकत्तेसे एक पत्र भेजा है। उसमें उन्होंने अपना नाम और पता भी दिया है। आप लिखती हैं— श्रीगांधीजी जिस अनोखे ढङ्गसे हमें सत्यका दर्शन करा रहे हैं और हमारी आंखें खोल कर हमें अपनी उच्च-हृदय कहलाने वाली सरकारके हीन काम देखनेका अवसर दे रहे हैं उसे देखकर मन मुग्ध हो जाता है। एक 'अङ्गरेज पादरिन' ने जो पत्र उन्हें भेजा है वह भी प्रशंसनीय है। मेरा खयाल है कि ऐसे और भी कितनेही लोग होंगे; पर अभिमान वश वे गांधीजीके उच्च कार्यको माननेके लिये तैयार नहीं हैं। उनका धैर्य और कार्य्य एक गहरे पृथ्वीके-पेटमें छिपे हुए झरनेकी तरह है। संसार चाहे किसी बातका उपदेश करता रहे, परन्तु ईश्वर उन्हें उनकी आशासे भी बढ़ कर सफलता देगा। जो लोग शान्तिके साथ चुपचाप कार्य करते हैं वही सफलताके अधिकारी होते हैं। लाखों आदमी आज उनपर दृष्टि जमाये हुए हैं और उनके विषयमें विचार कर रहे हैं। परन्तु इन सबसे बढ़कर एक शक्ति है जो उनके दैनिक जीवनके युद्धको बड़े गौरसे देख और विचार रही है और जब उनके ये दीर्घ परिश्रम और युद्धके दिन समाप्त हो जायंगे तब उनका काम और नाम संसारमें अमर हो जायगा। उनके कठोर परिश्रमके द्वारा जिन लाखों लोगोंको आजादी

मिलेगी वे उनके नामकी पूजा करेंगे। परमात्मा उन्हें तथा उनकी धर्मपत्नीको आशीर्वाद दें, उन्हें चिरायु करें और आरोग्य तथा बल प्रदान करें जिससे वे इस युद्धमें शीघ्रही जय-लाभ करें।'

पाठकोंके सम्मुख इस पत्रको उपस्थित करते हुए मुझे सङ्कोच हो रहा है। व्यक्ति-विषयक न होते हुए भी यह कितना व्यक्ति विषयक है। परन्तु मेरा खयाल है कि मैं अहङ्कारसे लिप्त नहीं हूं। मैं समझता हूं कि मैं अपनी दुर्बलताओंको खूब जानता हूं। परन्तु मेरे हृदयमें ईश्वरके, उसकी शक्तिके और उसके प्रेमके प्रति जो श्रद्धा है वह अटल है, अविचल है। मैं तो उस जगत्कर्ताके हाथका एक खिलौना मात्र हूं। और, इसलिये, भगवद्भक्तोंकी भाषामें कहूं तो, ये सब स्तुति-स्तोत्र उसीके चरणोंमें समर्पित करता हूं। हां, मैं मानता हूं कि ऐसे आशीर्वचनोंसे शक्तिका संचार होता है। परन्तु इस पत्रको प्रकाशित करनेमें मेरा उद्देश यह है कि इससे प्रत्येक सच्चे असहयोगीको अपने अहिंसाके पथमें बढ़ते हुए उत्साह मिले और बनावटी लोग अपनी गलतियोंसे बाज आवें। यह एक सच्ची लड़ाई है—भयंकर सच्ची लड़ाई है। यद्यपि इसमें द्वेष करनेवाले लोग शामिल हैं तथापि इसका आधार द्वेषपर नहीं है। इस संग्रामकी भित्ति तो शुद्ध और निर्मल प्रेमपर है। यदि अङ्गरेज-भाइयोंके प्रति या उन लोगोंके प्रति जो 'अन्धेनैव नीयमाना' यथान्धाः' की तरह नौकरशाहीके पिट्ठू

बने हुए हैं, मेरे मनमें जरा भी द्वेष-भाव होता तो मुझे इतना साहस अवश्य है कि मैं इस संग्रामसे अलग हो जाऊं। जिस मनुष्यके मनमें ईश्वरके अथवा उसकी दयालुता अर्थात् न्याय-परायणताके प्रति जरा भी श्रद्धा है, वह मनुष्योंके प्रति द्वेष-भाव रख ही नहीं सकता—हां, उनके कुकार्योंका तिरस्कार तो उसे अवश्य करना चाहिए। परन्तु वह मनुष्य खुद भी तो बुराइयोंसे बरी नहीं है। उसे हमेशा दूसरेकी दयाकी आवश्यकता रहती है। अतएव उसे उन लोगोंसे द्वेष कभी न करना चाहिये जिनमें वह बुराई पाता हो। सो इस युद्धका तो उद्देश ही यह है कि अंगरेजोंके साथ, और सारे संसारके साथ, भारतकी मैत्री हो। यह हेतु झूठी खुशामदसे सिद्ध नहीं हो सकता ; बल्कि तभी होगा जब हम भारतके अंगरेजोंसे साफ साफ कहेंगे कि भाइयो, आप कुमार्ग पर जा रहे हैं और जबतक आप उसे न छोड़ेंगे तब तक हम आपके साथ सहयोग नहीं कर सकते। यदि हमारा यह खयाल गलत हो तो ईश्वर हमें क्षमा कर देगा ; क्योंकि हम उनका बुरा नहीं चाह रहे हैं और उसके लिये हम उनके हाथों कष्ट भोगनेको भी प्रस्तुत हैं। यदि हम सचाई पर हैं, मेरा यह टिप्पणी लिखना जितना निश्चित है उतने ही निश्चय-के साथ यदि हम सच्चे हैं, तो हमारे कष्ट-सहनसे उनकी आंखें खुल जायंगी-ठीक उसी तरह जिस तरह कि 'इन अंगरेज महिलाओं' की खुल गई है। यह एक ही उदाहरण ऐसा नहीं है। सफरमे अक्सर बीसों अंगरेज भाइयोंसे मेरी मुलाकात

होती है। मैं उन्हें नहीं पहचानता; पर वे बड़े शौकसे मुझसे हाथ मिलाते हैं, और मेरी सफलता चाहते हैं और चले जाते हैं। हां, यह सच है कि जहां बीसों अंगरेज मुझे आशीर्वाद करते हैं तहां सैकड़ों ऐसे भी हैं जो मुझे शाप देते हैं। इन शापोंको भी हमारे यहां उसीके चरणों पर चढ़ा देनेको आज्ञा दी गई है। इसका कारण है उनका अज्ञान। कितने ही अंगरेज भाई तथा कुछ हिन्दुस्तानी भी मुझे तथा मेरी हलचलोंको दुष्ट और कुटिल समझते हैं। ऐसे लोगोंके साथ भी असहयोगियोंको सहिष्णुता धारण करना चाहिए। यदि उन्होंने क्रोधको और वैरभावको अपनाया तो युद्धमें हारे ही समझिए; पर यदि वे उन्हें सहन करते रहे तो उनकी जय निश्चित है, उसमें विलम्ब नहीं। मुझे निश्चय हो चुका है कि इस सारे विलम्बका कारण है हमारे कर्त्तव्य पालनमें त्रुटियां। हम हमेशा ही शान्तिमय नहीं बने रहे हैं। हमने, अपनी प्रतिज्ञाके खिलाफ, दुर्भावको अपने हृदयमें स्थान दिया है। हमारे प्रतिपक्षी, अंगरेज शासकवर्ग, उनके साथ सहयोग करनेवाले, ताल्लुकेदार तथा राजा लोग हम पर अविश्वास रखते आये हैं और हमसे भय खाते आये हैं। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार हम उनको हर तरहसे सुरक्षित रखनेके लिए वाध्य हैं। हां, हमें उनको दीन-दुर्बल लोगोंकी आर्थिक लूटमें तो किसी तरह सहायता न देना चाहिए परन्तु हमें उन्हें किसी तरह नुकसान भी न पहुंचाना चाहिए। यद्यपि उनकी संख्या बहुत ही कम है तथापि हमें अपने मध्यमें उन्हें संगीनोंकी सहायता की

अपेक्षा अधिक सुरक्षित कर देना चाहिए। यदि हमारी संख्या मुट्ठीभर होती तो हमारी स्थिति अधिक आसान रही होती, बहुत पहले ही हम अपने धर्मकी सचाई सिद्ध कर पाते। परन्तु हमारी संख्या तो बहुत बढ़ी चढ़ी है और इसीसे हम दिक हो जाते हैं। वर्तमान राज्यसे तो हम दोनों असन्तुष्ट हैं, परन्तु अहिंसामें दोनोंकी श्रद्धा एक सी दृढ़ नहीं है। हमें तबतक दम न लेना चाहिए जबतक हम मद्रासके जैसी शर्म दिलानेवाली दुर्घटनायें असम्भव न कर दें। 'अहिंसा' का जप करते हुए हमें अदालतोंकी कार्रवाईमे बाधा न डालनी चाहिए। या तो हम जेलोंका आवाहन ही करें या उससे मुत्लक दूर रहें। यदि हम ऐसा चाहते हैं तो सरकार हमें जितनी जल्दी उठा ले जाना चाहे उतनी जल्दी उसे उठा ले जाने देना चाहिए। जिस हदतक हम अहिंसाकी उलझनोंको न समझेंगे उसी हदतक इस युद्धकी उम्र बढ़ती जाती है।

प्रथम खण्ड समाप्त

द्वितीय खण्ड ।

पञ्जाबकी दुर्घटना

पंजाबका सन्देश।

(मार्च २४, १९२०)

ता० २७ फरवरीको श्रीमती सरलादेवी चौधरानीने अहमदाबादमें निम्नलिखित भाषण हिन्दीमें दिया थाः—

"यह पवित्र भूमि है। उसमें पञ्जाबको परम पवित्र मानना चाहिये। प्राचीन ऋषियोंका यह प्रान्त निवासस्थान रहा है। जिस समय आधुनिक सभ्यताके चकाचौंधमें पड़कर हम उसके दास हो जाते हैं और अपनी महत्ताको इतनी हेठ समझने लगते हैं कि उसका नाम लेते भी शर्माते हैं उस समय हमें उन खजानोंको खोद निकालनेकी धुन समाती है जो वेदोंमें छिपे हैं और हम उन्हींकी तलाशमें तल्लीन होकर अपनी आत्माको शांति देते हैं और जब हमें उन ऋषियोंके गानोंकी मधुर ध्वनि उन पोथियोंसे मिल जाती है तो हम अभिमानके मारे फूल उठते हैं, हमें अपनी प्राचीन सभ्यताका बार बार स्मरण आने लगता है और हम उसके गुणगानमें मस्त हो जाते हैं। इस अतुल सम्पत्तिको उन ऋषियोंने वेदोंमें छिपाकर सुरक्षित कर दिया है। वेदोंको हम लोग ईश्वरवाक्य मानते हैं। ये वाक्य उन ऋषियोंको पञ्जाबकी नदियोंके तटपर आपसे आप प्रादुर्भूत हुए थे। यही कारण है कि पञ्जाबका नाम ही प्राणीमात्रके हृदयको साहस,

उमङ्ग और आशासे भर देता है। उसी भूमिमें पलकर लोगोंने प्रवर पण्डित ऋषियोंसे सत्‌ज्ञान उपार्जित किया था। इस भूमिमें एक महर्षिकी पत्नीने अपने पतिदेवसे कहा था:—

"इन भौतिक पदार्थों से क्या लाभ यदि ये मृत्युकी विभीषिकाको नहीं मिटा सकतीं।" कालान्तरमे वही ऋषिपत्नी स्वर्गकी देवी बन गई और आज भी करोड़ों भारतवासी उनके गान गाते हैं जिसका अभिप्राय है:—"हे प्रभु, अनृतसे मेरी रक्षाकर, सत्यका मार्ग मुझे दिखा, अंधेरेसे निकालकर मुझे प्रकाशमे ले चल, मृत्युके भयसे हटाकर मुझे अमर बना दे और मुझे अपना दर्शन दे और अपनी सहज उदारतासे मेरी रक्षा कर।" यह वही भूमि है जहां युवक कुमार नचीकेतने सांसारिक सुखों और भोगोंको ठुकराकर अमरत्वको प्राप्त किया था। नचीकेतकी तपस्यासे प्रसन्न होकर धर्मराजने उसे एक वर देना चाहा। उसने धर्मराजसे कहा—"धनसे कोई महान नही बन सकता, मै केवल यही चाहता हूं कि आप मुझे परलोकका ज्ञान दे दीजिये।" इसी पञ्जाबमें देवता लोग स्वर्गके विहित सुख और आनन्दोको त्याग कर ऋषियोंको सेवामे रहकर ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते थे।

यह तो प्राचीन कालकी बातें है। आधुनिक समयमें पञ्जाब धार्मिक विकासका जन्मक्षेत्र रहा है। सिक्ख धर्मका प्रादुर्भाव इसी भूमिमें हुआ। इन गुरुओंने धर्मके लिये जो त्याग किया है, जो बलि दिया है उसे स्मरण करके रोमाञ्च हो जाता है। ये धार्मिक भाव, ये अनन्यत्याग हम लोगोंके लिये अनुकरणीय हैं।

पर कुछ समयसे पञ्जाब अपनी इस प्राचीन गौरवको भूल गया सा प्रतीत होता है। उन ऋषियोंकी ये सन्तानें यद्यपि रङ्गरूपमें ऋषि सन्तान प्रतीत होती हैं पर ये उनकी शक्ति और शिक्षाको या तो भूल गईं या उसका उलटा अभिप्राय लगाया। इन ऋषियोंने कहा था:—"शक्ति विज्ञानसे बढ़कर है। एक बलिष्ठ आदमी सैकड़ों वैज्ञानिकोंके लिये पर्याप्त है। शक्तिके बलपर ही पृथ्वी, तेज, आकाश, पर्वत, देवता, मनुष्य, पशुपक्षी, कीड़े मकोड़े, तथा वनस्पतियां ठहरी हैं। इसलिये इसीकी उपासना करनी चाहिये।"

पंजाब शारीरिक शक्तिके सामने इस आत्मबलको भूल गया। वह इस बातको भूल गया कि ऋषियोंने शारीरिक बलपर जोर नहीं दिया था बल्कि आत्मबल पर। यह बल सब अवस्थामें सभी स्थानोंपर मनुष्यका सहायक हो सकता है पर यह अगोचर है, अगम्य है, अव्यक्त है। यह आत्मबल अतिशय लाभदायक है और पशुबलसे यह एकदम भिन्न है। इसमें वह शक्ति है जिसके द्वारा वशिष्ठने विश्वामित्रपर विजय लाभ की थी। क्या पंजाब पश्चिमी जातियोंके पशुबलकी उपासनाके संभ्रममें आसक्त होता? पशुबलके दो विशिष्ट आकार हैं:—जुल्म और बुजदिली अर्थात् दुर्बलोंको सताना और बलवानोंसे डरना। इसके एकदम प्रतिकूल आत्मबलमें दुर्बलोंकी रक्षा और जालिमोंसे निर्भय रहनेका गुण है। इस संबंधमें उन्हीं अमरकीर्ति ऋषियोंने लिखा है कि दोनोंमेंसे पसन्द करनेका अधिकार हमारे

हाथमें है। जिनपर देवताओंकी कृपा होती है वे ही सद्मार्गका अवलम्बन करते हैं। कुछ कालके लिये देवता लोग पंजाबको भूल गये। जब उन्हें इस भूमिका एक बार पुन स्मरण आया तो आकाश वाणी हुई कि, :—

उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत

उठो, जागो और गुरुजनोंके चरणोंमें उपस्थित होकर ज्ञान प्राप्त करो।

पंजाबको जगानेवाला गुरु गुजरातमें था। उसने पंजाबको आंखसे कभी भी नहीं देखा था पर उसने पंजाबके लिये एक सन्देश रख छोड़ा था। इस सन्देशको बहुतोंने पढ़ा पर विरलोंने ही इसके मर्मको समझा। परिणाम यह हुआ कि एक प्रकारकी उत्तेजना लोगोंमें दृष्टिगोचर होने लगी। पंजाब निवासियोंने उनकी प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर नहीं किया था। उन्होंने सत्याग्रहके आन्तरिक भावको नहीं समझा था। तोभी उसमेंसे स्वतन्त्रताकी जो ध्वनि निकल रही थी वह सारे पंजाबमें फैल गई और पंजाब जागृत हो उठा। पंजाबियोंमें एक नई शक्तिका संचार हुआ अर्थात् पीडा सहनेकी शक्ति और यही कारण था कि बिना चूं किये ही लाहोरके निवासियोंने गोलियोंकी मारको छातियों पर बर्दाश्त किया। आज ही समाचार मिला है कि जिन २१ आदमियोंको सैनिक अदालतने भारी भारी दण्ड दिया था—जिसमें फांसी तकके दण्ड थे—उनकी अपीलको प्रिवी

कौंसिलने खारिज कर दो। इस संवादको भी पंजाबके निवासी अमृतका घूंट समझ कर पी जायंगे। अनेक निर्दोष व्यक्ति, बड़े बड़े नेतागण जेलमें भेज दिये गये, कितनोंका सर्वस्व लुट गया, कितने अनाथ हो गये, सैकड़ोंको अब दान और सदावर्तका मुंह ताकना पड़ रहा है। पर गिनेगिनाये कुछको छोड़कर सभीने इन यातनाओंको पूर्ण शान्ति और सहनशीलताके साथ बर्दाश्त किया। यह सत्याग्रहके सन्देशका प्रभाव था। सुख और दुःख, जेल और राजमहल, जीवन और मरण आज एक ही प्रश्नके भिन्न भिन्न रूप हो रहे हैं। यदि हममें सत्यबल है तो हम डायर अथवा ओडायरका भय क्यों करें? हम लोगोंका सत्यबल हमें स्वतन्त्र कर देगा। आज पंजाबसे आवाज आ रही है :—

दुर्बलोंके पास आत्मबलका अभाव रहेगा।

यदि आज पंजाब अपने शत्रुओंको क्षमा कर देता है तो यह दुर्बलोंकी भययुक्त क्षमा नहीं है बलिष्ठोंके हृदयकी असीम उदारताके लक्षण हैं।

हण्टर कमेटीकी जांच

(दिसम्बर १७, १९१९)

अहमदाबाद और खैरागढ़के उपद्रवके सम्बन्धमें रावसाहब हीरालाल देसाईके प्रश्नका बम्बई सरकारने जो उत्तर दिया है उसे पढ़कर प्रत्येक व्यक्तिको दुःख होगा, क्योंकि उसे पढ़कर प्रत्यक्ष हो जाता है कि सरकार सच्ची बातका दिग्दर्शन न करानेके लिये केवल टाल मटोल कर देती है। रावसाहबके प्रश्नों पर विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि बम्बई सरकारने उनकी अधीरताका दुरुपयोग किया है और जनताको उन कई आवश्यक बातोंके सम्बन्धमें एकदम अंधेरेमें रखना चाहा है। उनमेंसे कितनेहो प्रश्न ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष घटनासे है और कितने ऐसे हैं जो विवादग्रस्त हैं जिन्हें किसी न किसी प्रकार अशान्तिका कारण माना जा सकता है और उन्हींके आधार पर उन उपयोंको जांच हो सकती है जो उनको शान्त करनेके लिये प्रयोग किये गये थे। पर खेद है कि रावसाहबने इन विषयों पर जानकारीके लिये सब प्रश्नोंको एकमें ही मिला दिया और उस बातको भूलही गये। इसका परिणाम यह हुआ कि बम्बई सरकारको टाल मटोल करनेका अवसर मिल गया।

इस स्थानपर रावसाहबके प्रत्येक प्रश्नोंपर विचार नहीं किया जा सकता फिरभी खास खास प्रश्नोंको लेकर उनका दिग्दर्शन कराना आवश्यक है। रावसाहबने पूछा है :—"क्या बम्बई सरकार बतला सकती है कि अहमदाबादमें किस तारीखको और किस समय मार्शल ला जारी किया गया तथा किस तारीखको और किस समय उठा लिया गया?" सरकारने इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया है। हमारी समझमें नहीं आता कि बम्बई सरकार इतने साधारण प्रश्नका उत्तर देनेके लिये क्यों तैयार नहीं थी? यह प्रश्न केवल एक घटनाका प्रश्न था और इससे मार्शल लाके जारी करनेकी उपयोगिता या क्षमताके प्रश्नसे कोई सम्बन्ध नहीं था। पर बम्बई सरकारने इस प्रश्नका उत्तर देना भी उचित नहीं समझा।

रावसाहबका दूसरा प्रश्न था—"क्या बम्बई सरकार उन लोगोंका नाम, पता, अवस्था, जाति और वल्दियत बतला सकती है जिन्हें अहमदाबादमें गोलियोंका शिकार होना पड़ा है?" ऐसे प्रश्नोंका उत्तर न देनेके सरकारके पक्षमें कोई भी यथेष्ट कारण नहीं दिखाई देते। पाठकोंको स्मरण होगा कि बड़ी व्यवस्थापक सभाकी सितम्बरकी बैठकमें पण्डित मदनमोहन मालवीयने भी इसी तरहका प्रश्न किया था। उनके निम्न लिखित शब्द थे :—"क्या भारत सरकार बतलावेगी कि पंजाबकी दुर्घटनामें मार्शल लाके शिकार होकर कितने लोग मर गये, कितने लोग आहत हुए, उन आहतोंमेंसे कितने मरे और

कितने जी गये और उनका पता ठिकाना तथा अवस्था क्या है ?" सरकारकी ओरसे जिन शब्दोंमें उत्तर दिया गया था उन्हें भी यहीं उद्धृत कर देना उचित होगा। "अभी तक जो कुछ पता लग सका है उससे प्रगट होता है कि लाहोरमें १४, अमृतसरमें ३०१ गुजरानवालामें १७, गुजरातमें २ आदमी मरे। उनके नामादिकी सूचना नहीं दी जा सकती।" हमारी समझमें नहीं आता कि अहमदाबादके उपद्रवके विषयमें बम्बई सरकार इतनी भी सूचना क्यों नहीं दे सकती थी ? हम यह माननेके लिये तैयार हैं कि उसी ऊपरवाले प्रश्नका दूसरा भाग—जिसमें पूछा गया है कि बम्बई सरकार उस संबंधमें भी तारीख आदिको बतलावे जहां उपद्रवके कारण गोली चलाना अनिवार्य था—हण्टर कमेटीकी जांचका विषय है। इसी प्रकार प्रश्न न० १२, १३, २२, २३ भी हण्टर कमेटीको जांच के विषय हैं। पर क्या बम्बई सरकार उन प्रश्नोंको छोड़कर केवल उतनेका ही उत्तर नहीं दे सकती थी जो उसके हाथके थे और जिनका द्वारा हण्टर कमेटीकी जांच पर निर्भर था उन्हें छोड़ देती ?

इसके बाद प्रश्न ६, ६ और १६ आते हैं। रावसाहबने इन प्रश्नोंको जिला पुलिस ऐक्ट धारा २५ (ए) के अनुसार निकाले हुए एक आज्ञापत्रके संबन्धमें किया था। इनका सीधा संबन्ध स्थानीय सरकारके फौजदारी धाराओंके प्रयोगके विषयसे था और इनसे प्रबन्धकोंकी शासन संबन्धी उपयोगिता

और अनुपयोगिताका पता चलता था। इसलिये ऐसे प्रश्नोंपर पूर्ण प्रकाश डालना नितान्त उचित और आवश्यक था। इस बातको भी ध्यानमें रखना उचित होगा कि रावसाहब हीरालाल देसाईने इन प्रश्नोंमें उन कार्रवाइयोंके कानूनी अधिकारका प्रश्न नहीं उठाया था, क्योंकि ऐसी अवस्थामें ये प्रश्न हण्टर कमेटीकी जांचके विषय हो जाते। उन्होंने केवल इतना ही पूछा था—"क्या बम्बई सरकार बतला सकती है कि अहमदाबादमें अशान्तिके दिनोंमें पुलिस ऐक्टका जिस प्रकार प्रयोग किया गया था वह न्याययुक्त था ?' इस प्रश्नका उत्तर न देकर केवल टालमटोलसे काम लेकर बम्बई सरकारने साधारण न्यायका भी गला घूंट दिया है। जहांतक हमलोग समझते हैं हण्टर कमेटी इन बातोंकी जांच करने नहीं जारही है कि उपद्रवके दिनोंमें जो सरकारी इमारतें जला या ढहा दी गईं वे किस संवतमें बनाई गई थीं, उनमें कितना खर्चा लगा होगा और उनका वर्तमान मूल्य क्या होगा, कुछ लोग जुर्माना देनेसे बरी क्यों किये गये और जो लोग बरी किये गये हैं वे ही बरी होनेके योग्य हैं ? ऐसी दशामें बम्बई सरकारकी कार्रवाई और भी मर्यादाहीन प्रतीत होने लगती है क्योंकि इस प्रकारके प्रश्नोंपर पूर्ण प्रकाश डालनेका एकमात्र साधन सरकारका उत्तर था।

हमलोग इस विषयमें भी पूर्ण अन्धकारमें हैं कि हण्टर कमेटीने पहलेसेही इन विषयोंको अपनी जांचके अन्दर रख लिया था अथवा बम्बई सरकारके उत्तरके बाद अपनी सीमाको बढ़ाकर उन्हें भी अपने अन्दर ले लिया है ? हमें आशा है कि चाहे भारत सरकार चाहे हण्टर कमेटीके मन्त्री इस प्रकारकी सूचना निकालकर जनताको सच्ची बातकी सूचना देंगे और इस विषयपर पूर्ण प्रकाश डालेंगे।

झूठ कि लापरवाही।

(जनवरी ७, १९२०)

रूटरका तार है कि मिस्टर खानके प्रश्नका उत्तर देते हुए मिस्टर माण्टेगूने कहा था:—कांग्रेस चाहती थी कि जबतक हण्टर कमेटी जांच कर रही है तबतकके लिये सभी मार्शल लाके कैदी विना किसी शर्तके जमानतपर छोड़ दिये जायं। पर उनकी मांग पूरी नहीं की गई, इसीलिये उन्होंने जांच कमेटीका वहिष्कार किया।" हमारी समझमें नहीं आता कि मिस्टर माण्टेगूके उपरोक्त बयानमें जो परस्पर विरोधी भाव हैं उनकी जिम्मेदारी किस पर है? मिस्टर माण्टेगूपर कि रूटरपर। पर रूटर इतनी भारी बात नहीं दबा सकता। क्योंकि कांग्रेस कमेटीकी मांग थी कि हण्टर कमेटीकी जांचके समयतक उन प्रधान नेताओंको छोड़ दिया जाय जो मार्शल लाके शिकार बन कर जेलमें भर दिये गये हैं। इसमें सन्देह करनेकी कोई बात नहीं कि जिस समय मिस्टर माण्टेगूने मिस्टर खानके उपरोक्त प्रश्नका उत्तर दिया था उनके पास सच्ची घटनावलीका संवाद पहुंच गया था, क्योंकि १७ नवम्बर १९१९ को पण्डित मालवीयजीने उनके पास निम्नलिखित तार भेजा था:—"कामन्स सभामें कर्नल वेजवुडके प्रश्नोंका आपने जो उत्तर दिया है उसका

समाचार पत्रों द्वारा अभी मिला है। आपने कहा है कि हण्टर कमेटीको यह अधिकार है कि वह सैनिक अदालतके फैसलोंकी पुनः निगरानी करा सकती है। यदि हण्टर कमेटी ऐसी शिफारिस कर सकती है तो इसके लिये यह आवश्यक है कि प्रधान प्रधान कैदी नेता जमानतपर अवश्य छोड़ दिये जायं। पर प्रांतीय सरकारने किसी भी अवस्थामें उन नेताओंको इजलासमें आनेसे रोक दिया है। साथ ही जिन अफसरोंकी कार्रवाईकी जांच हो रही है वे खुली तौरसे अदालतमें आते हैं और आवश्यक विषयोंपर सरकारी वकीलकी सहायता करते हैं।" इसके साथ ही साथ सर शङ्कर नायरके पास भी एक तार भेजा गया था जिसमें लिखा था:—कांग्रेस सबकमेटी केवल इतना चाहती है कि "मार्शल लाके कैदी ६ प्रधान नेता केवल उस दिनके लिये स्वतन्त्र कर दिये जायं जिस दिन उनका बयान हो पर प्रत्येक नगरके प्रधान प्रधान कैदी नेता पुलिसकी रक्षामें जांच कमेटीकी कार्रवाईमें कमसे कम उन दिनोंमें उपस्थित किये जायं जिस दिन उनके जिलेके उपद्रवकी जांच हो ताकि आवश्यकता पड़नेपर वे अपने वकीलोंकी सहायता करें जिससे वे सरकारी गवाहोंके बयानकी असलियतकी पता लगा सकें।" यह तार लण्डनके समाचार पत्रोंमें भी प्रकाशित हुआ था। तो क्या मिस्टर माण्टेगूने असली बातको छिपाया ? पर यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया—जैसा कि हमें विश्वास है कि वे नहीं कर सकते—तब यह समस्या किस प्रकार हल हो सकती है ? इस जटिल प्रश्नका पूर्ण उत्तर पंडित

मालवीयजीके उस तारसे मिल जाता है जो उन्होंने मिस्टर मांटेगूके पास १३ नवम्बरको भेजा था जिसमें लिखा था—"कांग्रेस सबकमेटी जांचके लिये जमानतपर पञ्जाबके उन प्रधान नेताओंकी मुक्तिकी प्रार्थना करती है जो इस समय राजनैतिक कैदीकी हैसियतसे जेलमें बन्द हैं। पञ्जाब सरकारसे प्रार्थना किया गया पर उसने उसपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसलिये लाचार होकर कांग्रेस सबकमेटीने हण्टर कमेटीकी कार्रवाईमें भाग लेना अथवा योग देना स्वीकार नहीं किया है।" सम्भव है कि मि० मांटेगू उस समयतक इसी तारके शब्दोंमें पड़े रहे हों और पण्डित मालवीयजीके दूसरे तारके शब्दोंको पढ़नेकी परवा नहीं किये हों और वे उस समय तक इसी भ्रम और धोखेमें पड़े हों, कि कांग्रेस कमेटीकी मांग बिना किसी शर्तके छुटकारा है। यदि यह बात सच है तो इससे मिस्टर मांटेगूकी भीषण लापरवाहीका पता लगता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि ब्रिटनकी जनताको कुछ कालके लिये इस भ्रममें डाल दिया गया है कि कांग्रेस कमेटीकी मांग बहुत अधिक थी और इसी कारण यह कठिनाई हल नहीं हो सकी। यदि मिस्टर मांटेगूने थोड़ी तत्परतासे काम लिया होता तो यह घटना कभी भी उपस्थित न हुई होती।

मुकाबिला।

(नवम्बर १६, १६१६)

सरकारने अपना अन्तिम निर्णय सुना दिया। उसकी समझमें कांग्रेस सबकमेटीकी प्रार्थनाको स्वीकार करके काफी जमानत लेकर भी चन्द दिनके लिये पञ्जाबके प्रधान प्रधान कैदियोंको छोड़ देना असम्भव था। यह मांग कमसे कम थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो यही है कि यदि ऐसा न होता तो पण्डित मालवीयजीके समान व्यक्ति इसके लिये इतना अधिक जोर न देते। इन नेताओंकी अस्थायी मुक्तिकी नितान्त आवश्यकताके प्रश्नपर वादविवाद करना निष्प्रयोजन या सूर्यको दीपक दिखाना है। इसकी आवश्यकता प्रत्येक व्यक्तिको उतनी ही स्पष्ट विदित होती होगी जितनी सूर्यके प्रकाशकी आवश्यकता। इस बातका हमें अत्यन्त खेद है कि प्रेस्टीज (मर्यादा) की गलतफहमीने सरकारकी आंखोंपर इतनी मोटी पट्टी बांध दी थी कि उसको सच्ची अवस्थाका पतातक लगना कठिन हो गया, उसकी दृष्टितक सच्चा प्रकाश पहुंचने ही नहीं पाया। पंडित मदनमोहन मालवीयजीने लार्ड हण्टरको जो पत्र लिखा था उसमें उन्होंने सालमन कमेटीका पूरा हवाला दिया था। यह हवाला देना नितान्त उचित और आवश्यक था क्योंकि हण्टर कमेटीका यह कर्तव्य था कि

वह इस बातपर पूर्ण विचार करके देखे कि यदि उसकी जांच केवल तमाशा न होकर कुछ महत्व रखना चाहती है तो आवश्यक है कि जनताको अपने अभियोगको उसके सामने रखनेकी पूर्ण स्वच्छन्दता और सुविधा मिलनी चाहिये ।

इस स्थानपर हण्टर कमेटी तथा सालमन कमेटीकी जांच विधिकी मुकाबिला करना स्थानान्तर या अनुपयुक्त न होगा। यह कमीशन प्रवासी भारत वासियोंकी अवस्थाकी जांच करनेके लिये दक्षिण अफ्रिकामें बैठाया गया था। जिस समय इस कमीशनकी बैठक प्राटोरियामें हो रही थी उस समय (नवम्बर १९१३) महात्मा गांधी, की० कालीनवाच तथा महात्मा पोलक जेलमें थे। सर विलियम सालमन बड़े ही निपुण जूरीस्ट थे। उन्होंने देखा कि जांच आरम्भ करनेके पूर्व कुछ इतर प्रकारकी कार्रवाईकी भी आवश्यकता है। विद्वान कमीशनकी पहलीही बैठकमें उन्होंने निम्न लिखित घोषणा कर दी :—हमारे पास बार बार इस बातके लिये प्रार्थना पत्र नहीं आना चाहिये कि यदि फरीकैन पैरवीके लिये अपना वकील भी साथ लावें तो उन्हें और जांच-कमीशन दोनोंको बड़ी सुविधा होगी। यदि भारत सरकार इस कमीशनके सामने उपस्थित होकर गवाही देना चाहे तो उसे इस बातकी पूर्ण स्वाधीनता है। और जांचकमीशनको अपना काम पूर्ण सफलताके साथ निस्पादन करनेके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि—जबकि इस समय भारतीयोंकी नेटालमें हड़ताल बन्द हो गयी है—महात्मा गांधी, की० कालीनवाच तथा

महात्मा पोलक आदि प्रधान हड़ताली नेता—जो इस समय जेलके दण्ड भोग रहे हैं,—छोड़ दिये जायं। इन तीनोंमेंसे महात्मा गांधीको दस मासकी अवधि और भी बितानी थी। पर वे फौरन बिना किसी शर्तके छोड़ दिये गये। समझनेकी बात है कि इन नेताओंको छोड़नेके लिये जनताकी ओरसे कोई कार्रवाई नहीं की गई थी। कमीशनने यह कार्रवाई अपनी ही प्रेरणासे की थी। नेताओंमेंसे भी कोई मुक्तिलाभके लिये चिन्तित नहीं था क्योंकि जेलसे बाहर होते ही सबोंने एक स्वरसे कहा था कि जेलका शान्तिमय जीवन इस अवस्थासे कहीं उत्तम है। इसी संबन्धमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जानबूझकर कानून तोड़नेके अपराधमें ये नेतालोग जेल भेजे गये थे। पर हण्टर कमेटीकी क्या अवस्था है। जनता ही प्रार्थनापत्रपर प्रार्थनापत्र भेज रही है कि ये नेतागण छोड़ दिये जायं। जनता इस बातको भी भलीभांति जानती और समझती है कि ये विना किसी अपराधके जेलमें भेज दिये गये हैं। दक्षिण अफ्रिकामें अपने छुटकाराके लिये उन नेताओंको अपनी सिनाख्त तक नहीं देनी पड़ी थी पर यहांकी सरकार अस्थायी रूपसे पूरी जमानत तक लेकर जांचके कामके लिये छोड़ने तकको तैयार नहीं है। इससे बढ़कर दुःखदायी घटना और क्या हो सकती है।

सरकारकी इस तरहकी अवज्ञा अभद्रतापूर्ण है। अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस सबकमेटीकी इस साधारण प्रार्थनाको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखना, उसपर विचार न करना तथा समुचित कार्रवाईसे इनकार करना नितान्त अनुचित है। इस नाजायज कार्रवाईको सफाई सभ्य संसारके सामने किसी भी अवस्थामें नहीं दी जा सकती। इस अनुचित कार्रवाईके लिये सरकार पूर्णरूपसे जिम्मेदार है।

राजनैतिक वन्धुत्व।

(जून ६, १९२०)

फ्रीमेशनरी एक विचित्र प्रकार की संस्था है। इसका उद्देश्य भ्रातृभाव स्थापित करना है। इसकी कार्यवाही नितान्त, गुप्त रखी जाती है। इसके नियम बड़े कड़े होते हैं। आज तक इसने समाजका कोई उपकार किया है या नहीं यह तो नहीं कहा जा सकता पर इसकी रहस्यमय और कठोर नियमोंके कारण ही इसमें प्रवेश पानेके लिये अच्छे अच्छे लोग उत्सुक रहते हैं। ठीक यही अवस्था भारतके शासनके संबंधमें है। भारत सरकारके अधिकारीवर्गके संचालनके लिये कुछ ऐसे गुप्त नियमोंके होनेकी सम्भावना प्रतीत होती है जिसके सामने ब्रिटिश जातिके उच्चसे उच्च विचारवाले भी अपना माथा झुका देते हैं और अनजानकारीमें ऐसे भीषण अन्याय करनेके कारण बन जाते हैं जिसकी सम्भावनासे ही वे अपनी व्यक्तिगत अवस्थामें कांप उठते हैं। हण्टर कमेटीकी अधिक सदस्योंकी रिपोर्ट, भारत सरकारके खरीते और भारत मन्त्रीने इसका जो उत्तर दिया है, उसे पढ़कर यही धारणा उत्पन्न होती है। जिस समय कमेटीके निर्माणकी सूचना प्रकाशित हुई, प्रायः सभी देशी समाचार पत्रोंने यह कहकर इसका विरोध किया कि कमेटीके

सदस्य विश्वसनीय नहीं हैं। निदान जब तीन हिन्दुस्तानियोंको भी स्थान मिला तब जनताका विश्वास उनपर जमा। जिस समय कमेटी पंजाबमें जांच कर रही थी उस समय अखिल भारत वर्षीय कांग्रेस सबकमेटीने लार्ड हण्टरसे प्रार्थना की कि यथेष्ट जमानत लेकर जांच तकके लिये पंजाबके बड़े नेताओंको बयानादि देने तथा मुकदमेंमें सहायता देनेके लिये छोड़ दिया जाय। पर लार्ड हण्टरने साफ इनकार कर दिया। यह जनताके विश्वासपर प्रथम कुठाराघात था। बचा बचाया विश्वास—यदि किसीके हृदयमें कुछ रह गया था—रिपोर्टके प्रकाशित होनेके साथ ही उड़ गया। जो परिणाम निकला उससे यही कहना पड़ता है कि कांग्रेस कमेटीने भाग न लेकर अच्छा ही किया। कांग्रेस कमेटीने जो रिपोर्ट तैयार की है उसे पढ़कर स्पष्ट विदित हो जाता है कि हण्टर कमेटीने जान बूझकर क्यों उसे इनकार किया ?

तीनों हिन्दुस्तानी सदस्योंने अपनी अलग रिपोर्ट तैयार की है जिसे अल्प मतकी रिपोर्ट कहते हैं। यह हण्टर कमेटीकी रिपोर्ट रूपी मरुस्थलमें जलाशयके समान है। इन हिन्दुस्तानी सदस्योंको जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा और जिस दृढ़ता और साहसके साथ उन्होंने उन कठिनाइयोंको झेलते हुए भी अपने कर्त्तव्यका पालन किया उसके लिये सारा देश इनका कृतज्ञ है और वे धन्यावादके पात्र हैं। वे अपने कर्तव्यका और भी पूरी तरहसे पालन किये होते यदि वे सत्याग्रह

आन्दोलनके सविनय अवज्ञाके अंशपर अपने साथियोंसे भिन्न मत स्थिर किये होते। तीस मार्चको दिल्लीकी जनताने जिस उद्दण्डताका परिचय दिया था केवल उसके आधारपर उस आन्दोलनकी निन्दा करना कितना अनुचित और गर्हणीय है जिसका आधार आत्मबल है, जिसका प्रयोग ही साधारण जनताकी उद्दण्डता रोकने तथा उसके हृदयमेंसे अहिंसाके भाव दूर करनेके लिये किया गया है तथा जिसका प्रयोग सविनय अवज्ञा द्वारा अधिकारियोंकी कानूनी स्वच्छन्दता मिटानेके लिये उसी अवस्थामें किया जाता है जब अपनी उच्छृंखल कार्रवाईसे सरकार अपनी सारी मार्यादा खो देती है। ३० मार्चको तो सविनय अवज्ञाकी चर्चा तक न थी। संसारका इतिहास साक्षी है कि जहां कहीं इतने बड़े समारोह हुए हैं थोड़ा बहुत उपद्रव अवश्य हुआ है। ३० मार्च और ६ अप्रैलके समारोहको सत्याग्रहका नाम न देकर कोई और ही नाम दिया जा सकता था। पर मैं यह बात दृढता-के साथ कह सकता हूं कि सत्याग्रहके भावके न होनेपर यह दुर्घटना और भी भीषण और हिंसायुक्त हुई होती। जनताने सत्याग्रहके भावको जितनी शीघ्रताके साथ धारण किया था और अपनाया था उसीका यह प्रसाद था कि सारे भारतमें अशान्ति होनेसे एक दम बच गई और आज भी यदि जनता पूर्ण धैर्य्य, शान्ति और आत्म संयमसे काम ले रही है तथा किसी तरहकी अशान्तिकी प्रवृत्ति नहीं दिखला

रही है तो इसका कारण जेनरल डायरको उस वर्बरता और अत्याचारकी स्मृति नहीं है बल्कि यह सत्याग्रहका प्रभाव है जो उनको इच्छाके प्रतिकूल भी उन्हें हाथ उठानेसे रोक रहा है। इन अनुचित अक्षेपोंसे सत्याग्रहको बरी रखनेके लिये मैं सफाई देनेमें जनताको अधिक काल तक अटकाना नहीं चाहता। यदि वास्तवमें सत्याग्रह भारतकी जनतापर अपना कुछ भी प्रभाव डालनेमे समर्थ हुआ है तो निश्चय है कि इस तरहके आक्षेपोंको पार करके वह और भी देदीप्यमान हो गया है जिनका उल्लेख हण्टर कमेटीके अधिक संख्यक सदस्योंने किया है और जिनका अंशतः समर्थन अल्पमत सदस्योंने किया है। यदि अल्पमत सदस्योंकी रिपोर्टमें केवल इतना ही दोष होता तो हर तरहसे उसकी प्रशंसा ही की जाती क्योंकि राजनैतिक क्षेत्रमें सत्याग्रह नया अनुभव था और यदि कोई व्यक्ति बिना दीर्घ विचार किये इसके साथ किसी भी अशान्तिको जोड़ दे तो वह अक्षम्य है।

कमेटीकी रिपोर्टपर तथा भारत सरकारके खरीतेपर जनताने एक मतसे जो विरुद्ध मत प्रगट किया है उसको स्मरण कर अत्यन्त कष्ट होता है। सदस्योंने पञ्जाबके अधिकारियोंकी क्रूरतम तथा वर्बरतायुक्त प्रायः प्रत्येक आचरणों और कार्रवाइयोंकी सार्थकता दिखलानेकी तथा उनपर सफेदी पोतनेकी जी जानसे चेष्टा की है और यदि कहीं निर्भत्सना की है तो

वहां वे कैसा करनेके लिये लाचार थे क्योंकि उन कर्मचारियोंने अपने मुंहसे अपने दोषोंको स्वीकार किया है। जेनरल डायरने अपनी क्रूरतम करनीको कबूल किया है पर कमेटीके सद-स्योंने उतने परभी उसकी नृशंस कार्रवाईके समर्थन करनेकी ही चेष्टा की है। सर माइकल ओडायर (जो उस समय पंजाबके छोटे लाट थे) की उद्दण्डता और उच्छृङ्खलताके कारण ही उनके मातहदोंने इस प्रकारकी कार्रवाई की थी और यह सब जानते हैं कि वही प्रधान अपराधी है। फिरभी कमेटीके सदस्योंने उसकी प्रशंसाके पुल बांध दिये हैं और अप्रेलकी दुर्घटनाके पहलेके उसके अत्याचारको समीक्षा परीक्षा तथा जांच करनेसे इनकार कर दिया है। उसके आचरण इतने दोषपूर्ण थे कि कमेटीको उसपर पूर्ण विचार करना चाहिये था; अधिकारीवर्गकी ओरसे जा बातें कही गई उन्हो पर भरोसा न करके, उन्हें ही सर्वथा सच न मानकर कमेटीको उचित था कि वह अपनी विवेक बुद्धिसे काम लेती और उपद्रवके असली कारणको ढूंढ निकालनेकी चेष्टा करती। इन उपद्रवोंकी असलियतका पता लगानेके लिये उसे हर तरहके उपायोंका प्रयोग करना चाहिये था। कमेटीका कर्त्तव्य था कि वह अधिकारियां द्वारा खड़ी को गई झूठकी मोटी टट्टी फाड़कर वह भोतर प्रवेश करती और सच्चा कारण ढूंढ निकालती। पर ऐसा न करके कमेटीने केवल सरकारी बयानोंपर भरोसा करके भारी भूल की।

कमेटीकी रिपोर्ट तथा भारत सरकारके खरीतोंको पढ़कर यही धारणा होती है कि इसके द्वारा अधिकारीवर्गकी उच्छृंखलता तथा अराजकताको छिपानेकी घोर चेष्टा की गई है। जिस उदासीनताके साथ जेनरल डायरके कत्ले आम तथा पेटके बल रेंगनेकी घृणित आज्ञाकी निन्दा की गई है उसे पढ़कर निराशा और असन्तोषकी काली घटा छा जाती है। कमेटीकी इस रिपोर्ट तथा भारतसरकारके खरीतोंकी निन्दा सभी देशी पत्रोंने की है चाहे वे नरम दलके रहे हों या गरम दलके। इसलिये उसकी यहां सविस्तर समीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं। प्रश्न उठता है कि इस रहस्यका उद्घाटन किस तरह किया जाय। इसका परदा कैसे खोला जाय। यदि भारतको साम्राज्यका बराबरका साथी होना है, यदि उसे अपने आत्म गौरवका जरा भी ख्याल है तो इस तरहकी बुराई और हीनताको वह बर्दाश्त नहीं कर सकता। इस रिपोर्टके प्रकाशित होनेसे जा स्थिति उत्पन्न हो गई है उस पर तथा अन्य अनेक विषयोंपर विचार करनेके लिये अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीने कांग्रेसका विशेष अधिवेशन करनेकी मन्त्रणा दी है। मेरे मतसे वह समय आगया है कि जब हमें केवल अनुनय विनय और पार्लिमेंटमें प्रार्थनापत्र भेज कर ही सन्तुष्ट न हो जाना चाहिये। प्रार्थनापत्र तभी कारगर होते हैं, उन पर तभी विचार किया जाता है जब प्रार्थी राष्ट्रमें इस बातकी शक्ति होती है कि वह अपनी इच्छाकी पूर्ति

बल प्रयोग द्वारा भी करा सकता है। पर क्या हमलोगोंमें इस तरहकी कोई भी शक्ति है? जब हमलोगोका पक्का विश्वास है कि हमलागोंके साथ घोर अन्याय और क्रूरतम अत्याचार किया गया है और जब सबसे बड़े अधिकारोके पास प्रार्थना पत्र भेजनेपर भी हमारे दुःखोंपर विचार न हुआ—न्याय पाना तो दूर रहा—तो इसके प्रतिकारके लिये हमारे हाथमें किसी शक्तिका होना आवश्यक है। यह ठीक है कि अधिकांश अवस्थामें साधारण कार्रवाईके असफल हो जानेपर उसे चुप लगाकर उस दुराचारको बर्दाश्त करते रहना चाहिये जब तक कि उनके द्वारा उसके किसी प्रधान अंगपर कुठाराघात न होता हो। पर प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्रके निर्दिष्ट अधिकार होते हैं और यदि उनपर कहींसे भीषण आघात होता है तो उसका विरोध करना उनका परम धर्म है। मैं सशस्त्र आन्दोलनमें विश्वास नहीं करता। जिस बिमारीको दूर करनेके लिये इस उपचारका प्रयोग किया जाता है उसके परिणामसे इनका परिणाम कहीं भीषण हो जाता है। ये बदला, अधीरता तथा क्रोधके रूप हैं। हिंसाका अन्तिम परिणाम कभी भी सुखदायक नहीं हो सकता। जर्मनीके मुकाबिलेमे मित्रराष्ट्रोंने शस्त्रका प्रयोग किया था। उसका क्या परिणाम निकला? क्या उनकी अवस्था ठीक जर्मनीकी भांति नहीं हो गई है। जर्मनीका जैसा चित्र उनलोगोंने हमारे सामने खींचा था उनकी अवस्था भी उसीकी तरह हो रही है।

हमलोग इससे उत्तम अस्त्रका प्रयोग कर सकते हैं। हिंसाके अस्त्रके एकदम प्रातकूल इस शस्त्रके प्रयोगमें धैर्य तथा आत्मबलकी नितान्त आवश्यकता है पर साथ ही साथ साहस और दृढ़ताकी भी आवश्यकता है। वह तरीका यह है कि हमें उन बुराई करनेवालोंके साथ सहयोग करना छोड़ देना चाहिये। जालिम अपने जुल्ममें कभी भी सफलता नहीं प्राप्त कर सकता यदि उसके सहायक जुल्म भोगनेवालोंमेंसे न हों अर्थात् जिनपर वह अत्याचार करना चाहता है उनकी सहायता विना वह अपने अत्याचारको कभी भी चरितार्थ नही कर सकता, चाहे वह उनको सहायता वलप्रयोगसे ही क्यों न ले। अधिकतर लोग अत्याचारीके अत्याचारके प्रतिरोध करनेके बनिस्वत उसको चुपचाप सहलेना ही अधिक उचित समझते हैं और यही कारण है कि अत्याचारीका अत्याचार दिन दिन बढ़ता जाता है। इतिहासमें ऐसे भी अनेक उदाहरण मौजूद हैं जहां प्रजाकी दृढ़ताने अत्याचारियोंके अत्याचारको चरितार्थ नहीं होने दिया है। भारतके लिये भी इस समय विचारका प्रश्न उपस्थित हो गया है। यदि हमलोग यह मानते हैं कि पञ्जाब सरकारकी कार्रवाइयां क्रूर हैं, यदि लार्ड हण्टरकी कमेटीकी रिपोर्ट, भारत सरकारके खरीते तथा भारतमन्त्रीका उत्तर और भी असत्य है—क्योंकि इन लोगोंने अधिकारियोंकी इन कार्रवाइयोंका समर्थन किया है—तो हमलोगोंको सरकारकी इस घृणित कार्रवाइको कभी भी स्वीकार नहीं करनी चाहिये। यदि आप-

लोग आवश्यक समझते हैं तो पार्लिमेण्टके पास प्रार्थना पत्र भेजें पर यदि पार्लिमेण्ट हमलोगोंकी प्रार्थनाओंपर विचार नहीं करती और यदि हम अपना राष्ट्रीय अस्तित्व बनाये रखना चाहते हैं तथा उसका हमारे हृदयोंमें कुछ भी मान है तो हमें उस सरकारके साथ निश्चय ही असहयोग कर देना चाहिये।
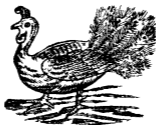
पंजाबकी गैर सरकारी रिपोर्ट।

(मार्च ३१, १९२०)

जिस रिपोर्टकी सारा देश प्रतीक्षा कर रहा था वह प्रकाशित हो गई। जिस सुव्यवस्थित तरीकेसे तथा संयमसे कमिश्नरोंने काम किया है, इस विकट तथा कठिन भारको निबाहा है उसके लिये उन्हें बधाई है। रिपोर्टमें जिन बातोंका समावेश है उससे ही उसकी महत्ता प्रगट होती है फिर कमेटीके सदस्योंकी नामावली उसे और भी महत बना देती है। कमिश्नरोंने रिपोर्टमें जो कुछ लिखा है पूरे बयानके आधार पर लिखा है। अपने मनसे उन्होंने एक अक्षर भी नहीं लिखा है। इसलिये पाठक, यदि चाहे तो स्वयं ही परिणामकी जांच कर सकते हैं। शिफारिसें न तो अधिक हैं न कमजोर हैं। कमिश्नरोंने दृढ़ता और साहसके साथ लिखा है कि बड़े लाट वापिस बुला लिये जांय, और सर माइकल ओडायर, जेनरल डायर आदि सभी नृशंस अधिकारी नौकरीसे छोड़ा दिये जायं। ये ही दो शिफारिसें हैं जिन पर किसी तरहका मतभेद और वादविवाद हो सकता है। पर कमिश्नरोंने प्रत्येक शिफारिसोंके लिये यथेष्ठ और निर्विवाद कारण बतलाये हैं। इसलिये यदि उनके उल्लिखित कारणोंकी सार्थकतामें किसी तरहका मतभेद नहीं है तो उनकी शिफारिसोंपर भी कोई मतभेद नहीं हो सकता।

बड़े लाटके वापिस बुला लिये जानेके विषयमें हमारा मत कमेटीके सदस्योंसे पूरी तरहसे मिलता है। इस निर्णय पर पहुंचनेमें हम लोगोंको हार्दिक दुःख हुआ है। हम लोगोंको पूर्ण विश्वास है कि बड़े लाट महोदय सुशिक्षित तथा सभ्य अंग्रेज है और हृदयसे भारतकी भलाई चाहते हैं और सदा न्याय करनेके लिये चिन्तित और सचेष्ट रहते हैं। पर बड़े लाटके उच्च पदके लिये केवल इतने ही गुण यथेष्ट नहीं है। लार्ड चेम्सफोर्डने अदूरदर्शिताका प्रथम परिचय दिया है। उन्होंने भारतके शासनमे उपनिवेशोंके गवनरोंकासा आचरण किया है जिनकी प्रत्येक कार्यवाही मन्त्रियोंके अदेशानुसार होती है। जो अपनी धारणाके अनुसार कोई काम नही कर सकता और जिसे केवल उपनिवेशोंकी नीति पर चलना पड़ता है अर्थात् स्वशासित उपनिवेशोंके गवर्नर शासनके कार्यमे मन्त्रियों पर किसी बातके लिये दबाव नहीं डाल सकता, केवल उन्हें सलाह मात्र दे सकता है। जनताके विचारोंको माफिक बनानेके लिये वह किसी तरहके बल प्रयोगका साहस नहीं कर सकता बल्कि सामाजिक तथा अर्ध राजनैतिक सम्मेलनोंमें उनके साथ मिल जुलकर उनसे मैत्री करता है और उस मैत्रीके प्रभावसे अपना काम निकालना चाहता है। लार्ड चेम्स्फोर्डमें ये गुण अवश्य हैं पर जिन गुणोंके कारण उपनिवेशोंका गवर्नर योग्य और चतुर समझा जायगा तथा सफल होगा वे ही गुण लार्ड चेम्स्फोर्डको बड़े लाटके पदके लिये अयोग्य प्रमाणित करते हैं। भारतके बड़े लाटके हाथमें अतुल

शक्ति है। वह पूर्ण स्वच्छन्द है. वह प्रवन्धक सभाके मतके विरुद्ध आचरण कर सकता है। उसको साधारण राय कानूनसे अधिक बल रखती है। शासनकी नीतिका निर्धारण और संचालन उसके हाथमें रहता है। प्रान्तोंके शासनकी देख रेख और पूर्ण हस्तक्षेपका अधिकार उसके हाथमें है। इसलिये बड़े लाटको अतुल शक्तिशाली. सुदीर्घ सोची और जनप्रिय होना चाहिये। हृदयमें अनेक तरहकी सद्भावनाओं और सुविचारोंके होते हुए भी लाट चेम्सफोर्डने कठिन समय पर नितान्त कमजोरी दिखलाई है। अपने सहकारियों और अनुयायियोंका संचालन स्वय न करके उन्होंने अपनेको उनके हाथों सौंप दिया और उन्हें मनमाना प्रयोग करने दिया। इसका परिणाम अहमदाबादकी दुर्घटना और पंजाबका हत्याकाण्ड है। यदि प्रधान शासकमे ये गुण वर्तमान होते, यदि वह अपने मातहतोंपर अपना प्रभाव डाल सकते, यदि वह अपने मनसे काम करनेकी योग्यता रखते तो इस प्रकारके प्रतिरोधी बातोंका होना असम्भव था। इस काममें लार्ड चेम्सफोर्डने पूर्ण अयोग्यता दिखाई। इसलिये इस प्रकारके ज्वलन्त उदाहरण उनके सामने होते हुए भी यदि कमेटीके सदस्य बड़े लाटके वापिस बुलाये जानेकी राय न देते तो वे अपने कर्त्तव्य पालनसे च्युत समझे जाते।

जिस निर्णयपर कमेटीके सदस्य पहुंचे हैं उसमें यदि कोई दोष है तो कमीकी है। उनकी शिफारिसें और मांगें नितान्त कम हैं। पर अभी इसपर मत देना उचित नहीं। सरकारी

कमेटीकी रिपोर्टके प्रकाशित हो जानेके बाद ही गैर सरकारी कमेटीकी शिफारिसोंकी छानबीन करना उचित होगा। गैर सरकारी कमेटीके सदस्योंने जिन सबूतोंको संग्रह किया है उन्हें देखकर यही कहना पड़ता है कि इससे भिन्न किसी अन्य निर्णय-पर वे नहीं पहुंच सकते थे। सबूतोंको पढनेसे स्पष्ट हो जाता है कि जिन बातोंके लिये उन्हें पर्याप्त प्रमाण नहीं मिल सका है उन विषयोंपर उन लोगोंने अपना कोई भी मत प्रकाशित नहीं किया है।

पंजाबमें दण्ड विधान।

। अप्रेल ७, १९२१ ।

कांग्रेस पंजाब सबकमेटीने वाइसराय पर अदूरदर्शिताका दोष लगाया है। फांसीके दण्ड प्राप्त पांच अभियुक्तोंमेंसे दोके दण्डकी कमीकी प्रार्थना पर कान न देकर बड़े लाटने उक्त दोषारोपणको चरितार्थ कर दिया है। प्रिवी कौंसिलने भी इनकी अपील खारिज कर दी पर इससे इनका दोषी होना उसी तरह प्रमाणित नहीं हो सकता जिस तरह सैनिक अदालतकी कार्रवाइयोंका खण्डन कर देना उन्हें निर्दोष नहीं साबित कर सकता था। इसके अतिरिक्त सम्राटकी घोषणाका जो अर्थ पंजाब सरकारने लगाया है उसके अनुसार ये अभियुक्त भी उस घोषणाके अन्दर आ जाते हैं। जिन लोगोंकी इन लोगोंने हत्यायें की हैं उनके साथ किसी तरहका व्यक्तिगत वैमनस्य नहीं था। यद्यपि ये हत्यायें बहुत भीषण हैं तथापि इनका प्रादुर्भाव राजनैतिक कारणसे हुआ था। इसके अतिरिक्त इन हत्याओं तथा आतिशजनीके लिये काफी मोजरा ले लिया गया है। ऐसी अवस्थामें साधारण बुद्धि भी इन दण्डोंके कम करनेके पक्षमें होगी। सर्वसाधारणको विश्वास है कि ये अभियुक्त सर्वथा निर्दोष हैं और उनका विचार न्यायकी

दृष्टिसे नहीं हुआ है। इनके विचारमें इतना अधिक समय लगा दिया गया है कि इस अवस्थामें उन्हें फांसीपर लटकाना लोगोंको अतीव दुःखदायी होगा। कोई भी बडा लाट इन सब अवस्थाओंका पर्यवेक्षण करके मृत्युदण्डको अवश्य हटा दिये होता पर लाट चेम्सफोर्ड ऐसा नहीं कर सके। उनकी धारणा है कि जब तक एक दो आदमियोंको फांसी न दी जायगी न्यायकी मर्यादाका पूर्णतः पालन नहीं हो सकता। उनके प्रति जनताके जो भाव हैं, उसका उन्हें (बड़ेलाटको) परवा नहीं है। हमें अब भी आशा है कि लार्ड चेम्सफोर्ड या भारत मन्त्री मिस्टर माण्टेगू इस दण्ड विधानको अवश्य बदल देंगे।

यदि सरकारने भूलकी पराकाष्ठा प्रगट की और इन दण्डोंको ज्यों का त्यों रहने दिया और जनताने इसपर किसी तरहका क्रोध या रोष प्रगट किया तो उनके सिरपर भी कम दोष नहीं आवेगा। जब तक कि हमारी राष्ट्रीयतामें इतना बल न आजाय कि संसारके राष्ट्रोंमें हमारी भी पूछ होने लगे हमलोगोंको पूर्ण शान्ति और धैर्यके साथ इस तरहके हजारों और लाखों बलिदान देने होंगे। इसलिये हमें पूर्ण आशा है कि इस तरहकी घटनावलीसे हताश होनेके बदले हमें साहस ग्रहण करना चाहिये और फांसी आदि दण्डविधानोंको जीवनकी साधारण घटना समझनी चाहिये।

[नोट—इस समाचारके छप जानेपर समाचार मिला कि उनकी फांसीका दण्ड किसी भी प्रकार घटाया नहीं गया। बड़े लाट साहबने भारतीयोंकी आत्मापर वह बज्र प्रहार करके ही छोड़ा। पर हमारा कर्तव्य है कि इस भीषण आघातको भी पूर्ण शान्तिके साथ बर्दाश्त करें।—सम्पादक यंग इण्डिया]

———:*:———

बड़े लाटकी कार्य क्षमता।

(अक्तूबर ६, १९२०)

श्रीमती सरोजनी नायडूने भारत सरकारपर विद्रोहके दिनोंमें पञ्जाबकी स्त्रियोंके अपमान करनेका दोषारोपण किया है। इस आक्षेपका प्रतिवाद करते हुए बड़े लाटने भारत मन्त्री मिस्टर मांटेगूके पास तार भेजा है। श्रीमती सरोजनी नायडूने इस प्रतिवादका उत्तर भी दिया है। बड़े लाटने अपनी जिम्मेदारीके जितने भी काम किये हैं, उनको जिस तरह निबाहा है उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि जिस महान पद पर ये बैठाये गये हैं उसके वे सर्वथा अयोग्य हैं। श्रीमती सरोजनी नायडूने जितने आक्षेप बड़े लाटके ऊपर किये हैं उनसे ही उनकी (बड़े लाटकी) हीनताका पूरा परिचय मिल जाता है। हम अपनी ओरसे उसमें एक शब्द भी जोड़ना नहीं चाहते। पर हम पाठकोंका ध्यान उन चन्द प्रधान आक्षेपोंकी ओर आकृष्ट करेंगे जिन्हें बड़े लाटने सर्वथा उपेक्षासे देखा है। बड़े लाटने लिखा है कि वेश्याओंको गवाहियोंका कोई मूल्य नहीं हो सकता, क्योंकि उनका पेशा इतना हेय है कि वे किसी तरह भी प्रतिष्ठा और आदरके योग्य नहीं। हम भी थोड़ी देरके लिये स्वीकार करते है कि उनके बयानको स्वीकार नहीं करना

उचित था। पर मनियांवालाकी स्त्रियोंके बयानके संबंधमें बड़े लाट महोदयको क्या कहना है क्योंकि उनके चरित्रपर ता कोई दोषारोपण नहीं किया गया है। हम यहांपर मङ्गल जाटकी विधवा पत्नी गुरुदेवीके बयानको अक्षरशः उद्धृत कर देते हैं। इस बयानको अन्य अनेक स्त्रियोंने तसदीक किया है। उनका बयान इस प्रकार है :—

"मार्शल लाके दिनोंमें एक दिन मिस्टर वस्वर्थ स्मिथने ८ वर्षसे अधिक अवस्थाके सभी आदमियोंको डक्का डला बङ्गलेमें इकट्ठा किया। यह बङ्गला हमारे गांवसे नजदीक ही है। यह बटोर जांचके लिये हुई थी। जब सब आदमी बङ्गलेपर पहुंच गये ता वह घोड़े पर सवार होकर हमारे गांवकी तरफ आये और रास्तेमें जितनी स्त्रियां मिलीं सबोंको अपने साथ लौटा लाये। ये स्त्रियां अपने आदमियोंका भोजनादि लेकर बंगलेकी तरफ ही जा रही थीं। गांवमे पहुंचकर वह गली गली घूमा और सब स्त्रियोका घरोंसे बाहर निकल आनेके लिये कहा, जो यों नहीं निकल आती थीं उन्हें कोड़ोंकी मारसे बाहर करता था। उसने हम लोगोंको दायराकी तरह खड़ा किया। स्त्रियां हाथ जोडे खड़ी थीं। वह बराबर बुरी बुरी गालियां देता रहा, उन लोगोके मुंहपर थूका और कितनोको बेतें जमाई। दो बेंत हमें भी जमाई और मेरे मुंहपर थूक दिया। उसने जबरदस्ती हम लोगोंका मुंह खोलाया, यहां तक कि अपनी छड़ीसे हम लोगोंका घूंघट हटाता रहा।"

"वह बराबर बुरी बुरी गालियां देता रहा और कहता था:—कुत्तियो, शैतानकी बच्चियो, तुम लोग तो अपनी खसमको लेकर सोती रही होगी। तुमने उन्हें इस हत्याकाण्डसे क्यों नहीं रोका। अब पुलिसके अफसर तुम लोगोंके लहंगोंको उठा उठाकर तुम्हारी मर्यादा बिगाड़ेंगे।" उसने मुझे ठोकर भी मारी। उसने हम लोगोंको घुटनेके बल बैठाया और जांघकी बीचमेंसे हाथ डालकर कान पकड़वाया।

"हम लोगोंके साथ इस प्रकारके अत्याचार उस अवस्थामें किये गये थे जब हमारे घरके मर्द बंगलेमें बुला लिये गये थे।"

यदि ऊपर उल्लिखित घटनावली सच है तो क्या इससे भी अधिक नीचता और वर्बरताका घृणित नमूना कहीं मिल सकता है? और इन्हीं नीचतम करनीके लिये सरकार इन नीचोंको अपने खजानेसे पेंशन देने पर तुली है। गैर सरकारी कमेटीने जो गवाहियां ली हैं उनके पढ़नेसे इन अधिकारियोंकी नीचताके पाठकोंको ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे। इन बयानोको श्रीयुत अण्डरूज और श्रीयुत लाभसिंह बैरिस्टर-एट-ला ने लिया था जो उन स्त्रियोंको देखनेके लिये और जांच करनेके लिये मनियांवाला भेजे गये थे। श्रीयुत अण्डरूजने वहां खुली तौरसे जांच की थी जहां सब जा सकते थे।

मिस्टर माण्टेगूका ध्यान इस नीचताकी ओर आकृष्ट किया गया। उन्होंने भारतके अधिकारीवर्गके अनुरूप उद्दण्डताके कारण श्रीमती सरोजिनी नायडू पर इस निराधार विवरणके लिये

आक्षेप किया। इसीलिये उन्होंने जांच भी कराई। पर बड़े लाटने उनकी आज्ञाको ताकपर रख दी और जांचकी आवश्यकता ही नहीं समझी। उन्होंने गवाही विधानकी एक नयी धारा ही बना डाली कि वेश्याओंका बयान प्रमाणिक नहीं हो सकता। बड़े लाटकी बातोंसे यह ध्वनि निकलती है कि सताई हुई भी वेश्याको तबतक न्यायकी आशा नहीं करनी चाहिये जबतक कि अन्य गवाहों द्वारा उनका समर्थन न हो। किसी भी तरह बड़े लाटकी बातोंको मिस्टर मांटेगूने स्वीकार कर लिया है और इस प्रकार असहयोगके कामको और भी पुष्ट कर दिया है। क्या भारतवासी एक क्षणके लिये भी उस उच्छृङ्खल सरकारके साथ हाथ मिलानेको तयार हैं जो स्त्रियों पर इस तरहके भीषण जुल्म करनेवाले अफसरोंके भी अपराधको चुपचाप देख लेती है और कोई उपचार नहीं करती ?

श्रीमती सरोजनी नायडूका भारतमन्त्रीके नाम पत्र।

महाशयजी, आपके मन्त्रीका २४ अगस्तका पत्र आज मिला। इस पत्रके साथ भारत सरकारके भेजे तारका मसौदा भी है। मैं बाहर चली गई थी नहीं तो इसका उत्तर पहले ही भेज दिया गया होता।

आपने लिखा है कि यह समाचार अखबारोंमें भी दे दिया गया है। पर इसमें एक भूल की गई है। इसके साथ उन पत्रोंको भी भेज देना था जो इसके पहले हमारे और आपके बीचमें गुज़रे

थे क्योंकि उनके बिना सम्पूर्ण स्थितिको पूरी तरह समझ लेना जरा कठिन है।

मुझे विश्वास नहीं होता कि भारत सरकारने उन भीषण आक्षेपोंके उत्तर देनेका साहस करके यह तार आपके पास भेजा है। उन आक्षेपोंमें इतने बलिष्ठ प्रमाण हैं कि उनका प्रतिवाद करना कठिन है। जिस कमेटीने गवाहियां ली थीं उसमें देशके प्रधान प्रधान और गण्यमान लोग ही थे। उनमेंसे प्रायः सभी हाईकोर्टके वकील थे। उनमेसे एक तो जज भी रह चुके हैं, और दो अपने अपने प्रान्तके सबसे बढ़े चढ़े वकील हैं। इसके अतिरिक्त महात्माजीकी सतर्कताके बारेमें कुछ लिखना व्यर्थ है। जिन गवाहियोंको पूरी तरहसे जिरह करनेके बाद इन महान व्यक्तियोंने प्रकाशित किया है उसे असत्य प्रमाणित करनेकी चेष्टा धृष्टता होगी।

यदि इन व्यक्तियोंमें हम लोगोंका जरा भी विश्वास है तो क्या यह किसी भी अवस्थामें भी उचित होगा कि हम लोग डिपटी कमिश्नर सदृश साधारण अधिकारीके इनकार करनेको प्रमाणित मान लें जबकि वह स्वयं उसका जिम्मेदार है, और साथ ही जब कि उसने अपनी सफाईका आधार उन बातोंको बताया है जिनकी सार्थकता पर किसी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता। क्या केवल आचरणके दोषारोपणसे उन पाशविक कृत्यों और हेय आचरणोंपर तोपन पड़ सकता है!

मुझे इस बातको स्मरण करके शर्म आती है कि ब्रिटिश

शासनका इतना जिम्मेदार अधिकारी यह बात मनमें लावे कि इस तरहके पाशविक और घृणित आचरण इतनी आसानीसे और इतनी साधारणसी बात पर परदेमें डाल दिये जा सकते हैं कि जिनके साथ इस तरहका व्यवहार किया गया है वे इतने पतित हैं कि उनकी गणना मनुष्यमें की ही नहीं जा सकती।

क्या मुझे आपको पुनः स्मरण दिलाना पड़ेगा कि उन अवसरों पर अनेक स्त्रियोंके साथ अति घृणित पाशविक आचरणका दोषारोपण किया गया है? मैं आपका ध्यान कांग्रेस कमेटीकी रिपोर्टके १४७ वे बयानकी ओर आकृष्ट करती हूं। भारत सरकारने अपने तारमें इसके विषयमें कुछ नही लिखा है। इसका भी तो प्रतिवाद होना चाहिये था।

भारत सरकारने लिखा है :—"औरतोंको कोतवालीके पास एक गलीमें खड़ा किया गया था। वह स्थान ऐसा था कि कोई भी सरकारी अफसर स्त्रियोंके साथ किसी भी तरहकी ज्यादती नहीं कर सकता था।" आप ही बताइये कि क्या ऐसी बातोंपर विश्वास किया जा सकता है, विशेषकर ऐसी अवस्थामें जबकि मार्शल लाके कारण प्रजा व्याकुल हो गई थी और अधिकारी-वर्गके अत्याचारोंसे सबका प्राण निकल रहा था।

इसके अतिरिक्त यह कहना कि भारतकी छोटी जातिकी स्त्रियां अपनी शिकायतोंको इसी तरहका रूप देती हैं और भी निन्दित है क्योंकि इस तरह जान बूझकर घटनावलीको छापानेकी चेष्टा की गई है। मैं इस बातको पूर्ण अभिमानके साथ कह

सकती हूं कि भारत ही एक ऐसा देश है जहांकी स्त्रियोंमें इतनी अधिक हया होती है कि जबतक वे एक दमसे विवश न हो जायं इस तरहकी बातें मुंहपर ला हो नहीं सकती चाहे उनके साथ कितना भी भीषण बलात्कार क्यों न किया गया हो।

भारत सरकारने लिखा है कि प्रतिहिंसाके कारण इस तरहके बयान दिये गये हैं। इस तरहका बातें केवल अविश्वसनीय और अग्राह्य हो नहीं है बल्कि इनकी सार्थकताका नाश भारत सरकारके ही कथनसे हो जाता है कि उस समय किसी तरहकी शिकायत नहीं की गई और जब उस कमेटीने अपनी जांच शुरू की जिससे उन्हें डरनेका कोई कारण नहीं था तब इन बातोंका पता लगने लगा।

भारत सरकारके तारके अन्तिम शब्दका इन आक्षेपोंसे क्या संबंध है इसका पता तो इसके पढ़नेसे नहीं लगता पर इसमें एक बात जानने लायक है और वह यह कि जिस विशेष अदालतने इन अभियुक्तोंकी जांच की उसके पास इन लोगोंके बारेमें गुप्त सूचनायें थी।

इतने भीषण आक्षेपोंका प्रतिवाद इस प्रकारके निरर्थक प्रमाणों द्वारा करना जेनरल डायर आदिके मित्रोंको भले ही सन्तोष जनक प्रतीत हो पर मुझे पूरा विश्वास है कि यहांकी जनता इतनी आसानीसे इन प्रमाणोंको न स्वीकार कर लेगी और भारतके वे निवासी जो देशमें कुछ भी श्रद्धाभक्ति रखते है सरकारके इन प्रतिवादो पर जरा भी ध्यान न देंगे। क्योंकि

पंजाबके अत्याचारोंका जिस तरह उन लोगोंने अपने कागजोंमे वर्णन किया है उससे उन परसे सारा विश्वास उठ गया है।

मेरा यह विश्वास तो तभी डिग सकता है जब इनकी पूरी तरहसे जांच हो। क्या मैं अभीसे मान लूं कि अब आप भारत सरकारके पास किसी तरहसे जांचके लिये नहीं लिखेंगे। मुझे धारणा थी कि आपके १० वी जुलाईके पत्रमें लिखे "विशेष जांच" का अभिप्राय केवलमात्र डिपटी कमिश्नरसे पूछ लेनेका नही था।

क्या मै आपका ध्यान उन अन्य अभियोगोंकी ओर भी आकृष्ट करू' जो उतने ही भीषण हैं? इसमें भी एक सरकारी कर्मचारीका किसी एक अंशमे स्त्रियों पर किये गये अत्याचार और ज्यादतियोंका विवरण है जिसकी चर्चा मैंने अपने १८ जुलाईके पत्रमें की थी। भारत सरकारने अपने तारमे इनके विषयमें कुछ नही लिखा है।

अन्तमे मैं जानना चाहती हूं कि पक्षपात शून्य जांचके लिये आपने क्या बन्दोवस्त किया है?

आपकी विश्वासिनी
(हस्ताक्षर) सरोजनी नायडू

भारत सरकारके तारकी नकल

कांग्रेस कमेटीकी रिपोर्टमें पंजाब विद्रोहका विवरण देखा। जिन औरतोंका हवाला दिया गया है उन्होंने किसी तरहकी ज्यादतीकी शिकायत नहीं की थी। डिपटी कमिश्नरने सूचना भेजी

है कि मुसम्मात बलोचन तथा अन्य औरतें—जिनका विवरण कांग्रेस कमेटीकी रिपोर्टमें है—वेश्यायें हैं और मफदाह तथा परना सदृश बदमाश जातियोंमेंसे है जो वेश्या कर्मके लिये अमृतसरमें रहने लगी हैं। बदमाश जातिके लिये जो विधान बने हैं उनके अनुसार इनमेंसे कितनोंको दण्ड भी हो चुका है।

सूचना पाकर पुलिसने मुसम्मात रानीका मकान घेर लिया और मिरासिन तथा परनाको गिरफ्तार किया। ये लोग वहाँपर नेशनल बंकसे लूटी सम्पत्तिको आपसमें बांट रहे थे। बंकका बहुतसा माल बरामद हुआ और ये लोग पकड़ लिये गये। उस समय अनेक परनी वेश्यायें उस मकान पर पहरा दे रही थीं। गिरफ्तार शुदा आदमियोंमें चारको नेशनल बंकके अभियोगमें फांसीका दण्ड दिया गया पर बादको फांसीका दण्ड हटाकर कालापानीका दण्ड दिया गया। चोरीका माल रखनेके अपराधमें अन्य पाँचको सात सात वर्षकी कड़ी सजा मिली थी पर वे विगत दिसम्बरमें छोड़ दिये गये। मुसम्मात बलोचन तथा अन्य परनी स्त्रियां जो पहरे पर गिरफ्तार की गई थीं कोतवाली लायी गई पर शामको वे इस शर्त पर छोड़ दी गईं कि कल वे अदालतमें हाजिर हो जायंगी क्योंकि औरतोंपर मुकदमा चलाना उचित न समझा गया। इन दोनों दिन स्त्रियां कोतवालीके पासवाली गलीमें बैठी थीं जहां उनके साथ किसी तरहकी ज्यादती करनेका किसी सरकारी अफसरको साहस नहीं हो सकता था। भारतमें

प्रायः देखनेमें आता है कि नीच पेशेकी स्त्रियां इन्हीं शब्दोंमें शिकायत करती हैं। डिपटी कमिश्नरका कहना है कि इन आक्षेपोंका कोई आधार नहीं है और ये झूठ हैं। यह केवल प्रतिहिंसासे किये गये हैं जिससे उन कर्मचारियोंको दण्ड मिले जिन्होंने माशल लाके दिनोंमें लूटका माल बरामद करनेमें बड़ी चेष्टा की और सैनिक अदालतके सामने इनके विरुद्ध गवाहियां दीं।

परना जातिके दो आदमी गिरफ्तार करके मुकदमा चलाये जानेके लिये लाहोर भेजे जा रहे थे। रेलवे स्टेशन पर उन्होंने बड़ो शोर गुल मचाई। अपने घरवालोंसे कहा कि इन कांस्टेबिलोंपर रिश्वत लेनेका मुकदमा अवश्य चलाना। उन्होंने इस बातकी भी धमकी दी कि यदि हमलोग छूट गये तो इन कांस्टेबिलोंकी स्वयं खबर लेंगे। जिस विशेष अदालतने नेशनल बंकके अभियोग पर विचार किया उसके पास इसके सम्बन्धमें दो गुप्त प्रमाण थे।

पंजाब सीमान्त प्रदेश है।

(दिसम्बर १०, १६१६)

हराटर कमेटीके सामने लाहोरके कमिश्नर मिस्टर किचिनका बयान लेते हुए शाहबजादा सुलतान अहमदने इस प्रकार जिरह किया।

प्रश्न—भारतके सभी प्रान्तोंमे हड़ताल मनाई गई पर केवल पञ्जाबमें ही उपद्रव क्यों हुआ?

उत्तर—क्योंकि यह सीमान्त प्रदेश है।

प्रश्न—आपने अभी कहा है कि केवल पञ्जाबमें उपद्रव इसलिये हुआ कि यह सीमान्त प्रदेश है। इसका क्या कारण है?

उत्तर—यहां सेना थी।

प्रश्न—चूंकि इस प्रान्तमे अधिक सेना थी इसलिये यहां उपद्रव हुआ। मेरी समझमें तो इसका उलटा ही परिणाम होना चाहिये था अर्थात् सेनाके रहनेसे उपद्रव नहीं होना चाहिये था।

उत्तर—आपका अनुमान ठीक है। पर पञ्जाबकी सैनिक सत्ता अन्य प्रान्तोंकी सैनिक सत्तासे बढ़ी चढ़ी है।

प्रश्न—मैं इसे स्वीकार करता हूं। पर मेरी समझमे यह बात नहीं आई कि पञ्जाब सीमान्त प्रदेश है इसलिये यहां उपद्रव हो गया और अन्य स्थानोंपर नहीं हुआ?

उत्तर—मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि अन्य प्रान्तोंके मुकाबिलेमें यहां राजनैतिक आन्दोलन अति भीषण था।

प्रश्न—तो यहां उपद्रव आन्दोलनके कारण हुआ न कि सीमान्त प्रदेश होनेके कारण ?

उत्तर—मैं सम्पूर्ण बातोंको नहीं समझ सकता।

प्रश्न—क्या आप इसकी व्याख्या नही कर सकते ?

उत्तर—नहीं।

इसके लिये हम मि० किचिनपर किसी तरहका दोषारोपण नहीं कर सकते। उसने मुख्य प्रश्नका उत्तर दे दिया था। इसी प्रश्नपर विचार करनेके लिये, इसीकी जांच करनेके लिये ही हण्टर कमेटी भ्रमण कर रही थी। अब यह साहजादा सुलतान अहमदपर था कि वे उसका आन्तरिक अर्थ निकालते। कमिश्नर साहब स्वयं एक अधिकारी थे। इसलिये इनसे अधिकको आशा करनी उससे व्यर्थ थी। उसके इस कहनेका कि पञ्जाब सीमान्त प्रदेश था—यह अभिप्राय था कि पञ्जाबमें प्रेमका शासन नहीं होता बल्कि भयका राज्य रहता है और सेनाके बल शासन किया जाता है। उसके बाद ही दूसरे प्रश्नके उत्तरमें उसने कहा—'क्योंकि वहां सेना थी' इस कथनसे उसका अभिप्राय यही था कि सेनाके रहते अधिकारियोंको समझौता करनेका विचार ही उत्पन्न न हुआ और सेनाका प्रयोग करके उन्होंने जनताका उत्तेजित करना ही उचित समझा। तीसरे प्रश्नके उत्तरमें उसने जो कुछ कहा उससे उपद्रवके कारणसे काई सम्बन्ध नहीं था बल्कि उससे प्रगट होता था कि यह सब क्यों किया गया अर्थात् राजनैतिक आन्दोलनको

दबानेके लिये। पर वह प्रश्न अभीतक ज्योंका त्यों बना है कि पञ्जाब सीमान्त प्रदेश था और यही कारण था कि उस प्रान्तमे साधारण राजनैतिक आन्दोलन भी असह्य था और सैनिक शासनकी आवश्यकता प्रतीत हुई।

इस बयानसे स्पष्ट है कि मिस्टर किचिनने इस प्रश्नका उत्तर स्पष्ट दे दिया। इसने उस प्रश्नका स्पष्ट और विस्तृत उत्तर दिया। पर जब उसे विदित हुआ कि वह अपने उत्तरोंसे फंस रहा है तो उसने उत्तर देनेसे इनकार कर दिया।

लाला लाभसिंह ।

(दिसम्बर १०, १९१९)

गुजरानवालाके बैरिस्टर लाला लाभसिंहको सैनिक अदालतने आजन्म कालापानी और सम्पत्ति अपहरणका दण्ड दिया। बादको उनका दण्ड घटा कर ६ मासकी सजा कर दी गई। दण्डको भोगकर वे अब आ गये हैं। जेलमेंसे न्यायके लिये लाला लाभसिंहने बड़े लाटके पास प्रार्थनापत्र भेजा था। उसमें उन्होंने साहसके साथ लिखा था :—केवल मियाद घटा देनेसे ही मुझे सन्तोष नहीं हो सकता और न यह मेरे ऊपर किये गये अन्यायका परिमार्जन कर सकता है और न न्यायका असली रूप प्रगट कर सकता है।" ऐसे व्यक्तिके लिये जेलसे छुटकारा पाना किसी भी प्रकार शान्ति प्रद नहीं हो सकता। पाठकोंको स्मरण होगा कि लाला लाभचन्दपर अभियोग केवल सरकारी गवाहके बयानपर चलाया गया था और उन्हें तथा उनके साथी अन्य अभियुक्तोंको इस बातका भी अवसर नहीं दिया गया था कि वे उसके चाल चलनके बारेमें भी जिरह करते। इतनेपर भी जजोंने लाभसिंहके खिलाफ केवल इतना ही लिखा था :—"अभियुक्त न० ४ लाभसिंहने रौलट ऐक्टके विरुद्ध आन्दोलन करनेमें प्रधान भाग लिया था और १२ तथा १३ अप्रेलकी सभामें

उपस्थित था। गवाहोंके बयानसे विदित होता है कि १३ तारीखको उसने अहिंसा और उपद्रवका घोर विरोध किया पर बादको राजी हो गया। १४ तारीखको बलवाइयोंके साथ वह अनेक स्थानोंपर देखा गया था पर उस दिन उसने अधिकारियोंकी सहायता की थी। हम लोग इसे ताजिरात हिन्द दफा १२१ के अनुसार दोषी ठहराते हैं अर्थात् बगावत करनेका दोष इसपर लगाया जाता है।" यहांपर इस प्रकरणको उद्धृत करनेका हमारा एकमात्र अभिप्राय पाठकोंको उस घोर अन्यायका—जो कि लाला लाभसिंहके साथ किया गया था—आभासमात्र दे देना है। यह बात स्मरण रखने योग्य है कि सजाकी मियादको घटाना और बादको छोड़ देना—पर अभियुक्त उसी प्रकार दोषी बना है—लाला लाभसिंहके शब्दोंमें ही 'न्यायका गला घोटना' को पूर्णतया चरितार्थ करना है। इस तरहके अनेक उदाहरण मिल सकते हैं जिनमें न्यायके नामपर घोर अन्याय किया गया है। हम लोग उन्हें सहजमें ही नहीं भूल सकते। जबतक हमारे निर्दोषी पञ्जाबी भाई इस तरह कानूनके अन्दर अन्यायसे दोषी बने हैं तबतक सच्चे भारतवासीको हैसियतसे हमें धैर्य और शान्ति नहीं ग्रहण करनी चाहिये।

कसूरकी घटना

दिसम्बर १०, १६१६।

कसूरकी घटनाके संबन्धमें लाहोरके ट्रिब्यून पत्रमे जो समाचार प्रकाशित हुआ है और जिसका महात्मा गान्धीने समर्थन किया है उसकी यदि हमलोग आलोचना और प्रत्यालोचना करें तो स्पष्ट हो जाता है कि पञ्जाबके अधिकारो जरा जरासा बातपर, अति साधारण उत्तेजनापर बल प्रयोगके लिये तुले हैं। पर इस घटनाका महत्व—यद्यपि यह साधारण है —अन्य बातसे है। मि० मार्सडनने कानूनको अपने हाथमें लिया सही पर उन्होंने तुरत हो उसके लिये यथाशक्ति प्रायश्चित्त भी की। महात्मा गान्धीकी उपस्थितिको उन्होंने अनधिकार हस्तक्षेप समझ कर किसी तरहका रोष नहीं प्रगट किया। उन्होंने महात्माजीको सब बातें समझानेके लिये बुलाया और जब महात्माजीने उन्हें यह समझाया कि जो क्षतिपूर्ति आपने किया है वह पर्याप्त नहीं हो सकती जबतक कि खुली तौरपर किये गये अपराधके लिये खुली तौर पर पश्चात्ताप नहीं प्रगट किया जाय तो उन्होंने उसे सहर्ष स्वीकार किया और महात्माजीको अधिकार दे दिया कि वे इस बातको पत्रोंमें प्रकाशित कर दें कि हमें (मि० मार्सडनको) इस घटनाके लिये हार्दिक दुःख है। इस प्रकारके खेद प्रकाशन-

का जनतापर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। वह सन्तुष्ट हो गई। वह उस घटनाको एक दम भूल ही नहीं गई बल्कि उनको (मि० मार्सडनको) और भी अधिक श्रद्धा तथा भक्तिसे देखने लगी। इससे कितनी उत्तम शिक्षा मिलती है। धैर्यपूर्ण सत्यव्यवहार-का फल सदा अच्छा होता है। जनताने उत्तेजनावश कोई उपद्रव न करके अधिकारीको उसकी भूल बतला दी। अधिकारी-ने अपनी भूल स्वीकार कर ली और उसके लिये काफी प्रतीकार कर डाला। सच्चाई पर अवलम्बित रहकर जो विजय प्राप्त की जाती है उसके लिये दूसरा ज्वलन्त उदाहरण अधिकारी वर्गके लिये नहीं मिल सकता। यह निर्विवाद है कि मि० मार्सडनने भारी भूल की थी। पर भूल स्वीकार करनेपर उन्हें विदित हुआ कि जनताकी दृष्टिमें उनकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई है।

यदि भारतके अधिकारियोंमे इस तरहके और भी अफसर निकल आवे तो राजा और प्रजामें प्रेम और सद्भाव दृढ़ होता जाय तथा इस तरहकी दुर्घटनायें उपस्थित ही न हों।

ट्रिब्यूनके सम्वाददाताका पत्र

महात्मा गान्धी डाक्टर परशुरामके साथ कल कसूर आये थे उन्होंने उन दोनों हिन्दुस्तानियोंको देखा जिन्हें गत शुक्रवारको सबडिविजनल अफसर मि० मार्सडनने पीटा था। जो कुछ हुआ था उसके बारेमें उन्होंने महात्माजीको लिखित बयान दिया। एकका नाम कादिरबख्श है। वह तरकारी बेचता है। उसे मि० मार्सडनने बुरी तरह पीटा था, क्योंकि उसपर

यह शक किया गया था कि उसने अपनी दीवारपर खिलाफत-का पोस्टर चिपकाया था। दूसरेका नाम गुलाम मुहम्मद है। वह गल्लेका व्यापारी है। उसने भी वही बयान दिया है। जिन नोटिसोंके लिये उन्हें दण्ड दिया गया है वे भी उखाड़ दी गई थी। पर थोड़ी ही देर बाद मि० मार्सडनको विदित हुआ कि उन्होंने भूल की है। उन्हें मालूम हुआ कि नोटिसोंमें कोई बात गैरकानूनी नहीं थी और उन्हें कसूरके प्रसिद्ध वकील महयूद्दीनने चिपकवाया था। उन्होंने फौरन क्षमा मांगी और बतौर हरजानाके कादिरबख्शको दश रुपये दिये। इसी बीचमें मि० मार्सडनके बुलानेपर महात्माजी उनसे मिलने गये और उस घटनापर वादविवाद हुआ। महात्माजी उसी दिन तीसरे पहर कसूर निवासियोंकी एक महती सभामें भाषण करनेवाले थे। मि० मार्सडनने महात्माजीसे कहा कि आप खुली सभामें इस बातकी सूचना दे दें कि हमने जल्दीमें जो कुछ किया उसके लिये हमें घोर पश्चात्ताप है। महात्माजीने उस सार्वजनिक सभामें लोगोंको बतलाया कि किस खूबीके साथ मि० मार्सडनने अपने अपराधके लिये क्षमा मांग ली है। उस सभामें प्रायः ३ हजार पुरुष और तीनसे चार सौ तक स्त्रियां थी। × × × ×

महात्माजीका विवरण

कसूरकी उपरोक्त घटनाके बारेमें महात्माजीने निम्नलिखित शब्दोंमें लिखा है जिससे ट्रिब्यूनके संवाददाताका पत्र पूरी

तरहसे प्रमाणित हो जाता है। महात्माजीने लिखा है:—कसूरसे एक तार मिला है कि वहांके सबडिविजनल अफसरने एक मुसलमानको बड़ी निर्दयताके साथ पीटा है। उसपर यह अपराध लगाया गया था कि उसने दीवारपर खिलाफतका पोस्टर लगाया था। अनुसन्धानसे विदित हुआ कि उसने पोस्टर नहीं चिपकाया था और वह सर्वथा निर्दोष था। मेरी समझमें यह बड़ी भारी बात हो गई। ब्रिटिश अधिकारी इस प्रकार कानूनको अपने हाथमें ले लें और इस तरहके अत्याचार करें, यह असह्य है। इसलिये डाकृर परशुरामको लेकर मैं कसूर गया। मैंने दोनों मुसलमानोंका गवाहियां लीं जिन्हें सबडिविजनल अफसरने पीटा था। उसी समय मिस्टर मार्सडनने पत्र लिखकर मुझे बुलाया। मैं उनसे मिला। उन्होंने मुझसे कहा कि मैंने उन मुसलमानोंसे क्षमा मांग ली है और हर जानेके तौरपर उन्हे १०) रु० दिया है। मैंने उनसे कहा कि आपने खुली तौरपर उन्हें मारा है इसलिये खुली तौर पर क्षमा भी मांगनी चाहिये। वे मेरी बात मानकर तैयार हो गये। दीवाल पर वे पोस्टर पुनः लगाये गये। इसके बाद ही मैंने एक महती सभामें भाषण किया जिसमें प्रायः ४००० नरनारी उपस्थित थे। मैंने अपने भाषणमें मिस्टर मार्सडनके विना किसी शर्तके क्षमा मांगनेकी बात कही और वे सन्तुष्ट हो गये।"

जेनरल डायर।

जुलाई १४, १९२०।

आर्मी कौंसिलने जेनरल डायरको दोषी ठहराया है कि उसने 'समझकी भूल' की और फैसला किया है कि राज्यके अन्तर्गत उसे कोई पद नहीं मिलना चाहिये। जेनरल डायरके आचरणकी निन्दा करनेमें मिस्टर मांटेगूने कोई बात उठा नहीं रखी है। पर तोभी न जाने क्यों मेरी यही धारणा है कि जेनरल डायर सबसे बड़ा अपराधी नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसने घोर बूचड़पनका काम किया। आर्मी कौंसिलके सामने अपनी सफाईके लिये उसने जो कुछ कहा है उसके प्रत्येक शब्दमें उसकी हीनता और सिपाहीके अयोग्य बुजदिली टपकती है। उसने उस निरस्त्र नर-नारी और बालक तथा वृद्धोंके दलको विद्रोही दल बतलाया है। वह समझता है कि उसने उन आदमियोंको जोकि एक अहातेमें बन्द कर दिये गये थे—कुत्ते बिल्लियों या चूहोंकी तरह बेकसीकी अवस्थामें मारकर पञ्जाबका उद्धार किया। ऐसा व्यक्ति सैनिककी श्रेणीमें गिने जानेके सर्वथा अयोग्य है। उसके आचरणमें वीरताका कहींसे गन्ध भी नहीं था। उसको किसी तरहके खतरेका समाना नहीं करना पड़ा था। उसने बिना सूचना दिये ही धड़ाधड़ गोली चलाना आरम्भ

कर दिया था और किसीके मुकाबिलेमें आनेका उसे भय नहीं था। इस प्रकारके आचरणको "समझकी भूल" नहीं कह सकते। किसी असम्भावित भयकी सम्भावनासे इसे हतबुद्धि कह सकते हैं। यह असीम निर्दयता और पाषाण हृदयताका नमूना है। पर जेनरल डायरपर जो क्रोध प्रगट किया गया है वह सर्वथा उचित नहीं है। यह ठीक है कि गोली चलानेमें उसने भीषण वर्बरतासे काम लिया। उससे बेगुनाहोंकी जो जानें गईं उनके लिये जितना खेद प्रगट किया जाय, थोड़ा है। पर उस काण्डके बाद लोगोंका धीरे धीरे सताया जाना, अपमानित होना और निःशक्त करना उससे कहीं भीषण था, बहुत भयानक था, बहुत दुःखदायी था, बहुत ही हीनता पूर्ण था, आत्मापर आघात करनेवाला था और जिन अफसरोंने इस तरहकी कार्रवाइयोंमें भाग लिया या सहायता दी उनको निर्भत्स्ना अथवा निन्दा जेनरल डायरसे कहीं अधिक होनी चाहिये। जेनरल डायरने तो कुछ लोगोंके केवल प्राण ही लिये पर ये लोग तो एक राष्ट्रकी आत्मापर ही आघात करनेपर तुले हुए थे। करनल फ्रैंक जानसन इस काण्डका सबसे बड़ा अपराधी है। पर उसकी कोई चर्चा तक नहीं करता। उसने निर्दोष लाहोरमें भय और उत्पीड़नका राज्य चला दिया था और अपनी पाशविक आज्ञासे मार्शल लाके सभी अधिकारियोंका साहस बढ़ा दिया था। पर हमें कर्नल फ्रैंक जानसनके विषयमें भी उतना अधिक नहीं कहना है। पञ्जाब निवासी तथा भारतीयोंका सर्व प्रथम और सब

प्रधान कर्तव्य यह है कि वे प्राणपणसे चेष्टा करके कर्नल ओब्रा-यन, मि० वस्वर्थ स्मिथ, राय श्रीराम तथा मिस्टर मलिक खांको नौकरीसे हटा दें। वे लोग आज भी अपने पदपर विराजमान हैं। उनका अपराध उतना ही भीषण है जितना जेनरल डाय-रका। यदि जेनरल डायरके फैसलेसे ही हम लोग सन्तुष्ट हो गये और पञ्जाबके शासन विभागके परिशोध करनेके प्रधान कर्तव्यकी ओरसे लापरवाह हो गये तो हम अपने कर्तव्यका पूर्णरूपसे पालन नहीं कर रहे हैं। इस काममें केवल लम्बी चौड़ी स्पीचों और बड़े बड़े प्रस्तावोंसे सफलता नहीं मिलती है। यदि हम लोग अपना व्यक्तित्व आगे रखना चाहते हैं, यदि हम लोग अधिकारियोंको यह बात भली भांति समझा देना चाहते हैं कि उन्हें अपनेको जनताका अनन्य स्वामी नहीं समझ लेना चाहिये, बल्कि उनके संरक्षक और नौकर और यदि उन्होंने अपना आच-रण ठीक नहीं रखा और अपने कर्तव्यका पालन ठीक तौरसे नहीं किया तो हमें कड़ाईसे काम लेना होगा।

जलियांवाला बाग

(फरवरी १८, १६२०)

इस बागको खरीदनेमें राष्ट्रको कुछ आपत्ति हो रही थी। पर पण्डित मदन मोहनजी मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्दजी तथा पञ्जाबके अन्य नेताओंके प्रयाससे यह समस्या अब हल हो गई। यदि ६ अप्रेलसे लेकर तीन मासके भीतर कुल लागत मूल्य दे दी जाय तो यह बाग राष्ट्रकी सम्पत्ति हो जायगा। इसका मूल्य ५,३६,०००) रु० है। इतनी रकम तीन मासके भीतर ही भीतर बटोरनी है।

इस सम्पत्तिको राष्ट्रके लिये खरीदना उचित है या अनुचित, इस प्रश्नपर विचार करना आवश्यक है, क्योंकि इस व्यवस्थापर कुछ पढ़े लिखे समझदार लोगोंने भी इतराज किया है। कानपुरके स्मारकका स्मरण करके इस तरहके विचारपर आश्चर्य नहीं करना चाहिये। पर मैं यह कहनेके लिये विवश हूं कि यदि बाग राष्ट्रके लिये खरीद न लिया जाय तो हमारे लिये यह घोर अपमानकी बात है। क्या हम किसी भी अवस्थामें उन ५०० या इससे अधिक निर्दोषोंकी स्मृतिको भूल सकते हैं जो विना कारण ही, विना किसी अपराधके ही कीड़े मकोड़ोंकी तरह मार डाले गये। यदि वे जानकर राजीसे प्राण गंवाये होते, अपनी निर्दोषिताको जानकर यदि वे अपनी जगह पर अड़े रहते और बन्दूकोंके निशानोंको फूलका वार समझकर

सहते तो आज इतिहासमे उनकी गणना महात्माओं, वीरों और त्यागियोंमें हुई होती। पर जो कुछ हो इस दुर्घटनाका राष्ट्रीय महत्व किसी भी तरह कम नहीं हो सकता। राष्ट्रका जन्म इसी तरहकी घोर यातनाओं और असीम कष्टोंके सहनसे होता है। इस राष्ट्रीयताके संग्राममें जिन लोगोंने बिना किसी कारण अथवा दूसरोंके दोषसे अपने प्राण गंवाये या असीम कष्ट सहे, उनकी स्मृतिको यदि किसी भी प्रकार हम लोग चिरस्थायी नहीं बना सकते तो हमें राष्ट्र कहलानेका अधिकार नहीं है। जिस समय हमारे निर्दोष भाई असीम निर्दयताके साथ हलाल किये जा रहे थे हम लोग किसी भी प्रकार उनकी रक्षा नहीं कर सके। चाहे हम लोग बदला न लें, प्रतिहिंसाके भावको हृदयोंमें न उदय होने दें पर यह कब सम्भव है कि हम लोग उनके स्मृति चिह्नको बना कर उनके बन्धुबान्धवों को यह न बता दें कि इन त्यागियोंके साथ हमारी पूर्ण सहानुभूति है और संसारको भी बतला दें कि इनकी मृत्युको हम अपने प्रियतमकी मृत्युसे कहीं अधिक समझते हैं। यदि राष्ट्रीय बन्धुत्वमें इतना भी भाव नहीं आ सकता तो फिर उसका क्या प्रयोजन है। भावी सन्तति को हम अभीसे सचेत कर देना चाहते हैं कि स्वतन्त्रताके मार्गमें आगे बढ़नेके लिये हमें सदा इस तरहकी (जालयांवाला बाग सदृश) घटनाओंका सामना करनेके लिये तैयार रहना चाहिये। बल-भर इस तरहकी घटनाओंके निवारणकी चेष्टा करेंगे, इन्हें लाने-की चेष्टा न करेंगे पर यदि कहीं ये घटित हो गईं तो हम इनका

वीरतासे सामना करेंगे। हम नहीं चाहते कि हममेंसे कोई भी राष्ट्रीय युद्धमें पीछे कदम हटावे। अमृतसरकी कांग्रेसने यही शिक्षा दी है कि पञ्जाबकी यातनाओंने लोगोंके हृदयोंको दुर्बल नहीं बना दिया है बल्कि राष्ट्रने इसे सम्भावित मान लिया है। हम लोगोंमेंसे कुछने भीषण भूल की ओर उसका फल उन निर्दोषोंको भोगना पड़ा। भविष्यमें हमें सतर्क रहना चाहिये ताकि ऐसी भूलें न हों पर यह कब सम्भव है कि पूर्णयत्न करनेपर भी हम सबको ठीक मार्गपर ला सकेंगे। इसलिये हमें सदा इस तरह निर्दोष होकर भी यातना भोगनेके लिये तैयार रहना चाहिये। इसके लिये हमें प्रगट कर देना चाहिये कि हम लोग निर्दोषोंके अतुल त्यागको भूल नहीं गये हैं बल्कि उनको पवित्र स्मृति सदा ध्यानमें जमी रहती है और राष्ट्र सदा उनके बन्धु-बान्धवोंके साथ है। स्मृति चिह्नका यही यथार्थ अभिप्राय है। क्या मुसलमानोंका रक्त हिन्दुओंके रक्तसे मिलकर नहीं बहा है? क्या सिक्खोंका रक्त सनातनी तथा समाजियोंके रक्तमें मिलकर नहीं बहा है? यह स्मृति चिह्न हिन्दू मुस्लिम मेलको बढ़ानेके लिये राष्ट्रका सच्चा प्रतिरूप होना चाहिये।

पर जिन लोगोंने इस कामको नापसन्द किया है उनके सन्तोषके लिये भी दो शब्द कहना है। उन लोगोंका कहना है कि इससे विद्वेष और असद्भावका प्रचार होगा। यह संचालकों पर निर्भर है। जहांतक उन्हें मैं जानता हूं मैं कह सकता हूं कि उनकी यह मन्शा नहीं है। मैं यह भी

जानता हूं कि राष्ट्रीय महासभाका यही उद्देश्य नहीं था। मैं यह नहीं कह सकता कि लोगोंके हृदयमें रोष नहीं था। जो कुछ विद्वेषके भाव थे, व्यक्त थे। पर स्मृति चिह्नसे उनसे कोई सम्बन्ध नहीं था। जनताको उन जालिमोंकी जालिमाना कार्रवाईको भूल जाना चाहिये। जो कुछ जेनरल डायरने किया था हम भी कर सकते हैं यदि हम उतने ही उच्छृंखल हो जायं और अवसर पा जायं। मनुष्यसे भूल हो ही जाती है पर मनुष्यको भूल जाना चाहिये। यदि हम चाहते हैं कि हमारी भूलको लोग भूल जायं, हमें क्षमा कर दें और बार बार उसका स्मरण न दिलाया करें तो हमें अपने शत्रुओंको भी क्षमा कर देना चाहिये। पर इसका यह अभिप्राय नहीं है कि हम जेनरल डायरकी बरखास्तगीके लिये जोर न दें। यदि हमारा पड़ोसी पागल हो गया है और हमें सताता है तो हम उसे वहां कभी नहीं रहने देंगे। पर जिस तरह हम उस पागलके प्रति किसी तरहका दुर्भाव नहीं रखते उसी तरह जेनरल डायरके प्रति भी किसी तरहका दुर्भाव नहीं रखना चाहिये। इसलिये स्मारकमें हम दुर्भाव और विद्वेषके किसी तरहके भावको स्थान नहीं देना चाहते बल्कि उसे परम पवित्र मन्दिर और तीर्थक्षेत्र बना देना चाहते हैं जहां प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी तरहके जात पातके भेदभावके दर्शन करनेके निमित्त जा सके। मुझे आशा है कि प्रत्येक अंग्रेज सच्चे हृदयसे मेरी इस बातका

समर्थन करेगा, चन्दा आदि देकर इस सत्कार्यमें योग दान करेगा और हमलोगोंकी आत्मोन्नतिमें यथासाध्य सहायता करेगा और हमें उस स्वतन्त्रताके मन्दिर तक पहुंचनेमें सहायता देगा, जिसका वह स्वयं उपभोग करता है, हिन्दू मुसलमानोंकी एकतामें सहायता देगा क्योंकि बिना इसके भारतकी सच्ची उन्नति हो ही नहीं सकती।

एक पीड़ित पंजाबी

(अक्टूबर १४, १९१९)

बिहारीलाल सचदेवकी अवस्था केवल २४ वर्षकी है। वह गुजरानवालाका रहनेवाला है। उसके अलावा उसके घरमें उसकी युवती स्त्री और ७२ वर्षके वृद्ध पिता हैं। इसपर भी बगावतका अभियोग चलाया गया था और सैनिक अदालतने इसे दोषी ठहराकर आजन्म कालापानी तथा सम्पत्ति हरणका दण्ड दिया था। उसने पञ्जाबके छोटे लाटके पास प्रार्थनापत्र भेजा जिसपर कालापानीका दण्ड हटाकर उसे चार वर्षका कारावासका दण्ड मिला। जिस अभियुक्तने कोई दोष नहीं किया, उसे भला इससे क्या तसल्ली मिल सकती है और वृद्ध पिताकी अवस्थाका वर्णन करना ही कठिन है, जिसे मरते समय इतनी भीषण विपत्तिका सामना करना पड़ा हो।

पहले प्रार्थनापत्रका यह उत्तर पाकर विचारा बिहारी लाल हताश नहीं हुआ। उसने सोचा कि किसी भूलके कारण उसके अभियोगपर पूर्ण विचार नहीं किया जा सका। यह सोचकर उसने दूसरा प्रार्थनापत्र भेजा। प्रार्थनापत्रके शब्द बड़े ही जोरदार, भावपूर्ण और गम्भीर हैं। वह इस तरहसे लिखा गया है कि अवश्य निगरानी होगी। फजूल बातोंका उसमें कहीं नाम निशान भी नहीं है। केवल मुख्य बातोंका उसमें समावेश है और इतना सूक्ष्म है कि बहुत काममें व्यस्त आदमी भी उसे पढ़नेके लिये समय निकाल लेगा।

कई दिन हुए एक मित्रने मुझसे कहा—"लगातार ४० वर्षोंसे पञ्जाब ब्रिटिश छत्रछायाका अनन्य भक्त रहा है और उसकी जड़ मजबूत करता आया है। आज उसे ब्रिटनका असली रूप विदित हुआ है। मेरा ब्रिटिश न्यायमें विश्वास नहीं रहा। मुझे सुधारकी कुछ भी परवा नहीं। यदि हमारी मर्यादा और हमारा जीवन सुरक्षित नहीं है, यदि हम इस समय भयके चङ्गुलमें फंसे रहते हैं तो इन सुधारोंसे हमें क्या लाभ।"

बिहारीलाल सचदेवका अभियोग इसी प्रकारका है। अफसरोंके गलत फहमीका एक नमूना है। यह युवक एकदम निर्दोष प्रतीत होता है। फैसलेमें लिखा है कि अभियुक्त ४, ५, १२ और १३ अप्रेलकी सभाओंमें उपस्थित नहीं था। प्रधान गवाहका बयान काबिल इतमीनान नहीं है। अन्य गवाहियां बनायी गई हैं। पर यदि इन्हें सच भी मान लिया जाय तो

इनसे अभियुक्तपर कोई दोष नहीं आरोपित होता। सफाईके गवाह सभी प्रतिष्ठित और माननीय व्यक्ति थे पर अदालतने उनपर एतबार नहीं किया। पंजाबकी अवस्थासे हम सब भली भांति परिचित हो गये हैं इसलिये विशेष आदलतोंकी इस तरहकी कार्रवाईपर हमे अचम्भित नहीं होना चाहिये। केवल यह देखकर विस्मय होता है कि जब पूरी तरहसे शान्ति हो गई तब भी इन निर्दोष अभियुक्तोंके मामिलोंपर विचार निरपेक्ष नहीं हो रहा है। पंजाब सरकारकी भांति जो सरकार प्रजाकी स्वतन्त्रताको इतना हेठ समझती है वह सम्मान और प्रतिष्ठाके योग्य नहीं।

शोचनीय अवस्था

(मई २६, १९२०)

श्रीयुत रतनचन्द और बुग्गाके घरसे हमें निम्न लिखित तार अभी मिला है:—

बुग्गा और रतनचन्दको कालापानीका दण्ड मिला है और वे लोग अन्दमन द्वीप भेजे जा रहे हैं। बुग्गाको दस वर्षसे आंत उतरने और बवासीरकी बीमारी है। उनका चीरा भी हो चुका है। रतनचन्दकी अवस्था ४० वर्षसे अधिक है, इसलिये जेल मैनुएल धारा ७२१ के अनुसार वे अन्दमन द्वीप नहीं भेजे जा सकते।

पाठकोंको स्मरण होगा कि जिन पांच अभियुक्तोंकी अपील प्रिवी कौंसिलमें की गई थी उनमेंसे ये दो भी थे और इनकी अपील खारिज कर दी गई। कारण कुछ नहीं। पण्डित मोतीलाल नेहरूने विवेचना करके दिखला दिया है कि जितना दोष अन्य तीन अभियुक्तोंपर था उतना ही इनपर भी हो सकता है। पर जिन अन्य अभियुक्तोंको पहले फांसीका दण्ड मिला था, उनके दण्ड बादको घटा दिये गये और अन्तमें वे छोड़ भी दिये गये। क्या कारण है कि इन अभियुक्तोंको उनसे अलग किया गया है? क्या यह अपीलके कारण हुआ है? यदि उन्होंने अपील न की होती या उस उदार वकीलने उनकी अवस्थापर दया करके, अनेक कठिनाइयोंको सहकर भी उनके मुकदमेकी पैरवी न की होती तो उनका किसी प्रकार उबार हुआ होता और उन्हें शूलीपर चढ़ा ही दिया गया होता। पंजाबके छोटे लाट उन लोगोंपर विचारपूर्ण दया दिखला रहे हैं जिन्हें विगत अप्रेल तथा जूनके बीचमें यातनायें भोगनी पड़ी थीं। प्रिवी कौंसिलमें अपील खारिज होनेके बाद यदि वे चाहते तो उन्हें फाँसीपर चढ़ा सकते थे। यद्यपि बड़े लाटने अपनी दया दिखाकर फांसीका दण्ड उठा दिया और कालापानीका दण्ड दे दिया पर यदि सम्राट-की घोषणाको पूर्ण महत्व देना है तो श्रीयुत बुग्गा और रतन-चन्द भी मुक्त कर दिये जायं। साम्राज्यके लिये वे लोग लाला हरकिशनलाल पं० रामभजदत्त चौधरी आदिसे अधिक भया-

वह नहीं हैं। पर अब उनकी मुक्ति कठिन है। इसलिये मैं उसके विषयमें कुछ नहीं कह रहा हूं। हमारा यही अनुरोध है कि उन्हें पंजाबके ही अन्तर्गत रखा जाय। और यदि वे बाहर भेज दिये गये हैं तो उन्हें लौटा लिया जाय। यदि और कुछ नहीं तो इन विचारोंकी दुखिया स्त्रियोंकी अवस्था पर तो दया की जाय। हमारा अनुरोध है कि सरकार जनताको इस बातपर स्थिर मत हो जानेके लिये अवसर न दे कि भारत सरकारके कामसे विचार और न्यायका स्थान नहीं है, उसका सारा काम अपनी सुविधाके अनुसार भय दिखलाकर किया जाता है।

—o—

सुपरिण्टेण्डेण्टका आर्डर

(जुलाई १४, १९२०)

महात्माजीने लिखा है :—

पण्डित मदनमोहन मालवीयने मेरे पास गुजरानवालाके पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० एफ० ए० हिरोनके हस्ताक्षरका एक हुक्म नामा भेजा है। पण्डितजीने लिखा है कि गुजरानवालामें भ्रमण कर वहांकी स्थितिका जो कुछ अनुभव आपने प्राप्त किया है उसके आधारपर इस आज्ञापत्रकी उचित समालोचना करके आप इसे पत्रोंमें प्रकाशित कर दीजिये। इस

लाकी अदालतके समक्ष विचारार्थ अधिकाधिक मुकदमे उपस्थित किये जाने चाहिये। अन्य जिलोंके मुकाबिलेमें इस जिलेसे बहुत कम अभियुक्त विचारार्थ भेजे गये हैं, इससे स्वभावतः इस जिलेके अफसरोंपर दोष लगाया जा सकता है कि वे दोषियों-की खोज और मुकदमोंके अनुसन्धानमें मुस्तैदी और तत्परता नहीं दिखाते हैं। पर अब भी समय है। इस तरहके आक्षे-पोंको धो डालनेके लिये अब भी कुछ किया जा सकता है। यदि हमारे सभी अधीनस्थ कर्मचारी इसके लिये जी जानसे चेष्टा करें तो कोई कारण नहीं कि अमृतसर तथा लाहोरमें, जिनके हाथमें जांचका काम रहा है उनके मुकाबिलेमें इनके यश, मुस्तैदी तथा कार्यदक्षतामें किसी तरहका धब्बा लगे। पर यदि अभियु-क्तोंकी संख्या इस जिलेसे इतनी ही रही तो सबकी कदर और प्रतिष्ठा उठ जायगी और सबके साथ वे भी हानि उठावेंगे जिन्होंने इस प्रतिष्ठाके अनुरूप काम किया है।

७-६-१९१९ (हस्ताक्षर) एफ० ए० हीरोन
पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट गुजरानवाला

कांग्रेस सबकमेटीके सामने अनेक गवाहोंने बयान किया कि मार्शल लाके अन्तिम दिनोंमें इस जिलेसे दलके दल अभि-युक्त पकड़ पकड़कर मार्शल लाके अदालतके सामने उपस्थित किये जाते थे। अदालतकी कार्रवाई रात रात होती रही और सफाईके गवाहोंका बयान लिये बिना ही अफसर लोग एकदम निर्दोषोंको मनमानी सजा देते थे। जिन लोगोंके ऊपर

इन मुकदमोंके विचारका भार था उनमेंसे एक तो कर्नल ओब्रायन था और दूसरा वस्वर्थ स्मिथ था। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्टका आज्ञापत्र कांग्रेस कमेटाके रिपोर्टपर काफी प्रकाश डालता है और स्पष्ट तरहसे दिखला देता है कि लोगोंपर किस तरहके मुकदमे चलाये गये। इसी तरहकी कार्रवाईके आधार-पर अकालगढ़, रामनगर आदि स्थानोंमें अनेक निर्दोषोंको जेलमें ठूंस दिया गया और इनको इस प्रकार ठूंसनेवाले अभी तक अपने पदोंपर मौजूद हैं और उन दुष्ट आचरणोंका अधिकार रखते हैं।

—o—

मार्शल लाका दूसरा शिकार।

(अक्तूबर २६, १९१९)

श्रीयुत परसोतमसिंहने अपने पिता श्रीयुत जमायतसिंह बग्गाके अभियोगका विवरण भेजा है। ये वज़ीराबादके सौदागर और महाजन हैं। इनकी अवस्था इस समय ६२ वर्षकी है और आंखकी बीमारीसे बहुत तङ्ग रहते हैं। विशेष अदालतने इन्हें १८ मासका कड़ा कारावास और १०००) रु० जुर्मानाका दण्ड दिया था और जुर्माना न दाखिल करनेपर ६ मासतक और कठिन कारावासका दण्ड भोगना था। मैं पूरे फैसलेको पढ़ गया। मैं साहसके साथ कह सकता हूं कि इस फैसलेको

पढ़कर कोई भी इस फैसलाके लिखनेवालेको जज नहीं कह सकता। सारा फैसला तर्कशून्य है। अनुमानको खींचतान-कर असंबद्ध तर्कके आधारपर न्यायपति इस फैसलेपर पहुंच सके हैं। और मुकदमेके विवरणमें जिन बातोंको परसोतम सिंहने लिखा है यदि वे सच हैं तो मैं आर दृढ़ताके साथ कह सकता हूं कि जिस अफसरने इस मुकदमेका विचार किया है और ऐसा फैसला लिखा है वह उस पदके सर्वथा अयोग्य है। जमायतसिंह पर दोषारोपण किया गया है कि वह मस्जिदवाली सभामें उपस्थित थे और हड़तालके पक्षका समर्थन किया था। और दूसरा दोष यह था कि वे धनी हैं, क्योंकि मजिस्ट्रेटने फैसलेमें लिखा है कि पक्षपातहीन सफाईके गवाहोंके बयानपर भी विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि जमायतसिंह धनी महाजन है। आगे चलकर फिर मजिस्ट्रेटने फैसलेमें लिखा है:—"क्या जमायतसिंहका उन बलवाइयोंके साथमें होना—जिन्होंने सैनिकोंपर पत्थर फेंका था—उसको दोषी ठहरानेके लिये काफी प्रमाण नहीं है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि उसने चाहरदीवारीके तारोंको तोड़नेमें लड़कोंको रोका। पर इसके लिये अन्य कारण भी हो सकते हैं। इतना तो निश्चय प्रमाणित हो जाता है कि वह बलवाइयोंके साथ था।" इस प्रकार इस निर्णय पर पहुंचकर मजिस्ट्रेटने उन सभी बातोंको सुननेसे और उनपर विचार करनेसे इन्कार कर दिया जो अभियुक्तके पक्षमें थीं। जो कुछ मैंने कहा है उसकी सचाईकी

आंखके लिये पाठकोंको उस फैसलेको पढ़ जाना चाहिये। पर जमायतसिंहके पुत्र परसोतमसिंहने उस मुकद्दमेंके सम्बन्धमें मेरे पास जो कुछ लिखकर भेजा है उसे पढ़कर तो इस फैसलेकी बेइमानी और भी कालिमामय हो जाती है। क्या यह बात सच है कि बिना किसी सूचनाके मजिस्ट्रेटने अभियुक्तको संपत्ति जब्त कर ली, घरमें रहनेवालोंको हर तरहसे सताया गया उनकी घोर बेईज्जती की गई? यदि ये बातें सच हैं तो क्या इसे न्यायका गला घोटना नहीं कह सकते? क्या यह बात सच है कि सफाईके जिन गवाहोंका अभियुक्तने नाम दिया था उनके पास हाजिर होकर बयान देनेके लिये समन तक नहीं भेजा गया और जिस समय अभियुक्त पर दोषारोपण किया गया उस समय उसके वकील भी इजलासमें नहीं रहने पाये? अब आप ही समझ लीजिये कि इस तरहके फैसलेका क्या मूल्य होगा?

फैसलेके पहले तथा बाद अभियुक्तके साथ जिस तरहका व्यवहार किया गया वह भी उस न्यायप्रिय (?) अदालतके सर्वथा अनुरूप था। अभियुक्तके हाथमें हथकड़ियां भर दी जाती थीं और अपना बिस्तर बगलमें दबाकर उसे पैदल आना जाना पड़ता था। क्या यह व्यवहार पशुवत् नहीं था? इसे पढ़कर जेनरल हडसनके भाषणका स्मरण आ जाता है जो उन्होंने हाथ और पैरके बल चलनेकी आज्ञाके सम्बन्धमें कहा था। सारी घटनासे यही प्रगट होता है कि अधिकारियोंका इस तरहका आचरण,

पेटके बल रेंगनेकी आज्ञाकी भांति केवल भय पैदा करनेके निमित्त था। जो अपमानजनक तथा क्रूर व्यवहार अभियुक्तके साथ किया गया था उसके सिवा इसे और किसी आधारपर चरितार्थ नहीं किया जा सकता। युद्धके जमानेमें इस व्यक्तिने वजीराबादमें चन्दा आदिसे सरकारकी सबसे अधिक सहायता की थी, रङ्गरूट जुटानेमें भी खासी मदद की थी। पर यह सब निष्फल था। सरकारने उसको सेवाओंसे प्रसन्न होकर राजभक्तिकी सनद दी थी वह भी निरर्थक था। मार्शल लाके अभिभावकोंने उसे कालकोठरीमें ठूंस दिया और साधारण बदमाशोंमें उसकी गणना की गई।

बादको पञ्जाब सरकारने इस दण्डको घटाकर ६ मास कर दिया है। इसके लिये पञ्जाब सरकारकी किसी तरहकी प्रशंसा नहीं की जा सकती क्योंकि अभियुक्त सर्वथा निर्दोष था और उसे रिहा कर देना चाहिये था। दरखास्तदाताके विवरणसे मालूम होता है कि इस मुकदमेकी पुन: जांच होगी और उसके लिये एक खास जज बैठाये गये हैं। मैंने इस तरहके जजकी कार्रवाईके बारेमें अपनी आशंका पहले ही प्रगट कर दी है। चाहे कोई भी व्यक्ति इस पदपर क्यों न बैठा दिया जाय उससे किसी तरहकी इन्साफकी आशा नहीं करनी चाहिये। यदि सरकार इस तरहके अन्यायों और ज्यादतियोंका पूर्ण प्रतीकार नहीं कर सकती और केवल अपनी अनुचित कार्रवाईपर तोपन (पर्दा) डालनेके लिये ट्रिबुनल आदि बैठानेका प्रयास करती है तो निश्चय है कि उस

परसे प्रजाका एकदमसे विश्वास उठ जायगा और प्रजा उसके साथ सहयोग करना छोड़ देगी। जो लोग मर गये वे तो अब लौट नहीं सकते, उनकी चर्चा करनी व्यर्थ है पर साथ ही यह भी असह्य है कि जो लाग विना किसी कारण जेलोंमें सड़ रहे हैं उन्हें अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करनेके लिये अवसर नहीं दिया जा रहा है और ऐसे अदालतको स्थापना नहीं की जा रहा है जिसमें जनताका पूरा विश्वास हो।

अमृतसरकी अपील।

(मार्च ३, १६२०)

प्रिवी कौंसिलने इन अपीलोंको खारिज कर दी। इनकी पैरवीके लिये सबसे सुयोग्य वकील नियुक्त किये गये पर सब बेकार था। प्रिवी कौंसिलने भी इस गैरकानूनी कार्रवाईकी पीठ ठोंकी। अभियुक्तोंके वकील सर सीमनकी बहसपर जजों-का जो कटाक्ष होता रहा उससे आशा थी कि प्रिवी कौंसिल न्याय करेगी और फैसला उलट जायगा पर हुआ कुछ उलटा ही। इतने पर भी मुझे किसी तरहका विस्मय नहीं हुआ। राजनैतिक अभियोगोंकी जहां तक हमने छानबीन की है उससे यही परिणाम निकलता है कि ऐसे मामलोंमें बड़ीसे बड़ी अदालत भी निरपेक्ष निर्णय नहीं कर पाती। ऐसी असाधारण

अवस्थामें अधिकसे अधिक सतर्कसे रहनेवाले न्यायपति भी विचलित हो जाते हैं। मनुष्य निर्मित सभी संस्थायें प्रायः करके साधारण अवस्थामे ही सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ होती हैं। असाधारण अवस्थामें उनमें भी दोष आ जाते हैं। फिर भला हमारी प्रिवी कौंसिल उन दोषोंसे किस तरह बरी रह सकती है! यदि प्रिवी कौंसिलका निर्णय इसके प्रतिकूल अभियुक्तोंके पक्षमें हुआ होता तो भारत सरकारके मत्थे घोर कलङ्क और हीनताका काला टीका लग जाता जिसको घोर प्रयत्न करनेपर भी वह बहुत कालतक नहीं मिटा सकती थी।

इसका राजनैतिक प्रभाव क्या पड़ा यह इस बातसे सहजमे ही समझमें आ जायगा। जिस समय इस फैसलेका समाचार लाहोरमें पहुचा, चारों ओर शोक छा गया। निराशाकी भीषण काली घटाने लोगोंको इस तरह आवेष्टित कर लिया कि अब जनताके हृदयोंमें इतना भी उत्साह नहीं रह गया कि वह देशके दुलारे, आंखोंके तारे लाला लाजपतरायजीके स्वागतके लिये खड़ी हों जो इतने दिनोंके बाद मातृभूमिकी गोदमें आ रहे थे। उनके स्वागतकी जितनी तैयारियां की गई थीं सब जहांकी तहां रह गई। इस निर्णय पर पहुंचकर सरकारने अपनी मर्यादा कहीं अधिक खो दी, क्योंकि सही या गलत जनताकी यही धारणा हो गई कि राजनैतिक तथा जाति पक्षपातके सामने ब्रिटिश राज्य न्यायको ताखपर रख देता है।

इस आपत्तिके निवारणका एक ही उपाय है। मानव

प्रकृति उदारताकी मूर्ति है—भारतीयोंने इसमें और भी विशेषता प्राप्त कर ली है। मुझे आशा है कि प्रार्थनापत्र अथवा किसी तरहके आन्दोलनको अवसर न देकर पंजाबको सरकार अथवा भारत सरकार फांसीकी आज्ञाको फौरन रद्द कर देगी और जहां तक सम्भव है अभियुक्तोंको मुक्त कर देगी।

दो कारणोंसे इस बातकी आवश्यकता प्रतीत होती है और दोनों कारण प्रधान या मुख्य हैं। पहला कारण, जनताके हृदयमें विश्वासका बीजारोपण करना है। इसकी चर्चा हमने ऊपर की है। दूसरा कारण सम्राट्‌की घोषणाको पूर्णतया चरितार्थ करना है। सम्राट्‌ने अपनी घोषणामें कहा है—"जिस राजनैतिक कैदीसे किसी प्रकारकी आपत्तिकी सम्भावना न हो उसे छोड़ देना चाहिये।" कोई नहीं कह सकता कि ये २१ अभियुक्त—जिनकी अपील की गई थी—यदि छोड़ दिये जायं तो किसी भी प्रकारसे समाजके लिये भयावह होंगे। उन लोगोंने इसके पूर्व कोई अपराध नहीं किया है। उनमेंसे कई एक आदरणीय प्रजाकी हैसियतसे माने जाते थे। किसी तरहके भी क्रान्तिकारी दलसे उनका संपर्क नहीं था। यदि उन्होंने कोई अपराध किया है तो उन्होंने क्षणिक जोशमें आकर किया है जो प्रबल उत्तेजनाके कारण उनमें आ गया था। इसके अतिरिक्त जनताका विश्वास है कि सैनिक अदालतोंने जितने फैसले किये हैं किसीका आधार प्रामाणिक नहीं है। इसलिये हमें पूर्ण आशा है कि जो सरकार आजतक अपराधयुक्त राज-

नैतिक कैदियोंको छोड़नेमें भी उदारता दिखलाती आई है बिना किसी विचारके इन अभियुक्तोंको छोड़ देगी और समस्त भारत-के निवासियोंका कृपापात्र बनेगी। यह विजयका अवसर है। अपीलका खारिज हो जाना भारत सरकारके लिये विजयके बराबर है। ऐसे अवसरोंको उदारता बड़ो ही कारगर होती है और विचित्र प्रभाव उत्पन्न करती है।

हम अपने पंजाब भाइयोंसे प्रार्थना करेंगे कि वे हताश न हों। हमें शान्ति पूर्वक इनसे भी बुरी दुर्घटनाके लिये तैयार रहना चाहिये। यदि विचार ठीक हुआ है, यदि इन अभियुक्तों-ने वास्तवमें जान ली है, माल बरबाद किया है अथवा जान माल लेनेमें सहायता दी है तो इन्हें अवश्य दण्ड मिलना चाहिये। यदि वे लोग निर्दोष हैं—यदि उन्होने ऐसा आचरण नहीं किया है—जैसा कि हम लोगोंको विश्वास है कि इनमेंसे अधिकांशने नहीं किया है—तोभी हम लोगोंका इस तरहके दण्डोंका सामना करना होगा क्योंकि जो एक कदम आगे बढ़ना चाहते हैं उनकी यही दशा होती है। संसारका इतिहास कम-से कम यही बताता है। यदि हम लोग उठना चाहते हैं तो इसके लिये त्याग करनेसे क्यो भागें? बिना बलिदानके राष्ट्रका उत्थान नहीं हुआ है और न हो सकता है। जहां निर्दोषका खून गिरता है वही बलिदान चरितार्थ होता है। अभियोग करके खून बहानेको बलिदान नहीं कह सकते।

रामनगरकी दुर्घटना

(दिसम्बर १७, १९१९)

सिविल और मिलिटरी गजटमें समाचार निकला था कि १५ अप्रेलको रामनगरमें कुछ लोगोंने सम्राटकी प्रतिमा बनाई और उसे ले जाकर नदीके किनारे जला दिया। इसके संबन्धमें कितने ही आदमी पकड़े गये और सैनिक अदालतके सामने मिस्टर ओब्राइनके इजलासमें उनका विचार हुआ। दो विशेष अधिकारियोंने इस घटनाका समर्थन किया। निदान पण्डित मदन मोहन मालवीय और पण्डित मोतीलाल नेहरूने श्रीयुत पुरुषोत्तमदास टण्डनको इसकी जांचके लिये भेजा। जांचके बाद उन्होंने खुली चिट्ठीमें लिखा था कि घटना सर्वथा असत्य है। रामनगरमें इस तरहकी कोई घटना नहीं हुई। पर सरकारकी ओरसे अभीतक उक्त पत्रका प्रतिवाद नहीं छपा है। पण्डित जगतनारायण तथा शाहबजादा सुलतान अहमदने कर्नल ओब्राइनकी जिरहसे जो बात निकाली उससे टण्डनजीके पत्रकी बातें और भी अधिक प्रमाणित हो जाती हैं। कर्नल ओब्राइनने इस बातको स्वीकार किया था कि रामनगरकी दुर्घटनाकी जब पहले पहल रिपोर्ट मेरे पास आई तो सम्राटकी प्रतिमाके सम्बन्धमें कोई चर्चा नहीं थी। उन्होंने यह भी स्वीकार

किया था कि मैंने मुकदमेका विचार किया ! प्राय: १०० गवाहोंके बयान लिये और अभियुक्तोंको अधिकसे अधिक दण्ड दिया। और मैंने समझ लिया कि न्यायसे काम लिया। जिन १०० गवाहोंका बयान लिया गया था उनमेंसे केवल तीनने—दो हिन्दू और एक मुसलमान—इस बातकी तसदीककी थी कि सम्राटकी प्रतिमा जलाई गई और उन्हीके बयानको प्रमाण मानकर अभियुक्तोंको अधिकसे अधिक दण्ड दे दिया गया। यदि इसे भी न्याय-पूर्ण विचार न कहेंगे तो न्यायपूर्ण विचार और क्या हो सकता है! हण्टर कमेटीके सामने गवाही देते समय कर्नल ओब्राइनने अभिमानके साथ कहा था कि मैं लोगोंको गिरफ्तार करता गया चाहे इस बातका मुझे अधिकार था या नहीं। कमेटीके सदस्य स्वयं समझ सकते है कि ऐसा व्यक्ति कितनी तत्परतासे न्याय कर सकता है।

इसके बाद महात्मा गांधीने स्वयं रामनगरमें जाकर अनुसन्धान किया। उन्हें पक्का विश्वास है कि रामनगरकी जनता सर्वथा निर्दोष है। बिना किसी अपराधके उनकी बेइज्जती की गई, उन्हें गालियां दी गई और वे जेलमें ठूंस दिये गये और इस समय भी उसी निराधार अभियोगके कारण रामनगरके २८ प्रतिष्ठित निवासी जेलकी कठोर यातना भोग रहे हैं।

असन्तोष और दमनका दौरा ।

(नवम्बर २१, १९१९)

सर सकरम् नायरने भारत सरकारकी प्रबन्धकारिणी सभासे अपना सम्बन्ध क्यों तोड़ा, इस विषयमें जबतक वे भारतमें थे मौन धारण किये रहे। पर लण्डन पहुंचकर उन्होंने उसका कारण स्पष्ट बतला दिया। इस सम्बन्धमें उन्होंने "भारतमें असन्तोष और दमन" शीर्षक एक लेख श्रोमती एनी बेसेण्टके नये साप्ताहिक पत्र युनाइटेड इण्डियामें लिखा है। उनके लेखको पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है कि सरकारकी दमननीति—जिसका उन्हें अपनी इच्छाके सर्वथा विरुद्ध समर्थन करना पड़ता था—उनकी आत्माको सदा वेधती थी। उससे वे तङ्ग आ गये थे जबकि उनके ही शब्दोंमें, पञ्जाबके विद्रोहमें उसका हद हो गया, जहां सरकारको इसलिये मार्शल ला जारी करना पड़ा कि अंग्रेजोंकी जानमाल सुरक्षित नहीं है और बलवा उठ खड़ा हुआ है। उन्होंने आगे चलकर लिखा है:—"इस बातको सदा स्मरण रखना चाहिये कि पञ्जाब भारतके प्रान्तोंमें सबसे राजभक्त समझा जाता था और प्रान्तीय गवर्नर इसके राजभक्तिकी तथा युद्धके समय किये गये आत्मत्यागकी प्रशंसा करके भो नहीं अघाते थे तथा अन्य प्रान्तोंके होमरूल आन्दोलनसे इसके राजभक्तिकी तुलना

बारबार करते थे। वे ही गवर्नर रातके वक्त मार्शल लाकी घोषणा करके चोरोंकी भांति उस प्रान्तको छोड़ भागे। इसे मैं स्वीकार करता हूं कि सभी सरकार न्यायप्रिय प्रजाकी जान व मालकी रक्षा करनेमें जरा भी असावधानी नहीं दिखलावेगी पर कोई भी सरकार प्रजाका इस प्रकार सदा दमन भी नहीं करती रहेगी और न उनसे इतनी घृणा करेगी। दमनको इस प्रकार जारी रखना राजनीतिज्ञताके दिवालाका सबूत है। एक तरफ तो उत्तेजनाकी चेष्टा की जाय और दूसरी तरफ उसका उसी तरह जवाब। यह हिंसा और दमनकी नीतिका प्रयोग सह्य नहीं हो सकता।" इन शब्दोंका पढ़कर ब्रिटिश राष्ट्र तथा अंग्रेज जातिका उनपर पूर्ण शान्तिके साथ विचार करना चाहिये तथा उसके अनुरूप समुचित कार्रवाई करनी चाहिये यदि वे जनताको यह विश्वास दिलाना नही चाहते कि अंग्रेज जातिने बुद्धिसे काम लेना छाड़ दिया है। उचित है कि इस स्थितिकी जड़में जो दोष हैं उन्हें उपेक्षाकी दृष्टि न देखा जाय। अपने लेखके अन्तिम भागमे उन्होंने अपना अभिप्राय और भी स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने लिखा है:—जिस कानूनके द्वारा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता या सम्पत्तिपर किसी तरहका आघात पड़ता हो या किसीके बोलने या लिखनेकी स्वतन्त्रता छिना जाती हो, उस तरहके कानूनको भारत सरकार भारतीयोंकी मर्जी बगैर न बनावे। इस शब्दका क्या अभिप्राय हो सकता है? सर संकरम् नायरने ब्रिटनको चेतावनी दी है कि यदि वह भारत सरकारकी मर्यादाका बिगाड़ना नहीं

चाहती, यदि वह ब्रिटिश न्याय प्रियतामें भारतीयोंका विश्वास जमाये रखना चाहती है तो उसे कानूनकी सूचीमें रौलट ऐक्टको क्षण भरके लिये भी रहते नहीं देखना चाहिये और पञ्जाबकी लज्जापूर्ण घटनाओंको भी उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखना चाहिये।

क्षमादान कि विस्मृति

(मार्च १६, १६२१)

एक सम्मानित मित्रने हमारे पास लिखा है:—जलियावाला बागकी दुर्घटना तथा पेटके बल रेंगनेकी घटनाको बारबार क्यों स्मरण कराया जाता है? इसका उत्तर बहुत ही सहज है। क्षमाकर देनेके माने भूल जाना नहीं है। अगर हमने दुश्मनका अपना दोस्त समझ लिया और उससे स्नेह किया तो हमारी क्या प्रशंसा और श्रेय है? यदि हम यह जानते हैं कि जिस व्यक्तिको हम प्रेम करते हैं वह प्रेमके योग्य नहीं है, हमारा दुश्मन है और तब भी हम प्रेम नही घटाते तो हमारी प्रशंसा उचित है। यद्यपि अपमानके प्रत्येक शब्द इस्लामके बयाद अलीको स्मरण थे, और यद्यपि वह अपने शत्रुके मुकाबिले कहीं बलिष्ठ थे पर उन्होंने उससे बदला नही लेना चाहा। भारत सर माइकल ओडायर तथा डायर सदृश अपराधियोंको

दण्ड नहीं देना चाहता बलिक वह उन नौकरोंकी बर्खास्तगी चाहता है जो अपने पदको अच्छी तरह नहीं निबाह सके और न उसकी मार्यादाका पालनही कर सके। जब तक उन्हें भारतीय खजानेसे पेंशन मिलती रहेगी तब तक वे बर्खास्त किये हुए नहीं समझे जा सकते। यदि पिता उस पुत्रकी सहायता करता है जिसे अपनी बुरी करनीपर पश्चात्ताप नहीं है तो वह भी अपने पुत्रके लिये पापका भागी होता है।

कांग्रेसकी गैर सरकारी कमेटीके सामने दो दण्ड विधान थे। या तो वह उनपर अभियोग चलवाना चाहती या उनकी बरखास्तगी। उसने मनुष्यताके नाते उनकी बरखास्तगी ही पसन्द की। इसमें उस किसी बातकी सुविधा नहीं थी। हम पाठकोंको यह बतला देना चाहते हैं कि इस निर्णयपर पहुंचनेमें कमेटीके सदस्योंको कई घण्टे तक विचार और परामर्शमें बिताना पड़ा। रिपोर्टपर अन्तिम निर्णय काशीमें गङ्गाजीके तटपर हुआ। पूर्ण वादविवादके बाद वे सर्व सम्मतिसे इसी निर्णय पर पहुंचे कि अभियोग न चलानेसे ही भारत फायदेमें रहेगा। अभी हालमें ही पटनामें भाषण करते हुए श्रीयुत देशबन्धु दासने कहा था कि कमेटीके सदस्योंने परस्पर यह वचन दे दिया है कि यदि हम अपनी मांगको अल्पतम रखते हैं तो हमें उचित है कि हम उसको पूरा करानेके लिये अपना प्राण तक निछावर कर दें। इसलिये कर्तव्यके लिहाजसे वे कमिश्नर पूर्णरूपसे असहयोगी हैं। उन्होंने दण्ड देनेके अधिकारका

प्रयोग नहीं करना चाहा। यह सत्य है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष-ने इस मानवी सिद्धान्तको नहीं अपनाया है अर्थात् क्षमादानका शस्त्र नहीं ग्रहण कर लिया है, हत्या और फांसीकी चर्चा बहुधा सुननेमें आती है। पर भारत आज भी ब्रिटनके गवर्नरों और सेनापतियोंके मुकाबिलेमे अपनेको नहीं समझता। आज भी वह उनसे उसी तरह डरता है। इसलिये सर माइकल ओडायर और जेनरल डायरकी क्षमाकी बातें निरर्थक हैं। पर भारत दिन प्रतिदिन क्षमा प्रदानकी शक्ति प्राप्त करता जा रहा है। यदि आज भी किसी भारतवासीके मुंहसे पञ्जाबके अत्याचारी अफसरोंके दण्ड प्रदानकी बात निकलती है तो वह क्रोध और आवेशके कारण है। पर हम दृढ़तासे कह सकते हैं कि यदि आज भारत स्वतन्त्र होता अर्थात् यदि उसमे उन्हें दण्ड देनेकी शक्ति होती तो वह निश्चय ही उन्हें क्षमा कर देता और दण्ड देनेसे मुंह मोड़ लेता। भारत केवलमात्र यही चाहता है कि जालियांवाला बागकीसी घटनाओंकी पुनरावृत्ति-की सम्भावना एक दमसे दूर हो जाय। असहयोग आन्दोलन-का सारा कार्यक्रम केवल न्यायप्राप्तिके लिये रचा गया है न कि प्रतिहिंसाके भावसे प्रेरित होकर।

पंजाबियोंका कर्तव्य ।

—:*:—

(जून २३, १६२०)

अलाहाबादके लीडर पत्रमें उसके संवाददाताका एक पत्र प्रकाशित हुआ है । लीडरके संवाददाताने मिस्टर वस्वर्थ स्मिथके सम्बन्धमें कुछ बातें लिखी हैं । मिस्टर वस्वर्थ स्मिथ पंजाब मार्शल लाके एक अफसर थे । मार्शल लाके दिनोंमें उन्होंने पंजाबके निवासियोंको यथासाध्य सताने और तंग करनेमें खूब ख्याति प्राप्त की है । लीडरके संवाददाताके पत्रसे प्रगट होता है कि इस करनीके लिये बरखास्तगीके बदले उसकी तरक्की की गई है । मार्शल लाके कुछ ही दिन पहले मिस्टर वस्वर्थ स्मिथकी तनज्जुली हुई थी अर्थात् अपने पदसे नीचे उतार दिया गया था । पर अब लीडरके संवाददाताके पत्रसे विदित होता है कि वह अपने पूर्व पदपर मुस्तकिल कर दिया गया । वह पुनः दूसरे दर्जेके डिपटी कमिश्नर बना दिया गया—जिस पदसे वह उतार दिया गया था—और जाबिता फौजदारीकी ३०वीं धाराका उसे अधिकार भी दे दिया गया है । जबसे वह अम्बालाकी छावनीमें पहुंचा है वहांकी दीन हीन गरीब प्रजा जुल्म और त्रासके मारे त्राहि त्राहि पुकार रही है । इस संबंधमें लीडरका संवाददाता लिखता है:— 'जुल्म और त्रास' शब्दका प्रयोग मैंने जान बूझकर किया है,

क्योंकि जो कुछ वहां हुआ है उसको प्रगट करनेके लिये येही दो शब्द उपयुक्त हो सकते हैं। ज़ुल्म और त्रासकी मात्राका दिग्दर्शन करानेके लिये संवाददाताके पत्रके कुछ वाक्योंको उद्धृत कर देना उचित होगा। उसने लिखा है:—व्यक्तिगत फरियादमें वह फरियादीका बयान नहीं लिखता। अदालतके उठ जानेपर कोर्टका मुहर्रिर उन्हें लिख डालता है और दूसरे दिन उससे (मजिस्ट्रेटसे) हस्ताक्षर करवा लेता है। रिपोर्ट चाहे फरियादीके पक्षमें लिखी गई हो या विपक्षमें, मजिस्ट्रेट उसे पढ़नेकी परवा नहीं करता और बिना पूरी तौरसे विचार किये ही फरियाद खारिज कर दिये जाते हैं। यह व्यक्तिगत फरियादोंका किस्सा है। अब पुलिसके किये चालानकी दास्तान सुनिये। अभियुक्तके वकीलको अभियुक्तसे हवालातमें मिलकर बातचीत करनेकी इजाजत नहीं है। मुद्दईके गवाहोंसे वह जिरह भी नहीं कर सकते।.....मुद्दईके गवाहोंसे सिर्फ बंधे सवाल किये जाते हैं।.. ..इस प्रकार उस अभियोगका सारा दारमदार पुलिसके गवाहपर रहता है। सफाईके गवाह पेश किये जाते हैं पर अभियुक्तका वकील उनसे कुछ पूछताछ नहीं कर सकता। यदि अपनी सफाईमें साहस करके अभियुक्त कुछ कहना चाहता है तो वह डाटकर चुप कर दिया जाता है।......छावनीका कोई भी कर्मचारी कागजके किसी टुकड़ेपर छावनीके किसी भी रिआयाका नाम लिखकर उसे दूसरे दिन अदालतमें हाजिर होनेके लिये कह सकता है। यही समनका तरीका है। यदि उपरोक्त

प्रकारका समन पाकर कोई व्यक्ति अदालतमें हाजिर नहीं होता तो फौरन उसकी गिरफ्तारीका वारण्ट जारी कर दिया जाता है।" संवाददाताके पत्रमें इस तरहकी अनेक बातें हैं जो उद्धृतकर देनेके योग्य हैं। पर हमारी समझसे जितना हमने उद्धृत किया है उतनेसे संवाददाताके अभिप्रायको सहजमें ही समझ लिया जा सकता है। यहीं पर हमें इस अफसरके मार्शल लाके जमानेके कागजपत्रोंके संबंधमें कुछ लिख देना उचित होगा। इसके इजलासमें अभियुक्तोंका विचार दलके दलमें होना था और विचारको तमाशा दिखलाकर दण्ड सुना दिया जाता था। गवाहोंने बयान दिया है कि यह लोगोंको गरोहमें इकट्ठा करता था और झूठी गवाहियां देनेके लिये बाध्य करता था और स्त्रियोंका घूंघट उठाकर उनके चेहरेपर थूक देता था तथा उन्हें बुरी बुरी गालियां देता था। इसने ही शेखूपुराके निर्दोष वकीलोंपर मुकदमा चलवाया और उन्हें हर तरहसे तंग किया। भारतभक्त श्रीयुत अण्डरूजने अनुसन्धान किया तो उन्हें भी इसी परिणाम पर पहुंचना पड़ा कि इससे घृणित आचरण किसी भी अधिकारीका नहीं था। इसने शेखूपुराके निवासियोंको एकत्रित किया, उन्हें हर तरहसे तंग किया, उनका अपमान किया और उन्हें 'सुअर लोग' 'गन्दी मक्खी' आदिकी गालियां दीं। हण्टर कमेटीके सामने इसने जो गवाही दी है उसे पढ़कर साफ समझमें आ जाता है कि इसको सचकी कोई परवा नहीं है और यदि लीडरके संवाददाताका कहना ठीक है तो इस कर्मचारीका

तरक्को की जा रही है! प्रश्न यह उठता है कि अभी तक यह सरकारी नौकरीमें क्यों कर बहाल रह गया और उसपर निर्दोष नर नारियोंके तंग करने तथा मारनेका अभियोग क्यों नहीं चलाया गया ?

हमने सुना है कि सर माइकल ओडायर और जेनरल डायरके ऊपर मुकदमा चलानेका विचार हो रहा है। इसकी सार्थकतापर हम यहां कुछ नहीं लिखना चाहते। जेनरल डायरके ऊपर मुकदमा चलाये जानेपर मिस्टर शास्त्रीको जोर देते सुनकर हमे बड़ा खेद हुआ। यदि अंग्रेज जाति अपने मनसे इनपर मुकदमा चलाना चाहती है तो हमें अतिशय प्रसन्नता होगी क्योंकि इससे प्रगट होगा कि जलियांवाला बागकी दुर्घटनासे वे सहमत नहीं हैं पर हम इस तरहकी व्यर्थ और निरर्थक कार्रवाईके लिये अपनी ओरसे एक पैसा भी नहीं खर्च करना चाहते। जो कुछ हो रहा है उससे अंग्रेजोंकी मानसिक स्थितिका पूरा पता चल गया है।

इङ्गलैण्डके प्रायः सभी समाचार पत्रोंने इन अत्याचारियोंकी रक्षा तथा इनकी घृणित करनीको छिपानेकी चेष्टा की है। उनपर गुप्त या प्रगट अभियोग चलाये जानेकी चर्चासे हम उन्हें और जोरदार बनाना चाहते हैं। यदि हम भारतको उनकी पूरी तरहसे बरखास्तगीके लिये ही राज़ी कर सकें तो हम सन्तुष्ट हैं। पर सर माइकल ओडायर, और जेनरल डायरकी बरखास्तगीसे आवश्यक कर्नल ओब्रायन, मिस्टर

वस्वर्थ स्मिथ, राय सीताराम तथा अन्य अधिकारी—जिनका नाम कांग्रेस सबकमेटीकी रिपोर्टमें दिया गया है—की बरखास्तगी है। जेनरल डायर नीच है तो हमारी समझमें वस्वर्थ स्मिथ नीचतर है। उसके अत्याचार जालियांवाला बागके कत्ले आमसे कहीं घृणित हम समझते हैं। जेनरल डयारका यह दृढ़ मत था कि लोगोंपर गोलियां चला कर उन्हें भयभीत कर देना सिपाहियाना बहादुरी होगी। पर वस्वर्थ स्मिथ जानबूझकर ज़ालिम नृशंस, नीच और पतित बना। उसके संबंधमें जो बयान दिये गये हैं, यदि वे अक्षरशः सत्य हैं तो कहना पड़ता है कि उसमें मनुष्यताका लेश भी नहीं था। जेनरल डायरकी भांति अपने किये हुएको स्वीकार कर लेनेका भी साहस उसमें नहीं है और जब प्रश्न किया जाता है तो बगलें झाकने लगता है और टाल मटोल करता है। इस अफसरको स्वतन्त्रता दे दी गई थी कि वह निर्दोष और बेकसूर जनतापर अपना जालिम हाथ मनमाना चलावे और इस प्रकार जिस कानून और शासनकी रक्षाके लिये नियुक्त किया गया था उसीको अपमानित और कलङ्कित करे।

पञ्जाबियोंका क्या कर्तव्य है? क्या उनका कर्तव्य नहीं है कि जब तक मिस्टर स्मिथ तथा उनकी तरहके अन्य अपराधी अधिकारी नौकरीसे छोड़ा न दिये जायं, वे चैन न लें? यदि पञ्जाबके नेता जेलसे आकर अपनी पूर्णशक्तिका

प्रयोग करके स्मिथ आदि नीच कर्मचारियोंको दूर करके पञ्जाबका शासन शुद्ध तथा निर्मल नहीं कराया तो उनके छुटकारासे कोई लाभ नहीं हुआ। हमें पूरी आशा है कि यदि उन्होंने पूर्ण दृढ़ताके साथ इस बातका आन्दोलन उठाया तो सारा भारत उनका साथ देगा। हमारा उनसे यह अनुरोध है कि यदि वे लोग जेनरल डायर आदिको वास्तवमें दण्ड दिलाना चाहते हैं तो उन्हें उचित है कि जिन अधिकारियोंके विरुद्ध उन्हें पर्याप्त प्रमाण मिले हैं, उनको बुराईयोंको तुरन्त रोकनेकी चेष्टा करें।

पेनिंगटनके प्रश्नोंका उत्तर।

(सितम्बर २६, १९२०)

मिस्टर पेनिङ्गटनने मेरे पास निम्न लिखित पत्र भेजा है। मैं इस पत्रका अन्य कागजोंके साथ ज्योंका त्यों प्रकाशित कर देता हूं।

पेनिंगटनका पत्र।

महाशयजी, असहयोग आन्दोलनको दिखौवा शान्तिरूप देकर जो आप भारत सरकारका वहिष्कार करना चाहते हैं उसमें मैं आपसे सहमत नहीं हूं। मैं सदासे आपको इस बातका श्रेय देता आया हूं कि आप शान्तिमय क्रान्तिके ही पूर्ण पक्षपाती

हैं। पर गत १४वीं जुलाईके यङ्ग इण्डियाके चौथे पृष्ठपर आपने जेनरल डायरके सम्बन्धमें जिन कड़े शब्दोंका प्रयोग किया है उन्हें पढ़कर मैं विस्मित हो गया। आपके आरम्भके शब्द है :—"उसे किसी भी प्रकार सबसे जालिम हत्यारा नहीं कह सकते।" यहांतक तो मैं किसी तरह आपसे सहमत हो सकता हूं यद्यपि विचार न होनेके कारण किसीपर भी दोषारोपण या आक्षेप करना उचित नहीं प्रतीत होता। पर आगे चलकर आपने लिखा है —"पर उसकी पशुतामें किसी तरहकी आशंका नहीं की जा सकती × × × × उसकी नीच सैनिकके विपरीत कायरता प्रत्यक्ष है। × × × × उसने उन निरस्त्र नर-नारियोंका बलवाई ठहराया है। उसने चूहा विल्लियोकी भांति उन सैकड़ों नर-नारियोंकी हत्या कर—जो एक बाड़ेमें बन्द कर दिये गये थे—उसने अपनेको पञ्जाबका उद्धारक बतलाया है। ऐसे व्यक्तिको योधाको उपमा देना पाप है। उसकी कार्रवाई वीरताशून्य थी। उसपर किसी प्रकारका सङ्कट नहीं था। उसने किसी प्रकारकी चेतावनी नहो दी और न किसीने उसका मुकाबला किया। इसे 'समझकी भूल' नहीं कह सकते। निराधार भयकी आशङ्कासे उसकी वुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। यह अयोग्यता और निर्दयताका नमूना है।"

यदि मैं यह कहूं कि यह केवल आपकी शब्दाडम्बर रचना है, तो आप मुझे क्षमा करेंगे। इसको प्रमाणित करनेके लिये आपने कोई सबूत नहीं पेश की है। जहां सबूत संभव

था वहां भी आपने कुछ नहीं लिखा है। उदाहणार्थ, उस भयानक दिन तो न आप ही जालियांवाला बागमें उपस्थित थे और न मैं ही। इसलिये यह कैसे कहा जा सकता है कि उपस्थित जनता सशस्त्र थी अथवा निःशस्त्र। सभाबन्दीके कानूनको घोषणा करनेके बाद सभा करना नाजायज कार्रवाई थी और इस लिये वह सभा 'मजमा नाजायज' थी, इसे तो आप अवश्य स्वीकार करेंगे और जब प्रातःकाल ४॥ घण्टेतक जेनरल डायर स्वयं नगरमें घूम घूमकर इस बातकी घोषणा कर रहे थे कि किसी किस्मका जलसा करना गैरकानूनी समझा जायगा तो यह कहना व्यर्थ है कि किसीको इसकी सूचना नहीं थी। आपने लिखा है 'वे प्रायः छुट्टी मनानेवालोंमेंसे थे'। पर इसके लिये आपने कोई प्रमाण नहीं दिया है। और उसी समय छुट्टी मनानेवालोंका अमृतसरमें ऐसा जमाव कयाससे बाहर है। मैं आपके इस कथनका अभिप्राय भली भांति नहीं समझ सका। घटनास्थलपर केवल जेनरल डायर ही उपस्थित नहीं थे। इसलिये यह मान लेना असम्भव है कि निर्दोष छुट्टी मनानेवालोंपर लगातार गोली चलानेसे वह रोक न दिये गये होते। इस तरहकी कार्रवाईका कत्ले आमसे कम नहीं कहा जा सकता और स्वयं सैनिक ही इसे करना स्वीकार न किये होते।

आपने जनताकी ज्यादतियोंका जिक्रतक नहीं किया है, जिनसे घबरा कर जनरल डायर इस तरहकी भीषण कार्रवाईके लिये लाचार हो गये। मैं देखता हूं कि आपकी

सहानुभूति प्रायः करके हत्यारोंकी ओर ही आकृष्ट है इससे मुझे लेशमात्र भी आशा नहीं करनी चाहिये कि मेरी बातोंका आपपर किसी तरहका प्रभाव पड़ेगा। फिर भी मैं यथासाध्य सबका पता लगाना चाहता हूं। इसलिये मैं आपके पास उन नोटोंकी प्रति भेजता हूं जिन्हें मैंने समय समय पर किया है। यदि आप अमृतसरकी सच्ची घटनाका विस्तृत वृत्तान्त लिखें जो कुछ १० अप्रेल १९१९ तथा इसके बाद विशेषकर १३ अप्रेलको हुई और साथ ही साथ यदि जेनरल डायरके पक्षमें कोई बातें हों तो उन्हें भी प्रकाशित करें तो मैं, केवल सत्य बात जाननेवालोंके नाते आपका अतिशय कृतज्ञ हूंगा। केवल गालियां और कड़े शब्द किसी बातका सचाई-को नहीं साबित कर देते। इसे तो आप भी मानते हैं और आपने अपने पत्रमें (यंग इण्डियामें) समय समयपर इसके पक्षमें लिखा भी है।

२५, विक्टोरिया रोड
वर्दिङ्ग, सुसेक्स
२७ अगस्त, १९२०

आपका विश्वासपात्र
जे० आर० पेनिङ्गटन, आई०सी० एस०

पुनश्च:—इस प्रश्नपर इस तरहसे विचार कीजिये। सरकारका एकमात्र अफसर जेनरल डायरने—जो उस समय घटनास्थलपर उपस्थित था—कई सौ आदमियोंको गोलीसे मार डाला (जिनमें अनेक निर्दोष व्यक्ति भी 'मजमा नाजायज'में शामिल हो गये थे) गोली चलानेमें उसे पक्का विश्वास था कि

वह बड़े भीषण बलवाइयोंका सामना कर रहा है और इससे वह हजारोंकी जान और मालकी रक्षाका उपाय कर रहा है। और अनेक व्यक्ति इस बातमें उससे सहमत हैं कि उसने नगरको अतिशय भीषण बलवाइयोंके हाथमें पड़नेसे बचाया।

इस पत्रको पढ़नेसे स्पष्ट प्रगट होता है कि मिस्टर पेनिङ्गटन यंग इण्डिया पत्रको बराबर नहीं पढ़ते। नहीं तो उन्हें विदित होता कि जनताकी ज्यादतियोंकी जितने कड़े शब्दोंमें मैंने आलोचना की है, किसीने नहीं की है। उनकी धारणा है कि यह लेख—जिसका उन्होंने विरोध किया है—पहला ही है जिसे मैंने जेनरल डायरके सम्बन्धमें लिखा है। कदाचित उन्हें विदित नहीं कि जलियांवाला बागके हत्याकाण्डकी समीक्षा करनेमें मैंने पूर्ण पक्षपात हीनतासे काम लिया है। इस हत्या-काण्डके विषयमें हम लोगोंने अपना मत स्थित करनेपर जिन सबूतोंका सहारा लिया है उनको वे पढ़ सकते हैं। यंग इण्डियाके पढ़नेवाले उन बातोंसे भली भांति परिचित हैं इसलिये मुझे इस अवस्थापर पहुंचकर प्रमाण आदि देना निरर्थक है। पर अभाग्यवश मिस्टर पेनिङ्गटन अंग्रेजी नस्लके सच्चे नमूना हैं। वे अन्यायसे काम नहीं लेना चाहते पर अभाग्यवश संसारकी घटनाओंको सच्चा रूप देनेमें वे शायद ही कभी न्यायसे काम लेते हों, क्योंकि उन्हें उनपर विचार करनेका समय नहीं है और यदि कभी उन्होंने उसपर विचार भी किया तो केवल उन्हीं पत्रोंके रायपर जो सदा एक पक्षीय मतका प्रचार करते

हैं। इसी कारण संकुचित सीमाके अतिरिक्त साधारण अंग्रेजों-को और किसी बातकी जानकारी नहीं रहती यद्यपि उनका विश्वास रहता है कि वे सभी बातोंकी पूर्ण जानकारी रखते हैं। इस प्रकार मिस्टर पेनिङ्गटनकी जानकारी भी अन्य अंग्रेजोंकी भाँति स्वाभाविक है और इससे भी हम लोगोंको यही शिक्षा मिलती है कि हम अपने कारबारको अपने हाथमें सम्हाल लें। योग्यता काम करनेसे आप ही आ जायगी। यदि हम लोग इस प्रतीक्षामें बैठे रहें कि यह अंग्रेज जाति हमें शिक्षितकर योग्य बना देगी तो हम भारी भूलमें पड़े हैं, क्योंकि जिन लोगोंका स्वार्थ हम लोगोंको दबाकर रखनेमे ही सिद्ध होता है वह हम लोगोंको कब उठानेकी चेष्टा करेगी? वह तो यथासाध्य अधी-नताके समयको बढ़ाती ही जायगी। अस्तु!

अब हमें मिस्टर पेनिङ्गटनके पत्रपर विचार करना चाहिये। मिस्टर पेनिङ्गटनने लिखा है—'किसीका भी पूर्णरूपसे विचार नहीं किया गया, यह ठीक है। पर क्या इसके लिये जनता उत्तर-दायी है? जनता लगातार इस बातके लिये प्रार्थना और आन्दोलन करती आ रही है कि जिन अधिकारियोंका पञ्जाबकी दुर्घटनामें हाथ रहा है उनका निष्पक्ष विचार होना चाहिये।

आगे चलकर उन्होंने मेरी भाषाकी तीव्रतापर कटाक्ष किया है। इसके विषयमें मुझे यही कहना है कि यदि सत्य कड़ुआ है तो मैं भाषाकी तीव्रताके अपराधको सहर्ष स्वीकार करता हूं क्योंकि मैं सत्यकी हत्या किये विना जेनरल

डायरकी करनीके बारेमें इन कड़े शब्दोंके प्रयोगको नहीं बचा सकता था।

जेनरल डायरने अपने ही बयानमें कहा है तथा अन्य गवाहोंके बयानसे भी यही साबित हुआ है कि:—

(१) भीड़ खाली हाथ थी।

(२) उसमें छोटे छोटे लड़के तक शामिल थे।

(३) १३ वीं अप्रेल बैशाखीके उत्सवका दिन था।

(४) हजारों आदमी मेलेमें बाहरसे आये थे।

(५) बलवा या विद्रोहका कहीं नाम निशान नहीं था।

(६) इस कत्ले आमके दो दिन पहले तक अमृतसरमें पूर्ण शान्ति थी।

(७) सभाबन्दीकी घोषणा उसी दिन जेनरल डायरके नाम पर की गई थी।

(८) जेनरल डायरकी सूचनामें सभाबन्दीकी कहीं चर्चा नहीं थी। उसमें लिखा था कि सड़कपर किसी तरहका जुलूस न निकाला जाय और एक साथ ४ आदमी कहीं सड़कपर या गलीमें इकट्ठे न पाये जायें। पर प्राइवेट या पबलिक स्थानमें सभा करनेकी इसमें किसी तरहकी मनाही नहीं थी।

(९) नगरके बाहर या भीतर जेनरल डायरको किसी तरहकी जोखिमका सामना नहीं करना पड़ा था।

(१०) इस बातको जेनरल डायरने स्वयं स्वीकार किया है

कि उस सभामें अनेक ऐसे थे जो हमारी सूचनाके बारेमें कुछ नहीं जानते थे।

(११) उसने विना चेतावनी दिये ही गोली चलाना आरम्भ कर दिया था और जब भीड़ छटने लगी, लोग इधर उधर भागने लगे तोभी वह गोली चलाता ही गया। जो लोग भाग रहे थे उनकी पीठोंपर उसने निशाना लगाये।

(१२) भीड़ प्रायः एक अहातेमें बन्द थी।

ये सब बातें स्वीकार कर ली गई हैं। ऐसी अवस्थामें मैं उस काण्डको कत्ले आमके सिवा और क्या कह सकता हूं। उसकी कार्रवाईको 'समझ की भूल' नहीं कह सकता, बल्कि अकारण विपत्तिकी सम्भावनासे उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी।

मिस्टर पेनिङ्गटनके नोट (जो यहां पर नहीं दिये जा सके) में भी उसी प्रकारकी अज्ञानकारी भरी बातें हैं जिस तरहकी उनके पत्रमें हैं।

लार्ड कैनिङ्गके शासनके समय जिन बातोंका वादा किया गया था, कागजोंपर लिख लिखकर जिन्हें सुनाया गया, उनपर आचरण नहीं किया गया। एक सुविचारक वाइसरायने कहा था—"ब्रिटिश सरकारने भारतीयोंसे वादायें कीं पर वे चरितार्थ किये जानेके लिये नहीं थीं केवल सुननेके लिये और कानोंको प्रसन्न करनेके लिये। तबसे सैनिक व्ययमें भीषण बढ़ती हुई है।"

ऐसी कोई भी घटना नहीं हुई जिसका उल्लेख जेनरल डायरके पक्षमें की जा सके।

मि० पेनिङ्गटनने अपने नोटमें डण्डा फौजकी चर्चा करते हुए लिखा है कि यह दल छोटी छोटी मोटी लाठियां लेकर आक्रमण करनेके लिये तैयार था। पर अनुसन्धान करनेसे इस दलका कहीं पता तक नहीं लगता। अमृतसरमें कोई भी बलवाई भीड़ नहीं थी।

जिन लोगोंने इतना उपद्रव किया, जान मालपर हमला किया, इमारतोंमें आग लगा दी, उनमें किसी जाति विशेषके लोग नहीं थे। पोस्टर केवल लाहोरमें चिपकाया गया था, अमृतसरमें उसका निशान नहीं था। मिस्टर पेनिंगटनको यह भी जानना चाहिये कि १३ अपेलकी सार्वजनिक सभा अन्य बातोंके साथ साथ जनताकी ज्यादतियोंकी निन्दा करनेके लिये भी की गई थी, अमृतसरके अभियोगोंसे यह प्रगट हो गया है। जो लोग जेनरल डायरके साथ थे वे उसे नहीं रोक सकते थे। अपने बयानमें उसने कहा है, कि मैंने क्षणभरमें गोली चलानेका निश्चय किया। उसने किसीसे परामर्श नहीं किया। मिस्टर पेनिंगटनने लिखा है कि 'ऐसी अवस्थामें यह असम्भव था कि सैनिक भी उसकी बात स्वीकार करनेके लिये राजी हो जाते'। मुझे शक हो रहा है कि मिस्टर पेनिंगटन यह लिखते हुए भारतकी अवस्थाको सर्वथा भूल गये थे। यदि भारतीय सैनिकोंमें निहत्थों पर हाथ उठानेकी आज्ञाकी अवज्ञा करनेकी इस तरहकी क्षमता आ जाती तो

मैं अतिशय प्रसन्न होता। पर जिस गुलामोकी शिक्षा भारतीय सेनाको दी जाती है उसमें उन्हें इस तरहका साहस कहांसे आसकता है!

जो कुछ मैंने लिखा है उसके लिये कोई सबूत नहीं उद्धृत किया है, क्योंकि मैं इसे बेकार समझता हूं और मुझे पूरी आशा है कि मिस्टर पेनिङ्गटन इसके लिये मुझे पुन: दोषी ठहरानेकी कृपा न करेंगे। इसका कारण यह है कि जो कुछ मैंने लिखा है उसका आधार सरकारी कागज पत्र हैं जा मिस्टर पेनिङ्गटनका सहजमें प्राप्त हो सकते हैं और जिन्हें पढ़कर वे सारी बाते जान और समझ सकते हैं।

मिस्टर पेनिङ्गटनने लिखा है :—"१० वीं अप्रेलको अमृतसरमें जो कुछ हुआ, उसका पूरा और ठीक ठीक विवरण प्रकाशित करनेकी कृपा कोजिये।" विविध कमेटियोंकी रिपोर्टोंमें उस घटनाका पूरा विवरण दिया गया है। यदि धैर्यके साथ मिस्टर पेनिङ्गटन उन रिपोर्टोंको पढ़ें तो उन्हें विदित होगा कि सर माइकल आडायर और उनके सहायक कर्मचारियोंने जनताको उत्तेजित करनेके लिय हर तरहकी चेष्टायें कीं पर उन्होंने उत्तेजित होकर और क्रोधके आवेशमें आकर जो कुछ किया उसके लिये जितने कड़े शब्दोंमें मैंने उनकी निन्दा की शायद किसीने नहीं की। १० वीं अप्रेलके बाद जो कुछ हुआ उसका वर्णन केवल इतनेमें हो सकता है कि, 'जनताने हर तरहसे शान्ति बनाये रखनेकी चेष्टा की यद्यपि विना

किसी तरहके विवेकके गिरफ्तारियां होती रहीं, निर्दोषोंकी हत्यायें होती रहीं और अधिकारियोंकी तरफसे हरतरहके अत्याचार होते रहे।

मुझे इस बातकी अतिशय प्रसन्नता है कि मिस्टर पेनिङ्गटन सत्यकी जांचके लिये बड़े ही उत्सुक हैं और इसके लिये मै उन्हें हृदयसे बधाई देता हूं। पर मुझे खेदके साथ लिखना पड़ता है कि मिस्टर पेनिङ्गटनने अपने इस प्रयासमे गलत मार्गका अनुसरण किया है। मेरी सलाह है कि सबसे पहले वे उन गवाहियोंको पढ़ें जो हण्टर कमेटी और कांग्रेस सबकमेटीके सामने दी गई थी। उन्हें दोनों रिपार्टोंके पढ़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है। केवल गवाहियाके पढ़नेसे उन्हें विदित हो जायगा कि जेनरल डायरके अपराधको जो रूप मैंने दिया है उससे वह कहीं भीषण है।

मिस्टर पेनिङ्गटनने अपना परिचय निम्नलिखित शब्दोंमें दिया है :—'दक्षिण भारतके किसी जिलेका चीफ मजिस्ट्रेट, जिसने शासन सुधारके पहले बारह वर्ष तक काम किया और इत्यादि अत्याचारोंद्वारा विख्यात हो गया।' इसे पढ़कर मुझे हताश होना पड़ा, क्योंकि मिस्टर पेनिङ्गटन किसी भी अवस्थामें सच्ची हालात नहीं जान सकेंगे। क्रुद्ध या पक्षपातसे भरा मनुष्य सत्यकी जांचके लिये सर्वथा अयोग्य है। और मिस्टर पेनिंगटन क्रुद्ध भी हैं और पक्षपातसे भरे भी हैं। जो शब्द उन्होंने अपने बारेमें लिखे हैं उनसे

ही यह स्पष्ट हो जाता है। उनके इस लिखनेका क्या अभिप्राय है कि—शासन सुधारके पूर्व हत्यादि उपायोंसे इस तरह प्रसिद्धि प्राप्त।' भाग्यवश जब हत्यारोंके दलका अन्त हो गया है तो फिर उनकी चर्चा किस काम की। जब तक अंग्रेजोंके दिमागमें यह दम्भपूर्ण भाव भरा रहेगा कि हम संसारमें सबसे श्रेष्ठ है और हमसे भूल हो ही नहीं सकती तब तक सच्ची बातोंका जानना उनके लिये अति कठिन है।

चोटपर चोट।

(जुलाई १३, १९२१)

गये दिन संयुक्त प्रान्तकी लिबरल लीगकी ओरसे बड़े लाटके पास एक डेपुटेशन भेजा गया था। डेपुटेशनके उत्तरमें बड़े लाटने जो भाषण किया था वह अहमदिया डेपुटेशनके उत्तरमें किये भाषणसे कही सतर्क था। तोभी बड़े लाट महोदयसे इतना कह देना आवश्यक है कि आपने अपने भाषणमें असम्भव बातोंकी आशा की है। उदार और राष्ट्रवादी, सहयोगी और असहयोगी, हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, जैन, पारसी ईसाई और यहूदी, जिनको भारतीय होनेका अभिमान है, सभी अपनी अपनी नीतिके अनुसार इस बातपर जोर देते हैं कि पञ्जाबके अत्याचारोंका प्रतीकार होना चाहिये। बड़े लाट महोदय खिलाफतके प्रश्नपर अब भी जोर देते जा रहे हैं। इससे कुछ आशा है और

इससे यह भी व्यक्त है कि अपने इस आचरणसे बड़े लाट महोदय हिन्दू, मुसलमान, तथा खिलाफतके सम्बन्धमें मुसलमानोंके साथ सहानुभूति रखनेवाले अन्य लोगोंसे कह रहे हैं कि खिलाफतके साथ किये गये अन्यायको मत भूलिये पर पंजाबके अत्याचारोंको भूल जानेके लिये वे बार बार कहते हैं। यह काम नितान्त असम्भव है। भला यह कब सम्भव है कि रोगी अपने दर्दको सदाके लिये भूल जाय। हां, गहरी नशा पाकर सम्भव है वह कुछ कालके लिये भूल सकता है। पंजाबके अत्याचार उस जहरीले घावकी तरह हैं जिसके जहरका असर मांसको सड़ाता और घावको बढ़ाता जाता है और जबतक पूरा विष शरीरसे न निकाल लिया जाय तबतक घाव नहीं पुज सकता। इस प्रकार पंजाबके अत्याचार तबतक नहीं भूले जा सकते जबतक कि विषरूपी उन अफसरोंकी पेंशनें न बन्द कर दी जायं और वे नौकरी परसे न बरखास्त कर दिये जायं जिन्होंने नौकरकी हैसियतसे विश्वासघात किया और उसके लिये किसी तरहका पश्चात्ताप नहीं प्रकट किया। क्या लार्ड रेडिंग इस बातको कभी भी सम्भव समझते हैं कि भारतकी जनता मिस्टर थाम्सनकी तरक्कीको प्रसन्नतासे देखेगी? लार्ड रेडिंग कहते हैं कि सरकारकी सदिच्छा और ईमानदारीके लिये भारतीयोंको हमें धन्यवाद देना चाहिये और कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिये। उनका श्रेय वे प्राप्त कर सकते हैं पर साथ ही यह प्रश्न उठता है कि प्रधान प्रश्नोंपर जनता और

सरकारके पर्यवेक्षणमें भारी भेद है। और जबतक लार्ड रेडिंग और उनकी सरकार उन व्यक्तियोंको नौकरीमे बहाल रखेगी और पेंशन देती जायगी जिन्होंने अपनी जिम्मेदारीका दुरुपयोग किया है और अपनेको पूरी तरहसे अयोग्य साबित किया है, तबतक किसी भी दशामें सरकार और प्रजामें मतैक्य होना नितान्त असम्भव है। यदि भारत सरकार लेशमात्र भी जिम्मेदारी हमारे हाथमें देनेका भाव प्रगट करती हो तो हमें इतना तो अधिकार अवश्य मिलना चाहिये कि हम उनलोगोंको नौकरियोंसे हटा दें जिन्होंने घोर क्रूरता और निर्दयताके साथ हम लोगोंको सताया है। मेरे लिये तो इन दोनों अत्याचारोंके प्रतीकारका अधिकार पा जाना ही सबसे बड़ी जिम्मेदारीकी प्राप्ति है। खिलाफतके साथ जो अन्याय किया गया है उसे स्वीकारकर लिया गया है, पंजाबके अत्याचार खूनसे लिखे गये हैं। हम स्वीकार करते हैं कि हम लोगोंने अमृतसरमें, कसूरमें, जलियांवाला और गुजरानवालामे ज्यादतियां कीं पर इसके लिये हमसे बुरी तरह बदला चुकाया गया। हमारा अपमान किया गया, हमें ठोकरें लगाई गई। दोषी और निर्दोषी सभी शूलियोंपर चढ़ाये गये। हम लोगोंने स्थान स्थानपर अपने दोषोंको स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार कर लिया है। जिन अधिकारियोंने हमलोगोंके साथ इस तरहके क्रूर अत्याचार किये उनकी मैं किसी तरहसे हीनता नहीं चाहता। मैं तो केवल इतनाही चाहता हूं कि वे लोग हमपर फिर भी मालिककी तरह न बने रहें। एक अंग्रेजने मुझसे स्पष्ट कहा कि यदि सर

माइकल ओडायर या जेनरल डायरके पेंशन बन्दीका प्रश्न उठा तो मैं अपने पदसे स्तीफ़ादेकर अलग होजानाही उचित समझूंगा, क्योंकि नौकरीमें रहकर उस कामका समर्थन करना मैं अनुचित समझता हूं। उसके उत्तरमें मैंने कहा, आपके साथ मेरी सहानुभूति तो अवश्य है पर मैं आपकी रायसे किसी भी तरह सहमत नहीं हो सकता और न उसे ही इस बातकी आशा थी। हजारो अंग्रेज स्त्री पुरुष सर माइकल ओडायर और जेनरल डायरको साम्राज्यका उद्धारक और अंग्रेजोंकी प्रतिष्ठाका रक्षक मानते हैं। यह भी संभव है कि यदि मैं भी अंग्रेज जातिका होता और यदि मेरा भी विचार होता कि किसी भी उपायसे भारतको अपने अधीन रखना ही अंग्रेज जातिका परम कर्तव्य है तो कदाचित मैं भी इसी विचारका होता। जब तक इस तरहके भाव भरे रहेंगे तबतक सरकार और प्रजाके बीच सहयोग होना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है। असहयोग आन्दोलन अंग्रेज जातिकी आंखें खोल देगा, उन्हे सुझा देगा कि शासनमें सहयोगका अभिप्राय उनके इस तरहके (उपरोक्त प्रकारके) भावको स्वीकार करना है। पर मित्र या सहयोगीकी हैसियतसे यह विरोधाभास प्रगट करता है। भारतमें वे अपनी तोप और तलवारोंके बलपर सदा स्थायी नहीं रह सकते पर हमारी सदिच्छा प्राप्त करके वे सदा स्थायी रह सकते हैं। सरकार तथा प्रजाके बीचके संबन्धको इसी आधारपर स्थिर करना चाहिये। ऊपरसे तो बनावटी बराबरी-

का भाव प्रगट करके पर भीतर व्यवहारमें अदम्य बड़प्पनका भाव धारण करके हमें धोखेमें डालना उचित नहीं है। लार्ड रेडिङ्गको संसारका असीम अनुभव प्राप्त है। उन अनुभवोंसे उन्हें शीघ्र ही विदित हो जायगा कि दो विरोधी भावोंमें समता या मेल लानेकी चेष्टा करना सर्वथा असम्भव है। यदि इसके बीचका कोई मार्ग होता तो असहयोगी इसका कभी ही अवलम्बन किये होते। यह सारी जनताकी घृणा या रोषका प्रश्न नहीं है। मैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि वे दूर तक धंसकर देखें। उन्हें विदित हो जायगा कि हर तरहसे कमजोर होते हुए भी हम लोग सफेद जातियोंकी विशिष्टताको स्वीकार करनेके लिये अब क्षण भरके लिये भी तैयार नहीं हैं। जवानी जमा खर्च, चाहे कितना भी सौम्य क्यों न हो किसी उपयोगका नहीं हो सकता। हमलोग बराबरीका प्रत्यक्ष प्रमाण चाहते हैं। क्या उनकी समझमें अब तक यह बात नहीं आई कि गोरी सेना अंग्रेजोंकी जानकी रक्षाके लिये भले ही उपयोगी हो पर उससे भारतवर्षकी सीमाकी रक्षा नहीं हो सकती। अंग्रेजोंको भारतवर्षमें उसी तरह बराबरीकी हैसियतसे रहनेके लिये तैयार हो जाना चाहिये जैसे पारसी रहते हैं। पारसियोंकी संख्या यद्यपि अल्पतम है तथापि हजारों वर्षोंसे वे मित्र और साथीकी हैसियतसे पूर्ण प्रेमके साथ रहते चले आ रहे हैं। उन्हें कभी भी किसी खास तरहकी रक्षाकी आवश्यकता नही प्रतीत हुई और न क्रुद्ध हिन्दू और मुसलमानोंके भयसे

घबराकर उन्हें अपनी रक्षाके लिये किसी किले या दुर्गकी आवश्यकता प्रतीत हुई। क्या मूसा पैगम्बरके अनुयायियों और यहूदियोंका धर्म पूर्णरूपसे सुरक्षित नहीं है? पर असल बात तो यह है कि अंग्रेज जाति भारतमें करोड़ों हिन्दू और मुसलमानोंको स्वतन्त्र नहीं देख सकती और न इनके साथ इस तरह रहनेके लिये ही तैयार है। दूसरी ओर भारतवासी हिन्दू और मुसलमान भी अंग्रेजोंको इसलिये कोई विशेष अधिकार नहीं देना चाहते कि उनके अधिकारमें सभी अस्त्र और शस्त्र हैं जिन्हें मानव वुद्धिने बनाया है। हम भारतीयोंके पास एकमात्र उपाय यही है कि प्रतिरोध द्वारा उनसे डरना छोड़कर उनके असरको एक दम शून्य कर दें। चाहे इसे कोई उद्दण्डता या स्वप्नकी बातें कहे पर मुझे पक्का विश्वास है कि लार्ड रेडिङ्गको शीघ्र विदित हो जायगा कि मैंने भारतवासियोंके हृदयकी बातें कही हैं और जितना ही शीघ्र इस बातकी सत्यताको समझ लिया जायगा उतना ही शीघ्र अंग्रेजों और भारतीयोंमें सहयोग सम्भव है। मैं इस तरहके सहयोगके लिये सबसे अधिक उत्सुक हूं और यही कारण है कि मैं सहयोगके लिये उन अवसरोंसे लाभ उठाना नहीं चाहता जो मेरे सामने प्रलोभनके रूपमें आते हैं। असहयोग अज्ञता अथवा द्वेषसे नहीं उत्पन्न होता, बल्कि सहयोगके लिये यह सबसे उपकारी शस्त्र है और इसलिये इसका जन्म ज्ञान और प्रेमसे होता है।

—:०:—

बड़े लाटका भाषण ।

—:*:—

(सितम्बर १, १९२०)

बड़े लाटकी योग्यता और नेक नियतीपरसे मेरा विश्वास उठ गया। मुझे यह दृढ़ हो गया कि बड़े लाटमें भारतके शासनकी जिम्मेदारीकी योग्यता नहीं रही। इसलिये उनके भाषणको मैं शंकित चित्तसे पढ़ता हूं। व्यवस्थापक सभाके प्रारम्भ करते समय बड़े लाटने जो भाषण किया उसे पढ़कर उनके आन्तरिक भाव प्रत्यक्ष हो जाते हैं और उस अवस्थामे किसी भी आत्माभिमानीके लिये उनकी सरकारके साथ सहयोग करना असम्भव है।

पंजाबकी दुर्घटनाके संबंधमे उन्होंने जो शब्द कहे हैं उनसे प्रत्यक्ष है कि उसके प्रतीकारके उनके हृदयमें किसी तरहके विचार नहीं हैं और उन्होंने प्रतीकार करनेसे इनकार कर दिया है। उन्होंने कहा है :—"हमें अपना ध्यान निकट भविष्यकी ओर आकृष्ट करना चाहिये।" हमारी समझमें निकट भविष्यमे हम लोगोंका सबसे प्रधान कर्त्तव्य यही है कि हम सरकारको मजबूर करें कि वह पंजाबकी दुर्घटनाके लिये खेद और पश्चात्ताप प्रगट करे। पर भारत सरकारके भावमें इसका कहीं भी आभास नहीं है। उलटे बड़े लाट साहब अपने समालोचकोंको प्रत्युत्तर देनेकी बलवती इच्छाको बलात् रोक रहे हैं। इससे यह अभि-

प्राय निकलता है कि भारतकी प्रतिष्ठा तथा मर्यादासे संबंध रखनेवाली कई प्रधान बातोंपर उनके मतमें किसी तरहका परिवर्तन नहीं आया है। वे इतना ही कहकर सन्तुष्ट हैं कि 'मैं इसका निर्णय और जांच इतिहासके हाथमें छोड़ देता हूं।' मेरा कहना है कि इस तरहके शब्दोंका प्रयोग भारतीयोंको उत्ते-जित कर सकता है। जिन लोगोंके साथ घोर अन्याय और अत्याचार किया गया है तथा जिनके सिरपर आज भी वे अफसर अपना भार रख रहे हैं जिन्होंने अपनी जिम्मेदारीको निबाहनेमें पूरी अयोग्यता दिखलाई है, उनके लिये इतिहासका सहानुभूति पूर्ण निर्णय भी किस कामका होगा। एक तरफ तो पञ्जाबके अत्याचारोंके प्रतीकारका वचन न देना और दूसरी ओर सहयो-गकी आवश्यकता दिखलाना, अन्तिम सीमाको सङ्कीर्ण हृदयता है। एक तरफ तो रोगी दर्दके मारे तड़प रहा है और दूसरी ओर उसके सामने आपने उत्तमसे उत्तम भोजनके पदार्थ रख दिये। क्या उससे उसके दर्दमें जरा भी कमी आ सकती है? क्या उसके दिलमे कड़ी चोट नहीं पंहुचेगी कि वैद्य हमारी हंसी उड़ा रहा है? खिलाफतके लिये जो कुछ किया जा रहा है उससे भी बड़े लाट महोदय असन्तुष्ट हो हैं। उन्होंने अपने भाषणमें कहा है :—'हमारी सरकारने भारतीय मुसलमानोंकी बातें संधि परिषद्के सामने रखीं। हम लोगोंने इस सम्बन्धमें मुसलमा-नोंकी तरफसे घोर प्रयत्न किया पर इसका फल हमें असहयोगकी धमकीके रूपमें मिला है। पर इसमें हमारा क्या वश है। भार-

तीय मुसलमानोंकी ओरसे जो बातें पेश की गई हैं उन्हें सन्धि परिषद्के सदस्य स्वीकार करनेको तयार नहीं हैं।" यदि यह कथन असत्यसे भरा नहीं है तो नितान्त भ्रम उत्पन्न करनेवाला है। बड़े लाट साहब भली भांति जानते हैं कि सन्धिकी शर्तोंमें मित्र राष्ट्रोंका हाथ नहीं है। वे जानते हैं कि इसके प्रधान कर्त्ता धर्त्ता मिस्टर लायड जार्ज हैं और उन्होंने अपनी इस जिम्मेदारीके खिलाफ एक शब्द भी नहीं कहा है। कुस्तुन्तुनिया, थ्रेस तथा एशिया माइनरके सम्बन्धमें उन्होंने भारतीय मुसलमानोंको जो वचन दिया था उसे तोड़कर उन्होंने उद्दण्डता पूर्वक इन शर्तोंको उचित और नीतिपूर्ण बतलानेकी भी धृष्टता की है। जब ब्रिटनने ही सन्धिके प्रत्येक शर्तोंको बनाया है तो उसकी जिम्मेदारीका भार मित्रराष्ट्रोंके ऊपर देकर झूठ बोलनेसे क्या लाभ? यह स्मरण कर कि बड़े लाट इस बातको स्वीकार करते हैं कि मुसलमानोंकी मांग न्यायपूर्ण और सङ्गत है, उनका अपराध और भी गुरुतर हो जाता है, और यदि उसके सङ्गत और न्यायपूर्ण होनेमे उनका दृढ़ विश्वास न रहता तो वे उसके लिये चेष्टा भी न करते।

मैं साहसके साथ कह सकता हूं कि बड़े लाटके इस भाषणसे तथा पञ्जाबके विषयमें जो मत प्रगट किया है उससे हम लोगोंको और भी दृढ़ विश्वास हो गया है कि हमें इन दोनों अत्याचारोंके प्रतीकारके लिये सबसे प्रथम चेष्टा करनी चाहिये और सुधारोंकी चर्चा पीछे करनी चाहिये।

राजनैतिक संरक्षण

(जून ३०, १९२०)

हण्टर कमेटीकी रिपोर्टपर भारत मन्त्रीने जो खरीता भेजा है उसके पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है कि सरकारी कर्मचारियोंके अत्याचारों पर सफेदी पोतनेका उन्होंने हरतरहसे प्रयत्न किया है। उनकी चेष्टाका एक नमूना यह है कि मार्शल लाके जमानेमे किये गये अत्याचारोंकी निन्दा उन्होंने कहीं कहीं दबी जबानमें की है और फिर एकाएक उन्होंने मार्शल ला मैनुएलमें भविष्यके लिये कुछ रक्षाके उपायोंकी विवेचना की है जिसपर भारत सरकार इस समय विचार कर रही है। कदाचित इस मार्शल ला मैनुएलका निर्माण सर्वसाधारणकी उस मांगकी पूर्तिके लिये किया जा रहा है जो भविष्यकी रक्षाके लिये लोगोंने चाहा है। किसी भी ऐसे मैनुएलको स्वीकार करनेके लिये हम लोग तैयार नहीं हैं जिसके अन्तर्गत सबकमेटीकी पूरी मांगे नहीं आ जाती। रौलट ऐक्को रद्द किये विना ही किसी इस प्रकारके मैनुएलके निर्माणसे कानूनकी पुस्तकोंके पन्नोंका रगना उसीके बराबर है जैसा कि रोगीके शरीरके विषको पूरी तरहसे निकाले विना ही उसे पुष्टई देनेका यत्न करना। जब तक रौलट ऐक् रद्द नहीं कर दिया

जायगा भारत सरकारके इस मेनुएलसे उन लोगोंको कभी भी सन्तोष नहीं होगा जो ब्रिटिश पार्लिमेंटको ऐसे कानून बना देनेके लिये दबा रहे हैं जिसके द्वारा भारतीयोंके नागरिक अधिकारकी रक्षा हो सके, क्योंकि रौलट ऐक्ट और नागरिक अधिकार दोनों विरोधी बातें हैं और एक साथही दोनों कानूनकी सूचीमें नहीं रह सकते। नागरिक अधिकारकी घोषणा कानूनन हम लोगोंके अधिकारकी सत्ता स्वीकार करती हैं और रौलट ऐक्ट उसके नाशके लिये बनाया गया है।

क्या इस घोषणासे हमारी स्वतन्त्रताकी रक्षा हो सकेगी? मैं अधिकारकी घोषणाका महत्व स्वीकार करता हूं पर जिस तरहसे यह निस्पन्न किया जा रहा है उसके मायाजालमें मैं फंसनेवाला नहीं हूं। यदि उसपर आचरण करनेके लिये मजबूर करनेकी हमारे हाथमें ताकत नहीं है तो इस तरहकी घोषणाका हमें कुछ भी लाभ नहीं है। जब तक कि हम साहसी और निर्भीक न हो जायं किसी तरहके अधिकारकी घोषणा हमे स्वतन्त्रता नहीं प्रदान कर सकती। यह हो सकता है कि कानूनोंका निर्माण इतनी तेजीके साथ हो कि वह शासन व्यवस्थाके कहीं आगे बढ़ जाय। ब्रिटनका इतिहास प्रमाण है। अपने कानूनों और शासन व्यवस्थामें समता लानेमें अंग्रेजोंको प्रांय: ५०० वर्ष लगे। मगना कार्टा (१२१५) पेटिशन आफ राइटस (१६२८) ग्राण्ड रिमांस्ट्रेंस (१३४१) बिल आफ राइट्स-(१६८६) आदि कानून अंग्रेजोंके ५०० वर्ष की लगातार उन्नतिके

प्रयत्नके साक्षी हैं। इन प्रत्येक कानूनोंका महत्व इसलिये नहीं है कि उन्होंने अपनेके पहलेके कानूनोंमें कुछ न कुछ बढ़ाया बल्कि इसलिये कि इनमें पहलेके प्रत्येक कानूनके शब्दोंका समर्थन किया गया था। राजाके बाद राजा होते गये जिन्होंने अपने प्रजाके अधिकार पर हस्तक्षेप किया पर जनताके बीच ऐसे ऐसे साहसी वीर निकलते गये जिन्होंने इन प्रतिरोधोंका सामना किया, इनसे संग्राम किया और हेबियस कार्पस ऐक्ट प्राप्त करनेमें सफलता प्राप्त की। शारीरिक स्वतन्त्रताके लिये उतने अधिक काल-की प्रतीक्षा हमें नहीं करनी पड़ेगी। पर यदि हम स्वत-न्त्रताके प्रधान सिद्धान्तोंको अपने हृदयोंपर दृढ़ रूपसे अङ्कित कर लेना चाहते हैं तो हमें इस तरहके संग्राम और त्याग अवश्य करने पड़ेंगे। इसलिये इस तरहकी तैयारीपर उस घोषणासे हम अधिक जोर देना चाहते हैं और उसे अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुरका सन्देश

(अप्रेल १३, १९२०)

पंजाबमें कानूनके नामपर घोर अत्याचार किया गया है। पापियोंके इस तरहके उत्पात उनके अन्तर्गत सिद्धान्तोंकी दुर्बलताके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। जो विश्वव्यापी भीषण युद्ध विगत चार वर्षोंसे ईश्वरकी पवित्र सृष्टिको अग्नि और विषसे नाश करता आया है उसीका भीषण परिणाम यह जलियांवाला बागकी दुर्घटना है। जो रक्तकी नदियां बहाई गई हैं, जो पापाचरण मनुष्यताके नामपर किये गये हैं उनसे उन लोगोंके मनमें—जिनके हाथमें शक्ति है पर जिनके प्रतिबन्धके लिये न तो हृदयमें दया है और न बाहर रोकनेवाली कोई शक्ति है—एक तरहकी कठोरताका जन्म हो गया है। अधिकार सम्पन्न शक्तिकी यह दुर्बलता—जिसने अपनी मशीन गनोंका प्रयोग निःशस्त्र और अनजान जनता पर किया, न्यायके नामपर झूठ मूठ परम पिताकी सन्तानपर असह्य अत्याचार किया, उनका अपमान किया और साथही अपने इस हेय और घृणित आचरणोंको एक क्षणके लिये भी नीच और पतित समझ कर पश्चात्ताप नहीं किया—का जन्म इसी विगत युद्धसे हुआ है, जिसमें मनु·

ष्यने अपनी आत्माको क्रूरताके साथ कुचला है, और सत्य तथा प्रतिष्ठाकी हत्या की है। सभ्यताकी नींवका यह आकस्मिक उजाड़, अनेक तरहके आन्दोलनोंको जन्म देगा जिसमें मानव जातिको इससे भी अधिक यातनाओंको सहनेके लिये तैयार रहना चाहिये। समताकी स्थापना सुदूरका प्रश्न है और इसका अनुभव, सन्धिसभामें बदलेकी जो चिनगारियां छिटकायी जा रही है, उनसे पूरी तरहसे हो रहा है।

ये विजयी शक्तियां अपनी आवश्यकताके अनुसार संसारके टुकड़े टुकड़े कर रही हैं। इसमें हमारा कोई हाथ नहीं है। हम लोगोंको यह जान लेना परम आवश्यक है कि जो लोग दीन दुःखियोंपर अत्याचार करते हैं केवल उन्हींका चारित्रिक पतन नहीं होता बल्कि जिसपर किया जाता है उसका भी चारित्रिक पतन होता है। यह जानकर कि पापाचरणसे हमें दण्ड नहीं भुगतना पड़ेगा, हम उस भीरुतापूर्ण कामको करनेके लिये प्रवृत्त हो जाते हैं तो हमारी हीनता है। पर उस मनुष्यके हृदयमें—जिसके ऊपर अत्याचार किये जाते हैं—क्रोध और क्षोभका भाव उदय होना और भी खराब है, जब वह जानता है कि हम इसका प्रतीकार नहीं कर सकते। जिस समय पशुबल, अपने असीम पराक्रमके दम्भमें आकर किसीकी आत्माको कुचल डालना चाहता है उस समय उस मनुष्यको साहस तथा दृढ़ताके साथ यह दिखला देना चाहिये कि उसकी आत्मा प्रबल है। अपने

हृदयमें बदलेके दूषित भावको जन्म देकर हम अपनी आत्माको कलंकित नहीं करेंगे और न अपने चरित्र बलका पतन करेंगे और न हम भयसे घबरायेंगे। वह समय आगया है जब न्याय और सत्यताके इजलासमें दुर्बलों और विजितोंकी डिग्री होगी।

जिस समय भाई अपने भाईका खून करके प्रसन्न होता है और उसके लिये अपनी बहादुरी तथा वीरताकी डींग मारता है, जब वह अपने क्रोधकी सिनाख्त रखनेके लिये उसके रक्तके दागको भूमि पर कायम रखना चाहता है उस समय ईश्वर मारे शर्मके उस धब्बेको अपनी उदार छायाके नीचे छिपा लेता है। आइये! हम लोग भी जिनके घरोंमें खूनकी नदियां बहाई गई हैं, निर्दोषोंके प्राण लिये गये हैं, उसी परमात्माकी उदारताको स्मरण करके इस रक्तके काले धब्बेका अपनी प्रार्थनारूपी चद्दरसे ढंक दें:—

रुद्र! यत्ते दक्षिणम् मुखम् तेन माम् पाहि नित्यम्।
अर्थात् हे रुद्र! अपनी असीम कृपासे हम लोगोंकी सदा रक्षा करता रह।

सच्ची कृपाकी वर्षा वही रुद्र करता है जो भयकी प्रखर ज्वालामें वेदना और मृत्युके भयसे हमारी आत्माकी रक्षा करता है और यदि हमारे ऊपर कोई अत्याचार करता है तो उसके लिये प्रतिहिंसाके भावसे हमारी रक्षा करता है। इसलिये हमें उससे शिक्षा लेनी चाहिये, यद्यपि अपमानके घाव अभी तक ताजे हैं। जो लोग अपने मनको दूषित और कलंकित रखना चाहते

हैं वे अपने मनपर प्रतिहिंसा और क्रोधके भावके बोझ लाद दें पर हमें अपनी भावी सन्ततिके सामने वही स्मारक रखना चाहिये जिसकी हम उपासना कर सकते हैं, अर्थात् हमें अपने पूर्वजोंका अतिशय अनुगृहीत होना चाहिये जिन्होंने हमारे लिये बुद्धका आदर्श रख दिया है जिसने आत्माको जीता, क्षमाकी शिक्षा दी और प्रेमका साम्राज्य स्थापित किया।

द्वितीय खण्ड समाप्त

तृतीय खण्ड

खिलाफतकी समस्या

जन्माष्टमी।

आम तौरपर लोगोंका ख्याल है कि धर्म तो केवल कमजोर लोगोंके लिये है। अधिकसे अधिक उसका काम एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्तिके बीच पड़ता हो। पर राज्य और सम्राट् तो धर्मातीत हैं। वे जो करें वही धर्म है। साम्राज्य-शक्ति धर्मसे परे है। व्यक्तियोंका पुण्य क्षीण हो सकता है, पर साम्राज्य तो अलौकिक वस्तु है। ईश्वरकी विभूतिसे साम्राज्यकी शक्ति श्रेष्ठ-तर है। साम्राज्य जब विजयकी पताका लेकर घूमता है तब ईश्वर दिनके चन्द्रमाकी तरह न जाने कहां छिप जाता है।

मथुरामें कंसकी यही भावना थी। मगध देशमें जरासंध भी यही सोचता था। चेदिराज शिशुपालको भी यही मनोदशा थी। जलाशयमें रहनेवाला कालिय नाग भी यही मानता था। द्वारका पर चढ़ाई करनेवाले कालयवनका भी विश्वास इसी सिद्धान्तपर था। महापापी नरकासुरको भी इसके सिवा दूसरा कुछ न सुझाई देता था। और देहलीका कौरवेश्वर भी इसी धुनमें मस्त था। ये सब पराक्रमी राजा अंधे अथवा अज्ञान न थे। इनके दरबारमें इतिहासवेत्ता, अर्थशास्त्र-विशारद और राज्यकार्य-धुरन्धर अनेक विद्वान भी थे। वे सब अपने अपने शास्त्रोंका मनन करके उनका सार अपने अपने सम्राटोंको सुनाते थे। पर जरासंध कहता—"तुम्हारे इतिहासके सिद्धान्तोंको यों ही रखे

रहने दो। मैं अपने पुरुषार्थ, अपने बुद्धिबल, और बाहुबलसे तुम्हारे सिद्धान्तोंको असत्य सिद्ध कर दूंगा।" कालयवन कहता —"मेरा तो एक ही अर्थशास्त्र है। दूसरे देशोंको चूसकर उनका धन लूट लाना ही धनवान होनेका सबसे सीधा, सबसे सरल और इसीलिये प्रशस्त मार्ग है।" शिशुपाल कहता—"न्याय अन्याय-की बात तो प्रजाके आपसी झगडोंमें मानी जा सकती है। हम तो सम्राट ठहरे। हमारी तो जाति ही दूसरी है। राज्य प्रतिष्ठा, राज्यका गौरव, यही हमारा धर्म है।" कौरवेश्वर कहता— "संसारमें जितने रत्न हैं उन सबके वारिस हमी हैं। वह सब हमारे अधिकारमें आने चाहिये। 'यतो रत्नभुजो वयम्'। (क्योंकि हम तो रत्न भोगी ठहरे, रत्नोंका उपभोग करनेके लिये ही तो हम पैदा हुए हैं।) दुनियामें जितने तालाब है सब हमारे विहार करनेके लिये बनाये गये हैं। विना युद्ध किये किसीको सुईकी नोकके बराबर भी भूमि न देंगे।"

पक्षपात-शून्य नारदने कंसका चेताया भी था कि—"अरे तू बाहरके शत्रुओंको भले हो जीत सका हागा। पर तेरा सबसे जबरदस्त शत्रु तो तेरे साम्राज्यमे ही—साम्राज्य क्या घरमें ही— पैदा होगा। जिस सगी बहनसे तू दासीका तरह बर्ताव करता है उसीके पुत्रके हाथों तेरा नाश हागा, क्योंकि वह धर्मात्मा होगा। उसका तेजोबध करनेके लिये जितने प्रयत्न तू करेगा उन सबका उपयोग उसके अनुकूल ही होता जायगा।

कंसने सोचा (Forewarned is forearmed) चेतावनी

इतनी जल्दी मिली है। अब पानी आनेके पहले उसे रोकनेका प्रबन्ध न किया तो फिर मेरी इतिहासज्ञता किस काम की ? फिर मेरा सम्राट होना व्यर्थ है। नारदने कहा—यह तो तेरी 'विनाश काले विपरीत बुद्धिः' है। मैं जो कह रहा हूं यह इतिहासका सिद्धान्त नहीं है। यह तो धर्मका सिद्धान्त है। यह तो सनातन सत्य है। वसुदेव और देवकीके आठ अपत्योंमेंसे एकके हाथ तेरा विनाश-मरण निश्चित है। बस, तेरे लिये तो एक ही उपाय बच रहा है। अब भी पश्चात्ताप कर और श्रीहरिकी शरण जा। अभिमानी कंसने तिरस्कारकी हंसी हंसकर जवाब दिया—"सम्राट समरभूमिमें पराजय पानेपर ही पश्चात्ताप करते हैं।" नारद 'तथास्तु' कहकर चल दिये। कंसने विचार किया, दूसरे सम्राटोंको जो अभीतक विजय न मिली इसका कारण था उन्हींकी गफलत। उन्होंने यह अच्छी तरह नहीं समझा था कि पूरी तरह सावधान किस तरह रहना चाहिये। अगर मैं भी उन्हींकी तरह गाफिल रहूं तो मुझे भी शिकस्त खानी पड़ेगी। पर इसकी कोई परवा नहीं। वीर लोग तो हमेशा जयके लिये प्रयत्न करते हैं और मौका पड़नेपर पराजयके लिये भी तैयार रहते हैं। मैं हारा तोभी वह कोई बुरी बात नहीं है। पर धर्मके डरसे हार खाना ता नामर्दी है। धर्मका साम्राज्य तो साधु, संत वैरागी और पुजारी ब्राह्मणोंके लिये ही मुबारक हो। मैं तो सम्राट हूं। मैं केवल शक्तिको ही जानता हूं।

कंसने बड़ी निर्दयताके साथ वसुदेवके सात नन्हें बच्चोंका

खून किया। पर कृष्णजन्मके समय ईश्वरी लीलाकी विजय हुई। कृष्ण परमात्माके बदले कन्या-देहधारिणी शक्ति कंसके हाथ लगी। कंसने उसे जमीनपर पछाड़ा। पर शक्तिसे कहीं शक्ति थोड़े ही मरनेवाली थी। वसुदेवने श्रीकृष्णका गोकुलमें रखा था। पर परमात्माको कोई बात छिपकर तो करनी ही न थी! उन्हें किसी बातके खुले आम करनेसे कौन डर था? शक्तिने लज्जित कंसको अट्टहास करके कहा 'तेरा शत्रु तो गोकुलमें दिन-दूना और रात-चौगूना बढ़ रहा है।' मथुरासे गोकुल वृन्दावन बहुत दूर नहीं, शायद चार-पांच कोस भी न हो। कंसने कृष्णको मारनेके लिये एक भी प्रयत्न उठा न रखा। पर उसे यही न मालूम हुआ कि कृष्णका मरण किस बातमें है? कृष्ण अमर तो थे ही नहीं। पर मरणाधीन भी न थे। धर्म-कार्य करनेके लिये वे आये थे। जबतक धर्मका राज्य स्थापित नहीं होता तबतक उन्हें विराम कहांसे मिलने लगता? कंसने सोचा कि श्रीकृष्णको अपने दरबारमें बुलाकर ही मार डालूं। पर उसकी बाजी वहीं बिगड़ी, क्योंकि प्रजाने परमात्मतत्वको पहचान लिया था। वह उसके अनुकूल हो गई।

कंसका नाश देखकर जरासंधको चेतना चाहिये था। पर जरासंधने सोचा कंससे मैं अधिक सावधान और दक्ष हूं। अनेक भिन्न भिन्न अवयवोंको जोड़कर मैंने अपने साम्राज्यको प्रबल बनाया है। मल्ल-युद्धमें मेरी बराबरी दूसरा कौन कर सकता है? मेरी नगरीका कोट दुर्भेद्य है। मुझे किसका डर हो

सकता है ? पर जरासंधके भी दो टुकड़े किये गये। कालिय नाग तो अपने जलाशयको सबसे अधिक सुरक्षित मानता था। उसका विष असह्य था। केवल फूत्कार मात्रसे बड़ी बड़ी सेनाओंको मार सकता था, पर उसकी भी कुछ न चली। कालयवन चढ़ाई करके आया। पर वह बीचमें ही निद्रित मुचकुन्दकी क्रोधाग्निका शिकार होकर जल मरा। नरकासुर एक स्त्रीके ही हाथ मारा गया; कौरवेश्वरका नाश द्रौपदीकी क्रोधाग्निमें पतङ्गवत हो गया और शिशुपालको उसकी भगवत-निन्दाने मिट्टीमें मिला दिया।

ये छःहों सम्राट् उस समय षड् रिपुकी तरह मारे गये। सप्तलोक और सप्तपाताल सुखी हुए और जन्माष्टमी सफल हुई। तथापि हम अब भी हरसाल इस उत्सवको क्यों मनाते हैं ? इसीलिये कि अभी तक हमारे हृदयमेंसे उन षड् रिपुओंका नाश नहीं हुआ है। वे हमें बड़ी तकलीफ दे रहे हैं। हम नष्ट प्राय हो गये हैं। इस समय हमारे हृदयमे श्रीकृष्णचन्द्रका जन्म होना चाहिये। 'जहां पाप है वहीं पाप-पुंज-हारी भी हैं' इस आश्वासनका उदय हमारे हृदयमें होना चाहिए। जब मध्यरात्रके अन्धकारमें श्रीकृष्णचन्द्रका उदय हो तभी निराशाग्रस्त संसारको आश्वासन मिलेगा और वह धर्मपर दृढ़ रह सकेगा।

खिलाफतकी तिथि

(अक्तूबर २२, १९१९)

भारतवर्षके इतिहासमें १७वीं अक्तूबर चिरस्मरणीय रहेगी। इतना भारी समारोह विना किसी उपद्रव और अशान्तिके बीत गया, यह स्मरणकर हृदय उत्फुल्ल हो जाता है, सञ्चालकोंकी प्रशंसा किये विना नहीं रह जाता और सत्याग्रहकी विजयपर एक पताका और फहराने लगती है। लोग धीरे-धीरे इस बातको समझने लग गये हैं कि किसी बड़ी बातको हासिल करनेके लिये हिंसा उतनी लाभदायक नहीं हो सकती जितनी अहिंसा और शान्ति। जिस समय सरकारको यह भलीभांति विदित हो जायगा कि लोग उसके सैन्यबलकी परवा नहीं करते, उससे डरते नहीं, उसी समय उसे अपनी सेना निरर्थक और निष्प्रयोजन प्रतीत होने लगेगी। सैन्यबलके भयसे वे ही लोग बरी हो सकते हैं जो लोग उसका प्रयोग स्वयं अपने लिये नहीं कर सकते। अधिकार सम्पन्न लोग प्रजाकी ओरसे थोड़ी बहुत हिंसा चाहते हैं। सरकारकी सारी चतुरता इसोमें भरी है कि वह तुरन्त बलप्रयोगसे जनताके दमनका प्रबन्ध कर देती है। सरकारकी उपयोगिता तभीतक समझी जाती है जबतक वह अपना कार्य प्रजाकी राय और अनुमतिसे चलाती है। पर

जिस समयसे वह बलप्रयोग द्वारा प्रजाके दबानेकी चेष्टा करने लगती है उसी समयसे उसकी उपयोगिता घट जाती है। इसलिये जिस समयसे प्रजा बलप्रयोगसे निर्भय हो जाती है उसी समयसे दमनशक्ति भी उठा दी जाती है। और इसीको सत्याग्रह कहते हैं अर्थात् अनेक तरहकी कठिनाइयोंका सामना करते रहने पर भी सत्यपर अड़े रहना, चाहे वे कठिनाइयां सरकारके पशुबलके प्रयोगके कारण आ उपस्थित हुई हों अथवा बिना किसी सोच विचारके जातीय अत्याचारसे आई हों।

खिलाफतके सञ्चालकोंने इस सिद्धान्तको भलीभांति समझ लिया था। यदि उन्होंने किसी तरह सीधे या प्रकारान्तरसे हिंसाकी प्रवृत्ति दिखलाई होती, या किसी प्रकार जलसेके कारण हिंसा हो गई होती तो अधिकारियोंकी अभिलाषा पूरी कर दी गई होती। जिस शान्तिके साथ १५ अक्तूबरका जलसा बीत गया उससे इस्लामकी मांगको बड़ी सहायता मिली है। और यदि पुलिसके प्रबन्धका अनुमान बम्बई शहरके अनुसार करें तो हमें पुलिस कर्मचारियोंको भी इसके लिये धन्यवाद देना चाहिये, क्योंकि बम्बई तथा अहमदाबाद दोनोंही स्थानोंमें जनताकी रोकटोक और नियन्त्रणके लिये खास पुलिसका प्रबन्ध नहीं किया गया था। बलप्रयोगके सारे साधन गायबसे थे। अतिरिक्त सेना या सैनिकको देखकर प्रायः लोगोंका दिमाग खौलने लगता है। खिलाफतके सञ्चालकोंने सार्वजनिक सभाकी व्यवस्था न कर और भी बुद्धिमानीका काम किया,

क्योंकि इससे मूर्ख और उद्धत प्रकृतिके लोगोंका जमाव हो जाता है जिनसे हानि पहुंचनेकी सम्भावना रहती है। खिलाफतका प्रश्न अतिगहन है। गुप्त सन्धियों द्वारा इसे और भी जटिल बना दिया गया है। पर अभीसे निराश हो जानेका कोई कारण नहीं है। जिन आठ करोड़ आदमियोंका पक्ष समर्थन करनेके लिये न्याय खड़ा है वे अपनी सत्ता कहीं भी प्रमाणित कर सकते हैं। इसलिये मुसलमान भाइयोंको केवल अपनी शक्तिको सञ्चय करना है। विगत शुक्रवारका समारोह यद्यपि बहुत ही वृहत् था पर उसकी सत्ता क्षीण होकर गायब हो सकती है यदि लगातार प्रयासद्वारा उसकी पुष्टिकी व्यवस्था नहीं की जायगी। सरकारको मुसलमानोंके आन्तरिक भावोंको अवश्य समझ जाना चाहिये और इस बातका पता सरकारको देनेका एकमात्र तरीका यही है कि हृदयके भाव जितने बलवान या भीषण हों उतनी ही यातना सहनेके लिये तैयार हो जाना और उसीके द्वारा सरकारको अपनी मन्शाका पता दे देना चाहिये। यदि ब्रिटिश साम्राज्यका मन्त्रिमण्डल इस जटिल और विकट प्रश्नको सुलझाना चाहता है तो इस तरह पढ़े लिखे लोकमतके अनवरत प्रयत्नसे उसे सहायता मिलती रहेगी। पर इस काममें किसी तरहका दिखाव, बनावटीपन या शोरगुल नहीं होना चाहिये। शान्तिपूर्वक सच्चे दिलसे काम करते रहना चाहिये।

अनेक स्थानोंपर इस अभिप्रायके प्रस्ताव पास किये गये कि

यदि खिलाफतके प्रश्नपर न्यायसे विचार नहीं किया गया और मुसलमानोंकी धार्मिक स्पर्धाके अनुसार निर्णय नहीं किया गया तो मुसलमान लोग विजयोत्सवमें कभी भी भाग न लेंगे। यह बहुत उचित है। पर यदि यह सर्वसाधारणका मत है तो इस पर पूर्णशक्तिके साथ जोर देना चाहिये न कि दबी जवानमें इधर उधरसे दो चार शब्द निकल आने चाहिये।

कितनोंने वहिष्कारका प्रश्न भी उठाया था। इस विषयमें हमने अपना दृढमत प्रगट कर दिया है। वहिष्कारमें हमारा विश्वास नहीं है क्योंकि इससे असद्भाव उत्पन्न होता है और इसका असर भी बहुत अच्छा नहीं होता। जिन्हें सरकारके वहिष्कारका साहस नहीं है वेही ब्रिटिश मालके वहिष्कारकी योजना करेंगे। यदि सरकारके वहिष्कारकी योजना की जाय तो हम उसके समर्थनमें कभी भी पीछे न रहेंगे पर वहिष्कारसे राजविद्रोह टपकता है। राजभक्ति कोई दृढ़ पदार्थ नहीं है। यह आपसका समझौता है। जो सरकार प्रजाके अनुरक्त है वह स्वभावतः प्रजामें राजभक्तिकी पूर्णता देखेगी। यदि हमारी सरकार हमसे विरक्त हो जाती है अर्थात् जब वह बदनियत और जालिम हो जाती है तो विना किसी सोच विचारके हमें उसकी राजभक्तिसे मुंह मोड़ लेना चाहिये और उसके साथ हर तरहके सहयोगसे हाथ हटा लेना चाहिये और दूसरोंको भी ऐसा ही करनेकी मन्त्रणा देनी चाहिये। यदि आवश्यकता प्रतीत हो तो हमें इसी तरहके वहिष्कारकी योजना

करनी चाहिये। पर जब तक हम ब्रिटिशके साथ संबन्ध रखना चाहते हैं तब तक ब्रिटिश मालका वहिष्कार हमारी समझमें औवल दर्जेकी भूल और बेवकूफी होगी।

हमारे मुसलमान भाइयोंकी मांग इतनी जबर्दस्त है कि वहिष्कारके समान द्विविधा जनक परिणामवाले शस्त्रके प्रयोगसे उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। उनके साथही साथ सारा संसार अब इस बातको जानने लग गया है कि अब यह प्रश्न (खिलाफतका प्रश्न) केवल ८ करोड़ मुसलमानोंका ही प्रश्न नहीं रह गया है बल्कि २२ करोड़ हिन्दू भी इस बातके लिये मुसलमानोंके साथ हैं। १७ अक्तूबरने दिखा दिया है कि हिन्दू मुसमानोंका मेल वास्तवमें मेल है और यह दिन दिन फूलता फलता तथा वृद्धि पाता जा रहा है और ग्रेट ब्रिटन अथवा मित्रदल भारतकी इस संयुक्त शक्तिकी किसी प्रकार उपेक्षा नही कर सकते।

खिलाफत कांफरेंस

(दिसम्बर ३, १९१९)

अखिल भारतवर्षीय खिलाफत कांफरेन्सकी संयुक्त सभामें सभापतिका पद ग्रहण करके २४ नवम्बरको दिल्लीमें महात्माजीने निम्न लिखित भाषण दिया था :—

इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं कि उस प्रश्नमें—जिसका फलाफल केवल मुसलमानोंके स्वार्थके लिये है—हिन्दू भी मुस लमानोंके साथ कन्धामें कन्धा लगाये खड़े हैं। मित्रताकी सच्ची पहचान विपत्ति है। जो मित्र विपत्तिके समय काम नहीं आया वह मित्र किस बातके लिये है? इसलिये यदि हम भारतवर्षके हिन्दू, मुसलमान, पारसी जैन, ईसाई, बुद्ध एक राष्ट्रीयताकी शृङ्खलामें बंधकर रहना चाहते हैं तो हमें प्रत्येकके स्वार्थको सार्वजनिक रूप देना होगा, प्रत्येकके स्वार्थको अपना समझना होगा। इसके लिये केवल एक कसौटी होगी और वह यह कि अमुककी मांग न्यायोचित है या नहीं। मुसलमानोंकी मांग न्याय संगत है इसके साक्षी ब्रिटनके प्रधान मन्त्री और पुराने सरकारी कर्मचारियोंका दल है। हम लोग हिन्दू मुसल-मानोंकी एकताकी बात करते हैं। पर यह मैत्री केवल दिखौआ मैत्री होगी, इसके भीतर पोल या खोखलापन होगा यदि हिन्दू लोग मुसलमानोंके संकटके समय किनारा कसकर उनसे अलग हो जायंगे। कुछ लोगोंका कहना है कि हम मुसलमानोंका साथ कुछ शर्तों पर दे सकते हैं। शर्त लगी हुई सहायता बनावटी सिमेण्ट मिट्टी-की तरह होती है जो मजबूतीसे जम नहीं सकती और जल्दी ही उखड़ जाती है। इसलिये केवलमात्र प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सहायताका क्या रूप होना चाहिये। खिलाफत कांफरेन्सने निर्णय किया है कि आगामी विजय उत्सवमें मुसलमान लोग

किसी तरहका भाग न लेंगे। मेरी समझमें उनका यह निर्णय नितान्त उचित और उपयुक्त हुआ है। जबकि भारतकी चौथाई जनताके भाग्यका निपटारा अभी तक नहीं कर दिया गया है तो भारतवर्षके लिये विजयोत्सवका क्या अर्थ रहा। खिलाफत सम्बन्धी सन्धिकी शर्तों से ८ करोड़ मुसलमानोंका घना सम्बन्ध है। जब तक खिलाफतका प्रश्न कच्चे धागेमें बंधा लटक रहा है तबतक उन्हें विजयोत्सव मनानेके लिये कहना अनुचित है। जिस तरह अलसेस लारेंसके प्रश्नका निपटारा किये विना फ्रांस-को विजयोत्सव मनानेके लिये कहना असाधारण घटना होती उसी प्रकार खिलाफतके प्रश्नका निपटारा किये विना भारतवर्षको विजयोत्सवमें भाग लेनेके लिये कहना भूलसे भरा है। तुर्की भारतके बाहर है यह कहनेसे इस प्रश्नपर किसी तरहका असर नहीं पहुंचता। इङ्गलैण्डकी शक्ति जितना ईसाइयोंपर निर्भर है उतना ही हिन्दू और मुसलमानोंपर निर्भर है। इसलिये यदि भारत-वर्ष साम्राज्यका हिस्सेदार हो सकता है तो मुसलमानोंकी रक्षा-की उतनी ही आवश्यकता है जितनी अन्य किसीकी। इसलिये बड़े लाटके लिये यही उचित होगा कि जबतक खिलाफतके प्रश्नका निपटारा नहीं हो जाता वे भारतमें विजयोत्सवकी योजना न करें।

ब्रिटनकी इज्जतपर धब्बा

यह प्रश्न ऐसा है जिससे ब्रिटनकी इज्जतपर धब्बा लग सकता है क्योंकि प्रधान मन्त्रीने मुसलमानोंको वचन दे

रखा है। यदि वह मर्यादा कलङ्कित हो गई तो समृद्धि, शक्ति और सैनिक क्षमता तथा व्यक्तित्व किस काम को ? इसलिये जिस समय मैंने रूटरके तारसे प्रधान मन्त्रीके भाषणका सारांश पढ़ा मुझे अत्यन्त खेद हुआ क्योंकि इससे मुसलमानोंकी आत्मापर कड़ी चोट पहुंची और इस बातकी आशङ्का हो गई कि प्रधान मन्त्रीने बड़े सोच समझके बाद जो वचन मुसलमानोंको दिये थे और जिससे आशान्वित होकर मुसलमानोंने पानीकी तरह अपना खून बहाया था और असीम राजभक्तिका परिचय दिया था, अब उसीके खिलाफ निर्णय किया जायगा अर्थात् उस वचनके पालनकी चेष्टा न की जायगी। पर मैं अभीसे निराश नहीं हो गया हूं। मुझे पूर्ण आशा है कि अबभी बुद्धिमानी और दूरदर्शितासे काम लिया जायगा और मुसलमानोंकी मांगोंपर समुचित ध्यान दिया जायगा। यदि खिलाफतका प्रश्न उचित तरहसे हल न किया गया तो खिलाफत कमेटी असहयोगकी योजना करेगी। विषय निर्धारिणी सभा तथा साधारण सभा दोनों अवसरोंपर मुझे उपस्थित रहनेका सौभाग्य प्राप्त था। मैं इस अवसर पर सरकारको सचेत कर देना अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि यह अवस्था बहुत ही गम्भीर है और यह समस्या अति विकट है। खिलाफत कमेटीने जो निर्णय किया है वह भी साधारण निर्णय नहीं है। मैं जानता हूं कि असहयोग करना साधारण बात नहीं है। इसमें यातना सहनेकी योग्यता होनी चाहिये। मैं यह भी जानता हूं कि यदि प्रजा समझ ले कि सरकारके साथ

सहयोग करनेमें हमारा पतन है तो वह सहयोग तुरन्त उठा ले। सरकारकी कार्रवाइयोंपर नाराजी जाहिर करनेका यह सबसे प्रधान उपाय है।

बहिष्कार।

बहिष्कारसे सरकारकी आंखें कदाचित खुलें। वह स्थिति-की भीषणताका कुछ अनुमान कर सके। पर असहयोग करके फिर बहिष्कारका प्रश्न उठाना तो पहाड़ पर चढ़कर फिर गड्ढे में कूदनेके बराबर है। कल रातको बहुमतसे यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि यदि खिलाफतके प्रश्नका निपटारा सन्तोष-जनक न हो तो ब्रिटिश मालका बहिष्कार भी जारी कर दिया जाय। बहिष्कार एक प्रकारकी प्रतिहंसा है और यदि इसके द्वारा हम लोग अपने साथ न्याय करना चाहें तो हमें इसके द्वारा संसारका मत अपने पक्षमें तैयार करना होगा। मैं यह बात दृढ़तासे कह सकता हूं कि ब्रिटिश मालके बहिष्कारसे तथा उसके स्थानपर अन्य विदेशकी बनी वस्तुओंके प्रयोगकी योजनासे कोई भी लाभ नहीं हो सकता बल्कि व्यवहारमें तो यह चल ही नहीं सकता। इसके अतिरिक्त जिस तरीकेका बहिष्कार किये जानेकी योजना की गई है उससे हमारी कमजोरी झलकती है। सभी प्रश्नोंपर सफलता पूर्वक विचार करनेके लिये हमें बलकी आवश्यकता है न कि कमजोरीकी। इसलिये हमें पूर्ण आशा है कि खिलाफत कमेटी हमारे कथनपर पूर्ण विचार करेगी और

पूर्वापर परिणामपर पूर्ण विचार कर लेनेके बाद अपना कदम पीछे हटा लेगी और वहिष्कारके प्रस्तावको रद्द कर देगी। इस महान् प्रश्नपर विचार करनेके लिये शान्ति, धैर्य्य तथा प्रत्यक्ष प्रमाणकी आवश्यकता है। केवल हिंसाका निवारण ही पर्याप्त नहीं है। हिंसापूर्ण भाषणका भी उतना ही प्रभाव पड़ता है जितना हिंसापूर्ण आचरणका। इसलिये मुझे पूर्ण आशा है कि आप लोग उतावलापनसे विना समझे बूझे कुछ बोल या लिखकर इस पवित्र तथा न्यायपूर्ण उद्देश्यको कलङ्कित न करेंगे।

पंजाबके अत्याचार

यहीं पर एक और विषयपर दो चार शब्द कह देना उचित होगा। कुछ मित्रोंका कथन है कि पंजाबपर किये गये अत्याचारके कारण भी हमें विजयोत्सवमे भाग नहीं लेना चाहिये। मैं इस विषयमें अपने उन मित्रोसे मतभेद रखता हूं। पञ्जाबका प्रश्न घरेलू प्रश्न है। वह कितना भी भीषण क्यों न हो पर उसे साम्राज्यके मुकाबिले खड़ा करना उचित नहीं। इसलिये पञ्जाबके प्रश्नको लेकर साम्राज्यके विजयोत्सवमें भाग न लेना और उससे असहयोग करना हमारी अदूरदर्शिता कहलावेगी। दूसरे पंजाबके अत्याचारसे और सन्धिकी शर्तोंसे किसी तरहका सम्बन्ध नहीं है पर खिलाफतका प्रश्न उससे घना सम्बन्ध रखता है। यदि हम खिलाफतके प्रश्नको उचित महत्व और मूल्य देना चाहते हैं तो हमें इस प्रश्नको और प्रश्नोंके साथ

मिलाना नहीं चाहिये। इसलिये हमें विजयोत्सवका वहिष्कार केवल उन कारणोंसे करना चाहिये जिनका सीधा सम्बन्ध सन्धिकी शर्तोंसे है और जिनसे हमारी राष्ट्रीयताके भावोंपर कड़ी चोट पहुंचती है। अन्य कारणोंको लाकर इसमें जुटाना उचित नहीं। खिलाफतका प्रश्न इन दोनों ही आवश्यकताओंको पूरा करता है इसलिये उसके आधारपर ही विजयोत्सवका वहिष्कार हो सकता है।

खिलाफत।

(जनवरी २८, १९२०)

आज खिलाफतका प्रश्न, अर्थात् तुर्कोंके साथ सन्धिकी शर्तोंका प्रश्न सबसे प्रधान प्रश्न हो रहा है। हम लोग बड़े लाट महोदयके अतिशय कृतज्ञ हैं कि असाधारण देर हो जाने पर तथा भिन्न भिन्न प्रान्तके प्रधान अधिकारियोंसे मिलनेमें व्यस्त रहने पर भी उन्होंने संयुक्त डेपुटेशनसे बातचीत करना स्वीकार किया। जिस उदारतासे उन्होंने डेपुटेशनका स्वागत किया तथा जिस सौजन्यताके साथ बातचीत की उसके लिये भी हम लोग उनके आभारी हैं। सौजन्यता सदा—और विशेषकर इस समय—आदरणीय है पर इस भयानक स्थितिमें केवल सौजन्यतासे ही काम

नहीं चल सकता। एक बात और है। उस सौजन्यताकी ओटमें तुर्कोंको दण्ड देनेकी दृढ़ता झलक रही थी। पर यह एक ऐसी घटना है जिसे मुसलमान स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं हैं। युद्धसे जो परिणाम निकला है उसका श्रेय मुसलमान सैनिकोंको भी सबके बराबर है। जिस समय तुर्कोंने जर्मनीका साथ देना निश्चय कर लिया उस समय इन्हीं भारतीय मुसलमान सैनिकोंको प्रसन्न करनेके लिये उस समयके प्रधान मन्त्री मिस्टर आस्क्विथने कहा था :—"ब्रिटिश सरकार तुर्कोंके साथ किसी तरहका मनोमालिन्य नहीं रखती और तुर्कोंकी कमेटीके इस निर्णयके लिये वह सुल्तानको किसी तरहका दण्ड नहीं देगी।" इस वचनके आधार पर बड़े लाटके उत्तरकी परीक्षा करनेसे उसे केवल असन्तोष जनक और निराशापूर्ण ही नही कहेंगे बल्कि सच्चाई और न्यायसे रहित भी कहेंगे।

ब्रिटिश साम्राज्य किससे बना है? इसमें ईसाईयोंका जितना हक है हिन्दू और मुसलमानोंका भी उतना ही हक है। यदि वह प्रजाकी धार्मिक आस्थाके प्रति उदासीनता दिखलाता है तो यह उसका गुण नहीं कह सकते क्योंकि ऐसा न करनेके लिये वह बाध्य है और इसके अतिरिक्त उसे कोई भी उपाय नहीं है जिससे साम्राज्यका संगठन दृढ़तर रह सके। इसलिये मुसलमानोंके स्वत्वोंकी रक्षाका भार ब्रिटिश मन्त्रियोंके ऊपर उतना ही है जितना अन्य किसीका। अथवा मुसलमान प्रतिनिधियोंके शब्दोंमें कि ब्रिटिश मन्त्रियोंको इस प्रश्नको अपना समझकर उठाना होगा। यदि मुसलमानोंकी

बातें न सुनी गईं, यदि उनके मन्तव्योंकी हार हुई तो फिर बड़े लाटका शान्ति परिषद्में मुसलमानोंके मन्तव्योंको भेजना न भेजना, उन पर ज़ोर देना और न देना बराबर रहा। यदि मुसलमानोंकी असफलता रही तो वे निश्चय यही सोचेंगे और कहेंगे कि ब्रिटनने अपने वचनका पालन न कर अपना कर्त्तव्य नहीं निबाहा। बड़े लाटका उत्तर इस मतकी पुष्टि करता है। बड़े लाटने अपने उत्तरमें—जो उन्होंने डेपुटेशनके सदस्योंको दिया था, कहा था—यदि तुर्कोंने जर्मनीका साथ देनेकी भूल की है तो उसके लिये उसे दण्ड भोगना नितान्त आवश्यक है। यह स्पष्ट है कि बड़े लाट महोदय ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीके ही भावोंको ग्रामोफोनकी चूड़ीकी तरह दोहरा रहे हैं। मुसलमानोंकी तरफसे उत्तर देते समय जिस बातकी आशा झलकाई गई है उसीका समर्थन करते हुए हम भी ज़ोर देकर कहते हैं कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल अपनी भूलोंको अभीसे सुधार लेगी और तुर्कीके प्रश्नका इस प्रकार निपटारा करेगी जिससे भारतीय मुसलमानोंका मन शान्त हो जाय।

मुसलमानोंकी मांगे क्या हैं? मुसलमान लोग चाहते हैं कि खलीफाका पद सुरक्षित कर दिया जाय और अरबपर तथा अन्य मुस्लिम पुण्य (तीर्थ) क्षेत्रोंपर तुर्कोंका राज्य सुरक्षित कर दिया जाय। साथ ही खलीफाके राज्यके अन्तर्गत मुसलमानोंके अतिरिक्त जो जातियां निवास कर रही हैं उनकी रक्षाका पूरा और समुचित प्रबन्ध कर दिया जाय तथा यदि अरबके

निवासी स्वतन्त्र होना चाहते हैं तो उन्हें होमरूल दे दिया जाय पर उनपर अधिकार तुर्कोंका रहे। मुसलमानोंकी मांग इससे बढ़कर न्यायपूर्ण नहीं हो सकती। इस मांगके साथ न्याय है, ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीकी घोषणा है और समस्त हिन्दू तथा मुसलमानोंका मत है। जिस हकका प्रतिपादन इतने बल पर किया जा रहा है, उसे स्वीकार न करना या उसमें किसी तरहका मीन मेष लगाना भारी भूल होगी।
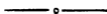
तुर्कीका प्रश्न

(फरवरी २०, १६२०)

मुसलमान नेतागण पूर्ण धैर्य और शान्ति पर पूर्ण योग्यताके साथ अपने मांगोंके याथातथ्य अर्थात् औचित्य और न्यायपूर्णता पर बराबर जोर देते आये हैं। उन्होंने भली भांति दिखला दिया है कि मुसलमानोंकी मांगें सर्वथा न्यायपूर्ण और उचित हैं तथा उनके लिये मुसलमान हर तरहके त्यागके लिये तैयार हैं। न्याय, राजनीतिक दूरदर्शिता तथा आन्तरिक प्रेरणा तीनों उनके पक्षमें है। दूसरे दलके कुछ लोग आत्मनिर्णयकी बातोंको तथा उसके सिद्धान्तोंको हवामें उड़ाकर तुर्कोंके किये पुराने कामोंका उद्घाटन कर रहे हैं? पर इस कार्रवाईका भी

उन्हें पर्याप्त उत्तर दे दिया जा चुका है। मिस्टर इमाम अली ने—जिनका ऐतिहासिक ज्ञान पराकाष्ठाको पहुंचा हुआ है और जिसे शत्रुदलके लोग भी स्वीकार करते हैं—लण्डन टाइम्सको एक पत्रमें लिखा था :—जिस समय तुर्को साम्राज्य-की अवस्था अति उन्नति पर थी उस समय उसने पश्चिमी यूरोपकी खासी मदद की थी। जिस समय हैप्सवर्गवालोंने फ्रांस-के नाकों दम लगा रखा था तुर्कोंने बराबर फ्रांसकी सहायता की है। यह १६वीं और १७वीं सदीकी बातें हैं। १८५७ में भारत-के गदरके दिनोंमें तुर्कोंने ब्रिटिश सेनाके जानेके लिये मिस्रका मार्ग खोल दिया था। मैसोरका राजा टिप्पू सुलतान अंग्रेजों-के साथके अपने संग्रामको धार्मिक रूप देना चाहता था। तुर्कोंके सुल्तान ही थे जिन्होंने इसको चरितार्थ नहीं होने दिया। यदि अनुसन्धान करके देखा जाय तो विदित होगा कि किसी भी जातिका इतिहास इतना उज्वल नहीं है।

उसी पुरानी बातोंके उद्घाटनमे एक बात और निकल आई है जो तुर्कोंको खण्डखण्ड करनेके लिये आगे रखी जा रही है। जो लोग तुर्कोंको टुकड़े टुकड़े कर डालनेके पक्षमें हैं उनका कहना है कि भूतमें कुस्तुन्तूनियांका पक्ष लेकर यूरोपीय राष्ट्रोंमे सदा अनबन रही है, मनोमालिन्य हुआ है। पर मनोमालिन्य-का क्या कारण था? किस लिये यह अनबन रही? क्या कुस्तुन्तूनियांकी रक्षाके लिये। मि० इमाम अलीने इसका उत्तर यों दिया हैः—क्या यह मनमोटाव और कलह कुस्तुन्तुनियांपर

अधिकार प्राप्त करनेके निमित्त नहीं था? प्रत्येक राष्ट्र यही चाहता था कि कुस्तुन्तूनियापर हमारा आधिपत्य हो। पर क्या जिस प्रकार इस प्रश्नका निपटारा किया जा रहा है उससे इस मनमोटाव और कलहके मिट जानेकी सम्भावना है? कदापि नहीं। यह काम केवल यूरोपसे हटकर पूर्वमें चला आयेगा। इसके अतिरिक्त क्या अन्तर्राष्ट्रीय आधिपत्य हर जगह सफल हुआ है? यहांपर मैं टैंगीरका उदाहरण दे देना चाहता हूं। मि० जी० ब्राउनने उसी प्रश्नको उनलोगोंके समक्ष रखा है जो तुर्कीको छिन्न भिन्न कर देना चाहते हैं। थोड़ी देरके लिये टैंगीरका प्रश्न दूर रख दीजिये और मिस्रको उठाइये जहां अंग्रेज और फ्रांसीसी दोनोंका युगपत् आधिपत्य हो रहा है। क्या इस प्रकारका युगपत् अधिकार किसी भी प्रकार सफलता प्राप्त कर सका है कि कुस्तुन्तूनियाँमें भी इसे आजमानेकी चेष्टा करें?"

इन सबोंके अतिरिक्त एक और कारण उपस्थित करके तुर्कीके छिन्न भिन्न करनेके पक्षपाती अपने मतका समर्थन करते हैं। कई प्रधान व्यक्तियोंके हस्ताक्षरसे अभी लण्डनके टाइम्स पत्रमें एक लेखमें इसका प्रतिपादन विचित्र तरीकेसे किया गया है। आरम्भमें ये लोग खिलाफतके सम्बन्धमें मुसलमानोंके भावोंकी प्रशंसा तथा समर्थन करते हैं। वे लिखते हैं:—यह देखना नितान्त आवश्यक है कि हम लोग कोई ऐसा काम नहीं करते जिससे उनलोगोंके दिलपर चोट पहुंचे

जो हमारे संयुक्त साम्राज्य तथा फ्रेंच साम्राज्यकी प्रजामें सबसे अधिक हैं। पर कुस्तुन्तुनियाको अन्तर्राष्ट्रीय बनानेके पक्षमें उन्होंने विचित्र दलीलें पेश की हैं। उन्हें पढ़कर उनकी राजनीतिक कुटिलताका पता चलता है। वे लोग मुसलमानोंको यह आशा दिलाकर शान्त करनेकी आशा करते हैं कि यह नगर राष्ट्रसंघका केन्द्र होगा और इससे इसका महत्व इतना अधिक बढ़ जायगा जितना आजतक संसारके किसी भी नगरको प्राप्त नहीं हो सका है। आजतक यह नगर एकमात्र सुलतानकी राजधानी थी। पर अब यह संसारकी शान्तिका केन्द्र हो जायगा। इसके अतिरिक्त इसे अन्तर्राष्ट्रीय बना देनेसे इसके भविष्य आधिपत्यका भी यहींसे निपटारा हो जायगा। गर्भस्थ बालक राष्टसंघके रहनेके लिये घर बनानेमें ये लोग इतने पागल हो गये हैं कि राष्ट्रीयताके प्रश्नपर इनका ध्यान ही नहीं जाता। भला यह कब संभव है कि इससे मुसलमानोंको शान्ति मिलेगी और वे इस व्यवस्थासे सन्तुष्ट होंगे। इस तरहका विचार मनमें लाना अन्याय है और अदूरदर्शिता पूर्ण है।

कुस्तुन्तुनियाको अन्तर्राष्ट्रीय बनानेके पक्षमें सबसे बड़ी बात यह कही जाती है कि राष्ट्रसङ्घके लिये इसमें घर बनेगा। पर राष्ट्रसङ्घ है क्या ? राष्ट्रसङ्घ एक ऐसी विलक्षण सम्पत्ति है जिसपर सबका अधिकार है पर वह स्वयं किसीसे सम्बन्ध नहीं रखता। अपने मतके समर्थनमें ये लोग अमरीकाका

उदाहरण पेश करते हैं और बतलाते हैं कि छोटे छोटे संयुक्त राज्योंने कोलम्बियाको अपनी बैठकके लिये उपयुक्त स्थान चुना था। पर प्रजातन्त्रकी घोषणाके बाद अमरीकाकी जो अवस्था थी उससे राष्ट्रसङ्घकी अवस्था एकदम भिन्न है। इसके अतिरिक्त मिस्टर अमीर अलीके शब्दोंमें हम भी उन महानुभावोंसे पूछते हैं कि आप लोग जरूसलमको क्यों नहीं यह श्रेय देते? राष्ट्रसङ्घकी राजधानी बनानेके हेतु तुर्कोंकी राजधानीको उसके हाथोंसे छीन लेनेके लिये जो दलीलें पेश की जा रहीं हैं, उनसे बढ़कर अनुचित और न्यायशून्य युक्ति संसारके इतिहासमें कहीं नहीं मिलेगी राष्ट्रसंघके बाद भिन्न भिन्न छोटे राज्योंके गुटसे बना साम्राज्य ग्रेट ब्रिटन है। तो क्या हमलोगोंने लण्डन नगरको इस संयुक्त राज्यकी राजधानी बनाकर इसको वही रूप दिया है जो हम कुस्तुन्तुनियाको राष्ट्रसङ्घकी राजधानी बनाकर देना चाहते हैं? क्या हमलोगोंने इसे भी प्रत्येक राज्यके लिये स्वतन्त्र कर दिया है? जो बात छोटे छोटे राज्योंके गुटमें संभव नहीं हो सकी उसे इतने भारी भारी राष्ट्रोंको गुटमें चरितार्थ करनेकी चेष्टा उद्दण्डतापूर्ण है और इसमें कभी भी हाथ नहीं डालना चाहिये। किसी प्राचीन राष्ट्रीयताका नाश करके इस तरहका प्रयास केवल अदूरदर्शितापूर्ण ही नहीं बल्कि अन्याय पूर्ण भी है।

हमारे मुसलमान भाइयोंकी उचित माँगपर जो इस तरहकी अनेक निरर्थक दलीलें पेश की गई हैं उनसे व्यक्त है कि उनके सामने बड़ा भारी बोझ पड़ा है।

—•—

प्रश्नोंका प्रश्न ।

——:*:——

(मार्च १०, १६१६)

महात्मा गान्धीने लिखा है :—

इस समय खिलाफतका प्रश्न. प्रश्नोंका प्रश्न हो रहा है। इस समय यह प्रश्न साम्राज्यके लिये सर्व प्रधान हो रहा है।

इङ्गलैण्डके प्रधान नीतिज्ञोंने तथा मुसलमान नेताओंने इस प्रश्नको उठाकर सबसे आगे रख दिया है। इङ्गलैण्डके नीतिज्ञोंने चैलेञ्ज दिया और मुसलमान नेताओंने इसका मुकाबिला किया।

मुझे पूरी आशा है कि भारतके हिन्दू इस बातको अच्छी तरह समझ गये होंगे कि खिलाफतका प्रश्न सुधार तथा इस तरहकी अन्य बातोंके भी ऊपर है।

यदि मुसलमानोंकी मांग केवल धार्मिक दृष्टिसे उचित होती और उसके समर्थनके लिये अन्य कोई कारण न होता तो कदाचित केवल धार्मिक दृष्टिसे उसका प्रतिपादन करना कठिन था। पर यदि कोई मांग उचित हो और उसका समर्थन धार्मिक ग्रन्थसे भी होता हो तो उसका महत्व और भी बढ़ जाता है।

संक्षेपमें मुसलमानोंकी निम्न लिखित मांगे हैं : यूरोपियन तुर्की तुर्कोंके हाथमें रहना चाहिये। तुर्क साम्राज्यमें मुसल-

मानोंके इतर जो जातियां हैं उनकी रक्षाका वे पूर्ण वचन देंगे। मुसलमानोंके धर्मक्षेत्रोंपर सुलतानका पूर्ण अधिकार रहे और जज़ीरतुल अरबपर भी सुलतानका पूर्ण अधिकार रहे अर्थात् अरबपर सुलतानका पूर्ण अधिकार रहे और यदि अरबके लोग इच्छा करें तो सुलतानके अधीन उन्हें होम रूल दे दिया जाय। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मिस्टर लायड जार्जने इसका वचन दिया था और भारतके भूतपूर्व बड़े लाट मिस्टर हार्डिञ्जको भी यही आशा थी। यदि इस तरहके दृढ़ विश्वास न दिलाये गये होते तो अपने ही पैरोंमें मुसलमान अपने ही हाथोंसे कुल्हाडी न मारे होते। तुर्कोंको अपने राज्यसे वञ्चित करनेके लिये युद्ध करने न गये होते। अरेबिया परसे खलीफाके अधिकारको उठा देनेके माने हैं खिलाफतको जड़मूलसे नष्ट कर देना।

नीति और उदारता यही कहती है कि उचित शर्तों और वचनोंपर तुर्कोंको वह सब प्रदेश दे देना चाहिये जो युद्धके पहले उसके अधिकारमें थे और उसको दण्ड देनेका बहाना करके उसकी सम्पत्तिमेंसे कुछ भी ले लेना उदण्डता और उच्छृ-ङ्खलता है। मित्रराष्ट्र तथा इङ्गलैडको इस विजयके अवसर-पर पूर्ण न्यायसे काम लेना चाहिये। तुर्कोंको शक्तिहीन कर देना केवल अन्याय ही नहीं होगा बल्कि अपने वचनको भङ्ग करना होगा, और वादाओंको तोड़कर विश्वासघात करना होगा। मेरी यह आन्तरिक इच्छा है कि बड़े लाट मिस्टर चेम्सफोर्ड अपने पूर्ववर्ती बड़े लाट मिस्टर हार्डिङ्गका पूर्णतया

अनुकरण करें और जिस तरह 'अफ्रिकाके सत्याग्रह' के युगमें भारतीयोंका पूर्णरूपसे पक्ष लेकर, उनकी मांगोंको ब्रिटिश सरकारके समक्ष रखकर' वे उनके साथ न्याय करनेका प्रयत्न कर रहे थे, उसी तरह इन्हें भी उचित है कि खिलाफतके प्रश्नको अपना निजी प्रश्न समझ लें और मुसलमान नेताओंके अगुआ बनकर पूर्ण साहसके साथ इसे सन्धि परिषद्के समक्ष रखकर उसके साथ न्याय करावें अथवा खिलाफत आन्दोलनको चलानेमें पूरी सहायता दें जिससे उत्तेजनाके कारण इसके द्वारा शोचनीय घटनायें न हो जायं।

पर इस स्थितिकी जितनी जिम्मेदारी हम हिन्दू और मुसलमानोंपर है उतनी बड़े लाटपर नहीं और साथ ही इसकी जितनी अधिक जिम्मेदारी मुसलमान नेताओंपर है उतनी अधिक हिन्दू और मुसलमानोंपर नहीं।

अभीसे ही हमारे मुसलमान मित्र खिलाफतके सम्बन्धमें अधीर होने लगे हैं। अधीरताका स्वाभाविक परिणाम उन्माद है और उन्मादसे हिंसा तथा अशान्तिका होना साधारण बात है। मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि मेरे साथ प्रत्येक व्यक्ति यह समझ ले कि हिंसा आत्महत्याके बराबर है।

थोड़ी देरके लिये मान लिया जाय कि मित्रराष्ट्र अथवा ब्रिटन मुसलमानोंकी मांगपर ध्यान नहीं देते और उनको पूरा नही करते। पर इससे मैं निराश नहीं हुआ हूं। मिस्टर मांटेगूकी दृढ़तापर मुझे पूरा भरोसा है। मुसलमानोंके अधिकार-

का उन्होंने जिस तरह समर्थन किया है उसमें आशाकी रेखा झलक रही है। साथ ही साथ मिस्टर लायड जार्जने अपनी घोषणाका जो अभिप्राय बतलाया है उससे भी आशा किसी तरह क्षीण नहीं होता। इसमें किसी तरहका संदेह नहीं कि मिस्टर लायड जार्ज अड़िया रहे हैं पर हम लोग न्याय करा सकते हैं। हमें सबसे खराब अवस्थाकी धारणा करनी चाहिये और सबसे उत्तमकी चेष्टा करनी चाहिये। अब प्रश्न यह रहा कि इसके लिये हमें किन तरीकोंको काममें लाना चाहिये।

हमें क्या नहीं करना चाहिये, यह तो स्पष्ट है :—

(१) मनसा, वाचा अथवा कर्मणा हमें किसी तरहकी हिंसाकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये।

(२) इसलिये बदला या दण्डके लिये किसी भी प्रकारसे ब्रिटिश मालके वहिष्कारकी योजना नहीं करनी चाहिये। मेरी समझमें वहिष्कार एक प्रकारकी हिंसा है। इसके अलावा यदि यह किसी तरह अभिवांच्छनीय है तो यह कार्यक्रममें असम्भव है।

(२) जबतक हमारी कमसे कम मांगे पूरी न कर दी जायँ हमें चैन नहीं लेना चाहिये।

(४) खिलाफतके प्रश्नके साथ मिस्र आदिके प्रश्नको नहीं मिलाना चाहिये।

इसके बाद अब हमें यह देखना चाहिये कि हमें क्या करना चाहिये।

आगामी १६ वीं तारीखको हर तरहके कारबारको बन्द करके पूरी हड़ताल करनी चाहिये। हड़ताल पूर्णरूपसे शान्तिमय होनी चाहिये। यह आपसे आप ही होनी चाहिये। किसी पर किसी तरहका दबाव नहीं डाला जाना चाहिये। जबतक कि मालिकोंसे छुट्टी न मिलती हो मजूरों और कुलियोंको हड़ताल करनेके लिये नहीं बहकाना चाहिये। शामको सार्वजनिक सभायें होनी चाहिये। और एक ही प्रस्ताव द्वारा अपनी कमसे कम मांगोंको व्यक्त कर देना चाहिये। हड़ताल करनेमें हिंसाको पूरी तरहसे रोकना होगा। मैंने कई बार लिखा है कि खुफिया विभागके लोग भी हिंसाके लिये गुप्तरूपसे जनताको उत्तेजित करते हैं। लेकिन वह सर्वदा ऐसा नहीं करते। पर यदि यह सर्वदा सच हो तोभी हमें अपने आचरणोंसे इसे असम्भव बना देना चाहिये। हमारी सफलता केवल इतने पर निर्भर है कि सर्वसाधारणका सञ्चालन और नियन्त्रण करनेमें हमें पूरी योग्यता दिखलानी चाहिये।

अब दो शब्द हमें इस विषयपर कहना है कि यदि हम लोगोंकी मांगे न पूरी की गई तो हम लोग क्या करेंगे? इसके प्रतीकारका अमानुषिक और असभ्य तरीका प्रगट या गुप्त संग्राम है। इस समय इसे केवल असम्भव समझ कर हमें इसका त्याग करना चाहिये। पर मेरी दृढ़ धारणा है कि यदि मैं सबको यह बात समझा सकूं कि यह सभी अवस्थामें खराब है तो हम अपने सभी न्यायपूर्ण मांगोंको अति सहजमें प्राप्त

कर सकते हैं। हिंसाकी वृत्तिको दमन करके कोई शक्ति या राष्ट्र जिस शक्तिका उपार्जन करता है वह अजेय है। पर आज मैं हिंसाका विरोध केवल इस कारण कर रहा हूं कि वह एक दमसे निरर्थक है।

इसलिये हमारे पास केवलमात्र असहयोगका ही शस्त्र शेष रह गया है। यदि असहयोग हिंसासे कलङ्कित न हुआ तो उससे बढ़कर पवित्र और बलिष्ठ कोई भी शक्ति नहीं रह गई है। यदि सहयोग करनेसे किसीके अभिमत धार्मिक विश्वास पर आघात पड़ता हो तो ऐसी अवस्थामें असहयोग करना धर्म हो जाता है। जिस अन्यायपूर्ण नीतिके साथ हम लोगोंका अधिकार छीना जा रहा है और जो मुसलमानोंके जीवन मरणका प्रश्न हो रहा है उसमें हम लोग दीनोंकी भांति सिर झुकानेके लिये तैयार नहीं हो सकते। इसलिये हमें हर तर-फसे अपना कार्य आरम्भ कर देना चाहिये। जो लोग सरकारी पदोंपर हैं उन्हें तुरन्त इस्तीफा दे देना चाहिये। जो लोग छोटे ओहदोंपर काम कर रहे हैं उन्हें भी अपने पदोंसे हट जाना चाहिये। किसी व्यक्ति विशेषकी नौकरीमें असहयोग आन्दोलनका प्रयोग चरितार्थ नहीं होता। जो लोग असहयोगके कार्यक्रमको स्वीकार कर उसके अनुसार काम करनेके लिये तैयार नहीं हैं उनपर हम किसी तरहकी ज्यादती करनेकी सलाह नहीं देते, क्योंकि अपने मनसे जो काम किया जाता है वही पूरी तरह सफल होता है। और जो काम अपने मनसे किया जायगा वही

हमारी मानसिक स्थितिका सच्चा द्योतक होगा अर्थात् यदि जनता अपने मनसे असहयोग करेगी तो इनके द्वारा उसके असन्तोषका सच्चा दिग्दर्शन होगा। सैनिकोंको सरकारी नौकरी छोड़ देनेके लिये कहना अभी उपयुक्त नहीं। यह प्रथम न होकर अन्तिम कार्यक्रम होना चाहिये। हम लोग उस समय इस ओर कदम बढ़ानेके लिये अग्रसर होंगे जिस समय बड़े लाट, भारत मन्त्री तथा प्रधान मन्त्री सभी हम लोगोंको त्याग देंगे। इसके अतिरिक्त सहयोग त्यागनेके जितने कार्यक्रम हैं उनसे बहुत सतर्क होकर काम लेना होगा। इसलिये हमें धीरे धीरे आगे बढ़ना चाहिये ताकि घोरतम उत्तेजनाके वशवर्ती होकर भी हम आत्मसंयम न खो बैठें।

कलकत्ताकी खिलाफत सभा तथा कांग्रेसमें जो प्रस्ताव पास किये गये उन्हें कितने लोग सशङ्क नेत्रोंसे देखते हैं। उनमेंसे उन्हें हिंसाके लिये तैयारीकी बू आती है। पर मेरी दृष्टिमें उनमें कोई ऐसी बात नहीं है यद्यपि मैं किसी किसी प्रस्तावोंके शब्दोंसे पूर्णतया सहमत नहीं हूं।

कई लोग प्रश्न करते हैं, क्या एक हिन्दू समस्त प्रस्तावोंको स्वीकार कर सकता है? मैं अपने विषयमें साहससे कह सकता हूं। मुसलमानोंकी न्यायपूर्ण मांगोंको सफल करानेमें मैं सच्चे दिलसे उनका तब तक साथ देता रहा हूं और उनकी मददके लिये तैयार रहूंगा जब तक वे किसी तरहकी हिंसाकी प्रवृत्ति नहीं दिखलावेंगे और पूर्ण आत्मसंयमके

साथ काम करेंगे। पर जिस दिन मुझे यह मालूम होजायगा कि मुसलमानोंने हिंसाकी प्रवृत्ति दिखलाई है या इसके लिये यत्न किया है तो मैं तुरन्त मुसलमानोंका साथ छोड़ दूंगा और प्रत्येक हिन्दूसे तथा अन्य उनलोगोंसे जो मेरी बात मानने के लिये तैयार होंगे मुसलमानोंका साथ छोड़ देनेकी सलाह दूंगा। इसलिये मेरा कहना है कि प्रत्येक व्यक्तिको घोरसे घोर उत्तेजना मिलने परभी पूरी तरहसे आत्मसंयमसे काम लेना चाहिये। यदि दृढ़ताके साथ नम्रताका संयोग कर दिया गया तो विजय असम्भावित है। पर यदि क्रोध, रोष या आवेशसे काम लिया गया तो पतन अवश्यम्भावी है इसका अन्तिम परिणाम यह है कि हिंसाका राज्य छा जायगा। यदि मेरा कोई भी साथी न रह जाय और मुझे अकेले रहना पड़े तोभी मैं प्राणपणसे इसके दबानेकी चेष्टा करूंगा। मेरा लक्ष्य सारे विश्वके साथ मैत्री स्थापित करना है। इसके लिये मैं प्राणपणसे चेष्टा करूंगा और बुराईका विरोध करते हुए विश्वप्रेम स्थापित करनेका प्रयत्न करूंगा।

मैंने खिलाफतका साथ क्यों दिया।

(अप्रैल २८, १९२०)

दक्षिण अफ्रिकाके एक निष्ठ मित्रने—जो इस समय इङ्गलैण्डमें है—मेरे पास एक पत्र लिखा है जिसमेंसे मैं निम्न लिखित अवतरण दे देना उचित समझता हूं :—

"आपको स्मरण होगा कि जिस समय रेवरेण्ड जे० जे० डोक दक्षिण अफ्रिकाके सत्याग्रह आन्दोलनमें आपकी सहायता कर रहे थे आपसे मेरी मुलाकात हुई थी। उस देशमें जिस सचाईके मार्गका आपने अनुसरण किया था उससे मैं अतिशय प्रभावान्वित हुआ था। तबसे मैं इङ्गलैण्ड लौट आया। युद्धके जमानेमें कई स्थानपर मैंने आपके पक्षमें भाषण भी किया और पत्रोंमें भी लिखा जिसके लिये मुझे खेद नहीं है। जबसे मैं सैनिक सेवासे लौटा हूं मुझे विदित हुआ है कि आप युद्धके लिये उतारू हो रहे हैं ....टाइम्समें अभी हालमें ही एक पत्र प्रकाशित हुआ है जिससे विदित होता है कि तुर्की साम्राज्यके छिन्न भिन्न तथा कुस्तुन्तुनियासे उसे निकाल देने पर आप मित्रराष्ट्र तथा इङ्गलैण्डसे बदला लेनेके हेतु उन्हें तङ्ग करनेके लिये हिन्दू और मुसलमानोंमें एक तरहसे मेल करानेकी चेष्टा कर रहे हैं। मुझे आपकी न्याय प्रियतापर जितना भरोसा है और विचार शक्तिपर जितना

विश्वास है उससे मैं अपना हक समझता हूं कि मैं आपसे पूछूं कि क्या यह समाचार सच है, क्योंकि मैंने भी आपके काममें सहायता दी है। मैं इस बातको सहसा स्वीकार नहीं कर सकता कि आपने एक ऐसे आन्दोलनमें हाथ लगानेकी भूल की है जिसके द्वारा आप एक उच्छृंखल तथा अत्याचारी राज्यके अत्याचारको मनुष्यके हितके ऊपर रखनेकी चेष्टा कर रहे हैं, क्योंकि पूर्व तुर्कोंने इस पर पूर्ण निर्दयताके साथ प्रहार किया है। सीरिया और आर्मेनियाकी अवस्थासे मैं स्वयं परिचित हूं। इसलिये यदि टाइम्सका प्रकाशित समाचार सच है तो यह कह सकता हूं कि आपने अपनी सचाई और न्याय प्रियताको एक तर्फा प्रयोगमें लगा दिया है और उनका प्रयोग अराजकता बढ़ानेमें किया है। पर जबतक मैं इसके बारेमें स्वयं आपके मुंहसे कुछ न सुन लूं मैं अपने भावको किसी तरह बदलना नहीं चाहता। इससे मेरी प्रार्थना है कि आप इस पत्रका उत्तर अवश्य दीजियेगा।"

इस पत्रका उत्तर मैंने लिख दिया है। पर मुझे आशंका है कि इस पत्रमें जो भाव व्यक्त किये गये हैं वे अन्य अंग्रेज मित्रोंके हृदयमें भी उठ सकते हैं और यथासाध्य मैं उनकी मैत्रीसे वञ्चित होना नहीं चाहता और न उनके प्रेमको ही कम होने देना चाहता हूं इसलिये खिलाफतके साथ अपने संबन्धको मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं। इस पत्रसे प्रगट होता है कि विना किसी तरहकी जिम्मेदारी रखनेवाले पत्रोंको पढ़कर लोग किस किस तरहके

चक्करमें पड़ जाते हैं और भ्रमात्मक भावोंको अपने हृदयमें भर लेते हैं। हमारे मित्रने अपने उपरोक्त पत्रमें टाइम्सके जिस पत्रका हवाला दिया है उसे मैंने नहीं पढ़ा है। पर इनके पत्रसे विदित हुआ है कि टाइम्सके पत्रसे उनके हृदयमें इस बातकी आशङ्का उत्पन्न हो गई है कि मैंने अराजकताको और भी पुष्ट करनेके निमित्त एक तर्फा निर्णय किया है।

मेरे मित्रका लिखना किसी अंशमें उचित है। वास्तवमें सच यही है कि आत्माकी प्रेरणासे ही मैंने खिलाफत आन्दोलनको अपना प्रधान अङ्ग कर लिया है और मुसलमानोंके साथ दिल मिलाया है। मेरे मित्रकी यह आशंका निर्मूल नहीं है कि मैं हिन्दू तथा मुसलमानोंमें मेल कराकर सद्भाव पैदा करनेका यत्न कर रहा हूं। पर मेरा यह कहनेका अभिप्राय नहीं है कि तुर्की साम्राज्यके छिन्न भिन्नकर देनेके हेतु मैं ब्रिटिश सरकार अथवा मित्र राष्ट्रोंको किसी तरहसे तङ्ग करूं। सरकार या किसी अन्य शक्तिको तङ्ग करना मेरे सिद्धान्तके सर्वथा प्रतिकूल है। पर मेरे उपरोक्त कथनका यह अभिप्राय नहीं है कि हमारे चन्द कामोंसे सरकार तङ्ग नहीं आ सकती (यह हो सकता है कि हमारे कुछ कामोंसे सरकार तङ्ग आ जाय, उसके हाथ पांव बंध जायं पर मैं इस बातकी चेष्टा कभी नहीं करता।) यदि इस प्रकारसे सरकारके काममें किसी तरहकी वाधा पड़े तो मैं उसके लिये पश्चात्ताप नहीं करता। यदि कोई व्यक्ति बुरा काम या पापाचरण कर रहा है

तो मैं अपना यह धर्म समझता हूं कि उस पापाचरणमें मैं उसका साथ न दूं, उससे सम्बन्ध तोड़ दूं। यही बात खिलाफतके विषयमें है। मित्रराष्ट्र तथा सरकारने अपना वचन भंगकर घोर पाप किया है। इस पापाचरणमें मैं उनका साथी नहीं हो सकता। मिस्टर लायड जार्जने जिस नीतिकी घोषणा की थी वही मुसलमानोंके पक्षमें है और उसका प्रतिपादन धर्म ग्रन्थों द्वारा भी हो जाता है। ऐसी अवस्थामें उनकी मांग नितान्त उचित और युक्तिपूर्ण है। इसके अतिरिक्त यह धारणा भूलसे भरी है कि मैंने वर्तमान अराजकताको और भी ताकतवर बनाना चाहा है अथवा मुसलमानोंके हकको मानव समाजके हितके भी ऊपर रखनेके लिये मैंने अपनी शक्तिका बुरे मार्गमें संचालन किया है। मुसलमानोकी मांगमें इस बात पर कहीं भी जोर नहीं दिया गया है कि तुर्कोंकी उच्छृंखलता उसी प्रकार रहने दी जाय बल्कि मुसलमानोंने पक्का वचन दिया है कि वे लोग तुर्की सम्राट्से इस बातकी प्रतिज्ञा करा लेंगे कि मुसलमानेतर जातियोंकी रक्षाका वह पूरा प्रबन्ध करेगा। मैं इस बात पर कोई पक्का मत नहीं प्रगट कर सकता कि आर्मेनिया और सीरियाकी अवस्थाको हम अराजकताका नाम कहांतक दे सकते हैं और इस अराजकताके लिये तुर्क कहां तक जिम्मेदार हैं। मेरी तो यही धारणा है कि वहां की अवस्था उतनी खराब नहीं है जितनी प्रगट की जाती है अर्थात् वास्तविक दशा बहुत ही बढ़ा कर लिखी जाती है, और वहांकी प्रचलित बुराइयों और कुप्रबन्धोंके लिये यूरोपीय शक्तियां

भी पूरी तरहसे जिम्मेदार हैं। पर जो कुछ हो मैं अराजकताका प्रतिपादक नहीं हूं चाहे उसका जन्म तुर्कों द्वारा हुआ हो या अन्य किसी द्वारा। जो कुछ अराजकता वहां कायम है उसको तो मित्र राष्ट्र अन्य उपायसे भी दूर कर सकते हैं। उसके लिये उन्हें तुर्क साम्राज्यको छिन्न भिन्न करने अथवा मुसलमानोंका तुर्कीमें राज्य अन्त कर देनेकी कोई अवश्यकता नहीं प्रतीत होती। मित्रराष्ट्रोंके सामने यह कोई नई घटना नहीं उपस्थित हुई है। यदि तुर्कीका छिन्न भिन्न करके उसे टुकड़े टुकड़े कर डालना था तो इसकी सूचना युद्धके आरम्भमें ही दे देनी चाहिये थी। उस अवस्थामें वचन भंग करनेका दोष कभी भी सिरपर न मढ़ा जाता। पर इस समय जो स्थिति उत्पन्न हो गई है उसके कारण भारतीय मुसलमानोंका विश्वास ब्रिटिश प्रधान मन्त्रियों परसे उठा जा रहा है। भारतीय मुसलमानोंकी धारणा है कि तुर्कीका प्रश्न इस्लाम धर्म और ईसाई धर्मके बीचका प्रश्न ह और इङ्गलेण्ड प्रकारान्तरसे ईसाई धर्मको पीठ ठोंक रहा है। मुहम्मद अलीने अभी हालमें जो तार भेजा है उससे यह विश्वास और भी दृढ़ होता चला जा रहा है। उन्होंने लिखा है कि हमें इङ्गलेण्डमें जो अनुभव हुआ था उससे एकदम भिन्न फ्रांसके लोगोंने हमारा स्वागत किया है और हमारी बातोंको गौरसे सुना है और फरासीसी सरकार तथा जनतासे हमें सहायता की आशा है।

इसलिये यदि मुसलमानोंकी मांग न्यायपूर्ण है—और

जैसा मैं समझता हूं वह न्यायपूर्ण है—और धर्मग्रन्थसे उसका प्रतिपादन होता है तो जो हिन्दू इस धर्मके काममें अपने मुसलमान भाइयोंकी सहायता न करेंगे वे भीरुताके कारण इस विरादराना सम्बन्ध पर चोट पहुंचानेके दोषी समझे जायंगे और मुसलमानोंकी निगाह तथा चित्तसे गिर जायंगे। इसलिये इतने अटल विश्वासके बाद भी यदि मैं मुसलमानोंके उचित काममें सच्ची सहानुभूति दिखलाकर उनके इस धर्म कार्यमें योग न दूं तो मैं अपने नामके योग्य नहीं रह सकता और सार्वजनिक सेवाका भाव हमें अपने मनमेंसे उठा देना होगा। मेरा विश्वास है कि उनकी सेवाकर मैं साम्राज्यकी सेवा कर रहा हूं क्योंकि अपने भावोंको नियन्त्रित रूपसे प्रगट करनेकी यन्त्रणा देकर और उस काममें उनकी सहायता करके मैं इस खिलाफत आन्दोलनको हिंसा रहित और सफल बनानेका यत्न कर रहा हूं।

खिलाफत ।

(मई १२, १६२०)

"जैसा कि मैंने अपने पिछले पत्रमें लिखा था मेरी समझमें मिस्टर गांधीने खिलाफतके प्रश्नपर विकट भूल की है। उनकी मांगका आधार यह है कि उनके धर्मके अनुसार अरेबियापर तुर्कोंका शासन होना चाहिये। पर जब स्वयम् अरबके निवासी ही इस बातके विरोधी हो रहे हैं तो यह मान लेना असम्भव है कि मुसलमानोंका कथन इस्लामके लिये आवश्यक है। यदि अरबके लोग इस्लाम धर्मके उपासक नहीं हैं—तो कौन हैं? यह तो इसीके बराबर है मानों जर्मनी रोम कथालिकवालोंकी ओरसे रोममें एक मांग मांगता है और इटलीवाले कुछ दूसरी मांग मांगते है। पर यदि थोड़ी देरके लिये मान भी लिया जाय कि भारतीय मुसलमानोंका धर्म इस बातकी आवश्यकता समझता है कि अरबोंपर तुर्कोंका शासन होना चाहिये, चाहे अरबवाले उसका विरोध ही क्यों न करते हों तो आजकलके स्वतन्त्र युगमे इस तरहकी मांगको धार्मिक मांग नहीं कह सकते क्योंकि इस युगमें किसी भी कारणवश एक आदमीका दूसरे आदमी पर लगातार दबाव नहीं चल सकता। प्रधान मन्त्रीने युद्धके आरम्भमें भारतीय मुसलमानोंको इस बातका अवश्य आश्वासन दिया

था कि मुसलमानोंके धार्मिक क्षेत्रोंकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध किया जायगा। पर इससे यह अभिप्राय कभी भी नहीं निकलता कि जो तुर्क साम्राज्य उच्छृंखलतासे आत्मनिर्णयके अधिकारका सदासे दुरुपयोग करता आ रहा है, उसे कायम रखा जायगा। क्या हम लोगोंके लिये यह उचित होगा कि हम लोग चुपचाप खड़े होकर तमाशा देखें कि तुर्क फिरसे अरबोंको जीतें और उनसे युद्ध करें, क्योंकि अरबवाले इस समय युद्ध किये बिना न रहेंगे। हमें स्मरण रखना होगा कि हमने अरबवालोंको भी वचन दे रखा है। क्या ऐसा करना उनके साथ विश्वासघात करना और उन्हें धोखा देना नहीं है? यह कहना सर्वथा अनुचित है कि अरबवालोंने यूरोपीय शक्तियोंके उभाड़नेसे ही तुर्कोंसे शत्रुता मोल ली। अरबके लोग बहुत दिनोंसे तुर्कोंके साथ दुश्मनीका यह भाव रखते आये हैं। हां, युद्धके समय तुर्कोंके विरुद्ध हम लोगोंने इस दुश्मनीका लाभ अवश्य उठाया है और तुर्कोंके मुकाबिलेमें एक मित्र पैदा कर लिया है। तुर्कोंके सुलतानकी गैरमुसलमानी प्रजा बहुत पहलेसे ही इनके शासनसे उद्धार चाहती थी। भारतके मुसलमान जिस शासनको दूसरों पर लादना चाहते हैं, उसकी व्यवस्थाका उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है। सच बात तो यह है कि सीरिया या अरबमें तुर्कोंका फिरसे राज्य स्थापित करना इतना कठिन और असंभव है कि उसकी चर्चा करना ही व्यर्थ है। इसकी चर्चा पवित्र रोमन साम्राज्यके पुनः स्थापना की चर्चाके बराबर होगी। मेरी विचार-धाराके

यह बाहर है। किसी भी प्रकार यह संभव नहीं है। यह तो निश्चय है कि भारतके मुसलमान सेना संग्रह करके अरबपर धावा न मारेंगे और उसे जीत कर सुलतानके हाथों न सौंप सकेंगे। और भारतका आन्दोलन तथा अशान्ति अंग्रेजोंको मजबूर नहीं कर सकतो कि वे अरबों पर पुनः तुर्कीके शासनका बोझ लाद दें। सेवा करके भारतीय मुसलमान इङ्गलैण्डकी इम्पीरियलिज्म (साम्राज्यवाद) का विरोध नहीं कर रहे है बल्कि वहांके उदार तथा मनुष्यप्रिय अंग्रेजोंका अथवा वहांके उदारमतवादियोंका विरोध कर रहे हैं जो भारतके लिये भी आत्मनिर्णयकी योजना कर रहे हैं। थोड़ी देरके लिये मान लीजिये कि भारतके मुसलमान भीषण आन्दोलन उपस्थित करते हैं और इङ्गलैण्डका भारतके साथ नाता टूट जाता है तो क्या इससे उनको अभीष्टकी सिद्धि हो सकती है? क्योंकि वर्तमान अवस्थामें ब्रिटनके साथ सम्बन्ध रखकर तो वे उसकी विश्व सम्बन्धी नीतिमें कुछ न कुछ हाथ अवश्य रखते हैं। उदाहरणके लिये तुर्कीका प्रश्न ले लीजिये। यह स्वीकार किया जाता है कि भारतीय मुसलमानोंका प्रभाव इतना अधिक नहीं पड़ा कि पलड़ा एक दमसे उलट जाता। इसका कारण दूसरी ओरकी कठिनाई है। पर तोभी जो कुछ सुविधायें दी गई हैं उनका श्रेय भारतके मुसलमानोंको ही है। ब्रिटनके साथ सम्बन्ध तोड़ देनेपर भारतके मुसलमानोंका भारतके बाहर किसी तरहका प्रभाव नहीं पड़ सकता। संसारकी

राजनीतिमें उनका उतना ही हक और हाथ रह जायगा जितना चीनके मुसलमानोंका है। मेरी समझमें कदाचित यह हो जाय कि मुसलमानोंके इस दबावके कारण तुर्कोंका कुस्तुन्तुनियामें रहना सम्भव हो जाय। पर मुझे इस बातका सन्देह है कि इससे उन्हें किसी भी तरहका लाभ हो सकेगा, क्योंकि एशिया माइनरके निकाल देनेपर तुर्कोंके लिये कुस्तुन्तुनियाकी राजधानी किसी भी प्रकारसे सुविधाजनक न होगी। पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसकी भूल तुर्कोंको शीघ्र ही विदित हो जायगी और इसके कारण उन्हें जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा वह उनके धार्मिक भावोंकी रक्षासे कहीं भीषण होगी। पर यदि भारतीय मुसलमान इस बातपर तुले हुए हैं कि कुस्तुन्तुनियामें तुर्कोंके सुलतानकी सलतनत रहनी हो चाहिये तो उसके लिये मेरी समझमें भारतके बड़े लाटने सरकारी तौरसे मुसलमानोंको जो वचन दिया है उसके अनुसार हम लोगोंको इस बातपर जोर देना चाहिये कि कुस्तुन्तुनिया सुलतानके अधिकारमें रह जाय। यद्यपि अमरीका इस बातका विरोध कर रहा है।"

उपरोक्त अवतरण एक पत्रका अंश है। इस पत्रको इङ्गलैण्डके एक अधिकारीने भारतवर्षमें अपने एक मित्रके पास लिखा था। यह पत्र धीरता, नेक नीयती तथा स्थितिका सच्चा दिग्दर्शन करानेका नमूना है। इस पत्रकी भाषा इतनी प्रतिष्ठित है कि कटाक्ष करते हुए भी यह आदरके योग्य है। पर

ब्रिटनके लोग सच्ची घटनाको न समझकर हठात् इस तरहके भाव ग्रहण कर लेते हैं जिससे अनेक आकांक्षाओंका नाश हो जाता है। वर्तमान युगमें समाचारपत्रोंमें बनावटीपन, पक्षपात, असंदिग्धता और बेईमानीका इतना जबर्दस्त दौरा हो रहा है कि जो लोग केवल सच्ची घटना समझनेके लिये उदासीन-भावसे इन समाचारपत्रोंको पढ़ना चाहते हैं वे भ्रममें पड़ जाते हैं और गलत तथा भ्रमपूर्ण भाव उनके दिलमें भर जाते हैं। इसके अतिरिक्त स्वार्थियोंका एक अलग दल होता है जो गलत या सही तरीकेसे अपने ही हित साधनकी चेष्टा करते हैं और वे ईमानदार अंग्रेज भी जो केवल न्याय होते देखना चाहते हैं इन भ्रमात्मक तथा विरोधी मतोंके चक्करमें इस प्रकार आ जाते हैं और तोड़ मरोड़ भावोंका इतना प्रबल असर उन पर पड़ जाता है कि वह अन्यायकी ओर खिंच जाते हैं और उसीका समर्थन करते हैं।

उपरोक्त पत्रके लेखकको ही ले लीजिये। उसने खयाली या मनगढ़न्त बातोंके आधारपर इस तरहकी दलीलें गढ़ डाली हैं जिनपर सहसा विश्वास हो सकता है। उसने इस बातको प्रमाणित करनेमें पूर्ण सफलता प्राप्त की है कि मुसलमानोंकी मांगें अन्यायपूर्ण और बेदम हैं। पर यहां भारतमें जहां खिला-फतके मसलेको तोड़ना मरोड़ना सहज नहीं है अंग्रेज लोग भी इस बातको मानते और स्वीकार करते हैं कि मुसलमानोंकी मांगें संगत तथा न्यायपूर्ण हैं। पर वे कहते हैं कि हम लाचार

हैं क्योंकि बड़े लाट महोदय तथा मिस्टर माण्टेगूने इसके प्रतो-कारकी शक्तिभर चेष्टा कर ली है। पर यदि अब भी राष्ट्र परि-षद्का निर्णय भारतीय मुसलमानोंकी आकाक्षाओंके विपरीत होता है तो उन्हें शान्ति धारण करनी चाहिये और सन्तोष करना चाहिये।

उपरोक्त पत्रके लेखकने जिस शैलीपर इस प्रश्नको लिया है उसकी विवेचना करना अनुचित नहीं होगा। उसने लिखा है—"अरबवालोंके घोर विरोध करनेपर भी भारतीय मुसलमान अरब पर तुर्की सुलतानकी सलतनत चाहते हैं। पर यदि स्वयं अरबवाले तुर्कोंका शासन स्वीकार करना नहीं चाहते तो अरबों-के आत्मनिर्णयके अधिकारपर केवल झूठी धार्मिक स्पर्धाके कारण दबाव नहीं डाला जा सकता और न इसका अपहरण किया जा सकता है और विशेषकर ऐसी अवस्थामें जब स्वयं भारत उस अधिकारके लिये चेष्टा कर रहा है।" जिन लोगोंने खिलाफत-के प्रश्नपर विचार किया है, जिन्होंने उसे समझनेकी चेष्टा की है वे भलीभांति जानते हैं कि मुसलमान लोग यह कदापि नहीं चाहते कि अरबवालोंकी आकांक्षोंके विरुद्ध उनपर तुर्कोंके शासन-का बोझ लाद दिया जाय। इसके विपरीत उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है कि हमलोग अरबवालोंके स्वायत्त शासनका विरोध नहीं करना चाहते। हम लोग अरेबियापर केवलमात्र तुर्कोंका आधिपत्य चाहते हैं और अरबवालोंको पूर्ण स्वराज्य दे देना चाहते हैं। मुसलमान धर्मके पवित्रतीर्थ क्षेत्रोंपर वे खलीफा-

का अधिकार चाहते हैं। दूसरे शब्दोंमें मिस्टर लायड जार्जने भारतीय मुसलमानोंको जो वचन दिया था और जिसके वशीभूत होकर उन्होंने मित्र राष्ट्रोंकी विजयके लिये अपना रक्त बहाया था, उससे अधिक वे और कुछ नहीं चाहते। उपरोक्त पत्रके लेखकने अपनी दलीलों और युक्तियोंका सारा आधार उन बातोंको बना रखा है जिनका कहीं नामनिशान और पता नहीं है। इसलिये उनकी सारी धारणायें और विवेचनायें निर्मूल होकर धराशायी हो जाती हैं। मैंने तन, मनसे इस प्रश्नको इसलिये उठा लिया है कि ब्रिटनके वचन, केवलमात्र ईमानदारी तथा धार्मिक भाव, ये तीनों इसके पक्षमें हैं। मुझे इतनी बुद्धि है कि मैं भलीभांति समझ लूं कि न्यायपूर्ण मांग क्या है और अन्य धार्मिक प्रेरणा क्या है। उस अवस्थामें मैं सदा न्यायका पक्ष लेकर मूढ़ व धार्मिक अन्धविश्वासका विरोध करूंगा। और यदि अनुचित मतके प्रतिपादनके लिये किसीने बदनियतीसे कोई वचन दे दिया है तो मैं उसके पाले जानेके लिये भी जोर नहीं दे सकता। जिस जातिको अपनी सच्चरित्रता और न्यायप्रियताका अभिमान है उसके लिये प्रतिरोध केवल संगत ही नहीं बल्कि आवश्यक और करणीय हो जाता है।

उपरोक्त पत्रके लेखकने अपने पत्रमें लिखा है:—"यदि भारत आज स्वतन्त्र शक्ति होता तो वह ऐसी अवस्थामें क्या करता?" इस अवस्थाके विषयमें अपनी ओरसे कुछ लिखना व्यर्थ है क्योंकि भारतीय मुसलमान अर्थात् भारतके लोग उस मन्तव्यके लिये

आन्दोलन कर रहे हैं जो सर्वथा न्यायपूर्ण स्वीकार कर लिया गया है। और उस न्यायपूर्ण मांगके लिये वे अंग्रेज जातिकी पूर्ण सहानुभूति और सहयोग चाहते हैं। पर इसके लिये केवल जबानी हमदर्दीसे काम नहीं चल सकता और न वह पर्याप्त होगी। इसके लिये उस तरहके सहायताकी आवश्यकता है जिसके द्वारा पूर्ण न्याय करनेकी संभावना हो।

—:-०-:—

कुछ प्रश्नोंका उत्तर

(मई १९, १९२०)

"आपका सात तारीखका पत्र मिला। आपने लिखा है कि यंग इण्डियामें असहयोगपर आपके लेखोंको पढ़कर मैं अपना स्पष्ट मत प्रगट करूं। इसके लिये मैं आपका अतिशय कृतज्ञ हूं। मैं जानता हूं कि आप सत्यका अनुसन्धान करके उसका पता लगाना चाहते हैं और उसी पर आचरण करना चाहते हैं इसलिये मैं निर्भयताके साथ नीचे लिखे चन्द शब्द लिखना हूं :—

५ वीं मईके अङ्कमें आपने लिखा है कि असहयोग सरकारका विघातक नहीं है। पर सरकारके साथसे सम्बन्ध तोड़ लेना, हर तरहसे सहयोग हटा लेना, उसकी सहायता न करना, उसकी

नौकरी स्वीकार न करना, मालगुजारी आदि न देना, यदि सिद्धान्ततः नहीं तो व्यवहारमें तो सरकारके विघातक अवश्य हैं और इस तरहकी बातें अन्तमें जाकर शासनका कार्य अवश्य ही असम्भव कर देगीं। आगे चलकर आप फिर लिखते हैं—'यदि सरकार प्रजाकी बात न माने तो प्रजाको इस बातका पूर्ण और नैसर्गिक अधिकार है कि वह उस सरकारका साथ छोड़ दे।' आपने जो मन्तव्य उपस्थित किये हैं उनकी सात्विक प्रौढ़ताके प्रश्नका अलग रखकर मैं आपसे यह पूछना चाहता हूं कि इस समय आप किस सरकारके खिलाफ अपनी यह कार्रवाई चलाना चाहते हैं? क्या भारत सरकारने इस मामलेमें अपने बलभर काम नहीं किया है और अपनी शक्तिभर चेष्टा नहीं कर ली है? यदि उसकी प्रार्थनायें न सुनी जायं, यदि उसके कहने पर ध्यान न दिया जाय तो क्या उसके लिये उसके विरुद्ध कोई कार्र-वाई उचित और न्यायपूर्ण होगी? उचित तो यह है कि मित्रराष्ट्रोंकी सुप्रीम कौंसिल (सबसे बड़ी सभा) के साथ असहयोग किया जाय और यदि इस बातका पक्का प्रमाण मिल जाय कि ब्रिटनने वहां पर भी भारत सरकार तथा भारतीय प्रजाकी मांगोंका समर्थन नहीं किया है तो उसके साथ भी असहयोग किया जाय। मुझे प्रतीत होता है कि लिखते और भाषण करते समय आप इस बातको भूल जाते हैं कि इस (खिलाफत) मामलेमें भारत सरकार प्रजाके साथ है और यदि उनकी उचित मांगें नहीं दी जातीं तो सरकारके साथ असहयोग-

का प्रश्न कहांसे उठता है ? खिलाफतके प्रश्नका मुसलमानों पर जो बोझ है उसको हलका करनेमें हिन्दू, अंग्रेज तथा भारत सरकार सभी हाथ बटा रहे हैं ? इतने पर भी यदि हम लोगोंको सफलता नहीं मिलती तो इसमें हमारा क्या दोष ? तो क्या हमें असहयोग करना चाहिये ? और यदि चाहिये तो किसके साथ ?

मेरे हृदयमें कुछ बातें आ गई हैं और मैं उन्हें लिखकर आपके सामने उपस्थित करता हूं कि उनपर आचरण करके देखिये कि क्या फल निकलता है :—

(१) चुपचाप प्रतीक्षा कीजिये और देखिये कि तुर्कोंके साथ सन्धिकी क्या शर्तें होती हैं।

(२) यदि ये शर्तें भारत सरकार तथा भारतकी प्रजाकी आकांक्षाओं और शिफारिसोंके अनुकूल न हों तो उनमें सुधार लानेके लिये हर एक न्यायपूर्ण और संगत तरीकोंसे काम लेना चाहिये।

(३) चाहे कितनो शत्रुता क्यों न हो जाय हमें उस सरकारके साथ तबतक सहयोग करना चाहिये जबतक वह सहयोग करती है और जब वह सहयोग त्याग देती है तो हमें उससे असहयोग करना चाहिये।

अभी तक तो मेरी समझमें ऐसे कोई भी कारण उपस्थित नहीं हुए हैं जिसके लिये हमलोग भारत सरकारके साथ असहयोग करें और जबतक भारत सरकार भारतीयोंकी न्यायपूर्ण और संगत मांगोंकी अवहेलना न करे हमें उसके साथ असहयोग

करनेका कोई कारण प्रतीत नहीं होता। भारत सरकार कभी कभी भूल अवश्य करती है पर खिलाफतके मामलेमें तो उसने बुद्धिमानीसे काम लिया है और इस लिये प्रत्येक भारतवासीका धर्म है कि उसके साथ सहानुभूति प्रगट करे और पूर्ण सहयोग करे। मुझे पूर्ण आशा है कि आप मेरे कथन पर अच्छी तरह विचार करेंगे और यंग इण्डियामें इसका उत्तर देंगे।"

जिन कठिनाइयोंका वर्णन इस पत्रके लेखकने किया है उस तरहकी कठिनाइयां अन्य अंग्रेजोंके सामने भी उपस्थित होती होंगी। इस लिये इसपर पूर्ण प्रकाश डालना नितान्त आवश्यक है। बहुधा देखनेमें आया है कि कितने ही उद्देश्य केवल इस लिये असफल हुए हैं कि उनके विरोधियों और प्रतिपक्षियोंने उलटा साधा समझाकर उन लोगोंका ख्याल अपने मतके अनुकूल कर लिया है जो घटनाकी सच्ची स्थिति समझनेके बाद केवल न्यायाचरणकी चेष्टा करते और यदि वे ऐसा न कर सकते तो पूर्ण विरोध करने पर भी उन्हें सफलता न मिल सकती। ऐसे व्यक्तियोंके साथ पूर्ण धैर्य और सन्तोषके साथ बात चीत करके कोई मनुष्य लाभ उठा सकता है। इससे दोनोंका लाभ होता है। यदि किसी मत विशेषका प्रतिपादक यह देखता है कि हमने भूल की है तो वह उसका उचित सुधार करता है, अपने उद्देश्यका उचित नियन्त्रण करता है और इसी तरह वह उनलोगोंकी भूलें बतलाकर उन्हें दूर कराता है और अपने मतमें लाता है। खिलाफतका प्रश्न अतिकठिन प्रश्न है क्योंकि इसके

अन्तर्गत अनेक बातें आ गई हैं। इस लिये यदि किसीको अपना मत स्थिर करनेमें कम या अधिक कठिनाईका सामना करना पड़े तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। यह प्रश्न और भी जटिल इस लिये हो गया है कि वर्तमान अवस्थामें इसके लिये कोई साहसिक कार्रवाई आवश्यक हो गई। चाहे हमारी कठिनाई कितनी भी भीषण क्यों न हो हमें पूरा विश्वास है और हमारा यह दृढ़ मत है कि यदि हम भारतमें शान्ति और समताका साम्राज्य देखना चाहते हैं तो इस प्रश्नपर विचार करना हमारे लिये सबसे अधिक आवश्यक है।

मेरे मित्रने लिखा है:—'मैं आपसे इस विषयमें सहमत नहीं हूं कि असहयोग करना सरकारका विघातक नहीं है।' उनका कहना है कि सरकारी नौकरीसे इनकार करना तथा मालगुजारी न देना व्यवहारमें सरकारका विघातक है। मुझे खेदके साथ लिखना पड़ता है कि मेरा इनसे घोर मतभेद है। यदि किसी प्रधान प्रश्नपर भाई भाईमें घोर मतभेद हो जाय और यदि एक भाईकी आत्मा कहती है कि दूसरे भाईके साथ रहना या उसके काममें योग देना अन्याय और पापाचार है तो मेरी समझमें वह भाई उसकी सहायता न करके तथा उसके काममें योग न देकर भ्रातृधर्मका पूर्णरूपसे पालन करता है। यह प्रायः प्रतिदिनकी जीवन घटनाओंमें होता है। प्रह्लादका पिता हिरण्यकश्यप अतिशय दुष्ट और क्रूर था। प्रह्लादने उसके पापाचारमें योग देना उचित नहीं समझा। इसलिये उसने

योग दान नहीं किया। क्या इसमें प्रह्लादने ऐसा कोई भी काम किया जो उसके पिताके विरुद्ध कहा जा सके। जीससने फेरासिस और वहांके सकुंचित विचारवालोंके साथ सहयोग करना स्वीकार नहीं किया और उनसे किसी तरहका सम्बन्ध नहीं रखना चाहा। तो क्या ऐसा करके उसने यहूदियोंके विघातक कोई भी भाव प्रगट किया? ऐसे मामलोंमें प्रत्येक आचरणसे ही मनुष्यकी इच्छाका पता लग सकता है। हमारे मित्रने अपने ऊपरके पत्रमें लिखा है कि साधारण स्थितिमें सरकारके साथसे हर तरहका सहयोग हटा लेना, उसके कामको असम्भव कर देना है। पर मैं इस मतको सर्वथा सही नहीं मानता। सच बात तो यह है कि इस तरहके असहयोगसे हर तरहका अन्याय असम्भव हो जायगा।

मेरे मित्रने फिर लिखा है:—'भारत सरकारने यथासाध्य सब कुछ किया। हरतरहका चेष्टायें कीं, उसका जहां तक बल फूटा चेष्टा की, ऐसी अवस्थामें उसके साथ असहयोग करना अनुचित प्रतीत होता है।' मैं इस बातको स्वीकार करता हूं कि भारत सरकारने कुछ प्रयत्न अवश्य किया पर जितना उसके हाथमें था या जितना वह कर सकती थी या कर सकती है उसका आधा भी प्रयत्न उसने नहीं किया है। इसके अतिरिक्त जब सरकार यह देखती है कि, खिलाफतके प्रश्नपर भारतीय मुसलमानोंके साथ साथ भारतकी अन्य प्रजा भी लाखों और करोड़ोंकी संख्यामें क्रुद्ध है तो केवल विरोध करने

और असफल हो जानेसे ही उसके कर्तव्योंका अन्त नहीं हो जाता। मान लीजीये कि कोई आदमी भूखा है और उसको भोजन न देकर आप केवल दिखौआ सहानुभुति उसके साथ जाहिर कर रहे हैं तो क्या उसे सन्तोष हो सकता है। उस समय या तो उसे भोजन दिया जाय या वह मर जायगा। ऐसी अवस्था उपस्थित हो जाने पर जहांसे हो सके खिलाफतके लिये भोजन सामग्री उपस्थित करनी चाहिये। भारत सरकार यदि चाहे तो आज खिलाफत आन्दोलनके नेतृत्वका भार ग्रहण कर प्रधान मन्त्री तथा ब्रिटिश केबिनेटसे ज़ोर देकर कह सकती है कि मुसलमानोंके साथ जो प्रतिज्ञा की गई है उसे पूरा कीजिये और उसे करना पड़ेगा। जब मिस्टर लायड जार्जने पूर्ण बेवफाईके साथ मुसलमानोंके साथ विश्वासघात किया तो क्या उस समय भारत सरकारने इस विश्वासघातका विरोध करते हुए अपने पदसे स्तीफा दे दिया? भारत सरकारने गुप्त खरीतोंकी आड़में अपनेको क्यों छिपाया? लार्ड हार्डिञ्जने इससे कम भयानक अवस्थामें वह काम किया जिसे राजनैतिक मामलोंमें विवेकशून्य अदूरदर्शिता कह सकते हैं। उन्होंने खुले शब्दोंमें दक्षिण अफ्रिकाके निष्क्रिय प्रतिरोधियोंके साथ सहानुभूति दिखलाई और इस प्रकार भारतमें क्षोभकी बढ़ती ज्वालाको शान्त किया, यद्यपि इसके लिये उन्हें दक्षिण अफ्रिकाकी केबिनेट और ग्रेट ब्रिटनके कुछ आदमियोंके क्रोधका पात्र बनना पड़ा। भारत सरकारने अधिकसे अधिक जो कुछ किया

है वह यह है कि उसने खिलाफत सम्बन्धी मुसलमानोंकी उचित मांगोंको सुप्रीम कौंसिलके सामने रखा और उसके लिये थोड़ी चेष्टा की। क्या यह उसकी शक्ति और अधिकारका कमसे कम प्रयोग नहीं है? क्या इससे भी कम उसके करनेकी कोई बात हो सकती थी जिसके लिये उसे अपमान और हीनता न देखनी पड़ती? भारतके मुसलमान तथा हिन्दू इस सङ्कटापन्न अवस्थामें भारत सरकारसे कमसे कमकी आशा न रखकर अधिकसे अधिककी आशा रखते हैं और यही चाहते हैं कि वह भारतवासियोंकी मांगोंके लिये (जिसे वह स्वयं न्यायसङ्गत समझती है) अधिकसे अधिक यत्न करे। इतिहास साक्षी है कि इससे भी साधारण अवस्थामें बड़े लाटोंने स्तीफे दे दिये हैं। अभी थोड़े दिन होने हैं कि इसी तरह मानापमान होकर एक छोटे लाटने स्तीफा दे दिया है। खिलाफतका प्रश्न परम पवित्र प्रश्न है और लाखों तथा करोड़ों हिन्दू और मुसलमानोंके लिये प्राणसे भी बढ़कर हो रहा है। इस समय इस प्रश्नपर कड़ी चोट पहुंचाये जानेकी सम्भावना है। इसलिये मेरा प्रत्येक अंग्रेजसे —भारतमें रहनेवाले प्रत्येक अंग्रेज, हिन्दू चाहे वह किसी भी दलका अनुयायी हो,—सविनय अनुरोध है कि खिलाफतके प्रश्नमें वह मुसलमानोंका पूर्णरूपसे साथ दे और भारत सरकारको अपना कर्तव्य पालन करनेके लिये बाध्य करे और इस तरह प्रधान मन्त्रीको लाचार कर दे कि वे अपने कर्तव्यका पालन करें।

चारों ओरसे आवाजें आ रही हैं कि असहयोग आरम्भ

हुआ कि हिंसा शुरू हुई और शान्ति भङ्ग हो जायगी। पर मैं दृढ़ताके साथ कह सकता हूं कि यदि भारतके मुसलमानोंके सामने असहयोगका चमकता सुतीक्ष्ण शस्त्र न होता तो वे कभीके निराश हो गये होते और निराश मनुष्य जो कुछ कर सकता है उसको करनेके लिये भी वे सन्नद्ध हो गये होते। मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि असहयोग खतरेसे खाली नहीं है। पर हिंसाका होना और शान्तिका भंग असहयोगमें बाहरी कारण हो सकता है, केवल उसकी संभावना हो सकती है। पर यदि भारतके सभी प्रधान निवासी हिन्दू मुसलमान और ईसाई इसका समर्थन त्याग देंगे तो यह और भी संभव हो जायगा।

अन्तमें, हमारे मित्रने जो शिफारिसे की हैं उनका मुसलमान लोग पूरी तरहसे पालन करते आ रहे हैं। यद्यपि भारतीय मुसलमानोंको मालूम है कि सन्धिमें क्या होना है, तुर्कीके भाग्यका किस तरह निपटारा किया जायगा तद्यपि वे लोग सन्धिकी ठीक ठीक शर्तोंको जाननेके लिये प्रतीक्षा कर रहे हैं और कोई कार्रवाई नहीं कर रहे हैं। उन लोगोंने यह भी तै कर लिया है कि असहयोग आन्दोलन जारी करनेके पूर्व इस सन्धिमें उलट फैर तथा परिवर्तन करानेके सम्पूर्ण साधनोंका प्रयोग कर लेंगे, और जबतक भारत सरकार मुसलमानोंके साथ हर तरहसे सहयोग करनेके लिये—अर्थात् सन्धिकी शर्तोंके प्रकाशित हो जानेके बाद, यदि वे शर्तें ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीके दिये वचनसे कम पाई जायं तो हर तरहसे उनमें आवश्यक सुधार करानेके लिये जिस

सहयोगकी आवश्यकता है—तैयार रहेगी तो भारतके मुसलमान किसी भी अवस्थामें असहयोग नहीं आरम्भ करेंगे। पर यदि सभी साधन असफल हुए और ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीने अपने वचनको न निबाहा तो आत्माभिमानी मुसलमानके लिये—जिसे अपना धर्म अपनी जानसे भी प्रियतर है—क्या करना शेष रह जायगा। उस अवस्थामें उनके लिये एकमात्र मार्ग उस पापी सरकारके साथ सहयोग त्यागकर अपनेको पाप और कलंकसे बचाना ही उचित होगा और जो हिन्दू और अंग्रेज मुसलमानोंकी मैत्रीपर थोड़ी भी आस्था रखते हैं, और जो इस बातको स्वीकार करते हैं कि मुसलमानोंकी मांग पूर्णतया न्यायसङ्गत हैं, उन्हें हरतरहसे मुसलमानोंका साथ देनेके अतिरिक्त कोई भी अन्य मार्ग नहीं खुला है।

और प्रश्नोंका उत्तर।

(जून २, १६२०)

खुले और छिपे तौरसे मेरे पास अनेक पत्र आ रहे हैं। सभाओंमें भी मेरे ऊपर आक्षेप किया जा रहा है। मेरे पास गुमनाम चिट्ठियां आ रही हैं। सबका एक ही अभिप्राय है, एक ही अर्थ है कि मुझे क्या करना चाहिये। कितने लोग तो

यही चाह रहे हैं कि मैं सर्व व्यापी असहयोग तत्काल आरम्भ कर दूं। दूसरे मेरी भूल दिखलाते हुए कहते हैं कि मैं जान बूझकर देशको जलती आगमें झोंक रहा हूं और अशान्तिका बीज बो रहा हूं। इन सबका विस्तृत उत्तर देना कठिन है। पर मैं संक्षेपमें यथासम्भव प्रत्येकका उत्तर दूंगा। कुछ प्रश्नोंका उत्तर तो मैं पिछले लेखमें दे चुका हूं। उनके अतिरिक्त निम्न लिखित आक्षेप किये जा रहे हैं :—

(१) तुर्कोंकी मांगें अनुचित और अन्यायपूर्ण हैं। सत्यके मार्गका अनुसरण करनेवाला मुझसा व्यक्ति क्यों उसका समर्थन कर रहा है?

(२) यदि थोड़ी देरके लिये मान लिया जाय कि उनकी मांगे सङ्गत और न्यायपूर्ण हैं तोभी तुर्क लोग इतने अयोग्य, कमजोर और नृशंस हैं कि उनकी सहायता नहीं करनी चाहिये।

(३) यदि थोड़ी देरके लिये मान लें कि तुर्कोंकी मांगें न्यायोचित हैं और उन्हें सब कुछ मिलना चाहिये तोभी व्यर्थके लिये मैं भारतवर्षको अन्तर्राष्ट्रीय झंझटमें क्यों डाल रहा हूं?

(४) भारतके मुसलमानोंको इस झंझटमें पड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। यदि उनके हृदयमें किसी तरहकी राजनैतिक आकांक्षा है तो उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि उन्होंने उसके लिये प्रयत्न किया, असफल भी हो चुके। अब उन्हें चुप करके बैठ रहना चाहिये। पर यदि धर्मके नाते वे इस प्रश्नको लेकर उठते हैं तो जिस प्रकार उन्होंने उसकी व्यवस्था

दिखलाई है, हिन्दू उससे सहमत नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त जहां मुसलमानोंका ईसाईयोंके साथ धार्मिक कलह है वहां हिन्दुओंको किसी भी प्रकारसे भी मुसलमानोंका साथ नहीं देना चाहिये।

(५) किसी भी अवस्थामें मुझे असहयोगका प्रचार नहीं करना चाहिये क्योंकि कितना भी शान्तिमय वह क्यों न हो विद्रोहका ही एक अङ्ग है।

(६) विगत वर्षके अनुभवोंसे मुझे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि देशमें हिंसाकी जो हवा बह रही है उसके सामने शान्तिमय उपायों द्वारा जनताको हिंसा करनेसे रोक रखना किसी भी एक आदमीकी शक्तिसे बाहर है।

(७) असहयोग व्यर्थ है क्योंकि कोई भी व्यक्ति सच्चे हृदयसे इसमें शामिल नहीं होगा और उस ज्वारके बाद जब भांटा आयेगा वह अवस्था इस आशामय अवस्थासे कहीं खराब होगी।

(८) असहयोग सभी कामकी गतिको रोक देगा, यहां तक कि सुधारोंका काम भी बन्द कर देगा। इस प्रकार उन्नतिकी यह मन्द गति भी बन्द हो जायगी।

(९) हम लोगोंकी आकांक्षायें कितनी ही पवित्र क्यों न हों पर मुसलमानोंके हृदयमें बदलेके भाव भरे हैं।

संक्षेपमें मैंने उन सभी प्रश्नोंका समावेश यहां कर दिया है। अब मैं क्रमशः एकएकका उत्तर देता जाऊंगा।

(१) मेरी समझमें तुर्कोंकी मांगें केवल उचित और न्याय

पूर्ण ही नहीं हैं बल्कि वे पूर्ण हैं क्योंकि तुर्क लोग केवल वही चाहते हैं जो कुछ उनका है। मुसलमानोंने अभी हालमें जो सूचना निकाली है उसमें उन्होंने साफ साफ शब्दोंमें लिख दिया है कि गैरमुसलमान, और गैरतुर्क जातियोंकी रक्षाके लिये जिस तरहकी जमानत उचित समझी जाय तुर्कोंसे ले ली जाय अर्थात् तुर्की साम्राज्यके अन्तर्गत अरबवालोंको और ईसाईयोंको अलग अलग स्वराज्य दे दिया जाय।

(२) मेरी यह धारणा नहीं है कि तुर्क लोग किसी भी तरह कमजोर, अयोग्य अथवा क्रूर हैं। हां, उनका संगठन खराब हो गया है और उनमें कोई सुयोग्य संचालक नहीं रह गया है। अनेक संकटोंमें रहकर भी उसे युद्धमें प्रवृत्त होनेके लिये वाध्य होना पड़ा। प्राय: देखनेमें आता है कि जिसके हाथसे अधिकार छीन लेनेकी इच्छा होती है उसपर प्राय: यही—अयोग्यता, कमजोरी और क्रूरताके—दोष लगाये जाते हैं। सोरिया और थ्रेस आदि स्थानोंमें कत्ले आमका जो दोषारोपण तुर्कोंपर किया जाता है उसके सम्बन्धमें स्वतन्त्र जांच कमेटीके लिये प्रार्थना की गई पर कभी स्वीकार नहीं हुई। किसीको तंग न करनेके लिये जमानत ली जा सकती है।

(३) मैं आरम्भमें ही कह चुका हूं कि यदि भारतीय मुसलमानोंके साथ मेरा किसी तरहका सम्बन्ध न रहता तो मैं तुर्कोंके मामलेमें उतनाही उदासीन रहता जितना उदासीन मैं आस्ट्रिया या पोलके मामलेमें हूं। पर भारतवासी होनेकी हैसियतसे मैं

अपना यह कर्तव्य समझता हूं कि मैं भी मुसलमानोंकी यातनाओं और कष्टोंमें उनका साथ दूं। यदि मैं मुसलमानोंको अपना भाई समझता हूं तो यह मेरा कर्तव्य है कि मैं अपनी शक्ति भर संकटके समय उनकी सहायता करूं यदि उनकी बातें न्यायपूर्ण और उचित प्रतीत होती हैं।

(४) चौथे प्रश्नमें पूछा गया है कि हिन्दूओंको मुसलमानोंका साथ कहां तक देना चाहिये। यह बात हृदयके भाव और मन-पर निर्भर करता है। मैं अपने मुसलमान भाइयोंके साथ उनकी न्यायपूर्ण मांगोंके लिये अन्त तक सङ्कट भोगनेको तैयार हूं और मैं तबतक उनका साथ देता रहूंगा जबतक मेरी रायमें जिन उपायोंका वे प्रयोग करते हैं वे उनकी मांगोंके उपयुक्त हैं। मैं मुसलमानोंके आन्तरिक भावोंपर किसी तरहका नियन्त्रण नहीं रख सकता। मैं तो उनकी इस बातको स्वीकार करनेके लिये तैयार हूं कि खिलाफतका प्रश्न धर्मका प्रश्न है और उस हिसाबसे वह प्रत्येक मुसलमानके लिये जीवन मरणका प्रश्न है। इसलिये वह हर तरहसे उस उद्देश्यकी सिद्धिकी चेष्टा करेगा।

(५) असहयोग हिंसासे सदा दूर रहता है इसलिये उसे विद्रोह या क्रान्ति नहीं कह सकते। यों तो सरकारके विरुद्ध किये गये सभी प्रकारके आन्दोलनोंका व्यापक नाम विद्रोह या क्रान्ति हो सकती है। इस मानेमें उचित बातके लिये जो क्रान्ति की जाय उसे कर्तव्य पालन कहते हैं। उस अवस्थामें विरोधकी

मात्राका निश्चय की गई ज्यादती तथा उसके प्रभावसे किया जाता है।

(६) विगत वर्षका मेरा अनुभव बतलाता है कि यद्यपि कहीं कहीं शान्ति भङ्ग अवश्य हुई पर सारा देश नियन्त्रणके भीतर था और सत्याग्रहका प्रयोग देशके लिये अतिशय लाभदायक हुआ। जहां कहीं हिंसा हुई, शान्ति भंग की गई, वहां स्थानीय ऐसे कारण थे जो हिंसा करनेमें सहायक हुए। साथ ही साथ मैं यह भी कहता हूं कि जनताकी ओरसे जो कुछ ज्यादतियां हुई अथवा अराजकताके जो लक्षण प्रजाने दिखाये, वे भी नियन्त्रणके अन्दर रह गये होते। जो गलत अनुमान मैंने उस समय किया था उसको समय समय पर मैंने स्वीकार किया है। पर जो कुछ भी दुःखदायी अनुभव मुझे उस समय हुआ उससे सत्याग्रहके ऊपरसे मेरा विश्वास जरा भी कम नहो हुआ और न तो भारतमें उसके प्रयोगकी संभावनापर ही किसी तरहका असर पड़ा। पहले जो भूलें हो गई हैं उनको न होने देनेके लिये पर्याप्त प्रबन्ध किया जा रहा है। हिंसाको रोकनेके लिये पर्याप्त प्रबन्ध करने पर भी यदि असंभावित घटनावश कहीं हिंसा हो जाय तो केवल उसके भयसे मैं सत्याग्रहके प्रचारको बन्द नहीं करना चाहता। मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना चाहता हूं। सच्चा सत्याग्रही केवल सरकारकी लाल लाल आंखें और विकृत चेहरेसे डरकर कोई काम करनेसे बाज नहीं आ सकता। जबतक कि कोई व्यक्ति अपनी इच्छासे यातना सहनेके निमित्त तैयार है और

हिंसाके मार्गसे सर्वथा दूर रहनेकी चेष्टा करता है तो मैं ऐसे निर्दोषोंकी लाखोंकी संख्यामें बलिदान देते नहीं हिचकूंगा। सत्याग्रह आन्दोलनमें सत्याग्रहियोंकी भूलों पर ही सबसे अधिक ध्यान रखना होता है क्योंकि उन्हींसे सबसे अधिक हानि होनेकी सम्भवना रहती है। शक्तिशाली मजबूत व्यक्ति केवल भूल ही नहीं बल्कि पागलपन भी कर सकता है और यदि जनताने बलवानों और शक्तिशालियोंके मदमत्त पागलपनका जवाब उसी तरह नहीं दिया और उसको शान्तिके साथ बर्दाश्त कर लिया तो विजय निकट है। पर इस बातका सदा ध्यान रहे कि सत्याग्रही किसी भी प्रकार उस अत्याचारीकी आज्ञाओंके सामने सिर नहीं झुकाता। हम लोगोंकी सफलताकी कुंजी इसीमें है कि हम लोग प्रत्येक अंग्रेजकी जान तथा प्रत्येक सरकारी कर्मचारीकी जान उतनी ही प्यारी और बहुमूल्य समझें जितनी हम अपनी समझते हैं। विगत ४० वर्षोंके उद्बोधनमें मुझे जो अनुभव मिला है उससे मैंने यही सार निकाला है कि जीवनदानसे बढ़कर कोई भी उत्तम उपहार नहीं हो सकता। मैं दृढ़ता और साहसके साथ कह सकता हूं कि जिस समय अंग्रेज लोगोंको यह विश्वास हो जायगा कि यद्यपि हमारी संख्या भारतमें नितान्त हीन है तथापि मेरी जान मालकी पूर्णतया रक्षा हो रही है और इसका कारण हमारे हाथमें अनेक तरहके नाशकारी और विषैले अस्त्रोंका होना नहीं है बल्कि उसका कारण यह है कि भारतीय उन लोगोंके प्राणोंका नाश करना भी उचित नहीं समझते जिन्हें वे भीषण भूल करते पाते हैं

उसी दिन आप देखेंगे कि भारतकी ओरसे अंग्रेजोंका विचार बदल जायगा और उसी दिनसे उन सब अस्त्र शस्त्रोंका भी प्रयोग बन्द हो जायगा जो इस समय भारतमें अति क्रूरताके साथ नाचती दिखाई देती हैं। मैं जानता हूं कि यह अति दूरकी बात है। पर मैं इसकी कोई चिन्ता नहीं करता। यदि मुझे सुदूरमें भी प्रकाश दिखाई दे रहा है तो मेरा कर्तव्य उसीको लक्ष्य करके आगे बढ़नेका है और यदि इस कूंचमें मुझे साथी मिलते गये तो मैं इसे आशातीत सफलता मानूंगा। मैंने अपने अंग्रेज मित्रोंसे बात चीत करते समय उन्हें भली भांति समझा दिया है कि मैं लगातार अहिंसाकी शिक्षा देता चला आ रहा हूं और मैंने इसकी पूर्ण व्यवहारिक उपयोगिता दिखला दी है और यही कारण है कि खिलाफतके सम्बन्धमें मुसलमानोंके हृदयोंमें जो हिंसाकी प्रवृत्ति है वह अभी तक दबी पड़ी है।

(७) धार्मिक दृष्टिसे सातवें प्रश्नपर विचार करना ही निरर्थक प्रतीत होता है। यदि जनता सच्चे हृदयसे असहयोगकी ओर तत्परता न दिखावे तो खेद और लज्जाकी बात है। पर केवल इतने मात्रसे सुधारक इस अस्त्रके प्रयोगको स्थगित नहीं कर देगा। इससे मुझे इस बातका पता अवश्य लग जायगा कि जनतामें इस समय जो आशाकी उज्वल किरणें झलक रही हैं उनका आधार किसी तरहकी आन्तरिक स्थिरता नहीं है बल्कि अन्धविश्वास और मूर्खता है।

(८) यदि सच्चे हृदयसे असहयोगको स्वीकार कर लिया

जायगा तो अन्य सभी काम बन्द हो जायंगे और सुधार भी बेकार हो जायंगे। पर इससे यह कहांसे झलकता है कि उन्नतिका प्रसार रुक जायगा बल्कि मेरी धारणा तो इससे एकदम विपरीत है। मैं असहयोगको इतना बलिष्ठ अस्त्र समझता हूं कि यदि उसका प्रचार सतर्क होकर किया गया तो उससे जिस फलकी प्राप्ति होगी अन्य सभी फल उसके अनुगामी होंगे। उस समय लोगोंको अपने पूर्ण अधिकारका ज्ञान होगा। उस समय उन्हें संगठन, आत्मसंयम, सहयोग, अहिंसा आदि गुणोंकी उपयोगिता प्रतीत होगी जिसके द्वारा प्रत्येक राष्ट्र महान् और उत्तम हो सकते हैं।

(६) मेरी समझमें मुझे कोई अधिकार नहीं है कि मैं मुसलमानोंसे उससे अधिक सदिच्छाकी आशा करूं जितना कि मुझमें है। पर मैं इतना अच्छी तरहसे जानता हूं कि मेरे अहिंसाके सिद्धान्तमें उनका विश्वास दृढ़ नहीं है। उनका कहना है कि अहिंसा दुर्बलोंका अस्त्र है और सिर्फ सुविधाके लिये इसका प्रयोग किया जा सकता है। उनका कहना है कि यदि हम इस समय कोई खुली कार्रवाई करना चाहें तो हमारे लिये केवल अहिंसात्मक असहयोग खुला है। मैं जानता हूं कि मुसलमानोंमें कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें यदि सफलताकी पूर्ण आशा हो जाय तो हिंसा करनेके लिये तुरत तैयार हो सकते हैं पर उन्हें इस बातका पक्का विश्वास हो गया है कि हिंसासे हम लोगोंकी विजय नहीं हो सकती। इसलिये अहिंसा उनके लिये

केवल कर्तव्य ही नहीं है बल्कि बदला लेनेका साधन भी है। पर ब्रिटिश सरकारके साथ मेरा असहयोग अपने घरके लोगोंके साथ किये गये असहयोगके बराबर है। ब्रिटिश शासन प्रणालीमें मेरी असीम श्रद्धा और भक्ति है। मेरा अंग्रेजोंके साथ किसी तरहका वैमनस्य नहीं है बल्कि कितने अंग्रेज ऐसे उच्च हैं कि उनके चरित्रको मैं अनुकरणीय मानता हूं और स्पर्धाकी दृष्टिसे देखता हूं। कितने ही अंग्रेज मेरे घनिष्ठ मित्रोंमेंसे हैं। किसीको भी शत्रु समझना मेरी धार्मिक धारणाके एक दम प्रतिकूल है। मुसलमानोंके बारेमें भी मेरे यही भाव हैं। मुझे दृढ़ विश्वास है कि उनकी मांगें न्यायपूर्ण हैं। इसलिये यद्यपि उनका मत मुझसे भिन्न है तोभी मैं उनके साथ सहयोग करनेसे जरा भी नहीं सकुचाता और उनसे प्रेरणा करता हूं कि वे मेरे तरीकेसे एक बार काम लें क्योंकि मेरी दृढ़ धारणा है कि यदि अस्त्र सच्चा है तो बुरे इरादेसे उसका प्रयोग भी कुछ लाभदायक ही होगा। जैसे किसी बुरे कामके लिये भी कुछ समय तक सच बोलना पड़े तो उस सचका असर अवश्य ही अच्छा होता है। चूंकि काम बुरा है इसलिये सच बोलना बेकार नहीं हो सकता।

खिलाफत और गोवध।

(दिसम्बर १०, १९१९)

इस सप्ताहके नवजीवनमें महात्माजीने एक लम्बा चौड़ा पत्र प्रकाशित किया है। इस पत्रमें उनका दिल्लीका भाषण है जो उन्होंने खिलाफत कांफ्रेंसके सभापतिकी हैसियतसे दिया था और जिसका संक्षेपमात्र असोसियेटेड प्रेसको प्राप्त हो सका था। उस संक्षिप्त विवरणमें दो बातें छूट गई थीं जिनका यहां जिक्र कर देना उचित प्रतीत होता है। आपने कहा था:—

"खिलाफत कांफ्रेंसके मन्त्री मिस्टर आसफ अलीने जो पर्चे बटवाये हैं उनमें लिखा है कि गोरक्षा और पंजाबके प्रश्नोंपर भी विचार किया जायगा। मेरा निवेदन है कि हिन्दू भाई इस अवसरपर गोरक्षाके प्रश्नको न उठावें। आपत्कालमें बिना किसी शर्तकी सहायता ही मैत्रीका सच्चा लक्षण है। जिस सहयोगके लिये किसी मूल्यकी आवश्यकता है उसे मैत्री नहीं कह सकते वह तो बाजारू सौदा हो गया। शर्तबन्दी सहायता नकली सीमेण्ट मिट्टीकी तरह है जो किसी वस्तुको जमा नहीं सकती और जल्दी ही उखड़ जाती है। यदि हिन्दुओंका विश्वास है कि मुसलमानोंकी मांग न्यायोचित है तो उन्हें सहयोग करना चाहिये। यदि मुसलमान हिन्दुओंके दिलोंपर चोट पहुंचाना नहीं चाहते और उनके

मानकी रक्षा करना अपना धर्म समझते हैं तो वे गोवध बन्द कर सकते हैं। चाहे हिन्दू उनके साथ सहयोग करें या न करें। यद्यपि मेरे हृदयमें गोमाताके प्रति किसी भी हिन्दूसे कम श्रद्धा नहीं है तोभी मैं गोहत्याको बन्द कराना मुसलमानोंके साथ सहयोग करनेकी शर्त नहीं रखना चाहता। बिना किसी शर्तके सहयोग ही गोरक्षाका असली रूप है।

"पंजाबके प्रश्नपर भी हमारा आपसे मतभेद है। मैं पंजाबके घावोंके भीतर प्रवेश कर गया हूं। लोगोंके हृदयोंमें उनसे कड़ी चोट पहुंची होगी पर मैं यह भी दृढ़ताके साथ कह सकता हूं कि इस दुर्घटनासे मेरी आत्माको जितना कष्ट हुआ है शायद किसीको न हुआ होगा तोभी मैं यही कहता हूं कि पंजाबकी बात यहां चलाना उचित नहीं। पंजाबपर चाहे कितने हो भीषण अत्याचार क्यों न किये गये हों पर उनके कारण हम लोग साम्राज्यके विजयोत्सवका वहिष्कार नहीं कर सकते। अपनी इस कार्रवाईको चरितार्थ करनेके लिये हम लोग यह नहीं कह सकते कि पंजाबके अत्याचारोंका प्रतीकार नहीं हुआ है। हण्टर कमेटी अपना काम कर रही है। कांग्रेस सबकमेटी भी काम कर रही है। हम लोग विजयोत्सवका वहिष्कार केवल उन बातोंके लिये कर सकते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध सन्धि परिषद्से है।

"इस तरहका प्रश्न केवल खिलाफत है। इसके निपटारेके सम्बन्धमें हम लोग केवल अन्धकारमें ही नहीं हैं बल्कि, हम

लोगको पूरा भय है कि कहीं इस प्रश्नका निर्णय हम लोगोंकी इच्छाके प्रतिकूल न हो! यदि हम पंजाबकी दुर्घटनाका कारण दिखाकर विजयोत्सवमें भाग लेना अस्वीकार करें तो हमपर विचारहीन और अपरिपक्व होनेका दोष लगाया जायगा और सम्भव है कि इससे हम पञ्जाव और खिलाफत दोनोंको क्षति पहुंचावें। खिलाफतका प्रश्न अत्यन्त विकट प्रश्न है और उसके लिये तुरत उपचार होना चाहिये। यदि हम लोग इस प्रश्नको उचित स्थान और उचित मूल्य देना चाहते हैं तो हमें उचित है कि हम इस प्रश्नको अन्य प्रश्नोंसे अलग रखें।"

प्रतिज्ञा भंग

(मई १९, १९२०)

सेवरकी सन्धिमे तुर्कोंके साथ जा शर्तें की गई हैं वे प्रकाशित हो गई। मेरे मतसे ये शर्तें सुप्रीम कौंसिल, ब्रिटिश प्रधान मन्त्री तथा ईसामसीहकी उदार शिक्षाके सर्वथा प्रतिकूल हैं। गृहकलह तथा भीतरकी अशान्तिसे शक्तिहीन तुर्क इस उद्दण्डपूर्ण निर्णयको भले ही स्वीकार कर लें, भारतके मुसलमान भी चाहे डरके मारे कुछ न बोलें, हिन्दूलोग भी, डर, डाह

अथवा अदूरदर्शिताके कारण इस महान् संकटके समय चाहे अपने मुसलमान भाइयोंका साथ न दें पर यह बात मोटे अक्षरोंमें लिख गई कि इङ्गलैण्डके प्रधान मन्त्रीने जो वचन दिया था उसे दम्भके साथ तोड़ा गया। राष्ट्रपति विलसनकी १४ शर्तोंकी चर्चा करना यहाँ व्यर्थ है क्योंकि अब उनकी परवा कौन करता है, उनकी चकाचौंध केवल दो दिनके लिये थी। पर दुःख तो इस बातका है कि भारत सरकारने अपने सूचनापत्रमें सन्धिकी शर्तोंकी सफाई पेश की है, उन्हें मिस्टर लायड जार्जकी प्रतिज्ञा-का प्रतिरूप बतलाया है पर साथ ही साथ उन्हें सदोष प्रमाणित करके मुसलमानोंसे प्रार्थना भी की है कि अब बिना किसी तरहके असन्तोषके उन्हें इन शर्तोंको स्वीकार कर लेना चाहिये। पर धोखेकी टट्टी इतनी मोटी नहीं है कि वह असलियतको छिपा सके। यदि भारत सरकारने अपने सूचनापत्रमें उस तरहके वचन देनेके लिये मिस्टर लायड जार्जको दोषी ठहराया होता तो कदाचित कुछ मर्यादा बनी रह जाती। पर इस प्रकार वचन भंग करनेके बाद उसके पूरी होनेकी भी डींग मारना चित्तमें विकार उत्पन्न कर देता है। बड़े लाटने अपने सूचनापत्रमें लिखा है:—"खिलाफतका प्रश्न मुसलमानोंका प्रश्न है, इसमें उनको पूरी स्वतन्त्रता है और सरकार इसमे हस्तक्षेप नहीं करना चाहती।" बड़े लाटके इस कथनका क्या अभिप्राय हो सकता है जबकि खलीफाका राज्य अतीव निर्दयताके साथ छिन्न भिन्न कर दिया गया है, मुसलमानोंके पवित्र तीर्थस्थानोंपरसे उनका

अधिकार उठा दिया गया है, और उन्हें लाचार करके महलमें बन्द कर दिया गया है जिसे हम किसी भी तरह महल नहीं कह सकते बल्कि जेलखाना कह सकते हैं। बड़े लाटका कहना ठीक है कि "सन्धिकी शर्तोंमें ऐसी बातें हैं जिनसे मुसलमानोंको बड़ा ही दुःख होगा।" इतना जानकर भी वे भारतीय मुसलमानोंके पास साहस और सहानुभूतिके समाचार भेजकर उनका अपमान क्यों कर रहे हैं? क्या उन्हें सन्धिके उन क्रूर और निर्दय शर्तोंके पढ़नेसे, अथवा यह स्मरण करके कि प्रधान मन्त्रीने हमारी सहायताकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि भारतके मुसलमानोंने संकटके समय साम्राज्यका साथ दिया और पूर्ण राजभक्तिका परिचय देते हुए सहायता की, इत्यादिसे सन्तोष हो गया? क्या यह बड़े लाटके लिये हीनताकी बात नहीं है कि इस अवस्थामें भी वे इस बातकी झूठी दोहाई देते रहें कि जिस न्याय और मनुष्यत्वके आदर्शके लिये मित्रराष्ट्रोंने युद्ध किया था वह पूरा हुआ। क्यों न हो! यदि तुर्कोंके साथ की हुई सन्धिकी शर्तें ज्योंकी त्यों रह गईं तो संसार देखेगा कि मनुष्य अधिकारके मदमें उन्मत्त होकर कितनी उद्दण्डता दिखला सकता है और अन्यायका आचरण कर सकता है। किसी विजित वीर जातिकी वीरता और साहसको कुचल डालनेकी व्यवस्था करना मानुषिक नहीं कहा जा सकता, यह पशुत्वका ज्वलन्त उदाहरण है। यदि युद्धके पहले तुर्कलोग ब्रिटनके घनिष्ठ मित्र थे और युद्धमें जर्मनीका साथ देकर उन्होंने भूल की तो उसके लिये उन्हें नीचा दिखाकर

ब्रिटनने काफी बदला ले लिया। ऐसी अवस्थामें बड़े लाटका यह कहना असह्य हो जाता है कि, "इस नई सन्धिकी शर्तों के अनुसार वह पुरानी मैत्री पुनः जन्म ग्रहण करेगी और नये भाव तथा नई आशासे पल्लवित तुर्की भूतकालकी भांति भविष्यमें भी इस्लाम धर्मका संरक्षक बना रहेगा।" अपने सूचनापत्रके अन्तिम भागको लिखनेमें बड़े लाटने भारी उद्दण्डता दिखाई है। उन्होंने लिखा है :—"मुझे पूरी आशा है कि इन बातोंका ख्याल करके आपलोग विना किसी प्रकारके असन्तोष दिखाये सन्धिकी शर्तों को स्वीकार कर लेंगे और पूर्ण साहस तथा उदारताके साथ पहलेकी भांति साम्राज्यमें आशा और विश्वास रखेंगे।" यदि मुसलमानोंकी राजभक्ति निष्कलंक रह जाय तो इसका कारण यह नहीं होगा कि भारत सरकारने उसको तोड़ डालनेके लिये काफी बोझ नहीं लादा बल्कि इसलिये कि मुसलमानोंको अपनी शक्तिपर भरोसा है। वे समझते हैं कि हमारी मांगे न्यायपूर्ण हैं और हम न्याय करवा लेंगे यद्यपि अपने प्रधान मन्त्री-की बातमें आकर ग्रेट ब्रिटनने अपना वचन तोड़ दिया।

इससे स्पष्ट है कि सन्धिकी शर्तों में तथा बड़े लाटके सूचना-पत्रमें ऐसी कोई बात नहीं है जिससे सम्पूर्ण भारतीयोंमें—विशेषकर मुसलमानोंमें—किसी तरहके आशा या विश्वास, साहस या उत्साहका जन्म हो फिर भी निराश होने या क्रोध प्रगट करनेका कोई कारण नहीं है। यही समय है कि मुसल-मान लोग पूर्ण आत्मसंयमसे काम लें, अपनी शक्तिका संग्रह

करें। यद्यपि वे कमजोर हैं तथापि ईश्वरके भरोसे साहस ग्रहण करके इस संग्रामको चलावें, विजय अवश्य होगी। अगर भारतवर्ष—हिन्दू और मुसलमान—एक होकर काम करें और सन्धिकी इन शर्तों द्वारा मानव समाजके प्रति जो यह पाप हुआ है उससे अपनी सहानुभूति हटा लें, तो पूरी आशा है कि सन्धि-की शर्तों में अवश्य सुधार होगा। इससे यदि संसारको नहीं तो अपनेको, ब्रिटिश साम्राज्यको अनन्त शान्ति प्रदान हो सकेगी। यह निःसन्देह है कि यह युद्ध भीषण और अतिकालतक होगा पर इसमें जो कुछ त्याग करना पड़े वह सर्वथा करणीय है। यह समय हिन्दू और मुसलमान दोनोंकी परीक्षाके लिये उपस्थित हुआ है। क्या इस्लाम धर्मका यह अपमान उनके लिये चिन्ता-का विषय नहीं है? यदि है तो क्या वे आत्मसंयमके लिये तैयार हैं? क्या वे धर्मकी चाहसे अहिंसाके लिये तैयार है? क्या वे लोग हरतरहकी क्षति वर्दाश्त करके असहयोगके लिये तैयार हैं? क्या हिन्दूलोग इस संकटके समय अपने मुसलमान भाइयोंके साथ सच्ची सहानुभूति दिखलानेके लिये अन्तिम समयतकके लिये उनके साथ तैयार हैं? खिलाफतके प्रश्नोंका निपटारा सन्धिकी शर्तें जितना नहीं कर सकतीं उतना इन प्रश्नोंके उत्तरसे हो जायगा।

——*:*:*——

काण्डलरकी खुली चिट्ठी।

(मई २६, १९२०)

मिस्टर काण्डलरने खिलाफतके प्रश्नपर मेरे पास एक खुली चिट्ठी लिखी है। पत्र प्रकाशित हो चुका है। मिस्टर काण्डलरने अपने पत्रमे यह प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है कि मिस्टर लायड जार्जने अपने वचनको भङ्ग नहीं किया है। उन्होंने लिखा है कि मिस्टर लायड जार्जके वचनोंपर प्रासंगिक विचार करना चाहिये अर्थात् प्रसङ्गसे हटाकर मुसलमानोंकी तरफदारीके लिये उनपर विचार नहीं करना चाहिये। मैं भी मिस्टर काण्डलरके इस मतसे सहमत हूं। मिस्टर लायड जार्जके वचन क्या है, उनका अवतरण बड़े लाटने अपने एक सन्देशमें किया है। वे ये हैं:—

"हम लोगोंने युद्धमें भाग इसलिये नहीं लिया है कि हम लोग आस्ट्रिया हंगरीका नाश कर दें अथवा तुर्कोंसे उनकी राजधानी छीन लें अथवा एशिया माइनर तथा थ्रेसके समृद्ध प्रान्तोंसे तुर्कोंको निकाल दें क्योंकि उन्हें प्रकृतिने तुर्कोंके लिये ही रचा है।" मेरी समझमें मिस्टर काण्डलरने (ह्विच—जो) 'ह्विच' शब्दका अर्थ "जो" न लगाकर (ह्विच=इफ दे) 'अगर वे' लगाया है। पर मैं उस सर्वनामसे उसका असली अर्थ निकालकर यह कहनेकी धृष्टता करता हूं कि १९१८ में प्रधान

मन्त्रीने स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार किया था कि एशिया माइनर और थ्रेस प्रान्तमें अधिकांश तुर्क लोग रहते हैं। यदि यह अर्थ ठीक है तो मैं साहसके साथ कह सकता हूं कि प्रधानमन्त्रीने खुल्लमखुल्ला अपने वचनको भङ्ग किया है क्योंकि अब तुर्कोंके हाथमें एशिया माइनर तथा थ्रेसका कोई भी हिस्सा शेष नहीं रह गया है।

कुस्तुन्तुनियाको तुर्कोंके हाथमें रखनेकी आवश्यकताके प्रश्न पर हम पहले ही अपना मत प्रगट कर चुके हैं। यदि कोई यह कहे कि सन्धिकी शर्तोंद्वारा प्रधान मन्त्रीकी यह प्रतिज्ञा भी ज्यों की त्यों रह गई है कि 'हम लोगोंका अभिप्राय है कि जिन प्रदेशोंमें तुर्क जातियां हैं वे प्रदेश तुर्क साम्राज्यके अन्तर्गत रहें और कुस्तुन्तुनियां तुर्कोंको राजधानी रहे तो वह अपनी बुद्धिकी अविदग्धता और अपरिपक्कता प्रगट करता है। उस भाषणका यह दूसरा अवतरण है जिसे पढ़कर मिस्टर काएडलरको सुना देना आवश्यक प्रतीत होता है।

"हम लोग इस बातपर हस्तक्षेप नहीं करते कि जिन प्रदेशोंमें तुर्क जातियां बसी हैं उनमें तुर्कोंका ही राज्य रहे और कुस्तुन्तुनिया तुर्कोंकी राजधानी रहे। पर चूंकि भूमध्यसागर और काला समुद्रके मध्यका मार्ग अन्तर्राष्ट्रीय बना दिया गया है इसलिये हमारी समझमें मेसापोटामिया (ईराक) सीरिया (ईरान) और पलस्टाइन प्रान्तकी अलग राष्ट्रीय व्यवस्था होनी चाहिये।"

क्या उपरोक्त शब्दका यही अर्थ था कि तुर्कोंका सम्पूर्ण अधिकार हटा दिया जायगा, तुर्कोंके प्रभुत्वका नाश कर दिया जायगा और संरक्षताके बहाने यूरोपीय ईसाइयोंका प्रभाव फैलाया जायगा ? क्या अरब, आर्मेनिया, मेसापोटामिया, सीरिया तथा पलस्टाइनके मुसलमानोंने नये प्रबन्धको स्वीकार किया है अथवा इन बलिष्ठ शक्तियोंने अपने पशुबलके दम्भमें न्याय तथा ईमानदारीका गला घोंटकर उनके सिरपर यह बोझ जबर्दस्ती लाद दिया है ? यदि साहसी वीर अरबोंके हृदयमें स्वतन्त्रताकी स्पर्धा उठती है तो मै उसका हृदयसे स्वागत करनेको तैयार हूं पर उन विचारोंकी इस अवस्थामें क्या दशा होगी जब उनके समृद्ध प्रदेशको चूसनेका अधिकार उन लोलुप पूंजीपतियोंके हाथमें सौंप दिया गया है जो सूचना पत्रके अनुसार हर तरहसे सुरक्षित है। यदि प्रधान मन्त्री अपनी प्रतिज्ञाओंको पूरी करके दिखलाना चाहते हैं तो यही उचित है कि टाइम्स आफ इण्डियाके अनुसार इन प्रान्तोंको पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जाय और तुर्कोंका इनपर केवलमात्र प्रभुत्व रहे और अरबोंको अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके लिये तुर्कोंसे आवश्यक जमानत ले ली जाय। पर उस प्रभुत्वको उठा देना, मुसलमानोंके धर्मक्षेत्रोंपरसे खलीफाका अधिकार हटा देना खिलाफतकी खिल्ली उड़ाना है जिसे कोई भी मुसलमान चुपचाप बैठकर नहीं देख सकता। प्रधान मन्त्रीके वचनोंका जो अर्थ मैंने दिया है वह मेरा ही नहीं है। राइट आनरेबुल मिस्टर चार्ल्स राबर्टने ब्रिटिश

जनताको स्मरण करा दिया है कि तुर्कोंके साथ सन्धिके विषयमें मुसलमानोंके भाव प्रधान मन्त्रीकी प्रतिज्ञापर निर्भर है जो उन्होंने थ्रेस, कुस्तुन्तुनिया और एशिया माइनरकी भूमिके सम्बन्धमें किया था और जिसे मिस्टर लायड जार्जने २६ फरवरीको पुनः दोहराया है। प्रतिज्ञाके उन वचनोंका पूर्णतः पालन किया जाना चाहिये और यदि इसका किसी भी अंशमें पालन नहीं किया गया तो ब्रिटिश साम्राज्यकी ओरसे यह भारी विश्वासघात होगा। यदि विश्वासघात और प्रतिज्ञा भङ्गके आक्षेपोंका उत्तर है तो वह दिया जाय। प्रधान मन्त्री अपने वचनोंका पालन करें या न करें पर जो वचन वे राष्ट्रकी ओरसे देते हैं उसे ताड़नेका उन्हें कोई अधिकार नहीं है। यह कितनी हीनताकी बात है कि उन प्रतिज्ञाओंका जरा भी ख्याल न किया जाय। मुझे पूर्ण आशा है कि मेरे इस मतसे केबिनेटके अन्य सदस्य भी सहमत होंगे।"

मिस्टर काएडलरने अपने पत्रमें जो कुछ लिखा है उससे यही प्रगट होता है कि इङ्गलेण्डकी वर्तमान राजनीतिका उन्हें जरा भी ज्ञान नहीं है। वहां प्रतिदिन क्या हो रहा है वह नहीं समझ रहे हैं। मिस्टर पिकेट हालने न्यू एज नामी पत्रमें हालमेंही लिखा था:—"यद्यपि तुर्कोंके साथ क्षणिक सन्धि हुए बहुत दिन बीत गये पर अभीतक आर्मेनियावालोंके कत्ले आमकी जांच करनेके लिये निरपेक्ष अन्तर्राष्ट्रीय जांच कमेटी नहीं बैठाई गई यद्यपि तुर्कोंने इसके लिये प्रार्थना भी की पर

आर्मेनियाकी व्यवस्थाने इसे स्वीकार नहीं किया, केवल इतना ही कहकर टाल दिया कि ब्राइस और लेयमन्सके रिपोर्ट तुर्कोंकी निन्दा और दण्डविधानके लिये काफी हैं अर्थात् केवल मुद्दईके बयानपर ही फैसला कर देना चाहिये। अन्तर्राष्ट्रीय कमीशनने स्मिर्नामें इस तरहके अभियोगोंका निरपेक्ष जांच की और यूनानियोंके कथनके विरुद्ध मत कायम किया। इसलिये उनकी रिपोर्ट इङ्गलैण्डमें प्रकाशित नहीं की गई यद्यपि अन्य राष्ट्रोंमें वह कभी प्रकाशित हो गई।" अन्तमें उन्होंने यह दिखलाया है कि अपने उद्देश्यकी सिद्धि और अपना मत समर्थनके लिये आर्मेनिया तथा यूनानके राजदूत लोग प्रचुर धन व्यय कर रहे हैं। इसपर उन्होंने लिखा है :—"अस्लाम अनजानकारी तथा झूठापवादका समवाय संयोग ब्रिटिश राज्यके लिये अतिशय भयावह होगा। जो राजा और प्रजा किसी प्रत्यक्ष घटना या प्रमाणके मुकाबिलेमें प्रचार और आन्दोलनको अधिक उपयोगी समझते हैं वह अपना नाश अपने आप करते हैं।"

इस अवतरणको हमने इसलिये दिया है कि लोगोंको यह विदित हो जाय कि वर्तमान ब्रिटिश नीति विवेकहीन प्रचार और आन्दोलनसे दूषित हो गई है। लण्डन क्रानिकलने लिखा है कि १७वीं सदीमें तुर्क साम्राज्यका विस्तार एशिया, अफ्रिका और यूरोप मिलाकर प्रायः २० लाख वर्गमीलके करीब था, वही विस्तार इस सन्धिकी शर्तोंके अनुसार अब केवल १०००, वर्ग-मील रह गया है। यूरोपीय तुर्की अब केवल नाममात्रको रह

गई है। केवल कार्नवाल प्रदेशका क्षेत्रफल उससे बड़ा है। यदि तुर्कोंने जर्मनीका साथ न दिया होता तो आज पूर्वीय बाल्कन प्रदेशकी कमसे कम ६० हजार वर्गमील भूमि उसे मिली होती।" मुझे नहीं मालूम कि क्रानिकलके मतका प्रतिपादन किसी और ने किया है। तुर्की साम्राज्यको इस तरह काटना, उसे दण्ड देनेके लिये है अथवा न्यायके अनुसार यही उचित प्रतीत होता है? यदि तुर्कोंने जर्मनीका साथ न दिया होता तो क्या मेसापोटामिया, अरेबिया, आर्मेनिया, और पलस्टाइनके लिये राष्ट्रीयताके सिद्धान्तकी उद्घोषणा की गई होती?

मिस्टर काण्डलरने लिखा है कि मिस्टर लायड जार्ज भारतकी जनताके साथ इसलिये प्रतिज्ञावद्ध नहीं हुए थे कि रंगरूटोंकी भर्ती और उनका भेजा जाना जारी रहे। जो लोग इस मतसे सहमत हैं उनकी सेवामें मुझे मिस्टर लायड-जार्जके निम्नलिखित शब्दोंको उद्धृत कर देना उचित प्रतीत होता है। अपने कथनकी सफाई देते हुए मिस्टर लायड जार्जने कहा था :—

"मेरे इस कथनका प्रभाव यह पड़ा कि भारतवर्षमें रङ्गरूटोंकी भर्तीका काम ज्योंका त्यों जारी रहा और उसमें अधिकाधिक वृद्धि होने लगी। सभी रङ्गरूट मुसलमान ही नहीं थे पर उनमें मुसलमान भी थे। अब यह कहा जाता है कि यह तुर्कोंके लिये वचन दिया गया था। पर तुर्कोंने इसे स्वीकार नहीं किया था। इससे हमारे ऊपर किसी तरहकी जिम्मेदारी नहीं

रही। पर हमने किसी तरहका वचन नहीं दिया था। प्रायः लोग इस बातको भूल जाते हैं कि संसारमें मुसलमान रिआया हमारे साम्राज्यमें सबसे अधिक हैं क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्यकी प्रायः चौथाई प्रजा मुसलमान हैं। इन लोगोंने इस संकटके समय उत्कट राजभक्ति दिखलाई और तत्परतासे साम्राज्यकी सहायता की। हम लोगोंने उन्हें आशापूर्ण वचन दिया और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। अब उन्हें इस बातकी आशङ्का होने लगी है कि हम लोग उस प्रतिज्ञाका पालन नहीं करेंगे और इसीलिये वे उत्तेजित हो गये हैं।"

उस प्रतिज्ञाका क्या अर्थ लगाया जाय और इस कामको कौन करे? भारत सरकारने उस प्रतिज्ञाका क्या अर्थ लगाया? उसने सच्चे हृदयसे इस बातको स्वीकार किया कि नहीं कि मुसलमानोंके पवित्र क्षेत्रोंके संरक्षणका पूर्ण अधिकार खलीफाके हाथमें होना चाहिये? ब्रिटिश सरकारने इस बातकी चर्चा की कि जज़ीरतुल अरबका पूरा हिस्सा तुर्कोंके हाथसे ले लिया जाय और मित्रराष्ट्रोंके सूचनापत्रके अनुसार उसे मित्रराष्ट्रोंमें बांट दिया जाय, क्या तोभी प्रतिज्ञा भंग नहीं होती? यदि सन्धिकी प्रत्येक शर्तें उचित हैं और प्रतिज्ञाके अनुसार हैं तो फिर भारत सरकार मुसलमानोंके साथ खुली सहानुभूति क्यो प्रगट कर रही है। मैं यह भलीभांति समझा देना चाहता हूं कि मेरे बारेमें किसीको यह भ्रम न उत्पन्न हो जाय कि मैं मिस्टर लायड जार्जकी घोषणासे पूर्णतया सहमत हूं या उसका

एकदमसे विरोध करता हूं। मैंने इसीलिये उसके संबंधमें "संभावित" शब्दका प्रयोग किया है।

मिस्टर काण्डलरके पत्रसे विदित होता है कि उन्होंने यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि मेरा अभिप्राय खिलाफतके साथ न्याय करानेके अतिरिक्त और कुछ भी है। यदि उनका यह विश्वास है तो वे सही हैं। न्याय प्राप्त करना मेरा मुख्य उद्देश्य है और यदि मुझे यह विदित हो जाय कि न्यायकी मात्रामें मैं भ्रममें था तो मैं पीछे कदम हटानेके लिये तैयार रहूंगा। पर इस संकटके समय भारतके मुसलमानोंकी सहायता करके मैं उनकी मैत्री प्राप्त करना चाहता हूं। इसके अतिरिक्त यदि मैं मुसलमानोंको अपना साथी बना सका तो मैं ब्रिटनको उस पापसे बचा लूंगा जिसकी ओर मेरी समझमें उसके प्रधान मन्त्री लोग उसे लिये जा रहे हैं। मैं समस्त भारत और ब्रिटिश साम्राज्यको यह बात प्रत्यक्ष करके दिखला देना चाहता हूं कि यदि जनतामें आत्मत्यागके थोड़े भी भाव आजायं तो पूर्ण शान्तिमय तथा पवित्र उपचारों द्वारा ही न्यायकी प्राप्ति हो सकती है और इसके लिये भारतीय तथा मुसलमानोंमें किसी तरहके मनोमालिन्यकी संभावना नहीं है, क्योंकि मेरे तरीकेका अस्थायी प्रभाव जो कुछ हो पर मुझे दृढ़ विश्वास है कि असद्भावसे यह सर्वथा रहित है।

बडे लाटसे अपील।

(जून ३०, १९२०)

मान्यवर महोदय,

आपका मेरे ऊपर कुछ विश्वास रहा है। मैं अपनेको ब्रिटिश साम्राज्यका शुभेच्छु समझता हूं। इसलिये मैं आपके द्वारा ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलके कानों तक खिलाफतके साथ अपना सम्बन्ध पहुंचा देना चाहता हूं।

युद्धके आरम्भिक कालमे जिस समय मैं लण्डनमें इण्डियन वालण्टियर कार्प्सका सङ्गठन कर रहा था उसी समयसे मैं खिलाफतके प्रश्नमें दिलचस्पी लेने लगा। जिस समय तुर्कोंने जर्मनीका साथ देनेकी घोषणा की मुसलमान संसारमे हलचल मच गई। जिस समय १९१५ की जनवरीमें मैं भारत पहुंचा मैंने यहांके मुसलमानोंमे भी वही चिन्ताके लक्षण पाये। जिस समय "गुप्त सन्धिकी" बात प्रगट हुई उस समय उनकी चिन्ता और भी बढ़ गई। उनके हृदयमें ब्रिटनके प्रति अविश्वासने आसन जमा लिया और उनके चारों ओर निराशाका घोर अन्धकार छा गया। उस समय भी मैंने अपने मुसलमान भाइयोंको यही सलाह दी कि वे निराश न हों बल्कि अपने भय तथा आकांक्षाओंको शान्ति पूर्वक उपस्थित करें। यह निःसङ्कोच स्वीकार

किया जा सकता है कि गत पांच वर्षों से भारतीय मुसलमान अद्वितीय आत्मसंयमका प्रमाण देते आये हैं और नेताओंने उपद्रवियोंको शान्त रखनेमें पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

सन्धिको शर्तें तथा आपकी उनपर सफेदी पोतनेकी चेष्टाने भारतीय मुसलमानोंके हृदयोंपर कड़ी चोट पहुंचाई है जिसका सह लेना उनके लिये साधारण बात नहीं होगी। उन शर्तोंमें प्रधान मन्त्रीके वचन तोड़े गये हैं और मुलमानोंकी आकांक्षोंका जरा भी खयाल नहीं किया गया है। मैं एक कट्टर हिन्दू हूं। मैं भारतीय मुसलमानोंके साथ पूर्ण मैत्रीके साथ रहना चाहता हूं। ऐसी अवस्थामें यदि मैं आपत्कालमें उनका साथ न दूं तो मैं भारत सन्तान कहानेके योग्य नहीं। मेरी समझमें उनकी मांग न्यायोचित है। उनका कहना है कि यदि मुसलमानोंके मानकी रक्षा करनी है तो तुर्कोंको दण्ड नहीं दिया जाना चाहिये। मुसलमान सैनिकोंने इस आशासे अपना रक्त नहीं बहाया था कि उसके पुरस्कारमें उनके खलीफाका राज्य छीन लिया जाय और वे अधिकार च्युत कर दिये जायं। विगत पांच वर्षोंसे मुसलमान लोग पूरी स्थिरता दिखला रहे हैं।

साम्राज्यके सदेच्छुकी हैसियतसे मैं अपना कार्य समझता हूं कि मुसलमानोंके मनोभावोंपर जो चोट की गई है, उसका मैं प्रतिवाद करूं। जहांतक मुझे विदित है ब्रिटिश न्याय प्रियतापरसे हिन्दू मुसलमानोंका विश्वास उतर गया है। हण्टर कमेटीके अधिक सदस्योंका मत, उसके सम्बन्धमें आपका

भारत मन्त्रीके नाम भेजा खरीता तथा भारत मन्त्रीका उत्तर, आदि बातोंने उस अविश्वासको और भी दृढ़ कर दिया है।

ऐसी अवस्थामें मेरे लिये केवल दो ही मार्ग खुले हैं। या तो निराश होकर ब्रिटिश साम्राज्यके साथ हर तरहका सम्बन्ध त्याग दूं या यदि ब्रिटिश शासन प्रणालीकी आन्तरिक सदिच्छामें मेरा अब भी विश्वास शेष है तो मुझे ऐसे उपाय निकालने चाहिये जिससे इन बुराइयोंका प्रतीकार हो जाय और जनताका इनपर विश्वास जम जाय। ब्रिटिश प्रणालीका आन्तरिक विशिष्टतामें मेरा विश्वास अब भी शेष है। मुझे पूर्ण आशा है कि यदि किसी भी उपायसे हमने यातना सहनेकी पूर्ण योग्यता दिखलाई तो हमारे साथ न्यायाचरण अवश्य होगा। हाँ, इतना मैं अवश्य कह देना चाहता हूं कि जो कुछ अनुभव मुझे प्राप्त हो सका है उससे मेरी यह धारणा हुई है कि इस प्रणालीके अन्दर उन्हींको अधिक सहायताकी आशा रहती है जो स्वयं आप अपनी सहायता करना चाहते हैं। यह दुर्बलोंकी रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं करता। बलिष्ठोंकी इसमें खूब पूछ है। अपनी शक्ति बढ़ानेका उन्हें पर्याप्त साधन मिल जाता है और दुर्बल इसमें पीस दिये जाते हैं।

इसीलिये मैंने अपने मुसलमान मित्रोंसे कहा है कि यदि खिलाफतके प्रश्नका निपटारा प्रधान मन्त्रीके दिये वचन तथा मुसलमानोंकी सदिच्छाके अनुसार न किया जाय तो आप ब्रिटिश सरकारके साथ सम्बन्ध न रखें और मैंने हिन्दुओंसे भी मुसलमानोंका साथ देनेके लिये कहा है।

जिस अन्यायपूर्ण काममें ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान मन्त्री सहायक रहे हैं उसके प्रति अपनी घार अप्रसन्नता प्रगट करनेके लिये भारतीय मुसलमानोंके लिये तीन मार्ग खुले हैं।

(१) शस्त्र लेकर उठ खड़े होना।

(२) ब्रिटिश साम्राज्य छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाना।

(३) सरकारके साथ असहयोग करके पापाचरणमें उसका साथी न होना।

आपको भली भांति विदित होगा कि एक समय यह था जबकि मुसलमानोंमें ऐसे विचारशून्योंका अभाव न था जो हिंसाके कट्टर पक्षपाती थे और आज भी ऐसे लोग मौजूद हैं जो 'हिजारतके' लिये तैयार हैं। मैं साहसके साथ कह सकता हूं कि धीरे धीरे अपने मतका प्रभाव डालकर मैंने मुसलमानोंको हिंसासे अलग कर लिया है। पर मेरी यह सफलता केवल लाभकी दृष्टिसे हुई है न कि अहिंसाकी उपयोगिताका दृष्टिसे। पर जो कुछ हो इसका साम्प्रतिक परिणाम यह हुआ है कि हिंसा-की प्रवृत्ति मुसलमानोंमेंसे सर्वथा जाती रही है। जो लोग हिजा-रतके पक्षपाती थे उनका जोश भी ठंढासा हुआ चला जा रहा है यद्यपि वह एकदमसे लुप्त नहीं हो गया है। मेरी निश्चित धारणा है कि दमनका अतिबलिष्ठ प्रयोग भी हिंसाकी प्रवृत्तिको रोकनेमें समर्थ नहीं हुआ होता यदि स्वयं जनताने ऐसे बलिष्ठ शस्त्रको सामने न रख दिया होता जिसमें त्यागसे सफलताकी सम्भावना हो अर्थात् जितना ही अधिक त्याग किया जाय उतनी ही अधिक

सफलता हो। अतीत कालसे यह होता आया है कि यदि राजा कुशासन आरम्भ कर दे तो प्रजा उसका साथ छोड़ दे सकती है।

साथ ही मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि सामूहिक सविनय अवज्ञा आपत्तियोंसे भरी है। पर जो विपत्तिका पहाड़ मुसलमानोंके ऊपर घहराकर गिरा है उसका प्रतीकार तबतक नहीं हो सकता जबतक ऐसे ही दुरूह शस्त्र न प्रयुक्त हों। यदि इस समय कष्ट न उठाया जाय तो भविष्यमें इससे अधिक आपत्ति झेलनी पड़ेगी और कानून तथा शान्तिके भी भंग होनेकी संभावना रहेगी।

पर अब भी असहयोग रोक देनेका अवसर है। जिस तरह आपके पूर्वके बड़े लाट मिस्टर हार्डिञ्जने दक्षिण अफ्रिकाकी अशान्तिके समय भारतीयोंके आन्दोलनको स्वयं अपने हाथमें ले लिया था उसी प्रकार आप भी खिलाफतके आन्दोलनको अपने हाथमें ले लीजिये, यही मुसलमानोंकी प्रार्थना है। पर यदि आप इसे स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं हैं और यदि लोगोंने देखा कि सिवा असहयोगके अन्य कोई चारा नहीं रह गया है तो मुझे पूर्ण आशा है कि मुझे और जिन लोगोंने मेरी बात मानकर इस व्रतको स्वीकार किया है किसी तरहसे दोषी नहीं ठहरावेंगे क्योंकि उनका कर्तव्य उन्हें इसी मार्गपर चलनेके लिये प्रेरित करता है।

बम्बई
जून २२, १६२०

आपका सेवक
मोहनदास कर्मचन्द गांधी

हिजरत ।

—:*:—

(जुलाई २१, १६२०)

भारतवर्ष एक महाद्वीप है। शिक्षित भारतीय अशीक्षित भारतीयोंकी गतिको भलीभांति समझते हैं। सरकार और शिक्षित भारतवासी भले ही समझें कि खिलाफतका प्रश्न महज एक चलतू सङ्कट या आपत् है पर लाखों मुसलमान इसको दूसरी ही दृष्टिसे देखते हैं। मुसलमानोंका देश-त्याग धीरे धीरे बढ़ रहा है। समाचार पत्रोंके कालमके कालम रङ्गे गये हैं कि किसी विशेष ट्रेनद्वारा एक बारिस्टर कुल ७६५ आदमियोंको लेकर अफगानिस्तान चले गये। मार्गमें लोगोंने उन्हें प्रोत्साहन दिया। लोगोंने नगदी, भोजनकी सामग्री तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं दीं। मार्गमें महाजरीनने उनका साथ दिया। एक क्या हजारों शौकत अलीकी इस तरहकी उन्मत्त शिक्षा लोगोंके हृदयमें इतना जोश नहीं ला सकती कि वे अपना घर छोड़कर किसी अनजान देशमें जानेके लिये तैयार हो जायं। इसमें विश्वासके कोई आन्तरिक भाव अवश्य होंगे। वे समझते हैं कि जिस राज्यमें उनकी धार्मिक भावोंकी भी रक्षा नहीं हो सकती उसको त्यागकर विदेशमें भिख-मङ्गोंकी तरह भटकना कहीं अच्छा है। इस दृश्यकी अवहेलना

वही सरकार कर सकती है जिसे अधिकारने एकदमसे उन्मत्त क दिया है।

पर इसके अलावा इस आन्दोलनके दूसरे पहलू भी हैं। उनकी चर्चा निम्न लिखित सरकारी सूचना पत्रमें दी गई है :—

"आठवीं तारीखको पेशावर और जमरूदके बीचमें कच्चोगढ़ी नामक स्थानपर महाजरीनोंके सम्बन्धमें एक शोचनीय दुर्घटना उपस्थित हो गई। जो समाचार मिल सका है वह नीचे प्रकाशित किया जाता है। महाजरीनोंका एक दल रेल द्वारा जमरूद जा रहा था। उनमेंसे दोके पास टिकट नहीं था। ब्रिटिश मिलिटरी पुलिसने उन्हें गिरफ्तार किया। इस्माइलिया कालेज स्टेशन पर दङ्गा मच गया। इतनेमें गाड़ी कच्चीगढ़ी पहुंची। वहां पर इन दानों महाजरीनोंको गिरफ्तार कर लेनेकी चेष्टा की गई। इसपर प्राय: ४० महाजरीनोंने ब्रिटिश मिलिटरी पुलिस पर हमला किया और जिस ब्रिटिश अफसरने बिचौता करनेका प्रयास किया था वह बुरी तरह घायल हुआ। इसपर कच्चीगढ़ीकी सैनिक सेनाने गोली चलाई। जिससे एक महाजरीन मारा गया, एक घायल हुआ, तीन गिरफ्तार किये गये। सैनिक और पुलिस दानों घायल हुए। मरे हुए महाजरीनोंका शव पेशावर भेज दिया गया और ६वींको वह गाड़ दिया गया। इस दुर्घटनासे पेशावरमे बड़ी हलचल मची हुई है। खिलाफत हिजारत कमेटी उत्तेजनाको शान्त करनेकी पूरी चेष्टा कर रही है। ६वींके प्रात:-काल प्राय: सभी दूकानें बन्द थीं। इस घटनाकी जांच हो रही है।"

पेशावरसे जमरूद बहुत दूर नहीं है। केवल कुछ आने किराये लगते हैं। इस कुछ आनेके लिये उन बिना टिकटके महाजरीनोंको गाड़ीसे उतारनेकी सैनिक पुलिसकी चेष्टा उचित नहीं थी। यह तो पहलेसे ही अनुमानित था कि दलके दल महाजरीन इस मामलेमें हस्तक्षेप करेंगे। परिणाम यह हुआ कि दङ्गा हो गया। एक ब्रिटिश अफसरको भाला लगा। इसपर गोली चली और महाजरीन मारे गये। क्या इस घटनासे ब्रिटिशकी मर्यादा किसी तरह बढ़ी? जब सरकारने देखा कि धर्ममें मतवाले होकर लोग इस तरह प्रवास करनेपर उतारू हो गये हैं और अपना घर छोड़कर विदेशोंमें जा रहे हैं तो उसे उचित था कि सीमा प्रान्तकी रक्षाके लिये कुछ चतुर और दूरदर्शी अफसरोंको रख देती। इस दुर्घटनाका समाचार—कि अंग्रेजोंने गोली चलाई और महाजरीन इसके शिकार बने—धीरेधीरे चारों ओर फैल जायगी बल्कि लोग इसमें और भी निमक मिर्च लगाकर सुनावेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि मुसलमानोंमें जो असन्तोष बढ़ रहा है वह और भी द्रुतगामी होगा। सूचना पत्रमें लिखा है कि सरकार इस मामलेकी जांच कर रही है। हमें आशा करनी चाहिये कि पूरी तरहसे जांच की जायगी और सरकार ऐसा प्रबन्ध कर देगी जिससे भविष्यमें इस तरहकी घटनायें न हुआ करेंगी।

जो लोग असहयोगके विरोधी हैं उनसे हमें इस स्थलपर यही कहना है कि या तो असहयोगको स्वीकार कीजिये या इस

प्रकारको कोई दूसरी युक्ति ढूंढ़ निकालिये नहीं तो आपको इसी प्रकारकी अनवस्थित अवस्थामें रहकर इस प्रकारकी दुर्घटनाओंका सामना करना पड़ेगा, जिनका असर अज्ञात है पर जिनका फैलना नहीं रुक सकता।

——:०:——

श्रीअण्डरूजकी कठिनाई।

——:*:——

(जुलाई २१, १९२०)

भारतभक्त श्री अण्डरूजको कौन नहीं जानता होगा। भारतके लिये उनकी भक्ति अतुलनीय है। श्रीयुक्त अण्डरूज मानव समाजकी सेवाके लिये ही उत्पन्न हुए हैं। भारतीयोंसे उनकी विशेष ममता है। उनकी भलाईके लिये वे तनमनसे लगे रहते हैं। खिलाफत आन्दोलनपर उन्होंने बाम्बे क्रानिकलमें कई एक लेख लिखे हैं। उन्होंने इटाली, फ्रांस और इङ्गलैण्डकी खूब लानत मलामत की है। उन्होंने दिखलाया है कि तुर्कोंके साथ कितना भीषण अन्याय किया गया है और प्रधान मन्त्रीके वचन किस तरह तोड़े गये हैं। अन्तिम लेखमें उन्होंने उस पत्रकी समीक्षा परीक्षा की है जिसे मिस्टर मुहम्मद अलीने सुलतानकी सेवामें लिखा था। श्रीअण्डरूजने यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि

खिलाफत डेपुटेशनने बड़े लाटके पास जो मेमोरियल भेजा है उसकी मांगें न्यायपूर्ण हैं पर मुहम्मद अलीने जो पत्र भेजा है उसमें इनसे विरोधी भाव हैं।

इस प्रश्नपर मैंने श्रीयुक्त अएडरूजके साथ पूर्णरूपसे विवाद किया। उनकी इच्छा है कि मैं अपनी स्थितिको पहलेकी अपेक्षा और भी साफ कर दूं। उनके इस विवादका एकमात्र अभिप्राय यही था कि वे मुसलमानोंकी मांगको उचित समझते है इसलिये विवाद द्वारा वह उसे और भी दृढ़ कर देना चाहते हैं जिससे इङ्गलैण्ड और विशेषकर मित्र राष्ट्र शर्म खाकर भी सन्धि शर्तोंपर पुनः विचार करें।

इस विषयमें मैं श्रीयुक्त अएडरूजका निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार करता हूं। सफाईके लिये मैं इतना लिख देना आवश्यक समझता हूं कि मैं धर्मके उस सिद्धान्तका स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं हूं जिससे दिल न भरे और जो सदाचारकी विरोधी हो। यदि सदाचारके प्रतिकूल न हो तो मैं अनुचित धार्मिकताके भावको भी स्वीकार करनेको तैयार रहता हूं। मै खिलाफतके प्रश्नको उचित और न्याययुक्त समझता हूं। इसके साथ ही साथ इसका समर्थन मुसलमानोंकी धार्मिक सिद्धान्तों द्वारा भी होता है, इसलिये इसको शक्ति और भी मजबूत हो जाती है।

मेरी समझमें मिस्टर मुहम्मद अलीके विचार सर्वथा ठीक हैं, उसमें एक भी अधिक शब्दका समावेश नहीं है। इसमें

कोई ऐसे शब्द नहीं हैं जिससे उनका पत्र गूढ़ नीतिज्ञता पूण-प्रतीत हो। पर जबतक किसी वस्तुका भाव स्पष्ट है तो मैं केवल शब्दोंकी जटिलताके लिये कोई टण्टा खड़ा करना उचित नहीं समझता।

श्रीयुक्त अण्डरूजका कहना है कि मिस्टर मुहम्मद अलीके पत्रसे साफ झलकता है कि वे यह नहीं चाहते कि आर्मेनिया और अरबवालोंको स्वाधीनता दी जाय। पर मेरी समझमें उस पत्रमें इस भावके एक भी शब्द नहीं हैं। जहांतक मेरी समझमें आया है उन्होंने यही लिखा है कि 'मैं इङ्गलैण्ड तथा अन्य शक्तियोंकी उस बेशर्मीकी कोशिशका हृदयसे विरोध करूंगा जो उन्होंने आत्मनिर्णयके नाम पर तुर्कोंको छिन्न भिन्न तथा पङ्गु बनानेमें किया है।' सारे मुसलमानोने तथा उनके साथी हिन्दूओंने भी यही अभिप्राय समझा है। यदि इस्लाम धर्मके सच्चे अभिप्रायको मैं समझ सका हूं तो मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूं कि वह धर्म परम उदार है। इसलिये यदि आर्मेनिया और अरेबिया तुर्कोंसे स्वतन्त्र होना चाहते हैं तो वह स्वतन्त्रता उन्हें अवश्य प्राप्त होगी। अरबोंको पूर्ण स्वाधीनता दे देनेका अभिप्राय यह है कि खिलाफतका अधिकार किसी अरबी सरदारके हाथों सौंप दिया जाय। इस अभिप्रायमें अरेबिया मुसलमान राज्य कहलावेगा, केवल अरबी नहीं। जबतक अरबवाले मुसलमान होनेसे इनकार न करें अरेबिया पर उनका शासन मुसलमानोंके प्रतिकूल नहीं हो

सकता। मुसलमान धर्मके अनुसार समस्त मुसलमान तीर्थक्षेत्रोंके अध्यक्ष खलीफा होंगे। इसलिये उन क्षेत्रोंमें जानेके जो मार्ग हैं उनपर भी उन्हींका अधिकार होना चाहिये। यदि संसारकी समग्र शक्तियां उनपर आघात करना चाहें तो उनकी रक्षाकी उनमें (खलीफामें) शक्ति होनी चाहिये। यदि इस बातकी तुर्कोंके सुलतानसे अधिक योग्यता अरबके किसी सरदारमें दिखाई देती है तो इसमें किसी तरहका सन्देह नहीं कि वह खलीफा बना दिया जा सकता है।

यह सर्व साधारणको विदित है कि स्मिर्ना, थ्रेस तथा अड्रियानोपुल तुर्कों से बेइमानीके साथ ले लिये गये हैं और सीरिया तथा मेसापोटामियामें विना किसी विचारके संरक्षकता जारी की गई है और ब्रिटिशकी छत्रछायामें उन्हींका एक चुनिन्दा हेजाजका शासक बनाया गया है। यह स्थिति अन्यायपूर्ण और इसलिये असह्य है। आर्मेनिया तथा अरेबियाके प्रश्नके अतिरिक्त इस बातकी नितान्त आवश्यकता है कि इन बेइमानियों तथा संकीर्णताओंके कारण सन्धिकी शर्तों पर जो काला धब्बा लग रहा है उसे मिटा देना नितान्त आवश्यक है। जिन लोगोंसे इन प्रश्नका सम्बन्ध है यदि उनकी सदिच्छाओंको पूरी करनेकी आशा दे दी जाय तो आर्मेनिया तथा अरेबियाका प्रश्न अति सहजमें हल हो सकता है।

तुर्कीका प्रश्न ।

(जून २१, १९१९)

यदि हम अपने मुसलमान भाइयोंकी सदिच्छा चाहते हैं तो हमें यही उचित है कि इस संकटके समय जबकि युरोपमें तुर्की राष्ट्रीयताको मटियामेट करनेका प्रयत्न हो रहा है हम उनका साथ दें । यह नितान्त दुःखकी बात है कि इस प्रयत्नमें ब्रिटनका सबसे अधिक हाथ है । हिन्दुओंको मुसलमान धर्मसे किसी बातका भय नहीं होना चाहिये । न तो उनकी इस्लामिक स्पर्धा भारतीयों—विशेषकर हिन्दुओंके—खिलाफ है और न हो सकती है । मुसलमानोंका कर्तव्य है कि वे प्रत्येक मुसलमान राज्यके साथ सहानुभूति रखें और यदि उनपर किसी तरहकी विपत्ति आवे तो यथाशक्ति उनकी सहायता करें । और यदि मुसलमानोंके साथ हिन्दुओंकी सच्ची सहानुभूति है तो उन्हें भी उनका साथ देना चाहिये । इसलिये हमारा कर्तव्य है कि हम लोग इस समय मुसलमानोंका साथ दें और यूरोपीय तुर्कोंका नाश तथा लोप होनेसे बचावें ।

मुसलमान इस बातसे भयभीत हैं कि कहीं ब्रिटिश अंगोराके खिलाफ यूनानियोंका साथ न दे । पर हिन्दुओंको इससे घबराना नहीं चाहिये । यदि ब्रिटन इतना पागल हो जायगा कि वह

तुर्कों के खिलाफ यूनानियोंको सहायताके लिये तैयार हो जायगा ना इसमें भारत उसका किसी भी प्रकारसे साथ नहीं दे सकता, क्योंकि इसका अभिप्राय इस्लाम धर्मसे खुल्लमखुल्ला युद्ध करना होगा।

इस समय इङ्गलैण्डके लिये विचारणीय समय उपस्थित है। उसे भली भांति समझ लेना चाहिये कि अब वह जागृत मुसलमानोंको दास बनाकर नहीं रख सकता। यदि भारतको साम्राज्यमें बराबरकी हैसियतसे रखना है तो उसे मत देनेका सबसे अधिक अधिकार मिलना चाहिये। स्वतन्त्र राष्ट्रका एक सदस्य यदि यह देखता है कि इतर सभी बुरे मार्गपर जा रहे हैं तो उनसे सम्बन्ध तोड़ देनेकी उसे उसी प्रकार पूर्ण स्वतन्त्रता है जिस प्रकार उसे उसमें तबतक रहनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता है जबतक वह देखता है कि सभी सदस्य किसी निर्दिष्ट सिद्धान्तको पूरी तरह पालते जा रहे हैं। यदि भारतने मत देनेमें भूल की तो इङ्गलैण्ड उसका साथ छोड़ सकता है। इसलिये यदि भारतकी स्वतन्त्रता स्वीकार की जाती है तो समताका केन्द्र इङ्गलैण्डको न होकर भारतको होना चाहिये। साम्राज्यके अन्तर्गत स्वराज्यसे मेरा यही अभिप्राय है कि किसी भी तरहके निर्णयमें पशुबलकी चर्चा न होनी चाहिये। सदा बुद्धिबलकी सहायता ली जानी चाहिये, तलवारकी चर्चा न होनी चाहिये।

जो बात इङ्गलैण्डके साथ है वही भारतके साथ है। उसे भी अपनी अवस्थापर विचार कर लेना चाहिये। आज हम इस

केवल आशासे स्वराज्यके लिये सयत्न हो रहे हैं कि अन्तोगत्वा इङ्गलेण्ड सच्चा साबित होगा और अपने वचनको पूरा करेगा पर यदि उसने दगा किया तो हम पूर्ण स्वतन्त्रताकी चेष्टा करेंगे। पर जब यह बात भली भांति प्रगट हो जाय कि ब्रिटन तुर्कों के नाशके लिये तुला है तो भारतीयोंके लिये केवल पूर्ण स्वधीनता प्राप्त करनेका ही मार्ग खुला रहता है। और जब तुर्कोंका भविष्य एकदम अन्धकारमें डाल दिया गया है, उसकी स्थिति डावांडोल हो रही है ऐसे समयमें मुसलमानोंके लिये तो एक दम भी पीछे रहनेका अवसर नहीं है। यदि उनकी शक्तिमें होगा तो वे तलवार उठा लेंगे और बहादुर तुर्कोंका साथ देकर या तो विजयी होंगे या कट मरेंगे। पर यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया—जिसकी ब्रिटिश सरकारकी नोतिके कारण सम्भावना है—तो वे उस सरकारके साथ अपना सम्बन्ध तो अवश्य तोड़ देंगे जो इस प्रकार नीचताके साथ तुर्कों से युद्ध ठान रही है। हिन्दुओंका कर्तव्य भी निर्दिष्ट है। यदि हमें अब भी मुसलमानोंसे भय है और उनमें अविश्वास है तो हमें ब्रिटनका साथ देकर अपनी दासताकी बेड़ीको और भी कड़ी करवा लेनी चाहिये। यदि हम लोग काफी साहसी और धार्मिक हैं कि अपने देशभाइयों, मुसलमानोंसे हम नहीं डरते, और यदि उनमें विश्वास करनेकी दूरदर्शिता हममें है तो हमें मुसलमानोंके साथ पूर्ण मेलके साथ काम करना चाहिये और भारतकी स्वतन्त्रताके लिये जितने भी शान्तिमय मार्ग हों सबका अनुसरण उनके साथ करना चाहिये।

हिन्दूके लिये भारतकी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिये—चाहे वह साम्राज्यके भीतर हो या बाहर—शान्तिमय असहयोगके सिवा और कोई उपाय नहीं है। यदि भारतको अहिंसाको दुर्जय तथा अदम्य शक्तिका पता लग जाय और वह उसे ग्रहण कर ले तो आज ही उसे औपनिवेशिक स्वराज्य मिल सकता है। जब उसने अहिंसा भली भांति अभ्यस्त कर लिया है तब वह असहयोगको सर्वांग स्वीकार कर सकता है अर्थात् मालगुजारी देना भी बन्द कर दे सकता है। भारतवर्ष आज तैयार नहीं है पर यदि वह तुर्कोंके नाश करनेके सभी तरीकोंको छिन्न भिन्न करनेके लिये तैयार होना चाहता है, अथवा उसकी दासताको और भी कठोर करनेके लिये जितने तरीके काममें लाये जायं उन्हें नष्ट करनेके लिये तैयार होना चाहता है तो उसे अति शीघ्रताके साथ शान्तिमय अहिंसाके मन्त्रमें दीक्षित होना चाहिये। पर इसमें इसकी किसी तरहकी हीनता नहीं प्रमाणित होगी उल्टे इसकी महत्ता प्रमाणित होगी कि दूसरोंकी हत्याके बनिस्बत उसने अपना प्राण गंवाना ही उचित समझा।

खिलाफतका अर्थ

—:*:—

(सितम्बर ३, १९२१)

हमारे पास चारों ओरसे पत्रपर पत्र आ रहे हैं जिनमें खिलाफतके प्रश्नपर मुझे कड़ी चेतावनी दी जा रही है। न्यू जीलैंडसे एक मित्रने मेरे पास लिखा है :—

× × × × × मै देखता हूं कि आप भारतके लिये एक विचित्र प्रश्नके फेरमें पड़े हैं। इसको हल करनेमें आप ... का अनुसरण कर रहे हैं कि नहीं मैं कुछ नहीं कह सकता × × × × × × मेरे हृदयमें कुछ भाव उठ रहे हैं जिन्हें ... आपकी सेवामें लिख रहा हूं। सम्भव है कि ... मेरी जानकारी पूरी न हो, इसलिये यदि मैं भूल ... मत्रीके नाते आप मुझे क्षमा कर सकते हैं। मुझे ... अतिशय दुःख हुआ कि आप तुर्कोंके हकूकोंके प्रति ... खिलाफतके प्रश्नको राजनैतिक रूप देकर ... शासनको पंगु तथा निर्बल बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं ... यूनान, बलगेरिया, तथा आर्मेनियाके साथ जो ... किया है उसके लिये उसे समुचित दण्ड केवल ईश्वरके दरबारमें ही मिल सकता है। मै इस बातको जाननेके लिये उत्सुक हो रहा हूं कि भारतीय मुसलमानोंने

खिलाफत कांफरेंसोंमें तुर्कोंके उन अत्याचारोंकी किन शब्दोंमें निन्दा की और अर्मेनिया सदृश शान्त, परिश्रमी तथा उद्योगी जातिको मटियामेट कर देनेके लिये तुर्कोंने जो प्रयत्न किया था उसमें अपनी अप्रसन्नता प्रगट की। विना किसी कारणके केवल देश प्रेमके लिये आर्मेनियावालोंका जो रक्त बहाया गया है उसके लिये ईश्वरके दरबारमें तुर्कोंको जवाब देना पड़ेगा क्योंकि वह सबकी देखरेख किया करता है और उससे छिपाकर एक सूतका पतला धागाभी नहीं हिलाया जा सकता। तुर्कोंका आजतक-का इतिहास केवल लूटपाट और हत्याका इतिहास है। तो क्या ऐसी जातिको सर्वथा अयोग्य ठहराकर उसके हाथसे अधिकार छीनकर उसे निकाल देना उचित नहीं है? यदि राजनैतिक अधिकारका प्रयोग न्याय, स्वतन्त्रता तथा सद्भावकी स्थापनाके लिये न होकर उसका प्रयोग दूसरोंके दबाने, सताने तथा नेस्त-नाबूद करनेके तथा लूटपाट और हत्याके लिये होता हो तो क्या अन्य शक्तियोंको यह उचित नहीं है कि वे उसकी जांच करें और यदि आवश्यक हो तो शान्ति रखनेके लिये उससे अधिकार छीन लें। केवल राजनैतिक अधिकारके छीन लिये जानेसे इस्लाम धर्मके धार्मिक स्वत्व पर किसी तरहका आघात नहीं होता। यदि उसकी धार्मिक सत्तामें कुछ जोर है तो उसके भरोसे वह जीये या मरे। धर्माधिकारके साथ राज्याधिकार हमेशा हानि-कारक हुआ है। इतिहाससे यही परिणाम निकलता है। रोमन कैथलिक चर्चोंका इतिहास अभी बहुत पुराना नहीं हो गया है।

असहयोग सिद्धान्तका क्या उद्देश्य है यह तो मैं ठीक नहीं बतला सकता पर इतना मेरी समझमें अवश्य आया है कि प्रत्येक असहयोगी सरकारी कर्मचारीका पूर्ण विरोधी है। रोम साम्राज्य इतना बलिष्ठ और बलशाली केवल एक दिनमें नहीं हुआ था। किसी कोई भी शासन व्यवस्था उस देशकी स्थितिके बाहर नहीं बनायी जा सकती। थोड़ी देरके लिये मान लीजिये कि सारेके सारे ब्रिटिश अधिकारी आज ही अपना बोरिया बधना लेकर इस देशको छोड़कर चले जायं तो ऐसी दशामें क्या आप सम्भव समझते हैं कि आपके देशवासी शासनका कार्य पूर्ण योग्यताके साथ चला सकते हैं और बिना किसी तरहकी गड़बड़ीके पूरा न्याय हो सकता है? मैंने सुना है कि भारतके निवासी पुलिससे बहुत डरते हैं और भारतीय अफसर बड़े घूसखोर होते हैं। स्वराज्य प्राप्त करनेके पहले प्रत्येक देशको अपनी राष्ट्रीयताका कोई रूप बना लेना चाहिये जिसपर वह अपना भविष्य कायम कर सके। क्या वह दिन आ गया है कि आपकी विविध प्रकारकी सामाजिक, शिक्षा संबन्धी तथा राजनीतिक शक्तियां पूर्ण तथा पवित्र हो गई हैं?

राजनीतिक आन्दोलन यदि क्रान्तिकारी हुआ तो इसमें नीच विचारके सभी मनुष्य आ मिलेंगे और यदि किसी उपायसे शासनका यन्त्र उनके हाथमें आ गया तो उसका सञ्चालन ऐसे अयोग्योंके हाथमें आ जायगा कि वे लोग उसकी नीतिको गढ़ेमें ढकेल

देंगे। मुझे पक्का विश्वास है कि आप अपने पुराने निस्वार्थ देशाभिमान तथा न्याय प्रियताके आसनसे नहीं डिगे हैं। पर यह सर्वथा सम्भव है कि इस अवस्थामें समाजमें ऐसी शक्तियां उत्पन्न हो जायं जिनके साथ आप बहते बहते उस अवस्थामें पहुंच जायं जहां जाकर सच्चो राष्ट्रीयता दूरका स्वप्न हो जाय। भारतवर्षमें सभी लक्षण वर्तमान हैं जो इसे दूसरा रूस, दूसरा आयर्लैण्ड बना दे सकते हैं, अथवा गृह कलहको जन्म देकर अन्तर्जातीय रक्त-पात उत्पन्न कर दे सकते हैं। मतभेद होनेकी भी पूर्ण संभावना है। देशी राजे विरोधका झंडा खड़ा कर सकते हैं और ऐसी अवस्थामें यह भी संभव है कि ऐसी कोई भी शक्ति न रह जाय जो शान्ति स्थापित कर देशको उन्नतिके पथपर चलाती रहे और राष्ट्रीयताकी ओर देशको ले जाय। आपका मार्ग कण्टका-कीर्ण होगा। उनसे रक्षा पाना और बचकर आगे बढ़ते जाना ईश्वरकी सहायता पर ही निर्भर है और उसीका आपको एकमात्र सहारा है। जबतक आप जनताके मनकी बातें करते रहेंगे तब-तक तो लोग आपको पूजेंगे, हर तरहसे आपकी इज्जत करेंगे यहां तक कि आपको हथेली पर उठाये फिरेंगे पर जिस दिन आपने उनके सामने ईश्वरके उन अटल नियमोंको रखा और उनके पालनेकी मन्त्रणा दी उसी दिन वे किनारा कसेंगे और कहेंगे, 'इसे फांसी पर चढ़ा दो, इसे दूर करो।' आप भूल न गये होंगे। इतिहासमें आपसाही एक दूसरा व्यक्ति भी हो गया है। उसने अटल रहकर ईश्वरीय सिद्धान्तोंका प्रचार किया पर

लोगोंने उसे स्वीकार नहीं किया। उसकी इच्छा परम पवित्र थी, उसका आधार भी आत्मा थी, उसकी व्यवस्था स्वर्गीय थी, पर उसे मरना पड़ा। पर ईश्वरने उसे अपनी गोदमें ले लिया। उसके प्राण त्यागको ही सर्व प्रधान स्थान दिया, उसे संसारका उद्धारक माना।

सबसे बड़ी आवश्यकता प्रखर बुद्धि, दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञताकी है। आपने अब्राहम लिंकनका जीवन चरित अवश्य पढ़ा होगा। आपको उनकी दिव्य द्रष्टि, अटल सचाई उदारता, नम्रता, मनुष्यत्व तथा रसिकताका पर्याप्त प्रमाण मिला होगा।

मैं अपने मित्रोंसे बहुधा कहा करता हूं कि यदि आपको महात्मा गांधीके पक्षकी बातें सुननेका अवसर मिले और यदि आपको यह विदित हो जाय कि वर्तमान व्यवस्थामें भारतके साथ किस तरहका अन्याय हो रहा है, तब आपको विदित हो जायगा कि उनका विरोध उचित और सङ्गत है।

प्रश्न यह है कि भारतकी वर्तमान बुराइयोंको दूर करनेका सबसे उत्तम उपाय क्या है? हड़ताल और हिंसासे उत्तेजना फैलती है, और बहुधा यह भी देखनेमें आया है कि असन्तोषके साथ जो उत्तेजना फैलती है उसका प्रभाव अपने लिये भी हानिकर होता है। यदि सद्भाव, मेल और शान्तिके साथ ऊपर उठना है तो सुधार किसी निर्दिष्ट सङ्गठनके अनुसार ही होगा। क्रान्तिके द्वारा उन्नति पाना शनैः विकासकी कोटिमें नहीं आ

सकता। इतने दूर रहकर मैं आपकी कोई सहायता नहीं कर सकता। केवल ईश्वरसे यही प्रार्थना करता हूं कि वह आपकी रक्षा करे, आपको सन्मार्ग पर ले चले और आपको भारतके कल्याण और उद्धारका साधक बनावे।"

इस पत्रके लेखकको सद्भावनामें किसी तरहकी आशंका नहीं की जा सकती। मेरे ये मित्र कट्टर ईसाई हैं और ईश्वरके अनन्य भक्त हैं। पर जिन्हें तुर्कोंकी अवस्थाका सच्चा ज्ञान है वे भलीभांति समझ सकते हैं कि तुर्कोंके विषयमें मेरे मित्रके भाव पक्षपातसे भरे हैं। आर्मेनियावालोंको जो उपमा उन्होंने दे दी है उससे स्पष्ट है कि वे इस सम्बन्धमें अधिक जानकारी नहीं रखते। पर इस लिये उन्हें दोष देना निरर्थक है। विदेशी सभी समाचार पत्र तुर्कोंके विषयमें सच्ची बात कभी भी नहीं लिखते। इससे उन समाचार पत्रोंके पढ़नेवालोंको स्थितिका सच्चा पता कभी नहीं लगता। सभी अंग्रेजी पत्र एक ही सुरमें अलापते हैं। ईसाई धर्माध्यक्ष इन तुर्कोंके जानी दुश्मन हैं। इनके पत्रोंमें जो बातें लिखी जाती हैं वह तुर्कोंके स्वार्थमें भीषण चोट पहुंचानेवाली होती हैं। जिस उदारताकी शिक्षा सन्त पालने इतने जोरके साथ दी थी, वह उदारता ईसाई लोग भूल जाते हैं जब वे तुर्कोंके सम्बन्धमें अपने पत्रोंमें लिखने लगते हैं। उनका मत है कि तुर्कोंको ईश्वरने केवल इसलिये पैदा किया है कि वे लगातार सताये और जलाये जायं। यही संकुचित विचार न्याय और ईमानदारीका मार्ग रोककर खड़ा है।

आर्मेनिया तथा यूनानियोंके साथ तुर्कोंने जो अत्याचार किया है उसके लिये मैं तुर्कोंका समर्थन करनेके लिये तैयार नहीं हूं। तुर्कोंकी बदइन्तजामी और कुशासनको भी मैं इनकार नहीं करता। पर क्या यूनानियों और आर्मेनियोंके माथेपर इस कलङ्कका हलका टीका है? और इसके अतिरिक्त खिलाफतकी रक्षा केवल एक सिद्धान्तकी रक्षा है। पोपीय सम्प्रदायका समर्थन करनेके लिये केवल एक दो पोपके विषयमें कुछ कहने या लिखनेसे काम नहीं चल सकता। इससे पोपके सम्प्रदायका समर्थन या विरोध नहीं हो सकता। तुर्कोंके कुशासनका जिस तरह चाहिये विरोध कीजिये उसके प्रतीकारका उचित उपाय निकालिये पर केवल इस कारणसे यूरोपसे इस्लाम धर्मको खोद फेंकना अनुचित है।

एक बात और भी है जर्मन आदि शक्तियोंकी हारको इस्लामके नाशमें प्रयुक्त करना और भी बुरा है। क्या विगत यूरोपीय युद्ध इस्लाम धर्मके प्रतिकूल युद्ध था जिसमें भाग लेनेके लिये भारतके मुसलमान बुलाये गये थे। यह कहना कि मुसलमान जिसे चाहें अपना धार्मिक अध्यक्ष बना सकते हैं पर उन्हें तुर्कोंके छिन्न भिन्न करनेमें किसी तरहका हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं है, खिलाफतके महत्वकी अज्ञानताका प्रमाण है। मुहम्मद पैगम्बरके धर्मका रक्षक खलीफाही हो सकता है। इसलिये यदि किसी व्यक्तिमें संसारके विद्रोहके मुकाबिले इस्लाम धर्मकी रक्षाकी

योग्यता नहीं रह गई तो वह खलीफाके पदके योग्य नहीं रह गया। केवल भावमें जो चाहे इस सिद्धान्तकी चरितार्थता पर बोल ले या विवाद कर ले पर व्यवहारमें इसके प्रतिकूल कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि इङ्गलैण्ड ऐसे युद्धमें नहीं प्रवृत्त था जिसका उद्देश्य इस्लाम धर्मका नाश करना हो। एसी अवस्थामें इङ्गलैण्डको अपना संसर्ग उन लाखों आदमियोंके साथसे अलग करना होगा जो इसके प्रतिपादक हैं।

क्या वास्तवमें किसी धर्ममें केवल इसलिये बुराई आ सकती है कि उसका आधार अधिकार है? यदि व्यवहारिक दृष्टिसे देखें तो क्या यह नहीं कह सकते कि ईसाई धर्मका विकास केवल अधिकारके बलपर हुआ है। और हिन्दू धर्मको ही ले लीजिये। क्या भारतके प्राचीन राजे महाराजे धर्मके रक्षक नहीं होते थे? क्या उन्होंने समय समय पर धर्मका उद्धार सङ्कटसे नहीं किया था?

जिन लोगोंका (ईसाईयोंका) विचार मेरे उपरोक्त मित्रकी भांति है उनसे मैं यही कहूंगा कि आप लोग धर्मका अटल सिद्धान्त समझकर खिलाफतकी रक्षाके लिये प्रस्तुत हो जाइये। असहयोगका यह युद्ध अधर्मके साथ धर्मका युद्ध है।

मेरी आत्मा इस विषयमें दृढ़ है। मेरा ध्येय न्याय है। मैं किसी धोखेबाजी या अन्यायका समर्थन करनेके लिये नहीं लड़ रहा हूं। मेरे साधन भी संगत हैं। इस युद्धमें सचाई और अहिंसा यही मेरे दो अस्त्र हैं और आत्म पीड़न मेरी सचाईकी कसौटी है।

———*———

खिलाफतका प्रश्न।

(दिसम्बर ३, १६१६)

खिलाफत कान्फरेंसने खिलाफतके प्रश्नका पूरी तरहसे दिग्दर्शन करा दिया है। अब मुसलमानोंकी भयानक स्थितिका उन लोगोंको भी कुछ पता लगने लग गया है और वे भी इसे न्याययुक्त तथा संगत मानने लग गये हैं जो अब तक इसे या तो स्वीकार नहीं करते थे या इस प्रश्नपर पूर्ण उदासी-नता दिखलाते थे। टाइम्स आफ इण्डियामें इस प्रश्नपर कई लेख निकले हैं। इन्हें खिलाफतके प्रश्नपर विचारवान और शिक्षित ईसाइयोंका स्थिर निर्णय समझना चाहिये। इन्हें पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है कि अब तुर्कीके मामलेमें ईसाइयोंका मत भी बहुत बदल गया है। तुर्कीके प्रश्नपर मत प्रगट करनेका अंग्लो इण्डियन पत्रोंका यह प्रथम प्रयास समझना चाहिये। यद्यपि इनमें अधिकांश उन्हीं बातोंकी चर्चा है जो तुर्कीके खिलाफ युद्धके समय कही जाती थीं तथापि इनकी पूर्णतया परीक्षा करना उचित है नहीं तो यही पत्र इस बातका भी शोर गुल मचाने लग जायगा कि खिलाफतके हिमायतियोंके पास अपने मतके समर्थनका कोई साधन नहीं है। हम सबसे पहले उनके इतराजोंको लिखते हैं:—

(१) यह कहना निराधार है कि तुर्कोंको सबसे कड़ा दण्ड दिया जा रहा है और उसका राज्य छिन्नभिन्न किया जा रहा है। इस सम्बन्धमें अन्य दुश्मन राज्योंकी दशा भी ठीक इसी तरहकी है। प्रमाण स्वरूप अस्ट्रिया हङ्गरीका राज्य ले लजिये।

(२) तुर्कोंके भविष्यका निपटारा मित्रराष्ट्रोंके हाथमें रहेगा इसके निपटारेमें वे धार्मिकता तथा उदारतासे काम न लेकर राष्ट्रीयता राजनीतिज्ञता और उपयोगितासे काम लेंगे।

(३) प्रधान मन्त्रीने जो वचन दिया है उसके आधे भागके पाले जानेके लिये तो इतना जोर दिया जा रहा है पर आधेकी परवा नहीं की जा रही है। जैसे, तुर्कोंके सम्बन्धमें तो कहा जा रहा है कि तर्कके साथ काम लेना चाहिये और तुर्कोंका प्रश्न राष्ट्रीयता तथा नीतिके अनुसार हल किया जाना चाहिये पर जब अरबवालोंका प्रश्न आता है तब उसी न्यायप्रियता और राष्ट्रीयताके नामपर लोग बगले झाकने लगते हैं।

(४) तुर्कोंके शासनका परिणाम हर स्थान पर बुरा निकला है।

अब पहले एतराजपर विचार कीजिये। इन लेखोंके लेखकने इस बातपर किसी तरहका एतराज नहीं उठाया है कि तुर्कोंको अधिक दण्ड दिया गया है। एक तरहके उन्होंने इस बातको स्वीकार किया है। उनका कहना यह है कि

तुर्कीके हिमायतियोंने इस बातको स्वीकार किया है कि इस सम्बन्धमें अस्ट्रिया हङ्गरीको जितना दण्ड दिया गया है उसके अनुमानसे तुर्कोंका दण्ड कहीं कम है। उस पत्रने अपने अग्र लेखमें और भी आगे कदम बढ़ाया है और खिलाफत कांनफरेंसमें महात्मा गान्धीने जो बातें कही थीं उनसे कुछ परिणाम निकाला है। पर वह परिणाम क्या है ? वह साम्राज्य जिसमें प्रायः ५ करोड़ मनुष्य रहते हैं और जिसका क्षेत्रफल प्रायः २६०,००६ वर्ग मील है, एकदमसे छिन्न भिन्न कर दिया गया और उसमेंसे बड़े बड़े टुकड़े भिन्न भिन्न जातियोंको दे दिये गये। पर एक बात है। आस्ट्रिया हङ्गरीके साथ तुर्कीका मुकाबिला करनेमें एक बात छोड़ दी जाती है और वह यह है कि जातीयताकी हैसियतसे दोनों साम्राज्योंकी अवस्थामें घोर अन्तर है। आस्ट्रिया हङ्गरी साम्राज्य भिन्न भिन्न जातियोंका सम्मिश्रण है। उसमें प्रायः एक करोड़ जर्मन हैं, उतने हो मगियार्स हैं, ८०लाख जेको हैं, ४० लाख पोल हैं, २० लाख यहूदी हैं और उसी प्रकार सर्विया, रूमेनिया, क्रोटिया, तथा अन्य जातियां हैं। पर तुर्की साम्राज्यकी जातीयता एक है जिसमें किसी तरहका विच्छेद नहीं किया जा सकता। यूरोपमें तुर्कोंका जो कुछ शेष रह गया है उसमें अधिकांश संख्या तुर्कों की हो है और एशियाई तुर्कीमें तो मुसलमानोंका हो बोल बाला है। इस अवस्थामें एक जातिके लोगोंको छिन्न भिन्न करके भिन्न भिन्न दलमें बांटना और

भिन्न भिन्न जातियोंको तोड़कर अलग कर देना समान नहीं है यह बात बार बार दृढ़ताके साथ कही जाती है कि तुर्की साम्राज्यको जिस तरह मनमें आवे तोड़ दीजिये। उसके टुकड़े टुकड़े करके सैकड़ों हिस्से बना डालिये। पर स्मरण रखिये कि प्रत्येक भाग आपको अपना शत्रु समझेगा और सदा पुनः एकमें मिल जानेकी चेष्टा करता रहेगा। एक बात और भी यहाँ समझ लेने की है। आस्ट्रिया हंगरीको इस तरहसे तोड़ा गया है कि प्रत्येक भाग उन्हीं जातियोंके हाथमें आ गया है जो जातीयता और धार्मिकतामें एक हैं। पर तुर्कीके छिन्न भिन्न करनेसे यह बात नहीं हो सकती। इससे तुर्कीके छिन्न भिन्न करनेमें जो अन्याय है उसका पता सहजमें ही लग जाता है। तुर्कीका बटवारा इस प्रकारसे किया जा रहा है जिससे उसके खण्ड उन ईसाई राजाओंके हाथमें आ जायं जो तुर्की साम्राज्यको लोलुप दृष्टिसे देख रहे हैं। पर यदि ईसाई धर्मके अनुसार ईसाईयोंके ऊपर मुसलमानोंका शासन ईश्वरका कोप समझा जाता है तो क्या मुसलमानोंपर ईसाईयोंका शासन उसी दृष्टिसे नहीं देखा जा सकता। अन्तमें यदि थोड़ी देरके लिये मान भी लिया जाय कि आस्ट्रिया हंगरीके साथ भी उसी तरह पूर्ण निर्दयताका व्यवहार किया जा रहा है और उसे भी तुर्कीके समान ही दण्ड दिया जा रहा है तो इससे तुर्कीके साथ किये गये अन्यायका प्रतिपादन नहीं हो सकता क्योंकि एक अन्यायका समर्थन करनेके लिये दूसरे अन्यायका उदाहरण कभी भी लागू नहीं हो सकता।

(२) दूसरे इतराजमें कोई विशेष दम नहीं है इसलिये उसका निपटारा सहजमें ही किया जा सकता है। अमरीकाके विषयमें तो ये बातें नहीं कहीं जा सकतीं। तब कौन शक्तियां रह गईं जिनकी गणना मित्रराष्ट्रोंमें रह जाती है? सम्भवत उत्तर मिलेगा फ्रांस और इङ्गलैण्ड। प्रत्येक मुसलमानका यह विश्वास है कि इस युद्धमें तुर्कोंका जानी दुश्मन फ्रांस न होकर इङ्गलैण्ड हो रहा है। जिस राष्ट्रीयता, राजनीतिज्ञता और उपयोगिताके सिद्धान्तकी घोषणा की जा रही है उसका आधार कदाचित ब्रिटनके ध्यानमें वे ही बातें हो जिनकी चर्चा रूसके जारने की थी। पर प्रधान मन्त्रीने अपनी घोषणामें अधिकारके साथ कहा था कि मैंने उस अनुपयोगी नीतिका त्याग कर दिया है। ऐसी अवस्थामें प्रधान मन्त्रीकी बातोंमें मुसलमानोंको विश्वास कर लेना स्वाभाविक था।

(३) इस प्रश्नसे हम लोग प्रधान मन्त्रीकी प्रतिज्ञापर एक बार पुनः आते हैं। टाइम्स आफ इण्डिया पत्रके संवाददाताने प्रतिज्ञाके जिन दो अंशोंको उद्धृत किया है उनमें किसी तरहका विरोधाभास नहीं देखनेमें आता। राष्ट्रपति विलसनके १४ सूत्रोंमेंसे बारहवें सूत्रमें दोनों बातें आ जाती हैं। उसमें लिखा है:—तुर्की साम्राज्यका जो अंश इस समय तुर्कोंके हाथमें है वह उन्हें सुरक्षित मिल जाना चाहिये। पर अन्य जो जातियां इस समय तुर्कोंके अधीन हैं उनके जानमालकी रक्षाका प्रबन्ध तथा उनकी बाधारहित उन्नतिकी व्यवस्था कर देनी चाहिये। और दर्रेदानि-

याल सदाके लिये स्वतन्त्र जलमार्ग बना दिया जाना चाहिये जिसकी देखरेख अन्तर्राष्ट्रीय सभाके हाथमें हो और संसारके सभी राष्ट्रोंके व्यवसायिक जहाज़ पूर्ण स्वतन्त्रताके साथ उसमेंसे आ जा सकें।

इसमें प्रधान मन्त्रीकी प्रतिज्ञाओंका पूरी तरहसे समावेश है और मुसलमानोंने इसमें पूरा विश्वास किया था। इसलिये मुसलमानोंपर यह दोषारोपण करना व्यर्थ है कि उन्होंने एक अंशपर तो अधिक जोर दिया और दूसरे अंशको एकदम छोड़ दिया। टाइम्स आफ इण्डियाका संवाददाता लिखता है कि प्रधान मन्त्रीने अभी हालमें ही गिल्ड हालमें जो भाषण किया है वह उनकी प्रतिज्ञासे भी अधिक आशाप्रद है। हम लोग भी यही कहते हैं कि वह आगे बढ़ गया है क्योंकि इस भाषणमें उन्होंने तुर्कोंके कुशासन और अनाचारोंकी जो चर्चा की है उससे उनकी प्रतिज्ञाका अभिप्राय ही बदल जाता है और यदि उससे नई बातें न प्रगट हुई होतीं तो भला मिस्टर बोनरलाको यह कहनेका अवसर क्योंकर मिला होता कि मिस्टर लायड जार्जने अपने जनवरी १९१८ के भाषणके किसी भी अंशको काटने छाटनेकी आवश्यकता नहीं देखी।

तीसरे इतराजके दूसरे भागमें कुछ जोर अवश्य है। पर उसका उत्तर भी स्पष्ट है। जहांतक अरबका सम्बन्ध है राष्ट्रीयताके सिद्धान्तकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। यदि टाइम्स आफ इण्डियाके संवाददाताने इस विषयमें मुसलमानोंके मतको

जाननेकी चेष्टा की होती तो उसे विदित हो गया होता कि अरब राज्यके साथ सम्बन्ध करके मिस्टर लायड जार्जने जो कठिनाई उपस्थित कर दी थी उसका भी निपटारा हो गया। तुर्कों के प्रश्नपर सिद्धहस्त लेखक बम्बे क्रानिकलके सम्पादक मिस्टर मर्माड्यूक पिकेटहालने पहली जुलाईके अङ्कमें लिखा है—जिस तरहसे लार्ड क्रोमरने एक बार मेरी राय ली थी उसी प्रकार यदि हमारे शासक मेरी राय लेनेकी परवा करें तो मैं उनसे अति नम्र भावसे कहूंगा कि, मेरी समझमें यदि आप साम्राज्यको अप्रतिष्ठा, बेईज्जती और अङ्गभङ्ग होनेसे बचाना चाहते हैं तो आपका उचित है कि 'मर्यादा' को इस समय भूल जाइये और जरासा अपमान सह लीजिये। पर इससे भी सहज आपके निकासका उपाय है। आप अरबोंको एक संघमें सङ्गठित करके उन्हें स्वायत्त शासन दे दीजिये। इसके कर लेनेके बाद आपको लीग आफ नेशन्ससे इसके लिये 'मेंडेट' लेना पड़ेगा। उनकी देख रेख कौन करेगा और उनकी रक्षाका कौन जिम्मेदार होगा? तुर्कोंको लीगमें सम्मिलित करना आवश्यक है। मुसलमान लोग इस पर अधिक जोर दे रहे है। अरबोंकी देखरेख और रक्षाकी जिम्मेदारीका 'मैंडेट' तुर्कोंको दे दीजिये। इससे सब प्रसन्न हो जायंगे। आपकी दूरदर्शिताकी प्रशंसा करेंगे और आप इस दलदलमेंसे आसानीसे छूटकर निकल जायंगे। इसपर कितनोंका कहना है कि ऐसा करनेसे तो हम लोग पुनः उसी अवस्थापर पहुंच जाते हैं जहांसे हम लोग उठे हैं और जिसका

सुधार करना चाहते हैं। नहीं, यह बात नहीं रह जाती यदि हमें विश्वास दिलानेके साथ ही साथ आप भी इस बातको स्वीकार करते हैं कि लीगका 'मैंडेट' स्वतन्त्र अधिकार या स्वतन्त्र शासनसे एकदम भिन्न है। इसमें जिम्मेदारीकी कुछ बातें आ जाती हैं। इससे यह भाव निकलता है कि इसके देखरेखका अधिकार लीगके हाथमें है और साथ ही साथ आवश्यकताके समय लीग द्वारा सहायताका वचन भी है।" उसके तर्कके सारको सब कोई असानीसे समझ सकते हैं यद्यपि यह सबको प्रिय नहीं हो सकता।

(४) चौथे इतराजमें कहा गया है कि तुर्कोंका शासन सब स्थानपर बुरे परिणाममें परिणत हुआ है। मेरा कहना है कि यह दोषारोपण सचाईके मार्गसे कोसों दूर है। अपने इस कथनके प्रामाणिक समर्थनके लिये इस लेखके लेखकने किसी हालके लिखे इतिहासके कुछ अंशको उद्धृत किया है। पर ऐसा करते समय इस लेखके लेखक महाशय यह बात भूल गये हैं कि उस इतिहासके लेखकने भी आरम्भसे लेकर अन्ततक केवल हंगरी, क्रोटिया, सर्बिया, यूनान, रोमानिया, बोस्निया तथा बलगेरियाका रोना रोया है। उसने किसी भी पूर्वीय प्रदेशका नाम नहीं लिया है जहांसे तुर्कोंके अत्याचारकी आवाज आती हो। पर यदि हम टाइम्सके संवाददाताके साथ थोड़ी देरके लिये यह बात मान भी लें कि उस इतिहासके लेखकका यही अभिप्राय था कि उसका कथन सब स्थानोंके लिये उपयुक्त है तो

क्या उसकी सत्यतापर सन्देह नहीं हो सकता ? क्या यह विवादग्रस्त विषय नहीं है ? यदि हम लोग मिस्टर पिकेटहालका मत उद्धृत करें, जिनकी बातें हमारे लिये उस इतिहासके विद्वानसे कहीं प्रामाणिक हैं तो हम इस निर्णयपर पहुंचते हैं कि—तुर्कोंने अपनी प्रजाके पालनमें जो उदारता दिखलाई है वह यूरोपीय राष्ट्रोंकी उदार नीतिसे कहीं बढ़कर है। इस विषयमें हम मिस्टर पिकेटहालके मतको स्वीकार न कर एक ऐसे महा पुरुषके मतको उद्धृत कर देना चाहते हैं जिसे टाइम्स आफ इण्डिया भी प्रामाणिक मान सकता है और जिसकी अवज्ञा नहीं कर सकता। १८७७ में पूर्वीय प्रश्न यूरोपीय राज्योंके लिये एक गम्भीर और प्रधान प्रश्न हो रहा था। उस समय ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मिस्टर ग्लैडस्टनने कहा था:—"यदि यह बात प्रमाणित भी हो जाय कि तुर्क लोग ईसाई जातियोंका शासन नीतिपरायणता और पूर्ण ईमानदारीके साथ नहीं कर सकते तोभी इससे यह प्रमाणित नहीं हो सकता कि मुसलमानों या पूर्वीयों पर शासन करनेकी भी योग्यता उनमें नहीं रही। कमसे कम इस विषयपर तो तुर्कोंके खिलाफ अभी तक कुछ नहीं कहा गया है।"

इतराजोंका उत्तर देनेके बाद अब हम इस लेखकके लेखका आरम्भ विषय उठाते हैं जिससे उसने लेखमें प्रवेश कराया है। इसमें उसने सबसे प्रधान बात (उसके मतसे) यह दिखलाई है कि तुर्कोंकी हार हुई है, अर्थात् वे इस समय विजित जाति

हैं और जो लोग सन्धिके शर्तोंमें न्याय और प्रतिष्ठा देखना चाहते हैं वे इस बातको सहसा भूल जाते हैं। पर इस लेखके लेखकने पूरी बातें नहीं लिखी हैं। उसकी बातें अधूरी रह गई हैं। यदि उसको हम लोग पूरा कर दें तो उसका अभिप्राय यह हो जाता है कि हम इसे मानते हैं कि तुर्कोंकी हार हुई है सही पर वह हार कहां हुई है? केवल युद्ध क्षेत्रमें। विश्वास और भक्तिके मैदानमें तुर्क आज भी उसी तरह विजयी हैं जैसे पहले थे। आज भी समस्त मुसलमान जाति खलीफा अर्थात् तुर्कोंके साथ वही अविच्छिन्न सम्बन्ध रख रहा है जो पहले था। और युद्धक्षेत्रमें भी उसका पराजय किसके द्वारा हुआ? उसका पराजय उन्हीं मुसलमानोंकी शक्तियोंके आयोजनसे किया गया जो सम्राट्की रिआया होकर उसके पक्षमें युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये क्योंकि उन्हें पक्का वचन दिया गया कि इस युद्धसे खिलाफतपर किसी तरहका असर नहीं पहुंचेगा। और आज जब वह देखते हैं कि उन्हें धोखा दिया गया, उनके साथ चाल चली गई तो उन्हें क्षोभ होना स्वाभाविक है। ऐसी अवस्थामें पहुंचकर वह उपवास व्रत कर रहे हैं, प्रार्थना कर रहे हैं और अब भी आशा बनाये हैं कि जिस साम्राज्यमें हम रहते हैं, उसके द्वारा हमारे धार्मिक भावोंकी रक्षा की जायगी। अस्तु, ये बातें जो कुछ भी हों, क्या उस जातिके लिये यह कहना शोभा देता है कि तुर्क विजित राष्ट्र हैं और उनके साथ वही व्यवहार किया जायगा जो किसी

विजित जातिके साथ किया जा सकता है और वह व्यवहार भी वीरता तथा धीरताके नामपर न होकर व्यवसायिक लाभके लिये किया जाता है जबकि उस जातिके राजनीतिज्ञ अभी हालतक यही कहते आये हैं कि तुर्कोंका नाश ब्रिटनका नाश समझना चाहिये।

टाइम्सके संवाददाता महाशयने बड़े ही सन्तोष और अभिमानके साथ जोर देकर लिखा है कि तुर्कीको फ्रांस और इङ्गलैंडका कृतज्ञ होना चाहिये। जिन बातोंके लिये ये लेखक महाशय तुर्कीको कृतज्ञ होनेके लिये परामर्श देते हैं उनमेंसे अधिकांश (प्रायः सभी) ऐसी हैं जो तुर्कोंके लाभके ख्यालसे न की जाकर फ्रांस और ब्रिटनके निजी लाभके लिये की गई हैं। और यदि हम इस बातका मान भी लें कि वे इस योग्य थीं कि उनके लिये तुर्कीको इनका कृतज्ञ होना चाहिये था तो कहींसे यह बात भी नहीं झलकती कि तुर्क उन बातोंको एकाएक भूल गया और उनके साथ दुश्मनी कर बैठा। उस इतिहासके लेखकने लिखा है। "लोगोंका कहना है कि तरुण तुर्क जर्मनीके पक्षपाती थे इसलिये आरम्भसे ही इङ्गलैण्डके दुश्मन थे। पर यह सर्वथा असत्य है। क्रान्तिके पगपगमें यही भाव झलकता है कि तरुण तुर्क सदा अंग्रेजोंके पक्षपाती थे और मैं अपनी व्यक्तिगत जानकारीके आधार पर भी कह सकता हूं कि १९१६ में तरुण तुर्कोंने यह अभिलाषा प्रगट की थी कि इङ्गलैण्ड सम्पूर्ण तुर्की साम्राज्यका, मय सेनाके, दस वर्ष

तकके लिये जिम्मा ले ले और उनकी देख रेख करता रहे। पर इङ्गलैण्डने इसे अस्वीकार कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जो लोग इस बातके पक्षमें थे वे हताश हो गये। और उसी निराशाको अवस्थामें उन्होंने कहा :—"उन्हें एकाकी कोई काम करनेका साहस नहीं हो सकता था। इङ्गलैण्ड रूसका पोंछ हो रहा है। इस समय रूस तीसरी शक्ति हो रहो है। इसलिये यदि हम लोगोंको कहींसे आशा है तो जर्मनी से।... ..लोग कहते हैं कि तुर्क लोग अंग्रेजोंके दुश्मन हो गये। सच बात यह है कि अपनी आस्था बनाये रखनेके लिये उन्हें युद्ध करना लाचारी था। पर उन्होंने तबतक शस्त्र नहीं उठाया जबतक इङ्गलैण्डने ज़ारका साथ देकर उनसे खुली शत्रुता नहीं प्रगट को क्योंकि तुर्कोंका मटियामेट कर देना रूसका प्रधान लक्ष्य था।

तुर्कीके विजित राष्ट्र होनेका उलाहना मुसलमानोंको बराबर क्यों दिया जाता है? उनकी समझमें यह बात मजेमें आ गई और उन्होंने यह भी समझ लिया कि इस तरहके प्रश्नोंको द्वितीय स्थान दे देनेमें ही सुविधा है अर्थात् राजनैतिक क्षेत्रमें आवश्यकताके समय जरा दब जानेसे ही अच्छा होता है। मुसलमानोंके बीचमें इस प्रश्नपर कितनो हलचल मच रही है इसको जाननेकी पूरी चेष्टा इस लेखके लेखकने नहीं की है। केवल चन्द लोगोंकी बातोंको ही उलटी सीधी समझ कर उसने उन्हींमें अपना तर्क भिड़ाना शुरू कर दिया है।

यदि ऐसी बात न होती तो वह यह लिखनेकी कदापि धृष्टता न करता कि मुसलमान जातिमें विधायक कामके लिये उत्साह नहीं है और उनमें एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं दिखाई देता जो ऐसी व्यवस्था सामने रखता जो स्वीकार करने तथा कार्यक्रममें लानेके योग्य होती। विगत मईमें एसेक्स हाल, लण्डनमें जो सभा हुई थी उसकी कार्रवाईकी भी जानकारी उसे नहीं है और न उसने उसके जाननेका प्रयास ही किया है और न उसे इस बातका पता है कि इस विषयपर चुने हुए विद्वान मुसलमानोंका क्या मत है जो भारतीय मुसलमानोंके लण्डनमें प्रतिनिधि समझे जाते हैं। सर अली अब्बास बेगने—जिनसे खिलाफत कांग्रेसके अध्यक्ष होनेकी प्रार्थना की गई थी और जो लण्डन जानेवाले खिलाफत डेपुटेशनके प्रतिनिधि हैं—एसेक्स हालकी सभाके नाम एक पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने प्रधान प्रश्नकी व्याख्या करते हुए मुसलमानोंकी मांगका विवरण दिया था :—

(१) मुसलमानोंके पवित्र क्षेत्र और मन्दिर मुसलमानोंके हाथमें ही रहने चाहिये तथा युद्धके पहलेकी भांति मुसलमान राजाके ही अधीन होने चाहिये।

(२) थ्रेस और कुस्तुन्तूनिया तुर्कोंके निजी स्थान हैं और उन्हें तुर्की सुलतानके अधीन छोड़ देना चाहिये।

(३) गुप्त सन्धियां—जिनका अभिप्राय तुर्कोंको छिन्न

भिन्न करना है—मृत समझी जानी चाहिये क्योंकि सन्धिकी निर्धारित शर्तोंके ये विरुद्ध हैं।

(४) यदि मुसलमान जातियां किसी राज्यकी संरक्षकता मुस्लिम बन्धुत्व स्थापित करना चाहें तो इसके लिये उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये।

(५) किसी भी मुसलमानी प्रदेशके ऊपर किसी तरहकी 'संरक्षता' का प्रयोग नहीं होना चाहिये जबतक कि उसके लिये वे स्वयं इच्छा न प्रगट करें।

(६) मुसलमान जातियोंको इस बातकी स्वच्छन्दता होनी चाहिये कि वे अपने लिये स्वयं राजा या शासन प्रणाली निर्धारित करें।

(७) ४, ५ और ६ शर्तका निर्धारण करनेके लिये समस्त मुसलमान प्रान्तोंमें मत देनेकी पूर्ण स्वाधीनता दे देनी चाहिये।

इसी प्रकारके अन्य विधायक कार्यक्रम गदियाके शेख एम० एच० गिदवानीने प्रकाशित किया था :—

(१) संयुक्त तुर्क साम्राज्यका प्रधान भाग थ्रेस और एशिया माइनर होना चाहिये और सुलतानकी राजधानी कुस्तुन्तुनियामें होनी चाहिये।

(२) इसके अधीन सीरिया, मेसोपोटामिया, अरेबिया, आर्मेनिया, मिस्र, ट्रिपोली, अलबानिया, तथा काले सागरके तटकी निवासी वे प्रजा जो तुर्की या मुस्लिम भाषा बोलता हैं, हो जायं पर इन्हें स्वायत्त शासन दे दिया जाय चाहे इनका

रूप ब्रिटिश उपनिवेशोंकी तरह हो या अन्य प्रकारका। ये राज्यराष्ट्र सङ्घके सदस्य हों और यदि किसी बातमें राष्ट्रसङ्घसे परामर्श लेना चाहें तो ले सकते हैं पर यह काम उन्हें तुर्की सम्राटके द्वारा करना होगा।

ये स्पष्ट और व्यक्त बातें हैं जिनको मुसलमान नेताओंने लिखा और प्रगट किया है और ये ही मुसलमानोंके सच्चे उद्गार हैं। इन्हें अंशतः सन्धि सभाने भी स्वीकार किया है। क्या अब भी इनके विषयमें यही कहा जा सकता है कि ये उन लोगोंके क्षणिक जोश या उद्गारके परिणाम हैं जिनके हृदयमें तर्कके लिये कोई स्थान नहीं है।

खिलाफतका प्रश्न।

(दिसम्बर २४, १९१९)

टाइम्स आफ इण्डिया पत्रके हम कृतज्ञ हैं कि वह खिलाफतके प्रश्नको बराबर जनताके सामने उपस्थित करता आ रहा है। अभी हालमें ही मिस्टर बालफोरने कामन्स सभामें तुर्कीके सम्बन्धमें कुछ शब्द कहे थे। यङ्ग इण्डियाके गत अङ्कमें हमने उनपर नोट लिखा था। २० दिसम्बरके अङ्कमें उस नोट पर लेख लिखते हुए टाइम्स आफ इण्डिया पत्रने लिखा है :—यङ्ग इण्डियाके सम्पादक तथा पाठकोंको

इस बातपर भरोसा रखना चाहिये कि मिस्टर बालफोरके कथनका वही अभिप्राय था जो प्रधान मन्त्रीके उस कथनका था जो उन्होंने ५ जनवरी १९१८ को मुसलमानोंके प्रति प्रतिज्ञा करते हुए कहा था। हमारा कहना है कि मिस्टर बालफोरने कामन्स सभामें 'रूसमें ब्रिटनका हस्तक्षेप' के सम्बन्धमें जो भाषण किया था उसमें उन्होंने उस प्रतिज्ञाकी चर्चा नही की थी। ऐसी अवस्थामें मिस्टर बालफोर इस कथनका क्या मतलब निकल सकता है? लेफ्टेण्ट कर्नल आब्रे हर्बर्टने बार बार पूछा कि :—ब्रिटिश साम्राज्यके लिये यह आवश्यक है कि तुर्कोंके साथ सन्धिकी शर्तोंके सम्बन्धमे मुख्य क्रेमांशोके साथ इसी सम्मेलनमे निर्णय कर लिया जाय। ऐसी अवस्थामें क्या प्रधान मन्त्री बतला सकते हैं कि उनको ५ जनवरी १९१८ की प्रतिज्ञाये पूरी तरहसे पाली जायँगी कि नही? इस प्रश्नके उत्तरमे मिस्टर बालफोरने स्पष्ट शब्दोंमे कहा था कि यह प्रश्न अतीव विकट है। तुर्कोंके सम्बन्धमें किसी तरहका निपटारा कर लेना सहज नही है तथापि हम इतना निश्चय पूवक कह सकते हैं कि उन प्रतिज्ञाओंकी उपेक्षा नही की जायगी। क्या यह सीधे साधे प्रश्नका ठीक और समुचित उत्तर है? जैसा कि हमने ३ री दिसम्बरके अग्रलेखमें खिलाफतके प्रश्नपर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि स्वयं प्रधान मन्त्री उन प्रतिज्ञाओंको हृदयसे पालना नहीं चाहते। यही बात सच है और जब

स्वयं मिस्टर लायड जार्ज इस प्रश्नको टालमटोल कर अलग रख देना चाहते हैं तो भला मिस्टर बालफोर इसके सम्बन्धमें क्या कर सकते हैं। यही अनिश्चितता मुसलमानोंको खटक रही है और मुसलमानोंके समस्त आन्दोलनकी यही जड़ है। मुसलमानों पर यह दोषारोपण करना कि वे राष्ट्रीयताके सिद्धान्तके लिये युद्धकर रहे हैं, सच्ची घटनाको छिपा रखना है। इसके प्रतिकूल ये लोग केवल इस बातका पक्का आश्वासन चाहते हैं कि तुर्कोंके साथ राष्ट्रीयताके सिद्धान्तोंका पूर्णतया प्रयोग किया जायगा। टाइम्स आफ इण्डियाने यहां तक लिख डाला है कि मिस्टर काण्डलरके पत्रका उत्तर देते हुए महात्माजी एक ओर तो उस सिद्धान्तकी प्रशंसा करते हैं और दूसरी ओर उसकी निन्दा करते हैं। सहयोगीसे हमारा अनुरोध है कि वह उस उत्तरको एक बार पुनः पढ़ जाय। पूछा जाता है कि अधीन जातियोंके साथ तुर्कोंके सद्व्यवहार या दुर्व्यवहारसे खिलाफतसे क्या सम्बन्ध है? अधीन जातियोंके अधिकारकी रक्षाके लिये क्या आप तुर्कोंके हाथसे अधिकार छीन लेना उचित समझते हैं? क्या उसी कारणसे आप उनके हाथमेंसे उनके तीर्थ स्थानोंकी रक्षाका अधिकार भी छीन लेना चाहते हैं? इन सब प्रश्नोंका एक ही उत्तर होना है कि "नहीं"। पर मुसलमानोंको आशङ्का है कि इसी बातकी तैयारियां हो रही हैं।

इसके पहले लेखमें लिखा था कि अन्य विजित राष्ट्रोंके साथ जो व्यवहार किया जा रहा है, तुर्कोंके साथ उससे बुरा

व्यवहार नहीं किया जा रहा है। हमने उस तर्ककी निस्सारताको भली भांति प्रमाणित कर दिया है। उन राष्ट्रोंके साथ किस सिद्धान्तपर व्यवहार किया गया है? क्या तुर्कोंके लिये भी उसी सिद्धान्तका प्रतिपादन किया जायगा? महात्मा गांधीजीने मिस्टर काण्डलरके पत्रमें यही प्रश्न किया था। यदि उन राष्ट्रोंके साथ प्रजाको मत देनेकी स्वाधीनताके सिद्धान्तोंका प्रयोग हुआ है तो यही सिद्धान्त तुर्कोंके साथ भी क्यों नहीं चलाया जाता? उन राष्ट्रोंका विभक्तीकरण प्रजाके मत देनेकी स्वाधीनताके सिद्धान्तपर हुआ है। पर तुर्कोंकी हालतमें वही 'प्रजाको मत देनेकी स्वाधीननाका ही सिद्धान्त, विभक्तीकरणके प्रतिकूल हो जाता है।

असल बात यह है कि मुसलमान लोग केवल राष्ट्रीयताके सिद्धान्तका पूर्ण प्रयोग चाहते हैं। उनका कहना है कि जिन प्रान्तोंमें मुसलमानोंकी आबादी अधिक है उन प्रान्तोंको गैर मुसलमानी शासनके अधीन कर देना नितान्त अनुचित और अन्याय पूर्ण है। उनका कहना है कि क्या इस तरहकी कोई कार्रवाई राष्ट्रीयताके सिद्धान्तके अनुकूल होगी? पर इस प्रश्नपर किसी भी विचारवान राजनीतिज्ञने कुछ कहनेका साहस नहीं किया है। कुछ दिन हुए राष्ट्रपति विलसनके पास कुछ कागजपत्र भेजे गये थे। उन कागजोंमें इस प्रश्नपर पर्याप्त वादविवाद हुआ था। इसलिये सर्वोत्तम बात यही होगी कि हम यहांपर उन्हीं बातोंका संक्षिप्त विवरण दे दें। ईसाई राज्योंका कहना

है कि आर्मेनियावालोंपर घोर अत्याचार किया गया है। उनके उद्धारके लिये स्वतन्त्र आर्मेनिया राज्यकी स्थापनाकी व्यवस्था की जा रही है। इसके सम्बन्धमें उस पत्रमें लिखा है:—

आर्मीनियावालोंकी संख्या बहुत ही कम है। वे चारों ओरसे मुसलमान जनतासे घिरे हैं जिनकी संख्या बहुत अधिक है। इस लिये स्वतन्त्र आर्मेनिया राज्यकी स्थापनाकी सम्भावना वहां नहीं हो सकती है जहां आर्मेनियाके लोग कम या बेश समुदायमें रहते हों। उनके विस्तार तथा सीमाका निर्णय उसी स्थानपर हो सकता है। १८९६की ५ वीं नवम्बरको जब डिपुटीके चेम्बर-की बैठक हुई थी उस समय फ्रांसके विदेशी सचिव मुश्यु गोँप्रयल हेनाटेने कहा था कि गणनाके अनुसार आर्मेनियाकी जनता आबादीकी १३ प्रति सैकड़ेसे भी कम ठहरती है। यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं कि यह घोषणा पत्र तथा ये अंक तुर्कोंकी मांगोंके सम्बन्धमें नहीं तैयार किये गये थे। इसके बाद यूनानका प्रश्न उठाया गया है। मिस्टर वेनिजलोका कहना है कि एशिया माइनरमें यूनानियोंकी संख्या अधिक है। इसके सम्बन्धमें उस पत्रमें लिखा है :—एशिया माइनरकी यूनानी प्रजा तुर्कोंके साथ इस प्रकार हिल मिल गई है कि अब उसकी कोई स्वतन्त्र जातीयता नहीं रह गई और साथ ही यहां भी तुर्कोंकी संख्या अधिक है, यूनानी बहुत ही कम है। एशिया माइनरमे यूनानियोंकी इस कमीको छिपानेके लिये मिस्टर वेनिजलोने आर्चिपेलेगोकी यूनानी जनसंख्याका भी शुमार उस

गणनापत्रमें कर दिया है और इस प्रकार बनोवटी अङ्क तैयार किया है। आर्चिपेलेगोके जितने भी द्वीप तुर्कोंके हाथमें हैं उनकी अधिकांश प्रजा यूनानी है। पर इस समय तो उनमें विदेशियोंकी सेनायें अधिकार जमाये बैठी हैं। अनातोलियाकी शासन व्यवस्थासे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। अनातोलिया पूर्णतः तुर्कोंके हाथमें है। स्मिर्नाके सम्बन्धमें मिस्टर वेनिजलोका कहना है कि यह पूर्णतः यूनानका होना चाहिये। इसका माप ५३,७६८ कीलोमीटर है। इतने सारे प्रदेशमेंसे केवल सन्दजकमें यूनानियोंका निवास है। वहांकी आबादी ६,३०,००० है उसमें १,३० ००० यूनानी हैं ऐदीनकीकी आवादी ३,००,००० है उसमें १५,००० यूनानी है, सरोहनकी आबादी ४,५०,००० उसमें ३३,००० यूनानी है, डेनिजलीकी आबादी २,७०,००० है उसमें २६०० यूनानी हैं; मएटीचीकी आवादी १,६० ००० है उसमें १०,५०० यूनानी हैं। हमारी समझमें इस संख्याके विषयमें कुछ लिखना निरर्थक है।"
लेकिन शिकायतोंकी यहीं समाप्ति नही हो गई है। उस पत्रमे जो कुछ लिखा है उससे स्पष्ट विदित है कि मित्र शक्तियां चन्द मुसलमान जातियोंको तुर्कोंके जुएसे छुटकारा दिलाना चाहती हैं यद्यपि उन मुसलमान जातियोंने इस तरहकी स्वतन्त्रताकी कभी भी इच्छा नहीं प्रगट की है क्योंकि वे जिस राज्यकी प्रजा हैं मुसलमान राज्य है और मुसलमान राज्यमें प्रत्येक मुसलमानको समान अधिकार प्राप्त है चाहे वह अरब हो या तुर्क हो

या खुर्द हो। इस्लाम धर्मके भीतर जातीयताके भेदभावके लिये स्थान नहीं है। तो क्या ये मित्र शक्तियाँ हमें अपने ही शासनसे मुक्त कराना चाहती हैं ? यह केवल एक बहानामात्र है जिसकी ओटमें वे हमारा नाश करना चाहती हैं और हमें दास बनाये रखना चाहती हैं।......न्यायका दो रूप नहीं होना चाहिये। यदि आप वास्तवमें न्यायके सिद्धान्तका प्रयोग करना चाहते हैं तब आप तुर्कों और मुसलमानोंको क्यों उससे वञ्चित रखना चाहते हैं ! उनके हाथसे उनकी पैतृक सम्पत्ति छीननेकी क्यो तैयारी कर रहे हैं ? तुर्क साम्राज्य अविच्छिन्न है, जिसमें तुर्क, अरब और खुर्द जातियां रहती है। इनमे न कोई किसीको सताता है और न कोई किसीसे सताया जाता है।

यहीं पर यह प्रश्न भी उठ सकता है कि जो अधीन जातियां अल्पतम है उनकी रक्षाका क्या प्रबन्ध होना चाहिये ? यदि उनकी रक्षा करनी है तो क्या इसके लिये उन्हें यह कहना होगा कि तुम लोग तुर्क साम्राज्यको छोड़कर कही अन्यत्र जाकर बसो ? यदि यह बात सम्भव होती तोभी अतिहीन थी। इस प्रश्नके निपटारेके लिये मिस्टर पिकेटहालके मतसे सहायता लेना होगा जिसका विवरण हमने ३ री दिसम्बरके लेखमें दिया है। पाठकोंकी सुविधाके लिये हम उस युक्तिको यहां दोहरा देना उचित समझते हैं। मिस्टर पिकेटहालने लिखा है:—"जिन राज्योंको आप स्वायत्त शासन देना चाहते है उनका सङ्घ बना लीजिये। इतना कर लेनेके बाद आपको राष्ट्रसङ्घसे संरक्षकता लेनेकी आव-

श्यकता पड़ेगी। इनकी रक्षाका भार किसपर रहेगा, इनके स्वार्थों की रक्षा और देखरेख कौन करेगा तथा इनके लिये राष्ट्र-सङ्घमें कौन जिम्मेदार होगा? तुर्कीको राष्ट्रसङ्घका सदस्य होना चाहिये। सारे मुसलमान इस बातपर जोर दे रहे हैं। इन राष्ट्रोंकी जिम्मेदारीका भार तुर्कीपर सौंप दीजिये। इससे सब सन्तुष्ट हो जायंगे और आप भी आसानीसे दलदलसे निकल आवेंगे।" पर इसपर इतराज उठता है कि ऐसा करनेसे तो हम लोग फिर उसी पुरानी अवस्थापर पहुंच जायंगे। कदापि नहीं। हम लोगोंसे कहा गया है कि राष्ट्रसङ्घका मैंडेट राज्य या शासनाधिकारसे एकदम भिन्न है क्योंकि इसमें जिम्मेदारीका सवाल है। इससे यह व्यक्त होता है कि देखरेख और आवश्यकता पड़नेपर सहायताका अधिकार राष्ट्रसङ्घके हाथमें होगा।" हमारी समझमें इससे अच्छी कोई दूसरी युक्ति नहीं आती जिसमें राष्ट्रीयताका सिद्धान्त भली प्रकार पालित हो और सब दल सन्तुष्ट रहें।

हम इस विषयको बहुत दूरतक ले गये। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इतनेके लिये भी तैयार नहीं हैं कि वे केवल उन प्रदेशोंके सम्बन्धमें ही अपना निश्चय मत प्रगट कर दें जो प्रदेश पूर्णरूपसे तुर्की हैं। ऐसी अवस्थामें उन प्रदेशोंकी तो चर्चा ही व्यर्थ है जिसमें तुर्कोंकी आबादी अधिकांश होते हुए भी सम्पूर्ण नहीं है। इसी बातकी सूचना मुसलमान चाहते हैं। उनकी यह मांग राष्ट्रपति विलसनकी १४ शर्तें तथा प्रधानमन्त्रीकी प्रति-

शाके भीतर ही हैं और साथ ही शत्रु (विजित) शक्तियोंकी मांगोंसे भी उनकी मांगे अधिक नहीं हैं।

यंग इण्डियाका नोट ।

जिस नोटके ऊपर टाइम्स आफ इण्डियाने २० दिसम्बर १६१६ के अंकमें लेख लिखा था उसका अनुवाद नीचे दिया जाता हैः—

टाइम्स आफ इण्डिया पत्रमे तुर्कोंके प्रश्नपर कामन्ससभामें जो वादविवाद हुआ था उसका विवरण निकला है। उस बैठकमें मिस्टर बालफोरने कहा थाः—तुर्की साम्राज्यका अन्तिम निर्णय क्या होगा इसके सम्बन्धमें मैं अपना मत अभी नहीं प्रगट कर देना चाहता पर मै इतना साहसके साथ कह सकता हूं कि तुर्कोंके सदृश प्राचीन जातिका, सन्धिपरिषद्की किसी भी व्यवस्थाके अनुसार मटियामेट नहीं कर दिया जा सकता। तुर्कोंका अतीत उज्वल और प्रकाशमय है। वे आज भी उसी तरह मौजूद हैं। यदि आत्मनिर्णय और राष्ट्रीयताका वही अर्थ और अभिप्राय है जो कुछ हमने समझा है और जो हमें समझाया गया है और यदि उसको चरितार्थ करना है तो मैं दावेके साथ कह सकता हूं कि इसका जिस तरह प्रयाग अन्य राष्ट्रोंके साथ हुआ है उसी तरह इसका प्रयोग तुर्कोंके साथ होगा और सन्धि परिषद्के बाद भी तुर्क साम्राज्य रहेगा। हां, केवल यह नहीं कहा जा सकता कि उसका क्षेत्रफल तथा उसकी सीमा क्या होगी।" क्या ही उत्तम शब्द हैं। जिस जातिका अतीत

इतिहास इतना उज्वल है उसके लिये ये शब्द कितने उपयुक्त और सन्तोषजनक हैं। पर इन शब्दोंसे उस जातिको जरा भी सन्तोष नहीं हो सकता जो पक्का वादा और अटल विश्वास चाहती है। जो कुछ मिस्टर बालफोरने कहा है उससे यह नहीं व्यक्त होता कि उनका क्या अभिप्राय। हम लोग यह भी नहीं समझ सके हैं कि 'तुर्की साम्राज्यसे' मिस्टर बालफोर क्या अभिप्राय लगाते हैं। क्या उनके कहनेका यह अभिप्राय है कि उसका हाथ पैर काटकर उसे पंगु बना देनेपर भी तुर्की साम्राज्य ज्योंका त्यों बना रहेगा? उसी भाषणमें आगे चलकर उन्होंने कहा है:—किसी भी सरकारके लिये यह असम्भव बात है कि वह निश्चयपूर्वक यह बात बतला दे कि वह किस नीतिसे चलेगी। इसके सामने उनकी तुर्की साम्राज्यके लिये दी हुई आशा एकदमसे अन्धकारमें जा छिपती है। यहांपर यह भी लिख देना आवश्यक होगा कि यद्यपि मिस्टर बालफोर एक दूसरे वक्ताके भाषणका उत्तर दे रहे थे और यद्यपि उनमेंसे एकने उन्हें बार बार प्रधान मन्त्रीके उस भाषणका स्मरण दिलाया जो उन्होंने ५ वीं जनवरी १९१८ को दिया था और चाहा था कि उसीके अनुसार फैसला हो जाय पर उस विषयपर मिस्टर बालफोर एकदमसे चुप रहे।

मुसलमानोंकी बेचैनी।

खिलाफतके मामलेमें मैंने लखनऊमें मुसलमानोंको अधीर देखा। उनकी अधीरता स्वाभाविक थी। मौलवी सलाम-तुल्लाने कहा कि अंग्रेजोंका रुख तो अब असह्य होता जाता है। यह कह कर उन्होंने सौम्य भाषामें अङ्गोरा सरकारकी स्थितिके विषयमें लोगोंकी जो भावनायें है उन्हींको ध्वनित किया। इसमें कोई शक नहीं कि तुर्कोंके साथ मित्र-भाव रखनेके सम्बन्धमें अंग्रेजोंने जो आश्वासन दिये है उनके प्रति अविश्वास बढ़ता जा रहा है। अब इन दोमेंसे किसी बातपर कि अंग्रेजोंके आश्वासन बिलकुल सच्चे हैं या ब्रिटिश सरकारको तुर्कोंकी सेहत करनेकी शक्ति नही है, कोई विश्वास नहीं करता। अतएव अधीरता और क्रोधके आवेशमें मुसलमान कहते हैं कि राष्ट्रीय सभा और खिलाफत-कमेटीकी ओरसे कोई जियादा तेज और जोरदार कार्रवाई तुरन्त होनी चाहिये। मुसलमान तो स्वराज्यका अर्थ यह समझते हैं—जैसा उन्हें समझना जरूरी है—कि हिन्दुस्तान खिलाफतके मामलेका निपटारा पक्के तौर पर करनेके लायक हो जाय। इसलिये वे कहते हैं कि अगर स्वराज्यके मिलनेमें अनिश्चित देर है और अगर उसके लिये काम करते हुए मुसलमानोंको भूमध्य सागरमें तुर्किस्तानकी

बरवादीको लाचार हो कर कायरोंकी तरह देखते रहना पड़े तो मुसलमान अब इन्तजार करना नहीं चाहते।

यह नामुमकिन बात है कि ऐसी हालत पर मुसलमानोंके लिये हमदर्दी न पैदा हो। यदि कोई कारगर इलाज मेरे खयालमें आया होता तो मैं जरूर, खुशीके साथ, कोई जल्द कार्रवाई करनेकी सिफारिश करता। यदि मैं देखता कि स्वराज्यकी हलचलको मुल्तवी कर देनेसे हम खिलाफतके हकमें ज्यादा फायदा कर सकेंगे तो मैं खुशीसे ऐसी सलाह देता। करोड़ों मुसलमानोंका दर्दे दिल हलका करनेके लिये अगर असहयोगके अलावा भी मुझे कोई उपाय नजर आता तो मैं खुशीसे उसमें लग जाता।

मगर मेरी नाकिस रायमें तो खिलाफतके अन्यायको मिटानेकी सबसे जल्दी असर करनेवाली अगर कोई दवा है तो वह स्वराज्य ही है और यही कारण है जो मेरे लिये तो स्वराज्यका पाना ही खिलाफतके सवालका हल होना है और खिलाफतके सवालका तय होना ही स्वराज्य पाना है। मुसीबतके मारे हुए तुर्कोंको मदद पहुंनेका सिर्फ एक ही उपाय हिन्दुस्तानके लिये है और वह है खुद अपने अन्दर इतनी ताकत पैदा कर लेना कि जिससे वह अपने स्वत्वको प्रदर्शित कर सके। यदि वह एक मीयादके भीतर इतनी शक्ति नहीं बढ़ा सकता तो फिर हिन्दुस्तानके लिये दैवाधीन होनेके सिवा बाहर निकलनेका दूसरा रास्ता नहीं है। जिसे खुद लकवा मार

गया है वह अगर दूसरेकी मददके लिये हाथ बढ़ाना चाहे तो इसके सिवा कि खुद अपना पोछा लकवेसे छुड़ावे, और क्या कर सकता है ? इसके बजाय अगर केवल नासमझी, नादानी और गुस्सेमें आकर खून-खराबी कर बैठे तो इससे अन्दर रुकी हुई आग भले ही बाहर धधक उठे, पर तुर्किस्तानका दुख दूर नहीं हो सकता। और न इससे हिन्दुस्तानकी वह ताकत हो बढ़ सकती है जिससे वह अपने स्वत्वको प्रदर्शित कर सके। और इसके अलावा, उस दङ्गे-फसादको मिटानेके लिये जो उपाय काममें लाये जायंगे उनसे, सम्भव है, हमारा वह वेग जिसके साथ आज हम अपने लक्ष्यकी ओर दौड़े चले जा रहे हैं, खासा मन्द पड़ जाय।

तोभी हमें किसी तरह निराश होनेका कोई कारण नहीं है। कांग्रेसका सारा कार्यक्रम ऐसा ही बनाया गया है और ऐसे ही उपाय जारी हैं जिनसे खिलाफतके सङ्कटका सामना किया जा सके। स्वदेशीके कार्यको पूरा करनेकी मीयाद दो मासकी रखी गयी है। यह निस्सन्देह एक ऐसा तीव्र और प्रबल उपाय है जिसके द्वारा देशका सम्पूर्ण सत्व प्रगट हो सकेगा। और, यदि भारतने सितम्बरतक पूरा बहिष्कार कर दिखाया और अक्तूबरमें वह अपने पांवपर खड़ा हो गया तो निश्चय ही इससे बड़े बड़े तेज मिजाजवाले लोगों और मुझ जैसे अघोर तथा जोशीले खिलाफतियोंकी आत्माको सन्तोष होगा।

पर बात यह है कि अभी हमारे सारे काम करनेवाले

लोगोंको न तो इस बातका यकीन हो पाया है कि बताई हुई मीयादके भीतर स्वदेशीका कार्यक्रम पूरा हो जायगा और न जो करामात इससे बताई जाती है उसके कायल वे ही पाये हैं। ऐसे संशयात्मा लोगोंको जबतक कि वे इससे बेहतर और जल्दी असर करनेवाला दूसरा उपाय नहीं बता सकते और उसे देशसे स्वीकृत नही करा सकते, इससे अलग ही रहना लाजिम है अथवा शङ्कित चित्त होते हुए भी उन्हें शुद्ध हृदयसे स्वदेशीके काममें पड़ जाना चाहिये और इस प्रयोगको सचाईके साथ आजमाना चाहिये। और क्या यह सन्देह करना कि भारत स्वदेशीके कार्यक्रमके अनुसार काम करनेमें समर्थ नहीं है,—यदि यह सन्देह ठीक हो तो—यह नहीं बतलाता कि खिलाफतके काममें भारतको वास्तवमें कोई अनुराग नहीं है और वह उसके लिये कुछ भी त्याग करना नहीं चाहता? क्या हर एक हिन्दू और मुसलमानके लिये सारे विदेशी कपड़ोंसे मुंह मोड़ लेना और सिर्फ खादी ही पहनना, कोई बड़ा भारी स्वार्थत्याग है? और अगर भारतवर्षको यह क्षमता नहीं प्राप्त करना है तो क्या यह इस बातका सबूत नहीं होगा कि वह इस आर्थिक स्वार्थ त्यागके लिये तैयार नहीं है और इसलिये तुर्किस्तानकी भी सहायताके लिये योग्य नही है? आइए, हम सब मिलकर विदेशी कपड़ोंका पूरा बहिष्कार करें और जितनी जरूरत है उतनी खादी बनावे, फिर देखिये कि हम मंजिल पर पहुंच गये हैं।

लखनऊमें एकने यह मसला बडी सञ्जीदगीके साथ पेश किया था कि हम राली ब्रदर्सका जो कि एक यूनानी कम्पनी है, बहिष्कार करके यूनानियोंसे बदला चुका लें तथा उन मजूरोंसे जो बन्दरोंपर काम करते हैं कहें कि विदेशी जहाजोंपर माल न चढावें। मैं तो समझता हूं कि ये दोनों सूचनाये अस्वाभाविक हैं और उनको कार्यके रूपमें परिणत करना भी असम्भव है। जरा देरके लिये मान लीजिये कि हम एक क्षणमें राली ब्रदर्सका कारोबार तोड सकते हैं पर इसका असर यूनानपर क्या पड सकता है? राली ब्रदर्स सारा या ज्यादातर माल यूनान ही नहीं भेजते। उसका सारी दुनियामें व्यापार फैला हुआ है। अतएव स्वदेशीका काम उठानेकी अपेक्षा उनके व्यापारके साथ झगडना ज्यादा कठिन होगा। ऐसी कोशिशका एकमात्र परिणाम यह होगा कि उसके रगोरेशेमें जो अन्याय भरा हुआ है उसकी तो बात ही जाने दीजिये हम लोग उपहास्य बनेंगे और यह प्रगट होगा कि हम लोग ठीक उसके योग्य ही हैं। विदेशी जहाजोंपर काम करनेवाले मजदूरोंको छेडना भी मृगतृष्णाकी तरह है। यदि जनता पर हमारा इतना पूर्ण नियन्त्रण होता तो हम इस समरमें अबतक कभीके जीत गये होते। मालका बाहर जाना बन्द कर देनेके लिये हमें आज काम करनेवाले सारे मजूरोंका काम हमेशाके लिये या एक अनिश्चित समय तकके लिये बन्द रखना होगा। यही नहीं, बल्कि ऐसा करते समय यह पहले ही मान लिया जाता है कि

जो मजदूर काम बन्द कर देंगे उनकी जगह दूसरे मजदूरोंको काम पर न आने देनका सामर्थ्य हममें हैं। मेरा तो ख्याल है कि अभी हम इतने सङ्गठित नही है जो यह काम कर सक। ऐसी कोशिशमे नाकामयाब होनेके सिवा और कुछ हासिल नही और इससे भी बुरा नतीजा न निकले तो गनीमत समझिये।

इसका तो उपाय अगर हो सकता है तो बस, यही कि कानूनका सविनय भङ्ग तुरन्त शुरू कर दे। परन्तु मुझे इतमीनान हो गया है कि देश अभी विस्तृत रूपसे इसे करनेके लिये तैयार नहीं है। पर यदि देश इस बातका दिखा दे कि उसमें सङ्गठन की इतनी काफी क्षमता है, उसके पास इतने विभिन्न साधन हैं इतनी नियमबद्धता है जितनी कि स्वदेशी जैसे बिलकुल व्यवहार्य्य कार्यको पूर्ण सफल बनानेके लिये आवश्यक है ता कानूनका सविनय भङ्ग विना जोखिमके सफलतापूर्वक शुरू किया जा सकता हे। आइये, हम यह आशा और प्रभुसे प्रार्थना कर कि देश ऐसा कर दिखावे।

प्रतिज्ञा पालन ।

(मई १२, १६२०)

'मैंने खिलाफत आन्दोलनमें भाग क्यों लिया' शीर्षक अपने लेखमें मैंने प्रधान मन्त्रीके दिये हुए वचनका उल्लेख किया था। उसके सम्बन्धमें मैंने जो कुछ लिखा है उसकी सचाई पर आक्षेप करते हुए टाइम्स आफ इण्डियाने 'विविध विषय' में उसपर एक नोट लिखा है। अपने मतके समर्थनमें उसने नवम्बर १०, १६१४ को मिस्टर आस्क्विथके गिल्डहालके भाषणका उल्लेख किया है। जिस समय मैंने उस लेखको लिखा था मुझे भी मिस्टर आस्क्विथके भाषणका ध्यान था। मुझे खेद था कि मिस्टर आस्क्विथने वह भाषण किया क्योंकि उसके पढनेसे स्पष्ट हो जाता है कि वक्ताके भाव स्पष्ट नहीं हैं। क्या यह कभी भी सम्भव है कि तुर्की साम्राज्यसे भिन्न भी तुर्कोंका कोई स्थान हो सकता है? ना यूरोप और एशियामेंसे तुर्की साम्राज्यकी मृत्युका अभिप्राय इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि संसारमेंसे स्वतंत्र तुर्की शासन और तुर्क जातीयताका नाश कर दिया जाय। क्या यह सदा सच रहा है कि तुर्कोंका शासन सदाके लिये संसारके इतिहासमें काला धब्बा रहा है? क्या तुर्क सदा पृथ्वीके किसी न किसी टुकडेको अपने अपवित्र हाथसे कलंकित ही करते रहे हैं? अपने

भाषणमें मिस्टर आस्क्विथने कहा था — 'यदि कोई बात हमारे दृष्टिपथमें आ सकती है तो वह यह है कि हमें उनके विरुद्ध धार्मिक आन्दोलन उठाना चाहिये।" पर इसके बाद ही उन्होंने जिन शब्दोंका प्रयोग किया था उससे उनका क्या अभिप्राय हो सकता है। यदि शब्दोंका प्रयोग उनके ठीक अर्थमे हुआ है तो मैं साहसके साथ कह सकता हू कि उतना शब्द कहनेके बाद मिस्टर आस्क्विथने अपने भाषणमें जो शर्तके शब्द लगाया उनसे स्पष्ट था कि भारतीय मुसलमानोंके धार्मिक भावका उन्हें पूरा ख्याल था। अगर उनके भाषणका केवलमात्र इतना ही अभिप्राय था तो अपने मतके समर्थनमे और कुछ न कहकर मैं कह सकता हूं कि यदि सैन रेमो कान्फरेंसमें स्वीकृत प्रस्तावोंको कार्य क्रममें लानेकी व्यवस्था की जाय तो मिस्टर आस्क्विथके उपरोक्त आशाकी बातें भी मिट्टीमें मिल जाती हैं। पर मैं अपने कथनके समर्थनके लिये मिस्टर आस्क्विथने उत्तराधिकारीके भाषणका उल्लेख कर देना उचित समझता हू। यह भाषण उन्होंने १९१६ मे किया था, जिस समय युद्धकी गति मित्रोंके लिये भयावह हो रही थी और भारतीयोकी सहायताकी आवश्यकता १९१४ से कहीं अधिक थी। जबतक ये वचन पूरे नही किये जाते बराबर दोहराये जायंगे। उन्होंने कहा था —"यह युद्ध हम लोगोने इस लिये नहीं ठाना है कि तुर्कोंकी राजधानी छीन ले या एशिया माइनरकी समृद्ध भूमि और थ्रेस प्रान्तसे—जिनमें तुर्कोंकी ही अधिकता है—तुर्कोको निकाल बाहर करें।" यदि अक्षरश

केवल उनके दिये हुए वचन पूरे किये जायं तो फिर असन्तोष और कलहकी कोई बातें नहीं रह जाती। यदि मिस्टर आस्क्विथके भाषणका यह अर्थ लगाया जाय कि यह उन्होंने मुसलमानोंके स्वार्थके विरोधमें कहा था तो मिस्टर लायड जार्जका भाषण उसको डाककर ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलके भावको स्पष्ट कर देता है। मिस्टर लायड जार्जने अपने वचनके पूरा करनेकी एकमात्र शर्त यही लगाई थी कि मुसलमान सैनिक युद्धमें भाग लेनेके लिये पूणरूपसे तैयार हो जायं और साम्राज्यकी सहयता करें। पर जिन स्थानोको रक्षाका वचन दिया गया था आज उन्हींको छिन्न भिन्न किया जा रहा है। विविध विषयके लेखकने लिखा है कि मिस्टर लायड जार्ज अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। मैं आशा करता हू कि उसका यह कथन यथार्थ है। पर अभी तक जो कुछ किया गया है उसके आधार पर तो इस तरहकी कोई आशा नहीं की जा सकती। खलीफाको अपनी ही राजधानीमें कैद कर देना या नजरबन्द कर देना केवल वादा पूरा करनेकी बातकी हसी ही उडानी नहीं होगी बल्कि अपमानकी भीषणताका और भी बढाना होगा। प्रश्न केवल एक है, तुर्की साम्राज्यको समग्र तुर्की के प्रान्तोंके ऊपर कायम रहने देकर उसकी राजधानी कुस्तुन्तुनिया रहने देना है या नहीं। यदि इसका उत्तर 'हाँ' है तो भारतीय मुसलमानोंके धार्मिक भावोंकी रक्षाके लिये उसका पूर्ण रूपसे विकास होने दीजिये। और यदि उसका नाश करना है तो चाल-

बाजोंका परदा उठा दीजिये और भारतको सच्ची स्थितिका पर्यवेक्षण करने दीजिये। ऐसी अवस्थामें खिलाफत आन्दोलनमें भाग लेनेका यह अभिप्राय हुआ कि ऐसे आन्दोलनमें भाग लिया जा रहा है जिसके द्वारा ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीकी प्रतिज्ञाको पूरी कराई जाय। यदि विचार कर देखा जाय तो इस तरहके पवित्र आन्दोलनके लिये उससे कहीं अधिक त्याग उचित प्रतीत होता है जितना कि असहयोग आन्दोलनमें करना होगा।

खिलाफत और अहिंसा

जून १ १९२१

मिस्टर अचारियाने अपने साप्ताहिक पत्रमें एक लेख लिखा था। इस लेखका शिर्षक था, 'अहिंसाके विरोधी खिलाफतके सिद्धान्तको हाथमें लेकर कोई भी मनुष्य अहिंसाका प्रतिपादक कैसे बन सकता है?" सर्वेण्ट आफ इण्डिया सोसायटीके मिस्टर देवने यह लेख मेरे पास भेजा है और कहा कि आप खिलाफतके प्रश्नपर उन युक्तियोंके आधार पर विचार कीजिये जिनका प्रतिपादन इस लेखके लेखकने किया है। लेखकने लिखा है :—"मुझे न तो खिलाफतके सिद्धान्तके मूल्यकी परवा है

और न अहिंसाके मूल्यकी। पर मेरा कथन है कि ये दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं। जो कुछ मैं चाहता हूं यह यह है कि इस प्रश्न पर दोनों तरहसे पूर्ण विचार होना चाहिये। मानव समाजके अर्वाचीन इतिहासको देखनेसे विदित होता है कि दूषित विचार तथा समझौताके भावने मानव जातिको सबसे अधिक क्षति पहुंचाई है। इसके उदाहरणमें राष्ट्रपति विलसनके पतनका उदाहरण देकर लेखकने फिर लिखा है :—"क्या सत्याग्रहके आधारस्तम्भ (महात्मा गांधी) उस चेतावनी पर ध्यान देंगे? क्या वह अपने जीवनके साथ विश्वासघात करनेसे दूर रहेंगे? क्या वे हिन्दू मुस्लिम एकताके प्रलोभनमें पड़कर अपने जीवनके सिद्धान्तोंके विरुद्ध सत्यको नीचे दबावेंगे और खिलाफतके प्रश्नपर मुसलमानोंके साथ समझौता करेंगे?"

इस लेखने मुझे बाध्य कर दिया है कि खिलाफतके संबंधमें मैं अपनी स्थिति पर पुनः दो एक शब्द लिखूं। यदि मैं केवल हिन्दू मुस्लिम एकताके प्रलोभनमें पड़कर अपने जीवनके सिद्धान्त अहिंसाको तिलांजलि देकर 'खिलाफतका साथ दूं तो मैं अपनी आत्माके साथ विश्वासघात करूंगा। पर जब मुझे पक्का विश्वास हो गया है कि मुसलमानोंकी मांग हर तरहसे सङ्गत और न्यायपूर्ण है तभी मैंने इसमें हाथ डाला। यह मेरे लिये अपूर्व अवसर था जो शायद इस जीवनमें फिर न उपस्थित होता। मैंने भली-भांति विचार कर देखा कि यदि इस अवसर पर मैं अपने मुसलमान भाइयोंके साथ होजाऊं और सङ्कटके समय उनका

हाथ बटाऊं तो निःसन्देह दोनों जातियोंमें आजन्मकी मैत्री हो जायगी। किसी भी तरहसे मैंने देखा कि इस अवसरसे लाभ उठाना अत्यावश्यक है। मैंने अच्छी तरह सोचा विचारा तो मुझे यह भी निश्चय हो गया कि जबतक ये दोनों जातियां परस्पर भेदभावको त्यागकर मैत्रीके एक सूत्रमें नहीं बंध जातीं भारतका उद्धार असम्भव है।

मिस्टर जचारियाने आगे चल कर लिखा है :—"खिलाफतकी शक्ति बल प्रयोगमें है। खलीफा इस्लाम धर्मका प्रतिनिधि है। उसकी रक्षाका वह जिम्मेदार है। तलवारके बलसे भी उसे इस्लाम धर्मकी रक्षा करनी होगी। ऐसी अवस्थामें वह मनुष्य (महात्मा गान्धी) जिसने अहिंसाका व्रत ग्रहण किया है ऐसी संस्थाको बचानेके लिये संग्राम करना चाहता है जो अपनी रक्षाके लिये तलवारका भी प्रयोग कर सकता है।"

खिलाफतके बारेमें मिस्टर जचारियाका जो मत है वह सर्वथा सच है। पर उन्होंने अहिंसाके प्रतिपादकके कर्त्तव्यका गलत अनुमान लगाया है। जिस व्यक्तिने अहिंसाका व्रत धारण किया है वह किसी वस्तुकी रक्षाके लिये किसी तरह भी हिंसा या बलका प्रयोग नहीं करेगा पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि अहिंसाके सिद्धान्तपर वह उन संस्थाओंकी सहायता भी नहीं कर सकता जो कि स्वयं अहिंसात्मक नहीं हैं। यदि इस बातको ठीक उलट दें तो हमें भारतकी स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये भी चेष्टा नहीं करनी चाहिये क्योंकि यह तो

निश्चय है कि स्वराज्य प्राप्त करनेके बाद भारतको कुछ सेना और पुलिस तो अवश्य ही रखनी पड़ेगी। इस बातको और भी स्पष्ट करनेके लिये एक दूसरा उदाहरण दे देना उचित होगा। मेरा लड़का अहिंसामें विश्वास नहीं करता इसलिये यदि उसके साथ किसी तरहका अन्याय किया गया है तो उसके प्रतिकारके लिये उसकी सहायता करना मेरा धर्म नहीं है।

यदि मिस्टर जचारियाके विचार प्रणालीके अनुसार काम किया जाय तो अहिंसाके सिद्धान्तको माननेवालेको व्यापार व्यवसायमें भी किसी तरहका भाग नहीं लेना चाहिये। कितने ही लोग मिस्टर जचारियाके भी मतके मिल सकते हैं जिनका यही विश्वास है कि अहिंसाके सिद्धान्तको स्वीकार करनेका अभिप्राय यह है कि हर तरहके कारबारका बन्द कर दिया जाय।

पर अहिंसाके सिद्धान्तसे मेरा यह अभिप्राय नहीं है। मेरी धारणा यह है कि आहिंसाके व्रतको ग्रहण करनेवालेको स्वयं किसी प्रकार हिंसा नहीं करनी चाहिये और यथासाध्य समझा बुझाकर लोगोंको अहिंसात्मक होनेके लिये प्रेरित करना चाहिये। पर यदि कोई व्यक्ति या संस्था अहिंसाके सिद्धांतसे पूर्णतया सहमत नहीं होती और उसकी मांग न्यायोचित है तो यदि मैं जान बूझकर उसको सहायता नहीं करता तो मैं अपने साथ विश्वासघात कर रहा हूं। जब मैं यह जान गया हूं कि मुसलमानोंका पक्ष उचित और न्याययुक्त है और मित्र शक्तियां बेईमानीके साथ इस्लामके नाशकी

योजना कर रही है तो यदि मैं अहिंसात्मक उपायों द्वारा उन शक्तियोंके विरुद्ध मुसलमानोंकी सहायता न करूं तो मैं हिंसाके प्रचारका दोषी समझा जाऊंगा। जहां दोनों दल हिंसाके प्रतिपादक हैं वहां भी न्याय और ईमानदारी तो एकके पक्षमें अवश्य ही होगी। यदि कोई मनुष्य लुट गया है और अपनी लुटी हुई सम्पत्तिको प्राप्त करनेके लिये वह शस्त्र संग्रह कर रहा है तोभी न्याय तो उसके पक्षमें अवश्य है और यदि क्षत पक्षको किसी तरह समझा बुझा कर अहिंसाके राहपर लाया जाय और अहिंसा द्वारा ही उसने अपने शत्रुपर विजय प्राप्त की तो यह अहिंसाकी पूर्ण विजय समझी जायगी।

अहिंसाके सिद्धान्तमें जो नियन्त्रण मैंने लगाया है उसके आधार पर मिस्टर जचारिया मुझे अहिंसाके प्रतिपादक भले ही न कहे पर मैं उन्हें केवल इतना ही कह सकता हूं कि जीवन एक जटिल समस्या है और सत्य तथा अहिंसा ऐसे सिद्धान्तोंको उपस्थित करती हैं जहां विचार और विन्यास कोई काम नहीं करता। सत्य तथा उसके प्रयोगका एकमात्र उपाय सत्याग्रहकी प्राप्ति धीरता, तत्परता तथा अटल भक्ति और प्रार्थनासे होती है।

मैं सच्चे हृदयसे यह बात कह सकता हूं कि मैं सत्य मार्गपर चलनेके लिये कोई भी प्रयास उठा नहीं रखता और नम्र तथा अनवरत परिश्रम तथा विनीत प्रार्थना ये ही मेरे दो साथी और सहायक हैं जो मेरे उस कष्टपूर्ण तथा सुरम्य मार्गके सहायक हैं जिनपर प्रत्येक सत्यान्वेशीको चलना चाहिये।

खिलाफतपर भाषण

(मार्च २४, १९२०)

बम्बई खिलाफत कान्फरेंसमें महात्माजीने निम्नलिखित भाषण किया था :—

मैं अतिशय प्रसन्न हूं कि मुझे इस कान्फरेन्समें मुख्य प्रस्ताव उपस्थित करनेका अवसर मिला है। कुछ कहनेके पहले मैं इस सभाके सञ्चालकोंको बधाई देना चाहता हूं कि इस जलसा-को शान्तिमय रखनेमे उन्हें असीम सफलता मिली है। हम लोगोंको बार बार चेतावनियां दी गई हैं कि इस तरह कारोबार बन्द कर देनेसे उपद्रव उठ सकता है। पर बम्बईने जिस शान्तिका दृश्य उपस्थित किया है उसके लिये खिलाफत कमेटीको बधाई है। हड़ताल जितनी जबर्दस्त थी उतनी ही प्रेरणा रहित थी। किसी तरहका दबाव नहीं डाला गया था। मुझे इससे और भी प्रसन्नता है कि कमेटीने मेरी राय मान ली और मिलके मजूरोंको हड़ताल करनेकी राय नहीं दी। इस समय मिलोंके मालिकों और मजूरोंमें विचित्र तनाव और खैंचातानी हो रही है। इसलिये ऐसी अवस्थामें मालिकोंकी राय बिना कामपर न जानेके लिये मजरोंको उसकाना ठीक नहीं था।

हमारा प्रस्ताव चार भागोंमें बटा है। पहले भागमें विरोध और प्रार्थनाकी बात है। इङ्गलैण्डमें खिलाफतमें प्रश्नके खिलाफ जो निराधार और झूठा आन्दोलन उठाया गया है उसका यह सभा विरोध करती है और प्रधान मन्त्री तथा ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंसे प्रार्थना करती है कि वे इस आन्दोलनमें भाग न लें और मुसलमानोंको न्यायपूर्ण मांगोंको पूरा करके उनके धार्मिक भावों की रक्षा करें और भ्रातृभावको स्थापना करें। दूसरे भागका अभिप्राय यह है कि यदि सरकारके साथ पूरे तरहसे सम्बन्ध त्याग दिया जाय तो खिलाफतके प्रश्नका एकाएक विपरीत फल होनेकी सम्भावना है और इससे भारतवासियोंकी राजभक्तिपर भीषण बोझ पड़ जायगा। यदि अभाग्यवश ऐसी अवस्था उपस्थित हो गयी तो जोश और उत्तेजनाका भी सम्भावना है। तीसरे भागमें लोगोंको कड़ी भाषा तथा हिंसासे रोका गया है क्योंकि इस सभाके मतसे उस तरफ साधारण प्रवृत्ति भी खिलाफतके पवित्र नामपर कलङ्कका टीका लगा देगी और असाधारण क्षति पहुंचावेगी। यहां तक तो प्रस्तावमें सबके लिये प्रेरणा है चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो या ईसाई हो।

यह सभा इस संग्राममें पूरी तौरसे हिंसा रहित होनेकी मन्त्रणा देती है और दोनों आन्दोलनोंको एक सूत्रमें बांधकर चलानेकी परामर्श देती है। पर कुरान धर्मके अनुसार मुसलमानोंपर खास जिम्मेदारियां हैं जिनका पालन हिन्दू नहीं भी कर सकते। अगर शान्तिमय असहयोगसे उनका काम न चला,

अर्थात् यदि खिलाफतके प्रश्नका निपटारा ठीक तरहसे न हुआ तो इस्लाम धर्मकी आज्ञाके अनुसार वे उन अन्य उपायोंसे भी काम ले सकते हैं जो इस्लाम धर्मके अनुसार विहित हैं। मैं इस प्रस्तावसे पूणतया सहमत हू। यह प्रस्ताव बहुत ही नरम और मर्यादित है। इस समारोहमें भागलेनेके लिये सिया, सुन्नी, हिन्दू मुसलमान, सिक्ख और पारसी सभी सम्मिलित हैं। हिन्दुओंने पूरी हड़ताल करके दिखला दिया है कि वे भी अपने मुसलमा भाइयोंके मतसे सर्वथा सहमत हैं, इङ्गलैण्डमें खिलाफतके विरुद्ध जो आन्दोलन उठाया गया है उससे भारतवासियोंके चित्तमें एक तरहका विकार उत्पन्न हो गया है जिसका शमन तवतक नहीं हो सकता जबतक खिलाफतके मामलेमें न्याय न किया जाय। इस बातसे मुझे अत्यन्त खेद है कि भारतकी अवस्थाका सम्पूर्ण अनुभव रखनेवाले लार्ड कर्जनने भी इस आन्दोलनमें भाग लेनेकी अदूरदर्शिता की।

आशाकी क्षीण रेखा

पर इस काली घटाके बीचमें भी आशाकी क्षीण रेखा दिखाई देती है। मिस्टर माण्टेगू हमारी मांगपर बराबर जोर देते जा रहे हैं। इधर मिस्टर लायड जार्जने भी रुख बदला है। दबी जबानमें उन्होंने अपने वचनको फिर दोहराया है। जहाँतक मुझे मालूम है भारत सरकार भी हमारी मांगपर जोर दे रही है। विदेशी समाचार पत्र भी अपना द्वेष नहीं प्रगटकर रहे हैं।

टाइम्स आफ इण्डिया तथा बङ्गाल चेम्बर आफ कमर्सने हमारी मांगका पूरी तरहस समर्थन किया है। इस प्रस्ताव द्वारा हम-लोग समस्त अंग्रेजोंका आवाहन कर रहे हैं कि वे हमलोगोंके साथ इस सत्यके झण्डेके तलेएकत्रित होकर ब्रिटन की मर्यादाका पालन कर और प्रधान मन्त्रीको प्रतिज्ञा-भगके पापसे रोकें। ब्रिटिश राज्यमें मेरी अनन्य भक्ति है पर मैं उस भक्तिके लिये अपनी इज्जत नहीं बेचना चाहता इसके लिये मैं मुसलमान भाइयोंके धार्मिक भावोंकी हत्या नही करना चाहता। जिस राजभक्तिके लिये आत्माका बेचना पडे उसका न होना ही अच्छा है। विगत यूरोपीय महायुद्धमें भारतीय हिन्दू और मुसलमान सैनिकोंने जो सहायता की है उसका स्वोकार कर भी यदि प्रधान मन्त्रीने अपने वचनको ताड दिया ता भारतीयोकी राजभक्ति अवश्य गायब हो जायगी। पर अभीतक मैं निराश नही हुआ हू। यदि वह आशा निराशामें परिणत हो गई और यदि कोई भी बुरी घटना हो गई तो ईश्वर ही जाने इस पवित्र भूमिकी क्या अवस्था हो जायगी। इतना हम कह सकते हैं कि जबतक इस अन्यायका प्रतिशोध न होगा और आठ करोड मुसलमानोंके धार्मिक भावोंकी रक्षा न की जायगी तबतक न तो शान्ति स्थापित हो सकती है और न सरकारको चैन ही मिलेगा।

मेरी समझमें यह बताने की कोई आवश्यकता नही है कि हिन्दुओंको मुसलमानोंका साथ क्यों देना चाहिये। जबतक मुसलमानोंका ध्येय और उद्देश्य मर्यादित है तबतक मुसलमानों

का साथ देनेके अतिरिक्त हमें कोई अन्य उत्तम तरीका नहीं दिखाई देता जिसके द्वारा हमलोगोंकी मैत्री पक्की हो जाय। पर इस प्रकारके पवित्र कार्यमें वाचा या कर्मणा हिंसाके भाव हृदयमें नहीं आने चाहिये। 'कण्टकेनैव कण्टकम्' अर्थात् विषसे विषको मारने-की नीति हमें छोड़ देनी चाहिये। हमें घृणाको भी प्रेमसे जीतना चाहिये। मैं मानता हूं कि अन्यायको प्रेमकी दृष्टिसे देखना कठिन है पर सच्ची विजय वही है जो अनेक तरहकी कठिनाइयों-को पूर्ण धैर्य्य तथा साहसके साथ पार करनेके बाद ही प्राप्त होती है। और न्याययुक्त उद्देश्यमें तो साहस और धैर्य्यकी नितान्त आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त हिंसासे हमारे काममें हानि भी पहुंच सकती है। इससे उत्तेजना भले ही फैल जाय पर इस तरहके जोशसे हम अपने ध्येय तक नहीं पहुंच सकते। इसलिये इस प्रस्तावका अहिंसावाला अंश आत्मसंयमपर पूरा जोर देता है और प्रत्येक वक्ताको इस बातका आदेश देता है कि वह अपने भाषणमें बनावटी बातें लाकर जोश बढ़ानेका यत्न न करें क्योंकि इससे खून खराबी हो सकती है। इसका परिणाम यह होगा कि सरकारको दमन जारी करनेका अवसर मिल जायगा और जनताको नीचा देखना पड़ेगा। पर मुझे मालूम है कि मुसलमान भाई मर्यादाके भीतर ही रहना चाहते हैं।

मुसलमान लोग किसी बातको छिपाना या गुप्त रखना नहीं चाहते। इसलिये कुछ लोगोंने यह शर्त लगा देनेपर जोर दिया है कि यदि असहयोग असफल हुआ तो वे अन्य उपायोंसे भी काम

लेनेके लिय स्वतन्त्र हैं। वे उपाय इस्लाम धर्मके अनुसार दो हैं। या तो वे उस देशको छोड़कर चले जायंगे जो उनके धर्मपर आघात पहुंचावेगा या उसके साथ सशस्त्र युद्ध करेंगे। इस प्रस्तावमे इसलिये वह अवस्थायें स्पष्टतया लिख दी गई हैं जिनसे होकर इस प्रस्तावको आगे बढ़ना है। इसकी अन्तिम अवस्था रक्तपात है। ईश्वर करें इस देशको उस दशातक न पहुंचना पड़े पर खिलाफतके प्रश्नने मुसलमानोंके दिलोंका इतनी चोट पहुंचाया है कि यदि शान्तिमय उपायोंद्वारा इसका निपटारा न हो गया तो इस देशमे रक्तपातका होना सम्भव हा जायगा और यदि ऐसा हुआ तो उसकी जिम्मेदारी अंग्रेज जाति हिन्दू और कायर मुसलमानोंपर होगी। यदि मान लो अंग्रेज जाति मुसलमानोंकी अवस्था भली भांति समझकर और ईमानदारीसे निपटारा कर देना चाहती है तो सब बातें ठीक तरहसे निपट जायगी। यदि हिन्दुओंने अपने कर्तव्यको समझा और मुसलमानोंका साथ तत्परताके साथ दिया तो दोनो एक होकर इस प्रश्नका निपटारा मजेमें करा सकते हैं। मुसलमानोसे भी मेरा अनुरोध है कि अपनी कायरताका त्याग करके इस समय रक्तपात होनेसे बचावे। इसका उपाय यही है कि वे हिंसा करनेवालोंको दिखला दें कि इस्लामके प्रति कोई भी मनुष्य विश्वासघात नहीं करेगा। इसलिये यदि हम लोगोंके भाग्यमें रक्तपात ही लिखा है ता यह उसी समय उपस्थित होगा जब मुसलमान अंग्रेज जातिके अन्याय, हिन्दू और अन्य मुसलमानोंके विश्वासघातके कारण चारो ओरसे निराश

हो जायंगे। मुझे पूर्ण आशा है कि भारतका प्रत्येक निवासी इस न्यायपूर्ण मांग और प्रार्थनामें शरीक होगा। मुझे पूर्ण आशा है कि सरकार भी नासमझी और क्रोधसे काम लेकर व्यर्थका दमन जारी करके रक्तपातका अवसर न देगी। उन्हें समझ लेना चाहिये कि भारतवर्ष अब अबोध नहीं रहा और भारतीयोंके भी हृदयमें वे ही भाव भरे हैं जो ऐसे अवसरोंपर सच्चे अंग्रेजके हो सकते हैं।

खिलाफत

—:o:—

९ मई १९१९ को अनजुमन ज़िया-उल-इसलाम बम्बईकी एक असाधारण सभा खिलाफतके प्रश्न पर विचार करनेके लिए हुई थी। मि० कदीरभाई बैरिस्टरने सभापतिका आसन ग्रहण किया था। लाखों हिन्दू और मुसलमान इस सभामें मौजूद थे। महात्मा गाँधी श्रीयुक्त जमनादास द्वारकादास श्रीयुक्त शङ्कर-लाल बैंकर भी उपस्थित थे। सभापतिने गाँधीजीको व्याख्यान देनेकी प्रार्थना करते समय कहा कि महात्माजीकी जिन्दगी भर यही कोशिश रही कि हिन्दू-मुसलमानोंमें एकता हो जाय।

महात्माजीने निम्न लिखित व्याख्यान दिया :—

सभापतिने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है वह ठीक है, क्योंकि मै अपने लड़कपनसे ही इस बातकी बड़ी अभिलाषा रखता था कि हिन्दू मुसलमानोंके बीच रा भेदभाव दूर हो जाय। जब मैं दक्षिण अफ्रिकामें रहता था उस समय मेरा मुसलमान भाइयोंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ। मैं मुसलमानोंके एक मुकदमेमें गया था, और वहाँ मैं उनके स्वभाव विचार और अभिलाषाओंसे परिचित हुआ। सन् १९१४ में मैं दक्षिण अफ्रिकासे रवाना हुआ और ४ अगस्तको, अर्थात इङ्गलैण्ड और जर्मनीमें युद्ध छिडनेके दो दिन पश्चात् लन्दन पहुँचा। शीघ्रही मैंने टाइम्समें एक लेखमाला पढ़ी, जिसमें यह अनुमान करनेकी चेष्टा की गई थी कि टर्की इङ्गलैण्ड और जर्मनीमेंसे किसकी ओर रहेगा। मैंने यह भी देखा कि लन्दनमें रहनेवाले मुसलमानोंमे भी खलबली मची हुई थी। एक दिन प्रात काल हमने टर्कीके जर्मनीसे मिल जानेका समाचार पढ़ा। उस समय मुझे इतनी फुरसत नहीं थी कि टर्कीसे सम्बन्ध रखनवाले प्रश्नों पर विचार कर सकता और टर्कीके इस कार्य पर अपनी राय प्रगट करता। मैंने केवल यह प्रार्थना की कि भारत अशान्ति और उपद्रवोंसे सुरक्षित रहे। मुझे दक्षिण अफ्रिकामें मुसलमान मित्रोंका ट्रिपोलीकी लड़ाईकी घटनाओंको समझाना पड़ा था और मैं उनके भावोंको अच्छी तरह समझ गया था। इस लिए मुझे यह समझ सकनेमें जरा भी कठिनाई न हुई कि टर्कीके शत्रुदलके साथ मिल जानेसे मुसलमानोंके दिलोंमें कैसे कैसे भाव उत्पन्न हो रहे थे। उनकी अवस्था अब

बड़ी नाजुक हो गई। दूसरे वर्ष मैं हिन्दू-मुसलमानोंके मेल और टर्कीसे सम्बन्ध रखनेवाले विचारोंको लेकर भारतवर्षमें आया। और मैने यहाँ आने पर अनुभव किया कि मैं इन प्रश्नोंके ठीक ठीक हलकर सकनेमें सहायता कर सकूँगा। मैंने अपना जीवन दो बातोंके लिए अर्पण किया है। हिन्दू मुसलमानोंका स्थाई मेल और सत्याग्रह। इनमेंसे सत्याग्रहकी ओर मेरा ध्यान प्रायः अधिक है, क्योंकि इसके क्षेत्र बहुत विस्तृत हैं। इस आन्दोलनके प्रभाव क्षेत्रमें सभी आ जाते हैं। और यदि हम सत्याग्रहके सिद्धान्तका स्वीकार कर ले तो मेल अपने आप हो जायगा। जिस प्रश्नका उत्तर मै इस समय देना चाहता हूं वह यह है कि यूरोपीय महायुद्धके कारण मुसलमानोंके सम्बन्धमें जो प्रश्न उठ खड़ा हुआ है उसके हल करनेमें मे क्या सहायता दे सकता हूं। भारतवर्षमें आनेके पश्चात् मैं अच्छे अच्छे मुसलमान नेताओंकी तलाश करने लगा। मेरी यह अभिलाषा दिल्ली पहुँच कर पूरी हुई। मै अली भाइयोंसे मिला, जिन्हें मैं पहलेसे भी जानता था। हम लोगोंमें पहली बारके मिलनेसे ही प्रेम हो गया। जब मैं डाक्टर अन्सारीसे मिला मुसलमान मित्रोंका दायरा और भी बढ़ गया, और अन्तमें इसमें लखनऊके मौलाना अब्दुलबारी भी आ गये। मैंने अपने इन सब मित्रों तथा भारत भरके और बहुतसे मुसलमानोंके साथ इस इसलामी प्रश्न पर विचार किया है और मुझे मालूम होता है कि यह बड़े महत्वका प्रश्न है।

यह प्रश्न रौलट कानूनको रद्द करानेकी अपेक्षा भी बड़ा है,

क्योंकि इसका असर करोड़ों मुसलमानोंके धार्मिक भावों पर पड़ता है। यह बात आश्चर्यजनक होने पर भी सत्य है कि मुसलमानोंकी स्त्रियाँ और बच्चे भी इस प्रश्नमें दिलचस्पी रखते हैं। इम्पीरियल गवर्नमेंट (ब्रिटिश शासकों) के इस प्रश्न पर जो विचार हैं उनके विषयमें मुसलमानोंके दिलोंमें बड़ा भारी सन्देह है। यद्यपि वाइसराय इस अवस्थाके महत्वसे बेखबर नहीं हैं, तोभी मैं समझता हूं कि मुसलमानोंके दिलोंको सांत्वना देनेके लिये आवश्यक है कि इस प्रश्नके विषयमें ब्रिटिश सरकार अपनी नीति प्रगट कर दे।

जहाँ तक मैं जानता हूं इस प्रश्नके अन्तर्गत तीन मुख्य बात हैं। एक खिलाफत और टर्कीके आधिपत्यके बारेमें, दूसरी पवित्र मक्का और मदीनाके बारेमें और तीसरी पैलेस्टाइनके बारेमें। संक्षेपमें आप यह कहते हैं कि मुसलमानोंके अधिकार युद्धके पूर्व जिस अवस्थामें थे वैसे ही अब भी रहने दिये जायं। हमारे मुसलमान देश-बन्धुओंका यह विचार है कि लौकिक और पार-लौकिक शक्तियोंमें घनिष्ट सम्बन्ध है। इस लिये मैं अच्छी तरह समझता हूं कि टर्कीके छिन्न-भिन्न करनेकी बातके विरुद्ध मुसलमानोंके दिलोंमें कैसे कैसे भाव उठते होंगे। लेकिन टाइम्स आफ इंडिया और दूसरे पत्रोंने लिखा है कि अभी तक मुसलमानोंकी ओरसे उनके स्वत्वोंका कोई सप्रमाण और विश्वसनीय बयान प्रकाशित नहीं हुआ है। केवल आप ही लोग इस त्रुटिको पूरा कर सकते हैं। मुसलमानोंके स्वत्वोंका यह

बयान शान्ति-पूर्ण, पक्षपातरहित और सप्रमाण होना चाहिये जो कि इस विषयके निष्पक्ष जिज्ञासुके हृदय पर असर डाल सके। समय शीघ्रताके साथ जा रहा है, और यदि आप फौरन उस ओर न बढ़ेंगे, जिस ओर जाना चाहते हैं, तो फिर कुछ न हो सकेगा। क्योंकि राष्ट्र-संयोगके विचारोंका भिन्न भिन्न देशोंके हिताहित पर जो प्रभाव पड़ता है उसका खयाल रखते हुये जितना शीघ्र सम्भव है उतना शीघ्र वह आगे बढ़ रहा है। और जब आप यह प्रगट कर दें कि आप क्या चाहते हैं उस समय यह सोचा जा सकता है कि इसके प्राप्त करनेके क्या क्या उपाय हो सकते हैं।

यह पूछा जा सकता है कि मैं, जो एक हिन्दू हूं, एक इसलामी सवालके लिये अपने दिमागको क्यों तकलीफ देता हूं। इसका उत्तर यह है कि जब आप मेरे पड़ोसी हैं, मेरे देशवासी हैं, तो यह मेरा कर्तव्य है कि मैं आपके दुःखमें हाथ बटाऊं। मुझे हिन्दु-मुसलमानोंके मेलके विषयमें कुछ भी कहनेका अधिकार नहीं, यदि अवसर आने पर मैं अपने विचारोंको कार्य-रूपमें परिणत नहीं करता। आप जानते हैं कि दिल्लीमें होनेवाली युद्ध-कानफरेंसके पीछे ही मैंने वाइसरायके नाम जो पत्र प्रकाशित किया था उसमें इस इसलामी प्रश्नको उठाया था। उस समयसे जब कभी मुझे मौका मिला है मैं कभी उचित स्थानों पर अपनी राय जाहिर करनेमें नहीं चूका हूँ।

अब मेरे लिये विचार करनेको यह शेष रह गया है कि आपके स्वत्वोंको कैसे प्राप्त किया जा सकता है। स्वभावतः इसका सबसे अच्छा तरीका यह है कि हम सरकारके पास अपने प्रतिनिधि भेजें। कभी कभी गवर्मेण्ट किसी बातको उस दृष्टिसे नहीं देखती जिससे कि हम। ऐसे समयमें हमको क्या करना चाहिये? यदि अपने यहांके शासकोंको हमने चुना होता और वे हमारे सामने ज़िम्मेदार होते तो उनकी गवर्मेण्टको हम अपने वोटों द्वारा बदल सकते थे। लेकिन जब हमारे पास इस प्रकारका कोई कार्य-साधक उपाय नहीं है तो हमें क्या करना चाहिये? जब कभी सरकार प्रजाकी आकांक्षाओंको पूरा नहीं करती, वह उससे अप्रसन्न हो जाती है और उद्दण्डता करने लगती है। और मैं जानता हूं कि बहुत लोगोंका यह विचार है कि जब अन्य प्रकारके साधारण आन्दोलन असफल हो गये हों तो उद्दण्डता ही एकमात्र उपाय है। पर यह एक बहुत पुराना उपाय है। मैं इसे अत्यन्त क्रूर समझता हूं, और लोगों तथा सरकारके सामने एक दूसरा उपाय रखनेका साहस करता हूं जो सब प्रकारकी उद्दण्डताको दूर कर देता है, और पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक कार्यसाधक है। मैं समझता हूं कि अपने स्वत्वोंके प्रतिपादनके लिये उद्दण्डताका सहारा लेना हमारे लिये न्याययुक्त नहीं। मारनेकी अपेक्षा मर जाना कहीं अच्छा है। यदि मैं बारी

साहबसे बातें न कर चुका होता तो ऐसे विषय पर जो धर्मसे इतना अधिक सम्बन्ध रखता है, बातें करनेका साहस न करता। पर उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि कुरान-शरीफमें सत्याग्रहके लिये काफी प्रमाण मौजूद हैं। वे कुरानकी इस व्याख्यासे सहमत हैं कि खास खास मौकों पर उद्दण्डता करनेकी आज्ञा तो दी गई है, पर अल्लाहको उद्दण्डताकी अपेक्षा आत्मसंयम अधिक पसन्द है। यही प्रेमका नियम है, और यही सत्याग्रह है। उद्दण्डता मनुष्यकी कमजोरी है और क्षमा-योग्य बात है, सत्याग्रह उसका कर्त्तव्य है। व्यावहारिक दृष्टिसे देखने पर भी यह मालूम कर सकना नितान्त सरल है कि उद्दण्डतामें कोई लाभ नहीं होता, वरन बहुत कुछ हानि ही होती है। जैसा कि हम अहमदाबाद और वीरमगाममें देख चुके हैं। इसके सिवा इस बातकी सचाईका परिचय आपको आगामी रविवारको भी मिल जायगा। मैंने उस दिनके लिये यह सम्मति दी है कि लोग व्रत रखें, प्रार्थना करें और सत्याग्रही हड़ताल मनावें। मैं आशा करता हूं कि आप सब इस मान, शोक और प्रतिवाद-प्रदर्शक बड़े जलूसमें शामिल होंगे। मान-प्रदर्शक यह एक अङ्गरेजके लिये हैं जिसने श्रद्धा-पूर्वक बड़ी अच्छी तरह भारतकी सेवा की है, शोक-प्रदर्शक इस बातके लिये कि उसे देशसे निकाल दिया गया है और प्रतिवाद प्रदर्शक इस लिये कि सरकारका यह कार्य अनुचित है। यह दुःख हम सबके लिये बराबर है, और मुझे आशा है कि आप लोग इस जलूसमें

पूरा पूरा भाग लेंगे। इस जलूसकी सफलता इसीमें है कि वह निहायत शान्तिके साथ स्वेच्छापूर्वक किया जाय और अगर हमने ऐसा किया तो हमें पुलिस या फौजकी कुछ भी जरूरत न होगी। भारत जब सत्याग्रहके सिद्धान्तको स्वीकार कर लेगा, हवाई जहाज हमें डरा न सकेंगे, और जब हम कोलाबा या अन्य स्थानोंकी मैशीनगनोंको उपयोगमें लानेका मौका न देंगे तो उनके ऊपर मिट्टी जम जायगी, उन पर घास उग आवेगी और हमारे लड़के उन पर खेलेंगे।

नया मार्ग

(अप्रैल १४, १६२०)

विगत १२ माससे खिलाफतके प्रश्नका आन्दोलन भारत और इङ्गलैंडमें किया जा रहा है। प्रारम्भिक अवस्थामें यहांसे अधिक आन्दोलन इङ्गलैण्डमें किया गया। मुसलमानोंका जो डेपुटेशन इङ्गलैण्ड गया था उसने सन्धि परिषद्को मुसलमान धर्मके अनुसार इन बातोंको खूब समझाया। जनता तथा ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलके सामने भी उन्होंने अपनी असली अवस्थाका विवरण रखा। इन अतुल परिश्रमोंकी असफलता तथा पेरिसकी

घटनाओंने भारतीयोंके हृदयपर कठोर आघात किया है। भारतके मुसलमान नेताओंने भी भली भांति देखा कि गुप्त सन्धिके अन्तर्गत जो स्वार्थ छिपा है उसके बोझसे मित्रराष्ट्र बेतरह दबे हैं। उन्होंने तुरन्त एक डेपुटेशन बनाया और जोर पकड़ा। मुसलमानोंकी कमसे कम मांगोंकी उन्होंने घोषणा की। इस डेपुटेशनका प्रथम दल इङ्गलैण्ड गया।

खिलाफत डेपुटेशनने लिबरल दलके बड़े नेतासे मुलाकात की। प्रधान मन्त्रीके सामने भी उन्होंने अपनी मांग उपस्थित की। इसका जो कुछ परिणाम हुआ हम जानते हैं। उन्होंने (डेपुटेशनवालोंने) केवल व्यक्ति विशेषोंसे ही बातचीत करके अपना काम समाप्त नहीं समझा। एसेक्स हालमें उन्होंने सार्वजनिक सभामे भाषण किया। इस सभामे अधिकांश अंग्रेज श्रोता थे। कहा जाता है कि इस सभाका अंग्रेजोंपर अच्छा असर पड़ा। बम्बे क्रानिकलके संवाददाताने लिखा है कि शीघ्र ही दूसरी सभा भी होनेवाली है।

खिलाफतके प्रश्नका निपटारा चारो प्रधान शक्तियोंके हाथमें है। इनमेंसे एक इटालीके प्रधान मन्त्री सीनियर निटी हैं। उन्होंने जो भाषण अभी हालमें किया है और इटाली राष्ट्रपरिषद्ने उसकी प्रशंसा जिस प्रकार की है उससे यही विदित होता है कि एशिया माइनर अथवा तुर्कीमें वे भूमिका किसी तरहका बटवारा नहीं चाहते। उन्होंने कहा कि मुसलमानोंके धार्मिक भावोंको किसी भी तरह उत्तेजित करना भूल होगी। पर

अटलाण्टिक महासागरसे दुःखदायी समाचार आ रहे हैं। तुर्कोंके साथ सन्धिके सम्बन्धमें मित्रराष्ट्रोंने अमरीकाके पास जो पत्र भेजा था उसके उत्तरमें अमरीकाने लिखा है:—कुस्तुन्तूनियाके दायराके बाहर थ्रेसका जो अंश हो उसे यूनानियोंका दे दिया जाय। आड्रियानोपुल, किर्किलिसेह, तथा आसपासकी भूमि बलगेरियाको दे दी जाय। आर्मीनियाकी सीमा निर्धारित करके उसका स्वत्व भी स्वीकार कर लेना चाहिये और उसे समुद्रके मार्गकी सुविधा मिलनी चाहिये। आगे चलकर उस पत्रमें निम्नलिखित व्यवस्था की गई है कि ट्रेबिजण्ड तो आर्मेनियाको मिलना चाहिये और मसोपोटामिया, अरेबिया, पेलेस्टाइन तथा सीरिया तथा जो टापू इस समय प्रधान शक्तियोंके अधिकारमें हैं, उन्हें मित्रराष्ट्रोंके हाथों सौंप दिया जाय और उन्हें उनकी व्यवस्था करनेका पूर्ण अधिकार हो। अमरीकन आर्मीनियन कमीशन जिस परिणामपर पहुंचा है उसे पढ़कर तो और भी विस्मित हो जानेमें आता है। अपनी रिपोर्टके अन्तमें उसने लिखा है:—"निकट पूर्वीय प्रश्नके निपटाराका एक ही तरीका है। और वह यह है कि किसी शक्तिके हाथमें 'मैंडेट' दे दिया जाय और उसमें कुस्तुन्तूनिया भी शामिल कर दिया जाय।" इन दो तारोंको पढ़कर सभी विचारवान इस बातकी प्रशंसा करेंगे कि डेपुटेशनने अमरीका जाना निश्चितकर दूरदर्शिताका परिचय दिया है। सिनेटर लाज तथा अमरीकाके समाचारपत्रोंके नाम अभीसे संवाद भेजा गया है। इस पत्रमें प्रार्थना की गई है कि

कमिश्नरोंने आर्मेनियावालोंके कत्ले आमकी जो चर्चा की है उसकी जांच स्वतन्त्र कमीशनद्वारा होनी चाहिये और उसमें भारतीयोंके चुने प्रतिनिधि भी होने चाहिये। एक तर्फी जांचके कारण इस कत्ले आमकी बातोंसे तुर्कोंके ।सरपर भीषण कलङ्क आ रहा है और जब तक एक बार भी निरपेक्ष जांच न हो जाय किसी निर्णयपर पहुंचना अनुचित है। डेपुटेशनने अन्तमें लिखा है:--कृपा करके हमारी इन प्रार्थनाओंको सिनेटके सामने रखिये और प्रतिनिधि सभा तथा अमरीकाकी जनताका ध्यान इसकी ओर आकृष्ट कीजिये।" मुझे पूर्ण आशा है कि राष्ट्रपति विल्सनकी बातोंमें जो भूलें हैं उन्हें डेपुटेशन दूर करानेमें समर्थ होगा। वे लोग अमरीकाको दिखलावेंगे कि आत्मनिर्णयकी डींग मारनेवाले राष्ट्रपतिने अपने १२वें मन्तव्यको ताखपर रखकर माउण्टवीरनयके भाषणके कितना प्रतिकूल आचरण किया है।

मित्र राष्ट्रोंने एक तरहसे मुसलमानोंकी न्यायपूर्ण मागोंकी अवज्ञा की है फिर भी हम निराश नहीं हुए हैं। ईसाईयोंसे हमें अभी बहुत कुछ आशा है। और डेपुटेशनने निश्चय कर लिया है कि वह खिलाफतके अन्यायकी बातें सबके कानों तक पहुंचावेगा। इस तरहकी दूरदर्शिता यही साबित करती है कि हमारे मुसलमान भाई बिना किसी तरहकी निराशाके अभी शान्तिमय और संगत तरीकोंका प्रयोग कर रहे हैं।

वे लोग (मुसलमान नेता) भविष्यके मनमोटावको दूर रखनेके लिये नितान्त चिन्तित हैं। इस लिये उन्होंने अपने

हृदयकी बातोंको साफ साफ कह दिया है। शेखुल-इस्लामकी गिरफ्तारीकी उन्होंने दो शब्दोंमें निन्दा की है। बम्बईकी हालकी सभामें मुसलमानोंकी मांग फिर उसी तरह स्पष्ट शब्दोंमें दोहराई गई है और यह भी बतला दिया गया है कि यदि सन्तोषजनक निपटारा न हुआ तो क्या कार्रवाई की जायगी। सरकारके साथ सहयोग करना छोड़ देना कठिन बात है। और यदि साध्य होता तो मुसलमान लोग इसे बचाये होते पर उन्होंने देखा कि वे हर तरहसे लाचार कर दिये गये हैं और उन्हें बाध्य होकर इसे आरम्भ करना पड़ा। उपाधियोंका परित्याग ही इसकी (सहयोगत्यागकी) नींव डालता है। यहींसे खिलाफत आन्दोलन नया मार्ग पकड़ता है। हमारी आन्तरिक इच्छा है कि ईसाई शक्तियां इस स्थितिकी भीषणताको समझ कर अपनी अनुदार वृत्तिसे काम लेना छोड़ दें।

प्रधान मन्त्रीका उत्तर

(अप्रेल २८, १९२०)

खिलाफत डेपुटेशनको प्रधान मन्त्रीने जो उत्तर दिया है उसका समाचार हमें अभी मिला है। मिस्टर लायड जार्जका भाषण बड़े लाटके भाषणसे (जो उन्होंने भारतमें मुसलमानोंके डेपुटेशनके उत्तरमें दिया है) कहीं स्पष्ट है और इसलिये और भी निराशा पूर्ण है। जिन सिद्धान्तोंके अनुसार दो वर्ष पहले उन्होंने अपना वचन दिया था उन्हींसे आज वे विचित्र विचित्र परिणाम निकाल रहे हैं। आपने कहा है तुर्कीको अपनी करनीका फल भोगना ही पड़ेगा। इन्हींके पूर्वज प्रधान मन्त्रीने भारतीय मुसलमानोंके सैनिकोंको खुश करनेके लिये स्पष्ट शब्दोंमें कहा था :—"ब्रिटिश सरकार तुर्की साम्राज्यपर कोई उद्देश्य नहीं रखती और तुर्की कमेटीकी अनुचित कार्रवाईके लिये सुलतानको किसी तरहका दण्ड नहीं दिया जायगा।" क्या इस वचनके पालनमें प्रधान मन्त्रीका वह उत्तर शोभा देता है ? क्या वह उचित प्रतीत होता है ? मिस्टर लायड जार्जने कहा है :—"मैं अच्छी तरह जानता हूं कि अधिकांश तुर्क ब्रिटिश सरकारके खिलाफ शस्त्र नहीं उठाना चाहते थे। पर वहांके अधिकारियोंने प्रजाको धोखा दिया।" इस तरहके विश्वासके होते हुए भी आप

आज मिस्टर आस्किथके वचनको ताखपर रखकर तुर्कोंको दण्ड देनेकी व्यवस्था कर रहे हैं और इसमें भी न्यायकी दोहाई दे रहे हैं।

आत्मनिर्णयके सिद्धान्तोंकी व्याख्या करके आप दिखलाते हैं कि एकके बाद दूसरे तुर्की प्रान्तोंको हड़प लेना उस नीतिके अनुकूल ही है। आत्मनिर्णयकी नीतिमें वे इतने मदान्ध हो गये हैं कि थ्र्सको भी तुर्कोंके हाथसे निकाल लेना चाहते हैं यद्यपि उन्होंने स्वयं इस बातको स्वीकार किया है कि थ्र्स तो हर तरहसे तुर्कोंका ही होना चाहिये। पर आज आपने मर्दुमसुमारीकी गणना करके निकाला है कि थ्र्समें मुसलमानोंकी संख्या यूनानियोंसे कहीं कम है। मद्रास खिलाफत कांफरसमें भाषण करते हुए मिस्टर याकूब हुसेनने इस कथनकी सत्यताका प्रतिवाद किया है। अन्य प्रान्तोंकी चर्चा करते हुए प्रधान मन्त्रीने स्मर्नाका भी जिक्र छेड़ा है। आपने कहा है :—"निरपेक्ष कमेटी बैठाकर हमने बड़ा सावधानीसे जांच करवाई। पर मुझे यही विदित हुआ कि अधिकांश प्रजा तुर्कोंकी विरोधी है। पर इस एक पक्षीय कमेटीको निरपेक्ष कौन कह सकता है और इसकी जांच न्यायानुकूल कौन कह सकता है जबतक यह कमेटी उन लाखों मुसलमानोंके कत्ले आम और देश निकालेके सम्बन्धमें उचित प्रकाश न डाले।" इस बातको सुनकर और भी विस्मय होता है कि मिस्टर लायड जार्ज स्मर्नाकी अवस्थाकी जांचके लिये तो एक कमेटीकी आवश्यकता समझते हैं जो खास इसीके

लिये नियुक्त की जाय पर वे किसी भी अवस्थामें मिस्टर मुहम्मद अलीके इस प्रस्तावको नहीं स्वीकार करते कि आर्मेनियाके कत्लेआमकी जांचके लिये एक निरपेक्ष कमेटी बैठाई जाय। संशय युक्त, तथा एकतर्फी बातें तथा अब उनके इस निर्णयके लिये काफी हैं कि तुर्की सरकार अपनी प्रजाकी रक्षा नहीं कर सकती, वह हर तरहसे अयोग्य है और इसीके आधार पर आपका कहना है कि सभ्यताके नाम पर एशिया माइनरके शासनमें भी किसी विदेशी शक्तिका हाथ होना नितान्त आवश्यक है। यहा पर उन्होंने सुलतानकी स्वतन्त्रताकी जड़में चोट पहुंचाई है। तुर्कीके शासन व्यवस्थाकी देखरेखका अधिकार अपने हाथमें लेना एक नई बात है। इस तरहका व्यवहार तो अन्य किसी भी विजित राष्ट्रके साथ नहीं किया गया है।

सुल्तानकी सम्पत्तिकी इस प्रकारसे अपहरणकी जो व्यवस्था की जा रही है उससे स्पष्ट है कि प्रधान मन्त्री खिलाफतके प्रश्नको बड़ी ही उदासीनताके साथ देखते हैं। खिलाफतके प्रश्न पर इतनी उदासीनता दिखलाना उनके अन्यायको—जो कि वे तुर्की साम्राज्यके अंगभंग करनेकी व्यवस्था देकर कर रहे हैं—और भी भीषण रूप देना है। ऐसे अनेक अवसर आये हैं जब प्रधान मन्त्रीने मुसलमानोंके इस धार्मिक अधिकार तथा शासन अधिकारको एक ही शक्तिके हाथोंमें रहनेका लाभ उठाया है। पर आज यही प्रश्न विवादग्रस्त हो रहा है।

प्रश्न यह उठता है कि इस नीतिका प्रभाव ब्रिटनकी प्रतिष्ठा

पर किस प्रकार पड़ेगा अर्थात् इससे ब्रिटनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी या कलङ्कित होगी। जिन लोगोंने ब्रिटिश न्याय पर पूरा भरोसा करके अपने भाइयोंका रक्त पानीकी तरह बहने दिया क्या वे इस आचरणको किसी भी अवस्थामें बरदाश्त करेंगे ? आहत मुसलमानोंको केवल कृतज्ञता प्रकाशसे ही सन्तोष नहीं हो सकता ! इस समय ब्रिटनके लिये दो मार्ग खुले हैं चाहे तो वह तुर्की साम्राज्यके लिये 'मैण्डेट' जारी करके संसारमें एक बार अशान्ति और अराजकताका जन्म दे दे चाहे मुसलमानोंके हृदयों पर 'मैण्डेट' जारी करके अपना वचन निबाहे और मर्यादा बढ़ावे। प्रधान मन्त्रीने अदूरदर्शितासे काम लिया है। यह संकुचित हृदयता ब्रिटिशकी राजनीतिक कुटिलताका सबसे ताजा उदाहरण है।

बड़े लाटके पास डेपुटेशन ।

(जून ३०, १९२०)

मुसलमान प्रतिनिधियोंका डेपुटेशन बड़े लाटकी सेवामें खिलाफतके लिये अपील करनेके लिये उपस्थित हुआ था। इसमें निम्नलिखित प्रधान मुसलमान नेता थे :—मिस्टर मजहरुल हक, मिस्टर याकूब हसन, मौलाना अब्दुल बारी, मिस्टर शौकत अली, मिस्टर आजाद।

सुन्नी मुसलमानोंको अधिकांश संख्याने आपकी सेवामें उपस्थित होनेके लिये हमलोगोंको भेजा है। हमलोगोंने तुर्कीके साथ की गई सन्धिकी शर्तोंको अच्छी तरह पढ़ा और विचार किया है। हमलोगोंने देखा है कि ये शर्तें मुसलमानोंके धार्मिक भावों पर कठोर आघात करती हैं। प्रधान मन्त्रीने जो वचन दिया था और जिस वचन पर भरोसा करके भारतमें मुसलमान रङ्गरूट भर्ती किये गये और भेजे गये उनको एकदमसे तोड़ दिया गया है। हमलोगोंको पूर्ण आशा है कि ब्रिटिश साम्राज्य—जो संसारमें सबसे बड़ी मुसलमान शक्ति है—खिलाफतकी प्रतिनिधि तुर्की साम्राज्यके साथ उसी तरहका व्यवहार नहीं करेगी जैसा विजेता साधारण विजित शक्तिके साथ करता है। यह निःसङ्कोच स्वीकार किया जा सकता है कि किसी किसी अंशमें तुर्कोंके साथ जो व्यव-

हार किया गया है वह अन्य विजित शक्तियोंसे कहीं बुरा था। हम लोग यह बात दृढ़ताके साथ कह सकते हैं कि तुर्कीके प्रश्नका निपटारा करते समय ब्रिटिश सरकारको भारतीय मुसलमानोंका भी ख्याल करना होगा और उनकी मांगें पूरी करनी होंगी जहां तक वे उचित और न्यायसंगत हैं। हमारी धारणा है कि भारतीय मुसलमानोंने किसी तरहकी कठिनाई नहीं उपस्थित की है। पर उनके लिये यह असम्भव है कि इस युद्धमें जर्मनोंका साथ देनेके कारण तुर्कीका किसी तरहका दण्ड दिया जाय और उसके हाथसे अधिकार छीन लिया जाय। जिस स्थितिमें मुसलमानोंने जर्मनीका साथ दिया था उसकी समीक्षा परीक्षा करनेका यहां स्थान नहीं है। पर हम लोग ऐसी कोई बात नहीं चाहते जिससे आत्म-निर्णयके सिद्धान्तपर आघात पहुंचे। हमलोग ऐसे किसी भी शासनके पक्षपाती नहीं है जैसा कि तुर्कीके बारेमें कहा जाता है। आर्मेनियाकी प्रजापर तुर्की सैनिकोंके जिस अत्याचार और बर्बरताकी चर्चा की जाती है उसको निरपेक्ष जांचके लिये एक स्वतन्त्र कमीशन बैठानेकी सिफ़ारिश हमारे उन प्रतिनिधियोंने की है जो विलायत गये हैं। केवल उसे दण्ड देने अथवा नीचा दिखलानेके लिये तुर्की अथवा तुर्क साम्राज्यका किसी तरहका अङ्ग भङ्ग हम लोग निरपेक्ष दृष्टिसे नहीं देख सकते।

इसलिये हमलोग आपसे तथा आपकी सरकारसे इस

बातकी प्रार्थना करते हैं कि आप प्रधान मन्त्रीसे इस बातकी प्रार्थना करें कि वे सन्धिके शर्तों पर पुनः विचारकी योजना करें और उनसे स्पष्ट कह दें कि यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया तो आप भारतीय जनताका साथ देंगे। हम लोग आपकी सेवामें इस तरहकी प्रार्थना इस कारण उपस्थित करते हैं कि आपने बार बार इस बातकी घोषणा की है कि आपने तथा आपकी सरकारने भारतीय मुसलमानोंकी अवस्थाकी तरफ प्रधान मन्त्रीका ध्यान आकृष्ट किया है और उन्हें बतलाया है कि यह बात अधिकांश मुसलमानोंकी चित्तवृतिको डावाडोल कर रही है। इसलिये हमारी समझमें हम लोगोंका इस बातका अधिकार है कि हम लोग आपसे कहें कि आप भारतीय मुसलमानोंको इस बातका भरोसा दे दें कि आप आजभी उसी प्रकार उनके साथ हैं और उनकी न्यायपूर्ण माँगोंके लिये उनका अन्ततक साथ देंगे और यदि प्रधान मन्त्री न्यायके अनुसार सन्धिकी शर्तों में उचित संशोधन करानेकी चेष्टा न करें तो आप अपना पद तक त्याग देंगे। हम लोग निसङ्कोच तथा साहसके साथ इस बातको कह सकते है कि यदि भारतवर्षको भी औपनिवेशिक अधिकार प्राप्त होता तो उसके मन्त्री ऐसी अवस्थामें—जब कि सन्धिकी शर्तें मुसलमानोंके धार्मिक भावोंकी परवा न कर विश्वास घात कर रही हैं—अपने पदसे कभी स्तीफा दे दिये होते।

यदि अभाग्यवश आपने हम लोगोंकी बात न मानी तो हम

लोगों बाध्य होकर आगामी अगस्त मासकी पहली तारीखसे आपके साथ सहयोग त्याग कर देना पड़ेगा और अपने हिन्दू भाइयोंको भी हम अपना साथी बनानेकी चेष्टा करेंगे।

एक बात हम लोगोंको और कहनी है। हमारी यह प्रार्थना किसी प्रकारकी धमकी या अनादरके भावसे नहीं भरी है। हम ब्रिटिश साम्राज्यके कट्टर राजभक्त हैं। पर इस्लाम धर्मके मुकाबिले हम इस राजभक्तिको गौण स्थान ही दे सकते हैं। इस्लाम धर्मकी आज्ञा है कि यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर उसपर हस्तक्षेप करे, खलीफाके अधिकारपर चोट करे तो वह इस्लाम धर्मका विरोधी समझा जायगा और प्रत्येक मुसलमानका यह धर्म होगा कि जिस तरहसे हो—आवश्यकता पड़नेपर तलवार उठाकर भी—उसका प्रतिरोध करे। हम लोग यह भी कहते हैं कि शक्ति रहनेपर भी हम लोग तबतक हथियार उठाना स्वीकार नहीं करेंगे जबतक हमारे पास प्रतीकारके अन्य तरीके हैं। जो व्यक्ति खलीफाके अधिकारको जड़से काट डालना चाहता है उसके साथ किसी तरहका सम्बन्ध न रखना प्रत्येक सच्चे मुसलमानका कमसे कम करणीय विषय है। इसलिये जो सरकार सन्धिकी शर्तोंको स्वीकार करती है तथा हम लोगोंको भी स्वीकार करनेके लिये प्रेरित करती है उस सरकारके साथ सहयोग न करना ही हम लोगोंका परम कर्तव्य होगा।

हमें पूर्ण आशा है कि असहयोग व्रत ग्रहण करनेकी नौबत न आवेगी पर यदि अभाग्यवश हम लोगोंको लाचार होकर

असहयोग करना पड़ा तो हम लोग हर तरहसे अहिंसा धारण करेंगे। हिंसाको स्थान न देंगे। हम लोग अपनी जिम्मेदारी भली भांति समझते हैं। हम लोग भली भांति जानते हैं कि यदि साधारण हिंसा भी हो गई तो हम लोगोंके उद्देश्योंपर भीषण आघात पहुंचेगा और हमारा मार्ग कंटकाकीर्ण हो जायगा और हम लोगोंका परमपवित्र ध्येय कलङ्कित हो जायगा। इस लिये हम लोग असहयोग व्रतको ग्रहण करके इस बातकी सदा चेष्टा करेंगे कि जहां तक हो सके हम लोग सरकारको किसी तरहकी बाधा न पहुंचावें और जनताके उत्तेजित भावोंको सदा नियन्त्रित रखें।

—:*:—

टाइम्सका विरोध

—:o:—

(जुलाई ७, १९२०)

बड़े लाटकी सेवामें खिलाफत डेपुटेशनने जो प्रार्थना की थी तथा उसके सम्बन्धमें मैंने जो खुली चिट्ठी लिखी थी उनकी विलायती पत्रोंने कड़ी समालोचना की है। टाइम्स आफ इण्डिया पत्र प्रायः निरपेक्ष रहा करता है और पक्षपात रहित मत प्रगट करता है, पर इस बार उसने भी भिन्न रूप धारण किया है और मुसलमानोंके डेपुटेशन तथा मेरे पत्रके उन शब्दोंकी—जिनमें

हम लोगोंने यह लिखा है कि यदि सन्धिकी शर्तोंमें उचित संशोधन न हो जाय तो बड़े लाटको अपना पद त्याग देना चाहिये —कड़ी आलोचना की है।

मुसलमानोंने अपने डेपुटेशनमें कहा है कि ब्रिटिश साम्राज्यको तुर्कीके साथ उसी तरहका व्यवहार नहीं करना चाहिये जैसा एक विजेता किसी विजित शत्रुके साथ करता है। टाइम्स आफ इण्डियाने इस मतका विरोध किया है। पर मेरी समझमें डेपुटेशनके प्रतिनिधियोंने अपने इस कथनका पूरी तरहसे समर्थन किया है। उन्होंने कहा है:—"हम लोगोंकी यह प्रार्थना है कि तुर्कोंके प्रश्नको हल करते समय ब्रिटिश सरकारको भारतीय मुसलमानोंके धार्मिक भावोंका भी ख्याल करना होगा जहां तक वह न्याययुक्त और उचित है।" मेरा कहना है कि यदि सात करोड़ मुसलमान साम्राज्यकी प्रजा हैं तो उनकी मर्यादा अवश्य पालनी चाहिये और तुर्की साम्राज्यको किसी तरहका दण्ड नहीं दिया जाना चाहिये। लड़ाईके जमानेमें तुर्कीने क्या किया, इसका उल्लेख यहांपर करना अप्रासंगिक होगा। उसके लिये उसे काफी दण्ड मिल गया। इस पर टाइम्स आफ इण्डिया प्रश्न करता है :—क्या तुर्कीके साथ अन्य विजित शक्तियोंसे खराब व्यवहार किया गया है ?" मैं समझता हूं कि यह बात इतनी स्पष्ट है कि इसके बारेमें कुछ पूछनेकी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती थी। जो व्यवहार तुर्कीके साथ किया गया है वह व्यवहार न तो जर्मनीके साथ

किया गया है और न आस्ट्रिया हंगरीके साथ। समस्त तुर्की साम्राज्यका अपहरण कर लिया गया है और सिवा राजधानी (कुस्तुन्तुनिया) के अब तुर्की साम्राज्यके हाथमें कुछ नहीं रह गया है। उसमें भी इस तरहके प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं कि कोई भी आत्माभिमानी मनुष्य उसे स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं हो सकता, एक राजाकी तो बात ही न्यारी है।

टाइम्स आफ इण्डियाका कहना है कि मुसलमान डेपुटेशनके प्रतिनिधियोंने इस बातकी छानबीन नहीं की है कि तुर्कीने ब्रिटिशका साथ क्यों नहीं दिया। पर यह तो कोई छिपा कारण नहीं है। रूस तुर्कोंका कट्टर शत्रु है और उस समय तक मित्रदलोंमें रूस भी सम्मिलित था। इसलिये मित्रदलोंमें शामिल होना तुर्कोंके लिये कठिन था। युद्धके दिनोंमें रूस तुर्कीका नाका रोके खड़ा था और प्रतिक्षण चोट करनेको तैयारी कर रहा था। ऐसी अवस्थामें मित्रोंका साथ देना तुर्कोंके लिये असम्भव था। ग्रेट ब्रिटनपर तुर्कीका सन्देह स्वाभाविक था। उसे अनुभव था कि बलगेरियन युद्धके समय ब्रिटनने उसकी जरा भी सहायता नहीं की थी। इटाली युद्धके समय भी ब्रिटनने अपनी मैत्री नहीं निबाही। इस अवस्थामें जर्मनका पाया पकड़ना स्वाभाविक था। जबकि भारतके मुसलमान नेता उसका साथ देनेके लिये तैयार थे तो उसके (तुर्कोंके) राजनीतिज्ञ ब्रिटिशका साथ कर लिये होते क्योंकि ऐसी अवस्थामें मित्रोंका साथ देनेसे ब्रिटन उन्हें किसी तरहकी क्षति नहीं

पहुंचा सका होता। पर यह सब बातें घटना हो जानेके बाद सूझती हैं। तुर्कोंने भूल की और उसके लिये उसे दण्ड मिल गया। उसको और भी नीचा दिखाना भारतीय मुसलमानोंके धार्मिक भावोंकी अवहेलना करना है। ब्रिटनको उचित है कि वह इस नीतिपर न चले और भारतीयोंके जाग्रत मानसिक भावोंको अपने पक्षमें बनाये रखे।

टाइम्स आफ इण्डियाने लिखा है कि सन्धिकी शर्तें आत्म-निर्णयके सिद्धान्तोंके आधारपर बनी हैं और उन्हें पूरी तरहसे चरितार्थ करती हैं। यह तो पाठकोंकी आंखोंमें धूल झोंकना है। क्या आड्रियानेपुल और थ्रेस यूनानियोंको दे देना आत्म-निर्णयके सिद्धान्तके अनुसार हुआ है? आत्मनिर्णयके किस सिद्धान्तके आधारपर स्मर्ना भी यूनानियोंको दे दिया गया है। क्या थ्रेस और स्मर्नाके निवासियोंने यूनानियोंके अधिकारकी अभिलाषा प्रगट की थी?

मुझे यह कभी भी विश्वास नहीं होता कि अरबवालोंने उस व्यवस्थाको पसन्द किया है जो उनके साथ की गई है। हजाज़का शासक कौन है? और अमीर फैसुलके क्या अधिकार हैं? क्या अरबवालोंने इन्हें अपनी इच्छासे चुना है। क्या इङ्गलैण्डने अरबवालोंकी जो जिम्मेदारी 'मैण्डेट' द्वारा ली है वह अरबवालोंको स्वीकार है? इन सभी प्रश्नोंका निपटारा होते न होते आत्म निर्णयका नाम ही गायब हो जायगा। प्रमाण मिल रहे हैं कि अरब, थ्रेस तथा स्मर्नाके निवासी अपने भाग्य

निर्णय पर अभीसे असन्तोष प्रगट कर रहे हैं। मुमकिन है कि उन्हें तुर्कों का शासन न स्वीकार हो पर वर्तमान अवस्थाको और भी नहीं चाहते। वे लोग तुर्कोंके साथ अपना निपटारा कर लिये होते पर उनके साथ जो बन्दोवस्त किया गया है उसमें वे जानते हैं कि आत्म निर्णयके नामपर उनके ऊपर ब्रिटिश सेनाका भार लाद दिया गया है और उसके पैरों तले वे रौंदे जायंगे। ब्रिटिशके लिये सीधा मार्ग खुला था। वह तुर्कों से सुशासनके लिये पूरी जमानत ले लिये होता और उनको जैसाका तैसा रहने देता। पर उसके प्रधान मन्त्रीने गुप्त सन्धि और कुटिल मार्गका अनुसरण ही उचित समझा।

उनके लिये आज भी उपाय है। भारतको बराबरका साथी वे स्वीकार कर लें। मुसलमानोंके सच्चे प्रतिनिधियोंको वे निमन्त्रित करें। उनको अरब आदि प्रदेशोंमें भ्रमण करने दें और उनकी सहकारितामें ऐसा प्रबन्ध करें जिससे तुर्की साम्राज्यकी किसी भी तरहसे अप्रतिष्ठा न हो और तुर्की साम्राज्यके अर्न्तगत जितने भी राज्य हैं सबकी उचित व्यवस्था हो जाय। यदि आज कनाडा, आस्ट्रेलिया या दक्षिणी अफ्रिकाका प्रश्न होता तो मिस्टर लायड जार्जको अवश्य सुनना पड़ता। वे इसको इतनी उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखते, क्योंकि उनके (इन उपनिवेशोंके) हाथमें मनाने और मजबूर करनेका बल है। भारतके हाथमें इस तरहका कोई अधिकार नहीं है। पर यदि भारतके हृद्‌गत भावोंका ब्रिटिश साम्राज्यको जरा भी सम्मान नहीं करना है तो व्यर्थका

बराबरीकी विडम्बना करके वह उसका अपमान क्यों करता है। मैं टाइम्स आफ इण्डियाको सलाह दूंगा कि वह इस स्थितिको समझे और जिस कामके लिये भारतके प्रमुख नेता जोर दे रहे हैं उसमें योगदान दे।

मैं फिर भी यही कहता हूं कि यदि मन्त्रिमण्डल भारतीयोंके धार्मिक भावकी प्रतिष्ठा नहीं करना चाहता और उनकी मर्यादाका पालन नहीं करना चाहता तो लार्ड चेम्सफार्डको यही उचित है कि वे अपने पदसे स्तीफा दे दें। टाइम्स आफ इण्डियाने लिखा है कि कानूनकी दृष्टिमें लार्ड चेम्सफोर्डको मन्त्रिमण्डलके निर्णयके विरुद्ध कुछ नही करना चाहिये। क्या यह लिखकर टाइम्स आफ इण्डिया कानून शब्दको तोड मरोड नहीं रहा है। इस बातका हम स्वाकार करते हैं कि अपने पदपर रहकर कोई भी बड़ा लाट मन्त्रियोंके निर्णयका विरोध नहीं कर सकता पर कानून बड़े लाटके स्तीफामें बाधक नही हो सकता और जब कोई बडा लाट यह देखता है कि उसे अन्याय आचरण करनेके लिये बाध्य किया जा रहा है और इस आचरणसे उनलोगोंके बीचमें बड़ी उत्तेजना फैलनेकी संभावना है जिनका शासन वह कर रहा है तो सिवा स्तीफा दे देनेके उसके लिये और कोई चारा शेष नहीं रह जाता है।

मुसलमानोंमें तैयारी।

(जून ३०, १९२०)

धीरे धीरे मुसलमान लोग युद्धकी तैयारी कर रहे हैं। उन्हें जिन कठिनाइयोंसे लड़ना है वे भीषण हैं पर पैगम्बर मुहम्मद साहबको जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था उनके मुकाबिले ये कुछ भी नहीं हैं। उन्हें बारबार अपनी जानको जोखिममें डालना पड़ा था। इतनेपर भी ईश्वर परसे उनका विश्वास नहीं उठा। वे दृढ़ रहे। उन्हें परेशानीने कभी नहीं सताया क्योंकि उनका विश्वास था कि ईश्वर मेरे साथ है और मैं सत्यका प्रचार कर रहा हूं। यदि उनके अनुयायियोंमें उसका आधा भी विश्वास है, यदि उनमें आधी भी दृढ़ता है तो जो बाधायें उनके मार्गमें इस समय उपस्थित हो रही हैं, आपसे आप दूर हो जायंगी बल्कि थोड़े दिनोंमें वे ही कठिनाइयां और बाधायें तुर्कोंके अंगभंग करनेवालोंके मार्गमें जो उपस्थित होने लगेंगी। इस समय ही मित्रराष्ट्रोंमें जो लोलुपता आ गई है वह उन्हें खानेके लिये मुंह फैला रही है। फ्रांस अपने भारको कठिन समझ रहा है। यूनानियोंने बेईमानीसे जो कुछ भी प्राप्त किया है उसे वे पचा नहीं सकते। और इङ्गलैण्ड मेसापोटामिया पर अधिकार जमा लेना टेढ़ी खीर समझ रहा है। जिस अग्निको उसने प्रमादमें पड़कर जगाया है उसको और भी प्रज्वलित

करनेके लिये मोसूलकी तेलको खाने आहुतिका काम करेंगी और उसे भस्मसात कर देंगी। समाचार पत्रोंका कहना है कि अरबवाले अपने बीचमें हिन्दुस्थानी सैनिक नहीं देखना चाहते। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। वे जितने खूंखार हैं उतने ही वीर हैं। उन्हें यह कभी भी पसन्द नहीं आ सकता कि हिन्दुस्थानी फौज मेसापोटामियामें रहे। असहयोग आन्दोलनके अलावे भी प्रत्येक भारतीयको उचित है कि वह किसी भी अवस्थामें मेसापोटामिया जाना स्वीकार न करे। हमें अपनी स्थितिपर विचार कर लेना चाहिये। किसी तरहकी भी नौकरी स्वीकार करनेके पहले हमे यह भली भाँति देख लेना चाहिये कि ऐसा करनेसे हम किसी तरह अन्यायाचरणमें योग दान तो नहीं कर रहे हैं? खिलाफतका प्रश्न और अन्यायकी बातें छोड़ दें तोभी अंग्रेजोंका मेसापोटामियापर कब्जा करनेका कोई अधिकार नहीं है। जिसे हम दिन दहाड़े लूट कह सकते हैं उसके लिये साम्राज्य सरकारकी किसी तरहकी सहायता करना हमारा धर्म नहीं है। मेसापोटामियामें यदि हम केवल जीविकाके ख्यालसे ही जाते हैं तोभी हमें देख लेना चाहिये कि जिस तरीकेसे हम जीविका उपार्जन करने जा रहे हैं वह किसी तरह लाञ्छित या गर्हणीय तो नहीं है।

असहयोगके नामोच्चारणसे ही कितने लोगोंकी गर्दन हिलने लगती है। यह देखकर मुझे अतिशय विस्मय होता है। असहयोगके समान पुरअसर, पवित्र और जोरदार कोई भी अस्त्र नहीं

है। यदि इसका ठीक तरहसे प्रयोग किया जाय तो किसी तरहकी बुराईकी संभावना नहीं हो सकती। इसकी उपयोगिता उतनी ही अधिक होगी जितना प्रबल त्यागका भाव इस व्रतके ग्रहण करनेवालोंमें होगा।

सबसे प्रधान कर्त्तव्य असहयोगके लिये क्षेत्र तैयार करना है। प्रत्येक बुद्धिमान तथा समझदार प्रजाका यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी सरकारसे कह दे कि मैं आपके बेईमानी और पापके काम-में सहयोग नहीं कर सकता। यदि हमारी हीनता, लाचारी, और अविश्वास हम लोगोंके मार्गमें बाधा न उपस्थित करें तो हम इस परम पवित्र शस्त्रको अवश्य ग्रहण करते और इसका प्रयोग करते। यह बात निर्विवाद है कि कोई भी सरकार कितना ही जालिम और उच्छृंखल क्यों न हो वह प्रजाकी अनुमति बिना एक क्षणके लिये भी अपना शासन नहीं चला सकती अर्थात् प्रजाकी अनुमति अत्यन्त आवश्यक है चाहे वह अनुमति बल द्वारा ही क्यों न प्राप्त की जाय। पर जिस क्षण प्रजा उसकी उच्छृंखलताकी परवा करना छोड़ देती है, राजाकी शक्ति गायब हो जाती है। पर ब्रिटिश सरकार हर स्थानपर जोर और जुल्मसे ही काम चलाना नहीं चाहती। वह शासितोंकी सदिच्छा प्राप्त करनेकी भी चेष्टा करती है। पर वह शासितोंसे कोई बात जबर्दस्ती मनवानेसे भी बाज नहीं आती। उसने 'ईमानदारी सबसे उत्तम नीति है' का सर्वथा त्याग कर दिया है। इसलिये अपने मतमें लानेके लिये वह अनेक प्रकारसे आपको

घूस देती है जैसे, वह आपको उपाधि प्रदान करती है, तमगे देती है, नौकरियां देती है और जब ये सब तरीके असफल हो जाते हैं तब वह बलप्रयोग करती है।

इसी नीतिका सहारा सर माइकल ओडायरने लिया और इसी नीतिका सहारा अन्य सफेद कर्मचारी भी लेंगे यदि उन्हें इसकी आवश्यकता प्रतीत होगी। इसलिये यदि हम उपाधियों-के लिये मुंह न फैलावें, तमगों और आनरेरी पदोंके लिये दौड़ते न फिरें—क्योंकि इनसे देशको किसी तरहका लाभ नहीं हो सकता—तो हमारी आधी विजय तो ज्योंही हो जाती है।

मेरे सलाहकारों (?) का कहना है कि यदि तुर्कीके साथ सन्धिकी जो शर्तें की गई हैं उनपर पुनर्विचार भी किया गया तो यह असहयोगके कारण नहीं होगा। पर मैं उन्हें बतला देना चाहता हूं कि असहयोगका उद्देश्य सन्धिकी शर्तोंमें सुधार करानेसे कहीं उच्च है। यदि हम सन्धिकी शर्तोंमें सुधारके लिये मजबूर नहीं कर सकते तो हम इतना अवश्य कर सकते है कि जो सरकार इस तरह किसीका हक हड़प जानेके लिये तैयार है उसका साथ छोड़ दे सकते है। और यदि असहयोग आन्दोलनको मैं पूर्ण सफलतासे अन्तिम सीमा तक ले जा सका तो मैं सरकारको मजबूर कर दूंगा कि या तो वह भारतवर्षसे हाथ धोये या हड़पनेकी नीतिका त्याग करे। मुझे अभी तक विश्वास है कि ब्रिटेन अपने वर्तमान चालबाज प्रधान मन्त्रीको हटाकर उसके स्थानपर ऐसा योग्य व्यक्ति रखेगा जो आगत

भारतकी राय लेकर सन्धिकी शर्तोंमें इस प्रकारका उलट-फेर करेगा जो उसकी मर्यादाके उपयुक्त होगा, तुर्कों की प्रतिष्ठाको स्थापित करेगा और भारतके स्वीकार करनेके योग्य होगा।

पर मेरे विरोधियोंका कहना है कि न तो भारतमें योग्यता है और न शक्ति है कि वह इस प्रकारकी सफलता प्राप्त कर सके। उन लोगोंका कहना अंशतः ठीक है। भारतमें ये गुण इस समय वर्तमान नहीं हैं। पर क्या जो बातें हम लोगोंमें नहीं हैं उन्हें हम प्राप्त भी नहीं कर सकते? क्या इसके लिये हमें प्रयत्न नहीं करना चाहिये? क्या इस लाभके लिये किसी तरहका बालदान भी अत्यधिक कहा जा सकता है?

ब्रिटिश साम्राज्यवाद

—:०*०:—

(जून ३०, १९२०)

यदि इस बातको साबित करनेके लिये और प्रमाणोंकी आवश्यकता है कि तुर्कों के साथ जो शर्तें तै की गई हैं उनका कारण मित्रराष्ट्रोंका साम्राज्यवादकी उत्कट अभिलाषा है तो विगत चन्द मासकी घटनाओंने इन्हें भली भांति साबित कर दिया है। तेलका प्रलोभन, विजयको आकांक्षा, राज्यका विस्तार, तथा जल और स्थल मार्गों का प्रभुत्व ऐसा विषय

था जो मित्रोंको नेकनियतीका पार कर गया। उन लोगोंकी दूरदर्शिता धुंधली पड़ गई। परम्परागत सिद्धान्त, नेकनियती, वादा तथा प्रतिज्ञाओंको बात उन्होंने ताखपर रख दी। इस महायुद्धका यह अतीव खेदजनक परिणाम है। पर इससे भी खेदजनक परिणाम यह है कि जो अंग्रेज जाति युद्धके लिये न्याय, सचाई और अधिकारकी घोषणा जोर शोरसे कर रही थी आज वही कुटिल नीतिके चक्करमें सबसे पहले फंस गई है। उसने इस बातको प्रमाणित कर दिया है कि इस कुटिल नीतिके विधायक वही हैं! प्रतिस्पर्धी मित्र राष्ट्रोंके राजनीतिज्ञों तथा समाचार पत्रोंसे जो बातें प्रगट हुई हैं उनसे स्पष्ट है कि इङ्गलैण्डके प्रधान मन्त्री अपने साम्राज्यवादी दलके साथ तुर्कोंके अंगभंग और मटियामेटकी नीतिका प्रतिपादन सबसे प्रथमसे ही करते चले आ रहे हैं। जहां तक मालूम हुआ है स्टम्बोलसे सुलतानके भगानेका प्रस्ताव उन्हींने उपस्थित किया था। आज तुर्कीमें अधिकांश सेना ब्रिटनकी ही है। अपने अनुयायी यूनानको थ्रेसके उत्तम उत्तम प्रान्तोंको उसीने दिलवाया है। एशियामानइरके समृद्ध प्रदेश उसकी ही देख रेखमें हैं। फारसपर उनका पूर्ण अधिकार है और भारतके साथ वह स्थलमार्गद्वारा उसे जोड़नेकी व्यवस्था कर रहा है। यदि इन ज्वलन्त प्रमाणोंके रहते किसी और प्रमाणकी आवश्यकता प्रतीत हो तो वह भी मिल सकती है। उस प्रकारका प्रमाण इटालीके प्रधान सीनियर निटीका असोसियेटेड्के प्रतिनिधिके साथ वार्तालाप है जिसे

पहले पहल फ्रांसके सरकारी पत्र ला टेम्पसने प्रकाशित किया था और जिसे मञ्चेस्टर गार्जियनने उद्धृत किया था। इस बात-चीतमें उन्होंने कहा था :—

"इस (नीति) का परिणाम एशिया माइनरमें युद्ध होगा। पर इस युद्धके लिये न तो इटाली एक सिपाही देगा और न मैं एक पैसा। तुमने तुर्कों से उनके पवित्र क्षेत्र आण्ड्रियानोपुल-ले लिया है। तुमने उनकी राजधानीको विदेशियोंके कब्जेमें छोड़ दिया है। तुमने उनके समस्त बन्दरगाहों और उनके राज्यकी अधिकांश भूमिको ले लिया है। तुम्हारे चुने हुए पांच प्रतिनिधि इस सन्धिपत्रपर हस्ताक्षर कर देंगे पर उनका समर्थन न तो तुर्क लोग ही करेंगे और न तुर्की सरकार ही करेगी।"

ला टेम्पस पत्रने लिखा है कि इटाली सरकार इस नीतिपर बराबरसे चलती आ रही है और यदि वह देखेगी कि संयुक्त शक्तिद्वारा ही सन्धिकी शर्तें स्वीकार कराई जा सकेंगी तो वह साथ भी छोड़नेको तैयार है। इससे इटाली सरकारकी नीति-का पता चल जाता है। इटालीकी प्रजा इससे भी एक कदम आगे बढ़ी हुई है। इटालीके अनेक समाचारपत्रोंके देखनेसे विदित हो जाता है कि उनका क्या विचार है। इटालीका प्रसिद्ध पत्र गियोर नाले डे इटालिया लिखता है :—'जनताको सचेत हो जाना चाहिये। सन्धिकी शर्तोंमें मुसलमानोंके साथ पूरा विश्वासघात किया गया है। इसके कारण दूसरा धार्मिक

युद्ध हुए विना नहीं रह सकता। इस पत्रने आगे चलकर फिर लिखा है :—"यदि सन्धिकी शर्तें चरितार्थ हो गईं तो निकट-पूर्वपर ब्रिटनका सोलहो आना अधिकार हो जायगा। कुछ तो सीधे उन कतिपय प्रदेशोंपर अधिकार रखनेसे और कुछ प्रकारान्तरसे अर्थात् उनके अनुयायी यूनानियों द्वारा।'

इससे व्यक्त है कि सन्धिकी इन शर्तोंको न तो इटालीकी प्रजा ही स्वीकार करती है और न प्रधान मन्त्री ही इससे सहमत हैं। उन्होंने कायरतासे उसपर हस्ताक्षर तो कर दिया है पर किसी तरहकी जिम्मेदारीसे वे सम्बन्ध नहीं रखना चाहते। इटालीकी बाबत तो आप जान गये। अब फरासीसी और अंग्रेज शासकवर्ग तथा प्रजा शेष रह गईं। मुहम्मद अलीने जो तार, पत्र और खरीते भेजे हैं उनसे विदित हाता है कि तुर्कोंके प्रश्नपर फरासीसी राजा और प्रजा दोनोंका मत आशाजनक है। यही बात कुछ खास खास फरांसीसी पत्रोंके मतोंसे भी पुष्ट हो जाती है। पर अंग्रेजोंका मत इसके पक्षमें नहीं है। फरांसीसी राजनीतिज्ञोंका इस सन्धिकी ओर क्या भाव है उसका दिग्दर्शन एल० हुमानिटामें प्रकाशित मि० पाल लुईके पत्रसे हो जाता है। उन्होंने लिखा है :—

'यूरोपके पूर्व प्रदेशोंमें ब्रिटिश अपनी साम्राज्यवादकी अभिलाषाको पूरी तरहसे चारितार्थ कर रहा है। वह तुर्कोंका अंगभंग करके उसे एक छोटासा प्रदेश बनाकर अपने अनुयायी राज्योंके बीचमें अथवा अपने अधिकृत प्रदेशोंके बीचमें रख छोड़ना

चाहती है। मसूलकी तेलकी खानोंपर वह अधिकार रखना चाहता है, बाटुम तथा बाकूकी तेलकी खानोंपर भी वह कब्जा करना चाहता है। कुस्तुन्तूनिया उसके हाथमें है। आण्ड्रियानोपुल यूनानियोंको देकर और वेनिज़लोपर कृपाओंकी वर्षा-कर वह हेलनके लिये बीजण्टाइन साम्राज्यकी स्थापना करके उसे निकटपूर्वमें अपना सबसे प्रधान अनुयायी बनाना चाहता है और उसका प्रयोग तुर्को राष्ट्रीयता तथा रूसियोंके विरुद्ध करना चाहता है अर्थात् इङ्गलैंड अपनी छत्रछायामें सारे संसारको लाना चाहता है।"

जिस समय फ्रांसने राइन प्रदेशपर अधिकार कर लिया था उस समय ब्रिटनके समस्त राजनीतिज्ञ और स्वयं लायड जार्ज फ्रांसपर यह दोषारोपण कर रहे थे कि वह उसे फ्रांसमें मिलानेकी चाल चल रहा है। उस दोषारोपणका प्रतिवाद करते हुए ला टेम्पसने इन शब्दोंमें ब्रिटिश नीतिज्ञोंकी निर्भत्सना की है :—

"मिस्टर लायड जार्ज इस बातको भलीभांति समझते हैं कि फ्रांस और ब्रिटनकी मैत्री कायम रखनेके लिये किसी भी ब्रिटिश राजनीतिज्ञको यह उचित नहीं है कि वह फरांसीसियों पर साम्राज्यवादका दोष लगावे चाहे वह किसी समाचारपत्रका सम्पादक ही क्यों न हो। इस तरहके आक्षेप वह अस्त्र हैं जो उलटा ही आकर पड़ते हैं। यद्यपि ब्रिटिश साम्राज्य अति वेगसे बढ़ता जा रहा है फिर भी हम लोग यह कहनेका कभी भी साहस नहीं करते कि इसका शासनाधिकार चन्द साम्राज्यवादियोंके

हाथमें है।...हम लोग तो इतना भी सन्देह नहीं करते कि हमारे अंग्रेज मित्र केवल विस्तारके लिये ही इस प्रकारकी बातें निकाल रहे हैं। जैसे ब्रिटन फारसपर कब्जा बनाये रखनेके लिये भारतके साथ उसे स्थल मार्गसे जोड़ देना चाहता है।"

ब्रिटनके पक्षपाती भी इन बातोंसे क्या परिणाम निकाल सकते हैं? इससे यही परिणाम निकलता है कि मिस्टर लायड जार्ज, मिस्टर मिलनर और मिस्टर चर्चिलके नेतृत्वमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद तुर्कीके साथ कीगई सन्धिके जिम्मेदार हैं।

इसके अतिरिक्त डेली मेलका कहना है कि फरांसीसी लोग इस सन्धिकी शर्तोंमें सुधारकी चर्चा कर रहे हैं। यदि यह सच है तो उपरोक्त कथनकी और भी पुष्टि हो जाती है। इस उपरोक्त कथनका प्रतिवाद किया गया है पर उस प्रतिवादसे भी यही व्यक्त होता है कि फ्रांस सुधारका पक्षपाती है। प्रतिवादके निम्नलिखित शब्द हैं :—

"पेरिससे सरकारी तौर पर सूचना निकली है कि "डेली मेलका कहना गलत है। यह सच है कि फ्रांस हर तरहकी सुविधा देनेको तैयार है जिससे तुर्क लोग सन्धिकी शर्तोंको स्वीकार कर उसका पालन कर सकें पर वह सुधारकी चर्चा तबतक नहीं कर सकता जबतक तुर्क लोग उस पर हस्ताक्षर न कर दें।"

इतना प्रमाणोंके होते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि

सुप्रीम सभाके सामने ब्रिटन लाचार था। वास्तवमें बात एकदमसे उलटी है। जिस विश्वासकी नींव हैम्पडन, मेकाले, रसकिन, कार्लाइल तथा ग्लेडस्टन सदृश अंग्रेजोंने डाली थी और पुष्टि की थी उसको खोदकर उखाड़ फेंकनेकी व्यवस्था वह साम्राज्यवादकी चालबाजियां कर रही हैं जिनके हाथमें आज ब्रिटनका भाग्य है। ब्रिटिश अपने साम्राज्यवादके अधीन सारे संसारको लाना चाहता है। जिस दिन इन साम्राज्यवादी लालचियोंके सामने ब्रिटनकी उदारता सिर झुका देगी उस दिन ब्रिटनका अन्त समझिये।
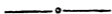
मुसलमानोंका निर्णय।

(जून ६, १९२०)

इलाहाबादकी खिलाफत सभाने सर्व सम्मतिसे असहयोगके सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया है और विस्तृत कार्य विवरण निश्चित करनेके लिये कार्य कारिणी समिति बैठाई है। इस सभाके पहले हिन्दू मुसलमानोंकी एक संयुक्त सभा कीगई थी जिसमें सभी मतके नेता अपना अपना मत प्रगट करनेके लिये निमन्त्रित किये गये थे। उस सभामें मिसेज बेसेण्ट, माननीय पण्डित मालवीयजी, माननीय डाकृर तेजबहादुर

सप्रू, पण्डित मोतीलाल नेहरू, मिस्टर चिन्तामणि आदि प्रमुख नेता उपस्थित थे। भिन्न भिन्न मतोंके हिन्दू नेताओंकी राय मांग कर खिलाफत सभाने बुद्धिमानीका काम किया। मिसेज बेसेण्ट तथा डाकूर तेजबहादुर सप्रूने असहयोग आन्दोलनका घोर विरोध किया। अन्य हिन्दू नेताओंने पहलू बचाकर भाषण किया। कितने हिन्दू नेता ऐसे भी थे जिन्होंने सिद्धान्ततः तो असहयोग आन्दोलनको स्वीकार किया पर उसके सञ्चालनमें अनेक तरहकी कठिनाइयां दिखलाई। उन्हें इस बातका भी भय था कि यदि मुसलमानोंने अफगानोंको निमन्त्रित किया तो बखेड़ा मच सकता है। इस पर मुसलमानोंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि यदि कोई भी विदेशी शक्ति भारत पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन करनेकी चेष्टा करेगी तो हम लोग प्राण रहते उसका विरोध करेंगे पर यदि कोई शक्ति इस उद्देश्यसे भारत पर आक्रमण करेगी कि वह हम लोगोंके साथ न्याय करानेके लिये ब्रिटिश सरकारको दण्ड दे तो हम लोग यदि उसकी सहायता नहीं करेंगे तो उसका स्वागत अवश्य करेंगे। हिन्दुओंका भय और उनकी आशङ्का निर्मूल नहीं है। पर मुसलमानोंकी स्थितिका प्रतिरोध करना भी कठिन है। ऐसी अवस्थामें सबसे उत्तम तरीका हिन्दुओंके लिये यह होगा कि वे असहयोग आन्दोलनको पूरी तरह सफल बनावें। यही एक उपाय है जिसके द्वारा भारत इस्लामकी सेना और अंग्रेजोंकी सेनाका युद्ध स्थल नहीं बन सकेगा।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि मुसलमान लोग अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रह गये, आत्मसंयम पर चले और बलिदानके लिये तैयार रहे तो हिन्दू लोग अवश्य ही उनका साथ देंगे और असहयोग व्रत धारण करेंगे। मुझे यह भी विदित है कि यदि मुसलमान अपने बल पर या अफगानोंकी सहायतासे अंग्रेजोंके साथ सशस्त्र युद्ध करना चाहेंगे तो वे उनका कभी भी साथ नहीं देंगे। इसके अतिरिक्त सीमा पर ब्रिटिश सेना इतनी सङ्गठित है कि कोई भी विदेशी शक्ति सहजमें भारत पर आक्रमण नहीं कर सकेगी। इसलिये यदि इस्लाम धर्मकी रक्षाके लिये मुसलमानोंके हाथमें कोई भी उपाय शेष रह गया है तो वह असहयोग आन्दोलनको सफल करना है। यदि लोगोंने तत्परताके साथ इसे अपनाया तो यह केवल सार्थक हो नहीं होगा बल्कि व्यक्तिगत उद्बोधन भी इससे अपरिमित होगा। यदि मैं किसी व्यक्ति विशेष या संस्थाके अन्याययुक्त आचरणको नहीं देख सकता तो मैं उस पापाचरणमें यदि हाथ बटाऊं तो इसके लिये मुझे ईश्वरके सामने जवाबदेह होना पड़ेगा। अगर मैंने ऊपर लिखित अन्यायाचरणमें योग नहीं दिया तो मैंने जहांतक संभव था सदाचारकी नीतिके अनुसार ही काम किया। इसलिये इस महान अस्त्रके प्रयोगमें जल्दीबाजी अथवा बदमिजाजीको स्थान नहीं देना चाहिये। असहयोग आन्दोलन हर तरहसे आत्म प्रेरित होना चाहिये। इसलिये समस्त बातें मुसलमानोंपर ही निर्भर करती हैं।

यदि उन्होंने अपनी सहायता अपने आप की तो हिन्दुओंकी सहायता उन्हें अवश्य प्राप्त होगी और सरकार चाहे वह कितनी ही बलिष्ठ क्यों न हो अवश्य ही सिर झुकावेगी। रक्तपात रहित जनताके सामूहिक विरोधका सामना कोई भी सरकार नहीं कर सकती।

—०*०—

मिस्टर माण्टेगूकी धमकीका उत्तर।

————०:*:०————

हाउस आफ कामन्समें एक सदस्यके प्रश्नके उत्तरमे मि० माण्टेगूने महात्मा गांधीको राजद्रोही कहा था और उनके सम्बन्धमें कुछ धमकियाँ भी दी थी। महात्मा गांधीने उनकी धमकियोंका जो उत्तर दिया था वह इस प्रकार है :—

'खिलाफत आन्दोलन जिसका कि रोज बल बढ़ता जा रहा है, मि० माण्टेगूको पसन्द नहीं है। हाऊस आफ कामन्समें कुछ प्रश्नोंके उत्तरमें आपने कहा है कि यद्यपि आप यह स्वीकार करते हैं कि मैंने भूतकालमें देशकी अच्छी सेवा की है तथापि आप मेरी वर्तमान नीतिको शान्त भावसे नहीं देख सकते और अब मेरे साथ वैसा नरमीका व्यवहार नहीं किया जायगा जैसा कि रौलट ऐक्ट सम्बन्धी आन्दोलनके समय किया गया था। आपने यह भी कहा है कि आपको भारत सरकार और प्रान्तीय

सरकारमें पूरा विश्वास है। वे आन्दोलन पर होशियारीसे नजर रख रही हैं और उनको स्थितिका प्रबन्ध करनेके लिये पूरी शक्तियाँ स्वतन्त्रता है।

मि० माण्टेगूका यह कथन बहुतसे लोगोंने धमकी समझा है। बहुतोंका मत है कि इस आज्ञाका अर्थ यह है कि भारत सरकारको अधिकार दे दिया गया है कि अगर वह चाहे तो फिर भयका साम्राज्य स्थापित कर सकती है। निस्सन्देह मिस्टर माण्टेगूका कथन उनकी इस इच्छाके उपयुक्त नहीं है कि भारतका शासन भारतकी जनताके प्रेमके आधार पर स्थापित किया जाय। साथही हण्टर-कमेटी जिस परिणामपर पहुंची है अगर वह ठीक है और पञ्जाबके गत वर्षके उपद्रवोंका मैं ही कारण हूँ तो निस्सन्देह मेरे साथ असाधारण नरमीका व्यवहार किया गया है। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि मैं इस वर्ष जो काम कर रहा हूँ वह मेरे गत वर्षके कामकी अपेक्षा साम्राज्यके लिये ज्यादा खतरनाक है। सहयोग-त्याग स्वयं तो शान्ति-पूर्ण कानून भङ्गकी अपेक्षा अधिक निर्दोष है, परन्तु उसका परिणाम उक्त कानून-भङ्गके परिणामकी अपेक्षा सरकार लिये कहीं ज्यादा खतरनाक होगा। सहयोगत्यागका उद्देश्य सरकारको इतना शक्ति-हीन कर देना है कि उसे न्याय करनेको बाध्य किया जा सके। अगर वह आखिरी सीमातक जारी रखा जाय तो वह अवश्य सरकारके कामको बिलकुल बन्द कर देनेमें

समर्थ हो सकता है। मेरे एक मित्रने जोकि अकसर मेरे व्याख्यान सुनते रहे हैं, एक बार मुझसे पूछा कि आप ताजिरात हिन्दकी राजविद्रोहकी दफाके अन्दर तो नहीं आ जाते। मैंने इस सम्बन्धमें पूरी तरह विचार नहीं किया था तोभी मैंने उत्तर दिया कि गालिबन मैं उसके अन्दर आ जाउँगा। और यदि मेरे ऊपर उस दफाके अनुसार मुकदमा चलाया जायगा तो मैं अपनेको निर्दोष नहीं कहूँगा, क्योंकि मैं यह अवश्य स्वीकार करता हूँ कि मैं वर्तमान सरकारसे किसी प्रकारका प्रेम रखनेका बहाना नहीं कर सकता और मेरे व्याख्यानोंका उद्देश्य यह होता है कि लोगोंका प्रम सरकारके प्रति इतना घट जाय कि वे उसे सहायता देने या उसके साथ सहयोग करनेमें लज्जा अनुमान करने लगें, क्योंकि वह अब विश्वास अथवा सहायताकी पात्र नहीं रही है।

मैं ब्रिटिश सरकार और भारत सरकारमें कोई भेद नही समझता। भारत सरकारने खिलाफतके सम्बन्धमें वही नीति स्वीकार कर ली है जो कि ब्रिटिश सरकारने उसे स्वीकार कराई है और पञ्जाबके मामलेमें ब्रिटिश सरकारने उस वीर और साहसी जातिको नामर्द बनानेकी नितिका समर्थन किया है जिसे भारत सरकारने प्रारम्भ की थी। ब्रिटिश मन्त्रियोंने अपने दिये हुए वचनका भंग किया है और भारतके सात करोड़ मुसलमानोंके हृदयोंमें बुरी

तरह चोट पहुँचाई है। पञ्जाब सरकारके असभ्य अधिकारियोंने निर्दोष स्त्री पुरुषोंका अपमान किया था और अब उन लोगोंके साथ न्याय होना तो दूर रहा निर्दयता और पाशविकताके साथ पंजाबियोंके अपमान करनेवाले अधिकारी अब तक अपने पदों पर बने हुए हैं।

जब मैंने पिछली साल अमृतसर कांग्रेसमें हृदयसे यह प्रार्थना की थी कि सरकारका साथ सहयोग किया जाय और शाही घोषणामें प्रगट की गई इच्छाओंका बदला चुकाया जाय तब मैं यह विश्वास करता था कि एक नवीन युग स्थापित होनेवाला है और भय और अविश्वासके स्थान पर सम्मान विश्वास और मित्रताका साम्राज्य स्थापित होनेवाला है। मुझे हृदयसे यह विश्वास था कि मुसलमानोंके भावोंको सन्तुष्ट किया जायगा और पंजाबके फौजी शासनमें जिन अधिकारियोंने कसूर किया था उन्हें कमसे कम बरखास्त तो कर ही दिया जायगा तथा जनताको अन्य प्रकारसे भी यह अनुभव करा दिया जायगा कि जो सरकार प्रजाकी ज्यादतियोंका उसे दण्ड देनेमें सदा शीघ्रता किया करती है वह अपने कर्मचारियों-के अपराधोंको भी दण्डित किये विना नहीं रहेगी। परन्तु अब मुझे यह मालूम करके बहुत आश्चर्य और दुःख हुआ है कि साम्राज्यके वर्तमान प्रतिनिधि बेईमान हो गये हैं। उनको भारतके लोगोंकी इच्छाओंकी कोई परवा नहीं है और वे हिन्दुस्तानियोंके मानको बिलकुल तुच्छ चीज समझते हैं।

इस समय सरकार ऐसे बुरे लोगोंके हाथमें है कि मैं अब उससे प्रेम बनाये नहीं रख सकता। मुझे तो यह भी अपमानजनक मालूम होता है कि मैं स्वतन्त्र पड़ा रहूँ और अन्यायको देखता रहूँ। मि० माण्टेगूका मुझे यह धमकी देना कि अगर मैं सरकारके अस्तित्वको दृष्टिसे खतरनाक काम जारी रखूँगा तो मेरी स्वतन्त्रताका अपहरण कर लिया जायगा, ठीक ही है; क्योंकि अगर मेरी काशिशें सफल हुई तो उनका परिणाम सरकारके लिये खतरनाक ही होगा। लेकिन अगर मि० माण्टेगू मेरी पुरानी सेवाओंको स्वीकार करते हैं तो वह यह समझ सकते थे कि अगर मुझ जैसा सरकारका हितैषी भी अब उससे प्रेम नहीं रख सकता तो अवश्य उसमें कोई असाधारण बुराई होगी। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया—बस इतना ही मुझे खेद है। उन्होंने मुसलमानों और पञ्जाबके साथ न्याय करानेके आसान कामको न करके अन्यायको चिरस्थायी करनेके लिये मुझे धमकी दी है। मुझे तो इस बातका पूरा विश्वास है कि अन्यायी सरकारके प्रति अप्रीतिका भाव उत्पन्न करके मैं साम्राज्यकी उतनी सेवा कर सकूँगा जितनी कि मैंने अभी तक नहीं की है। परन्तु तोभी जो लोग मेरी वर्तमान नीतिका समर्थन करते हैं उनका कर्तव्य स्पष्ट है। यदि भारत सरकार मेरी स्वतन्त्रताका अपहरण कर लेना ही अपना कर्तव्य समझती है तो मुझे इस बात पर किसी तरह क्रोध नहीं करना चाहिये। अगर किसी राष्ट्रके कानूनोंके अनुसार उसके किसी नागरिकको

स्वाधीनता रहित किया जाय तो उसे इसका विरोध करनेका कोई अधिकार नहीं है और जब स्वयं उसीको अधिकार नहीं है तो उसके साथ सहानुभूति रखनेवालोंकी तो कोई बात ही नहीं है। मेरे सम्बन्धमें सहानुभूतिका तो कोई सवाल ही नहीं है, क्योंकि मैं जानबूझ कर सरकारके अस्तित्वको खतरेमें डालनेकी कोशिश कर रहा हूं। इसलिये जिस समय मैं कैद होऊँ वह समय मेरे नीतिके समर्थकोंके लिये तो खुशीका होना चाहिए, क्योंकि अगर वे लोग मेरे पीछे भी मेरी नीतिको जारी रख सके तो मेरी गिरफ्तारीका अर्थ सफलताका प्रारम्भ होगा। अगर सरकारने मुझे गिरफ्तार किया तो वह ऐसा काम सहयोग-त्यागकी उन्नतिको रोकनेके लिये ही करेगी। फिर अगर मेरी गिरफ्तारीके बाद भी सहयोग-त्याग बिना किसी उत्साहकी कमीके तरक्की करता चला गया तो सरकारके लिये यह आवश्यक हो जायगा, कि या तो वह और लोगोंको कैद करे या जनतासे सहयोग प्राप्त करनेके लिये उनकी इच्छा पूरी कर दे। अगर लोगोंने उत्तेजित किये जानेपर भी उपद्रव कर डाला तो परिणाम नाशकारक होगा। इसलिये सफलताके लिये प्रथम आवश्यकता यह है कि आन्दोलनके बीचमें चाहे मैं गिरफ्तार किया जाऊं और चाहे कोई और किया जाय किसी तरहका क्रोध प्रगट नहीं किया जाना चाहिए। ये दोनों काम एक साथ हो नहीं हो सकते कि हम सरकारके अस्तित्वको संकटापन्न भी बनावें और फिर अगर वह ऐसा करनेवालोंको दण्ड देकर अपनी रक्षाका यत्न करे तो उसको बुरा भी कहें।

—०*०—

खिलाफत

—:*:—

(मार्च २३, १९२१)

सेवरकी सन्धिमें जिस परिवर्तनकी चर्चा चल रही है वह भारतीय मुसलमानोंको सन्तुष्ट नहीं कर सकती। व्यवस्था यह हो रही है कि यूरोपमें तुर्कोंको एशिया माइनर स्मर्ना और कुस्तुन्तुनिया दे दिया जाय। पर ब्रिटनको स्मरण रखना चाहिये कि उसे केवल तुर्कों को ही सन्तुष्ट नहीं करना है। भारतीयोंको भी शान्त करना उसके लिये जरूरी है। मेरी समझमें आवश्यक बात यह है कि भारतीय मुसलमानोंकी मांगे पूरी की जायं चाहे तुर्कोंका सन्तुष्ट किया जाय या नहीं। इसके दो कारण हैं। खिलाफत एक ध्येय है और जब मनुष्य किसी ध्येयको सामने रखकर काम करता है तो वह अदम्य हो जाता है। मुसलमानोंके सामने यह महान ध्येय है और इसीलिये उनकी सहायताके लिये समस्त भारत खड़ा है।

जो लोग कहते हैं कि मुसलमान लोग तुर्कोंके लिये यह आन्दोलन मचा रहे हैं वे भ्रममें हैं। यदि आज तुर्की अपने पथसे भ्रष्ट हो जाय तो मुसलमान उसका साथ कभी नहीं देंगे। उदाहरणके लिये यदि वह आज चाहे कि उसकी वही स्थिति हो जाय जो सुलेमानके राजत्व कालमें थी, तो भला इस पागलपनकी

बातोंको कौन मुसलमान सुनेगा और उसका साथ देगा। इसी तरह केवल इस कारण कि तुर्की कमजोर हो गया है और अपनेको सम्हाल नहीं सकता मुसलमान अपने धार्मिक अधिकारोंको नहीं छोड़ सकते।

प्रत्येक सच्चा मुसलमान तुर्कीको अधिकार सम्पन्न देखना चाहता है और साथ ही साथ वह यह भी देखना चाहता है कि जजीरतुल अरब अर्थात् मेसोपोटामिया, सीरिया, तथा पलस्टाइन पर मुसलमानोंका एक छत्र अधिकार रहे और ये पूरी तौरसे खलीफाकी छत्रछायामें रहें चाहे वह खलीफा कोई भी क्यों न हो। इसके अतिरिक्त कोई भी शर्त चाहे वह कितनी ही उदार क्यों न हो मुसलमानोंको सन्तुष्ट नहीं कर सकती। वे लोग इस बातको क्षणभरके लिये भी बरदाश्त नहीं कर सकेंगे कि मुसलमानोंके राज्यपर सोधा चाहे प्रकारान्तरसे किसी भी गैर मुसलमानका अधिकार हो।

इस ख्यालसे पलस्टाइनका प्रश्न सबसे विकट है। ब्रिटनने यहूदियोंको वचन दिया है कि यह प्रदेश वह उन्हें देगा। उस प्रदेशसे उनका धार्मिक सम्बन्ध भी है। कहा जाता है कि यदि पलस्टाइन यहूदियोंको न दे दिया जायगा तो वे आजन्म बिना घर द्वारके घुमन्तू जाति बने रहेंगे। इसके तहमें जो सिद्धान्त हैं उसकी सार्थकता अथवा निरर्थकता पर मैं यहां कुछ लिखना नहीं चाहता। मुझे केवल इतना ही कहना है कि चालबाजी या विश्वासघातसे उन्हें यह प्रदेश नहीं मिल सकता। इस

युद्धका दांव पलस्टाइन नहीं था। ब्रिटिश सरकारने कभी भी इस बातका साहस न किया होता कि वह मुसलमानोंसे कहती कि तुम इस युद्धमें भाग लेकर मुसलमानोंके हाथसे पलस्टाइन छीन लो और उसे यहूदियोंको सौंप दो। पलस्टाइन यहूदियोंका धर्मस्थान है। उनके धार्मिक भावोंकी रक्षा करना आवश्यक है और यदि मुसलमान उन्हें धार्मिक पूजा आदिमें पूर्ण स्वतन्त्रता न देकर किसी तरहका बाधा डालें तो यहूदियोंकी शिकायत यथार्थ होगी।

पर यह किसी भी सिद्धान्तसे प्रतिपादित नहीं होता कि पलस्टाइन यहूदियोंको दे दिया जाय। यहूदियोंको उचित है कि या तो पैलस्टाइनके सम्बन्धमें वे अपने सिद्धान्तमें परिवर्तन करें या यदि यहूदी धर्म युद्धसे काम लेनेकी योजना करता है तो वे संसारके मुसलमानोंके साथ धार्मिक युद्ध करें जिसमें ईसाई उनके साथी होंगे। पर संसारकी प्रगति धार्मिक युद्ध न होने देगी और धार्मिक प्रश्न सदाचारके अनुसार निर्णीत हो जायगे। पर इस प्रकारका शुभ समय कभी उपस्थित होता है या नहीं; यह स्पष्ट है कि यदि खिलाफतके प्रश्नका न्यायतः निपटारा करना है तो जजीरतुल अरबपर मुसलमानोंका पूर्ण अधिकार हो और वह खलीफाकी छत्रछायामें रहे।

पहली अगस्त

(जुलाई २८, १९२०)

इस बातकी बहुत ही कम सम्भावना है कि पहली अगस्त तक ब्रिटिश सरकार तुर्कीके साथ की हुई सन्धिकी शर्तोंके सुधारका कोई प्रबन्ध करेगी और असहयोगको स्थगित करनेका अवसर आवेगा। जहां तक घटना बतलाती है पहली अगस्त भी भारतके इतिहासमें उतनाही महत्व रखेगी जितना कि ६ ठीं अप्रेल। छठी अप्रेलने रौलट ऐक्टपर कुठाराघात किया और वहींसे उसका अन्त शुरू हुआ। जिस आन्दोलनने उसे इस प्रकार नीचे गिराया उसके सामने उसका फिर सिर उठाना कठिन है यद्यपि वह आन्दोलन कुछ दिनके लिये स्थगित कर दिया गया है। इस बातको हमें भली भांति ध्यानमें रखना चाहिये कि यदि हमारेमें इतनी शक्ति है कि हम इस अनचाहती सरकारसे पंजाब तथा खिलाफतके मामलोंमें जबर्दस्ती न्याय करा सकते हैं तो निश्चय मानिये कि हम लोग रौलट ऐक्ट भी इससे रद्द करवा ही लेंगे। हम लोगोंका बल सत्याग्रह है चाहे उसे असहयोग कहिये या सविनय अवज्ञा।

पारसाल सत्याग्रह आन्दोलन चलानेमें जो घटनायें हो गईं उनका स्मरणकर लोग असहयोगके नामसे डरते हैं! उनको

भय है कि जनता फिर उत्तेजित हो जायगी, काबूसे बाहर हो जायगी और पारसालकी तरह अति क्रूर और नृशंस काम कर बैठेगी जिसका मुकाबिला अर्वाचीन इतिहासमें नहीं हो सकता। मैं भी इन जन साधारणके आतङ्कसे जितना डरता हूं, सरकारके आतङ्कसे उतना नहीं डरता। सरकारकी ज्यादतियां एक संस्था की ज्यादतियां हैं पर जनताकी ज्यादतियां राष्ट्रीय बदमिजाजी-का नमूना है, इसलिये इसको कब्जेमें करना नितान्त कठिन है। यदि सरकारने कोई बुराई की है तो वह सबपर व्यक्त है और हम उसके लिये उसे दण्ड दे सकते हैं पर जनतामें यदि उपद्रवी पैदा हो जाते हैं तो उनका पता लगाना और उन्हें दण्ड देना कठिन है। पर केवल इस बातकी सम्भावना पर कि सरकार और साधारण जनता किसी तरहका उपद्रव या ज्याद-ती कर बैठेगी इसलिये इस तरहके आन्दोलनको न चलाना तो बुद्धिमानीका सबूत नहीं होगा। भूल और असफलतासे ही हमें जीवनमें शिक्षायें मिलती हैं। केवल हार खाकर या भूल करनेके कारण सेनापति युद्धसे मुंह नहीं मोड़ सकता। यही बात हम लोगोंके साथ भी लागू है। हमें असहयोग व्रतको तुरन्त ग्रहण कर लेना चाहिये और उसके लिये किसी तरहकी विपत्तिकी सम्भावना नहीं करनी चाहिये। आशा और विश्वा-सके सहारे हमें दिन प्रतिदिन आगे बढ़ना चाहिये। जैसा सत्या-ग्रह व्रत धारण करनेके पहले किया गया था, असहयोगव्रत धारण करनेके पहले भी व्रत और प्रार्थना करने होंगे। यह

आन्दोलन धार्मिक है। इसलिये उपवासव्रत और प्रार्थनाद्वारा इसकी धार्मिकताको प्रगट करनी होगा। अखिल भारतवर्षीय हड़ताल होनी चाहिये और शामको सार्वजनिक सभायें करके तुर्कोंकी सन्धिमें परिवर्तन तथा पञ्जाबके अत्याचारोंके प्रतीकारके लिये प्रस्ताव पास करना चाहिये। साथ ही इस बातकी भी घोषणा कर देनी चाहिये कि जबतक न्याय नहीं होगा हम लोग बराबर व्रत पालन करेंगे।

सरकारी उपाधियों तथा अवैतनिक पदोंका परित्याग भी उसी दिनसे आरम्भ होना चाहिये। लोगोंका कहना है कि इसके लिये नोटिस देना चाहिये। उपाधियों तथा अवैतनिक पदोंका परित्याग बिना सूचनाके उचित नहीं होगा। जिस समय घोषणा की जा रही है वहीं उनके परित्यागके दिनकी अवधि पर्याप्त नहीं है। जिन लोगोंके हृदयमें इस तरहको आशंका उठ रही है उनसे हमें कहना है कि पहली अगस्त तो केवल आरम्भ करनेका दिन है। यहींसे अन्त नहीं हो जाता कि पर्याप्त समयकी चिन्ता उठ खड़ी होती है। यह तो कहीं लिखा नहीं है कि केवल उसी दिन सबको उपाधियां और अवैतनिक उहदे त्याग देने चाहिये। उस दिन केवल आरम्भ होगा। मुझे तो यह भी आशा नहीं कि उस दिन उपाधि या अवैतनिक पद परित्याग करनेवालोंकी किसी भी प्रकार सन्तोषजनक संख्या दृष्टिगोचर होगी। इसके लिये भी हमें भीषण आन्दोलन करना होगा, कड़ी परिश्रम करनी होगी। प्रत्येक

उपाधिधारी तथा अवैतनिक पदभोगीके दरवाजे पर आकर खट-खटाना होगा। उसे कांग्रेसके निर्णयको सुनाना होगा, इस निर्णयकी उपयोगिता बतलानी होगी। उसके कर्तव्यको सुझाना होगा और तब उससे प्रार्थना करनी होगी कि ऐसी अवस्थामें उपाधि धारण किये रहना या अवैतनिक पदों पर कायम रहना आपको शोभा नहीं देती।

पर इस व्रतका सबसे प्रधान और महत्व पूर्ण काम होगा सङ्गठन, परिचालन, तालीम, परस्पर सहयोग तथा काम करनेवालोंमें एकता और मेल। हमारा सङ्गठन जितना ही दृढ़ होगा हमारा असहयोग व्रत उतना ही परिपूर्ण और सार्थक होगा। पञ्जाबमें हम जिस किसी सभामें गये वहांकी उपस्थित जनताके आकार, भाव और इङ्गितको देखनेसे हमें स्पष्ट विदित हो जाता था कि वे सरकारके साथ सहयोग त्याग करनेके लिये हर तरहसे तैयार हैं। केवल वे यह जान लेना चाहती हैं कि इस परित्यागका क्या तरीका है और इस परित्यागमें उन्हें क्या करना होगा। कितने लोग तो ऐसे हैं जिन्हें सरकारकी जटिल शासन व्यवस्था ही समझमें नहीं आई है। यदि उनसे कहा जाता है कि आप भी इस सरकारके प्रतिपालक हैं, इसके सञ्चालनमें आप भी सहायता करते हैं, आपके सहयोग पर ही इसकी गति है तो वे हंसते और विस्मय प्रगट करते हैं। वे कहते हैं:—"मैं तो इस सरकारकी शासन प्रणालीको समझता तक नहीं कि यह किस तरह चलती है,

इसके काममें कभी हाथ तक नहीं लगाया फिर भला मेरी सहायताकी इसे कब आवश्यकता रहती है।" पर वास्तवमें बात यह है कि हममेंसे प्रत्येककी सहायता विना इस सरकार-का काम असम्भवसा समझिये। इसके प्रत्येक कार्यमें हम प्रत्येककी सहायता रहती है। इसलिये इसके प्रत्येक कामको कुछ न कुछ जिम्मेदारी हम सबपर है। और जबतक सरकारके काम पूर्ण योग्यताके साथ किये जाते, हैं जबतक उसके आचरण बरदाश्त करने योग्य होते हैं तबतक उसकी साथ देना, उसको सहायता करना, उसके कामोंका समर्थन करना उचित है। पर जब वह देखता है कि सरकारी कार्रवाईसे, उसके आचरणसे हमारी जाति या हमारे देशका नाश हो रहा है, आत्मा पर चोट पहुंच रही है, घोर अपमान हो रहा है तो उसे तुरन्त उस सरकारका साथ छोड़ देना चाहिये और अपनी सहायतासे उसे वञ्चित कर देना चाहिये।

पर साधारणतया इस कामको किस तरह चरितार्थ करना चहिये अर्थात् सरकारके साथ सहयोग किस तरह त्याग देना चाहिये, इस बातको प्रत्येक प्रजा नहीं जानती। यदि किसी तरहसे क्रोध और रोषका अवसर मिल गया तो उसका परिणाम उपद्रव होगा, शान्तिसे काम तभी चल सकता है जब किसी बातका प्रतिरोध या मुकाबिला हम दूरदर्शिता-पूर्ण बुद्धिमानीके साथ कर सकते हैं। इसलिये पूर्ण तरहसे सफलता प्राप्त करनेकी पहली कुंजी यह है कि हमें हर तरहसे

अहिंसाका पालन करना होगा। हमें अपने प्रत्येक काममें यह देख लेना होगा कि कहींसे अहिंसा नहीं होने पाती। यदि हम लोगोंने सरकारके प्रति या सरकारके हिमायतियोंके प्रति अर्थात् वे लोग जो सरकारका ही पक्ष ग्रहण कर रहे हैं और हमारा साथ नहीं दे रहे हैं उनके प्रति यदि हमने अहिंसाका किसी तरहका भाव प्रगट किया तो इससे हमारी ही हानि समझिये। सरकारको शस्त्रबलके प्रयोगका अवसर मिल जायगा, बगुनाहोंकी जानें जायंगी, असहयोगको स्थगित करना पड़ेगा और हमें अपने हृदयको पोछे खींचना पड़ेगा। इसलिये जिन लोगोंके हृदयोंमें इस बातकी आन्तरिक अभिलाषा है कि कमसे कम समयमें ही हमें इस असहयोगव्रतकी सफलता दिखला देनी चाहिये उन्हें चाहिये कि सबसे पहले इस बातको देखें कि उनके बीचमें कहींसे हिंसाकी बू बास नहीं आ रही है। केवलमात्र अहिंसा और पूर्ण शान्ति ही असहयोग व्रतको सफल कर सकती है।
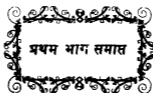
सुलभ साहित्य सीरीजका उद्देश्य

(१) हिन्दीमें सभी उपयोगी विषयोंपर पुस्तकें लिखवाना तथा अनुवाद करवाना और उन्हें प्रकाशित करना।

(२) तत्कालोपयोगी तथा क्षणिक लाभकी पुस्तकोंपर ध्यान न देकर स्थायी साहित्यका ही प्रकाशन करना।

(३) व्यवसाय आदि जिन विषयोंपर अभी पुस्तकें नहीं निकली हैं उनके लिये यत्न करना और पुस्तकें लिखवाना।

(४) पुस्तकोंका मूल्य इतना सुलभ रखना जिससे साधारण हैसियतका आदमी भी उनसे लाभ उठा सके।

(५) प्रकाशनमें हिन्दी भाषा, देश तथा समाजके कल्याण पर विशेष ध्यान रखना।

बड़ा बजार कुमार सभाका उद्देश्य

१—परस्पर सद्भाव व मैत्री स्थापित करना।

२—शारीरिक तथा मानसिक उन्नती करते हुए देश व समाजकी सेवा करना। विशेषकर स्वदेशी वस्तुओंके प्रचारकी चेष्टा करना।

३—समाजमें शिक्षा प्रचारके लिये पुस्तकालय खोलना, व्याख्यान आदि दिलावाना तथा ज्ञानवर्धक विभाग खोलना जिसमें प्रकाशन आदि रहेंगे।